# कहै वाजिद पुकार

भगवान श्री रजनीश

भगवान श्री रजनीश

संक्रमण की यह बीमार संध्या—क्षितिज पर झंझा की धूल और पीले विषाक्त बादलों का गहराता अंधियारा...। तीव्र से तीव्रतर होती तूफानी हवा की विक्षिप्त चीख और सब कुछ अस्त-व्यस्त होता! पछाड़ें खाता हुआ तिमिर-सिंधु का महाज्वाल, और टूट-टूट कर गिरते आस्था के तट...।

बीमार सदी की इस संक्रमण बेला में पूर्व-क्षितिज पर उग आया है जैसे एकाएक पूनम का प्यारा चांद— रजनीश! मानो धरती की चिर अश्रु-सिंचित प्रार्थना, फूट निकली हो कलुष की पर्तों को पार करती, शुभ्र कुमुद-सी अंधियारे की तिमिर-झील में! और जिसकी लुटती सुगंध उड़ी जाती है हवा के पंखों पर निमंत्रण बांटती-सी मधुप-दल को।

ऊपर उठते चांद के साथ बदलने लगा है रंग मौसम भी। कल तक जो अंधियारे में खोया था, वह एकाएक शुभ्र-शीतल चांदनी में नहा-सा उठा है!

यह बरसती चांदनी— यह रजनीश की प्रेम-स्निग्ध महाकरुणा, कभी किरनों के सहस्र करों से धरती की जख्म भरी देह पर नर्म फाहे रखती है, कभी श्रमित भाल को सहलाती, अशीषती शीतल किरनों से, लिपती है चंदन सी! थकी-थकी बोझिल पलकों को धीरे-धीरे मूंद, कभी खोलती है स्वप्निल वातायन; तो कभी सदियों से अभिशापित, अपराध-भाव से ग्रस्त, अहिल्या से झुके हुए पाषाण-दृगों को, ले जाती है अपने संग ऊर्ध्व-उर्ध्वतर— खिलता है जहां सहस्रदल कमल शुभ्र पंखुरियों वाला, झिलमिल-झिलमिल महाशून्य की नील-झील में!

इस चांदनी में चमक उठता है कभी दूर... अंधियारी घाटी से उगता तथागत का शुभ्र, शान्त हिम-शिखर —महाशून्य के महामौन में लीन, परमबोध की शुभ्र-स्निग्ध आभा से घिरा, तो कभी अभिषेकित हो उठती है दूधिया चांदनी से, वृक्ष की पत्रहीन

# कहै वाजिद पुकार
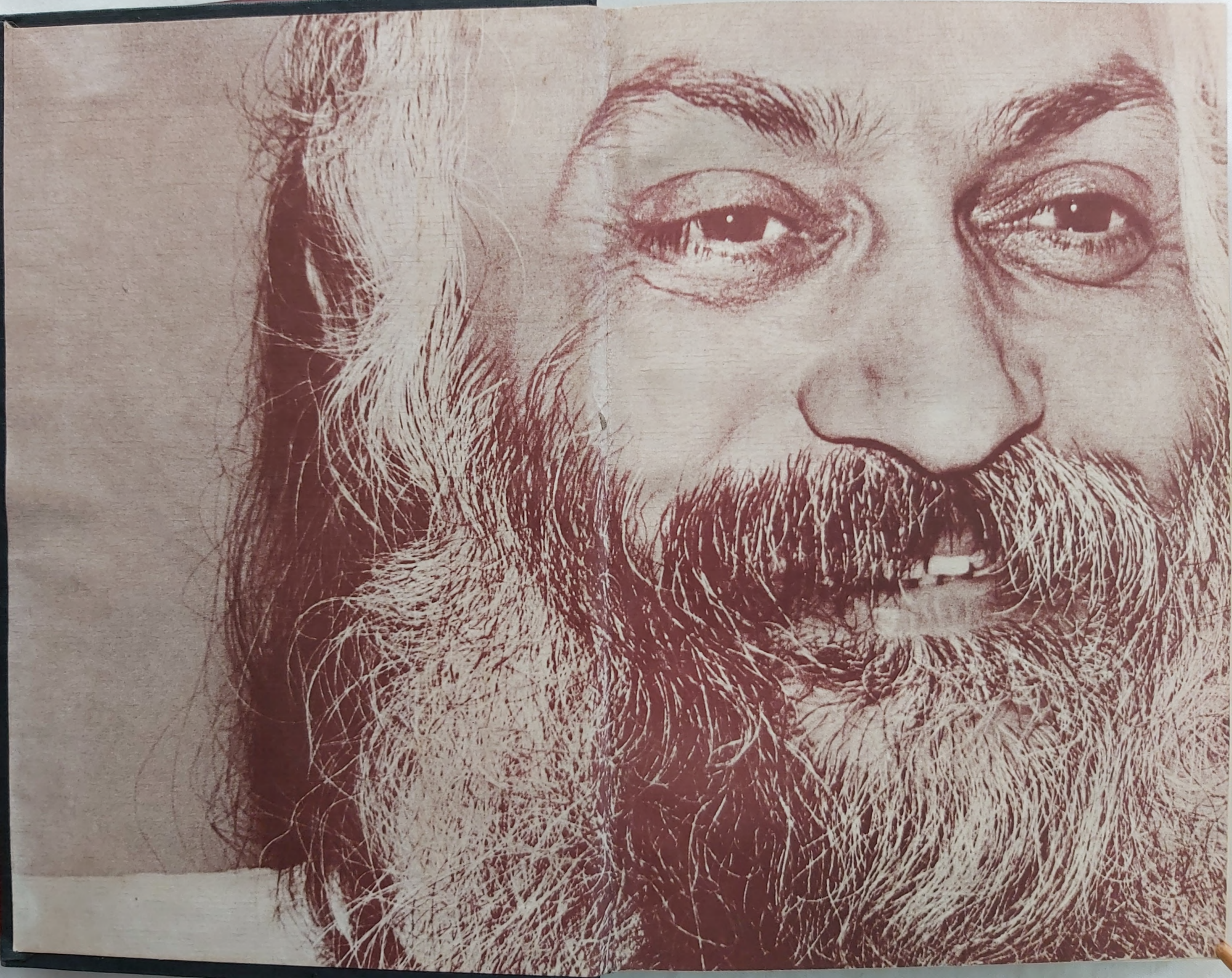
भगवान श्री रजनीश

# कहै वाजिद पुकार

---

वाजिद-वाणी
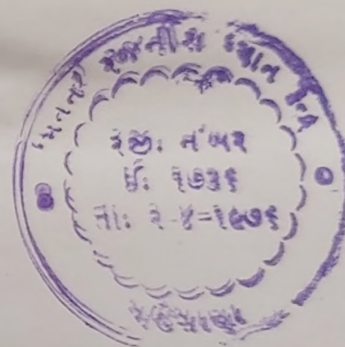
रजनीश फाउन्डेशन लिमिटेड
१९७९

# कहै वाजिद पुकार
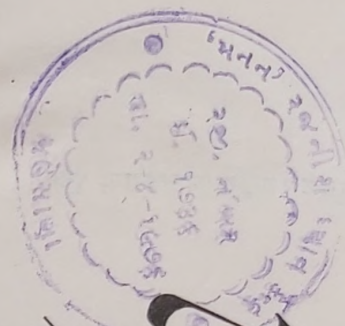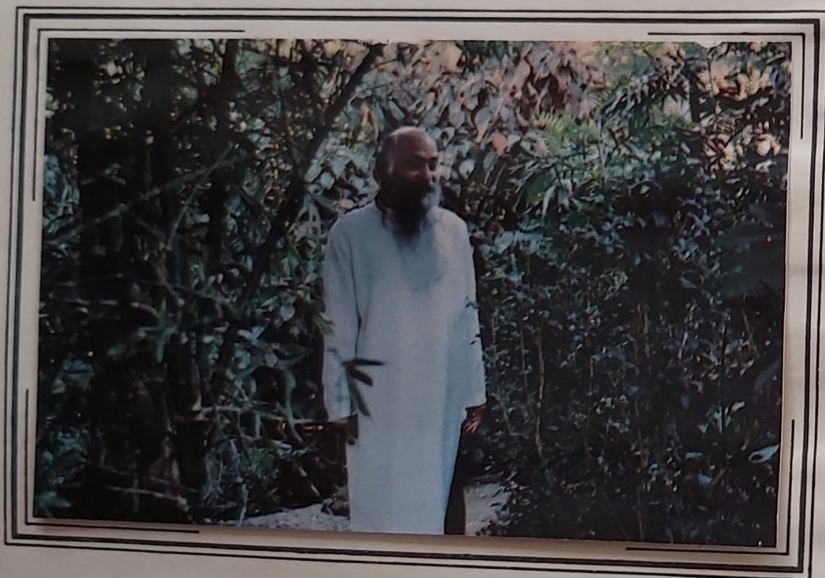
भगवान श्री रजनीश

प्रकाशक
मा योग लक्ष्मी
रजनीश फाउन्डेशन लिमिटेड
श्री रजनीश आश्रम
१७, कोरेगांव पार्क
पूना – ४११००१

संकलन
स्वामी योग अमित

संपादन
स्वामी अरुण सत्यार्थी

संयोजन
स्वामी नरेंद्र बोधिसत्व

प्रथम संस्करण
२१ मार्च, १९७९

कला-सज्जा
मा प्रेम सर्वा

प्रतियां : तीन हजार

मूल्य : ५०-०० रुपये

मुद्रक
श्री. चिं. स. लाटकर
कल्पना मुद्रणालय
४६१/४ शिव-पार्वती
तिलक रास्ता
पूना – ४११०३०

# आमुख
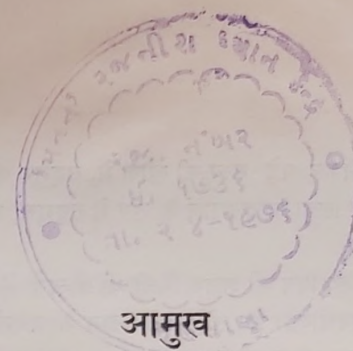
नशीली चांदनी के कुहरीले आंचल से छनती, तैरती है एक मद्धिम-मद्धिम सी पुकार—किसी लोकगीत की धुन-सी सीधी-साधी, पर भाव के रस से भीनी !

वनफूलों की सुगंध और माटी के सोंधेपन से बसी यह पुकार, चांदनी की ठंडी आंच के स्पर्श से, मादक होने के साथ-साथ दाहक भी हो उठती है। एक ओर यह पुकार मन-प्राण को शीतल करती है, तो दूसरी ओर अपनी आंच से तप्त भी करती है, जलाती भी है, जगाती भी है !

यह पुकार है वाजिद की। वाजिद—दुनिया के लिए एक अनजाना-सा नाम, एक मुसलमान पठान, एक कवि; परन्तु जानने वालों के लिए—एक नबी, एक ऋषि, एक सद्‌गुरु।

वाजिद की पुकार प्रेम की पुकार है। प्रेम—जोकि वाजिद के लिए परमात्मा का पर्यायवाची है। प्रेम की इस पुकार का प्रारंभिक स्वर, उस क्वांरी विरहिन आत्मा का स्वर है, जिसकी भांवरें तो रच गयी हैं उस अगम-अज्ञेय प्रिय से, लेकिन मिलन अभी नहीं हुआ है। '...जब तैं कीनो गौन भौन नहिं भावही' अतः प्रिय के बिना उसके लिए जगत के सारे आकर्षण अर्थहीन और फीके होकर रह गये हैं—'फूल भये सम सूल बिना वा पीव रे'

प्रिय-मिलन की यह विरह-कातर पुकार, वाजिद के प्रारंभिक वचनों में, चांदनी रात मे टिहकती किसी टिटिहरी या पपीहे की मर्म-भेदी पुकार की तरह बार-बार कचोट उठती है—'पीव बस्या परदेश...' 'पंछी एक संदेस कहो उस पीव सूं'

'पीव' की यह पुकार अचानक ही पैदा हो गयी थी वाजिद के जीवन में। उस अगम-अज्ञेय पीव के मार्ग बड़े रहस्यमय हैं। कब, किस क्षण उसकी टेर प्रवेश कर जायेगी, और बांस की मामूली पोंगरी वंशी हो जायेगी, कोई नहीं जानता।

ऐसा ही वाजिद के साथ हुआ। जंगल में शिकार करते हुए, छलांग भरती हिरणी का सौंदर्य...और वाजिद आवाक, अभिभूत रह गये ! छलांग भरती हिरणी के सौन्दर्य में, उस अज्ञेय की झलक उतर आयी थी क्षण-भर को। फिर वाजिद दूसरे ही व्यक्ति हो

गये। घर नहीं लौटे। निकल पड़े सत्य की खोज में, सद्गुरु की तलाश में। इधर-उधर भटके वाजिद; फिर पा लिया दादूदयाल के रूप में सद्गुरु, और समर्पित हो गये सदा के लिए।

वाजिद को उस अज्ञेय प्रिय की झलक मिली थी सौन्दर्य में—सौन्दर्य ही सत्य का द्वार बना था। अतः स्वभावतः इस सीधे-सादे पठान के वचनों में नैसर्गिक सादापन व सौन्दर्य है। उनमें सत्य की गगरी से छलका हुआ भाव का रस तो है, पर शब्दों और सिद्धांतों का उलझाव कहीं भी नहीं है।

वाजिद की पुकार प्रारंभ में भक्त की पुकार है, पर 'पीव-मिलन' के बाद वह भगवान की पुकार बन गयी है। नदी की कल-कल, छल-छल सागर का गर्जन बन गयी है। 'पीव' से मिलने के बाद, यह दूसरों को भी उस प्रिय की गली की राह दिखाने का उद्‌घोष बन गयी है।

किन्तु इस उद्‌घोष में दूसरों पर अपना दुराग्रह थोपने की चेष्टा कहीं भी नहीं है; बल्कि अहंकार-शून्य हृदय से उपजा प्रेमपूर्ण सहज निवेदन है—स्वान्तःसुखाय, लीलामात्र। वाजिद अस्तित्व के छंद के साथ एकरस हो गये हैं, समा गये हैं उसमें! अस्तित्व का लीला-उत्सव वाजिद का लीला-उत्सव हो गया है—एक खेल, एक अभिनय। राघोदास ने वाजिद की इस अपूर्व दशा स्मरण इन शब्दों में किया है:

राघो रति रात दिन देह दिल मालिक सूं  
खालिक सूं खेल्यो जैसे खेलण की रीत्यौ है

वाजिद् की पुकार, एक सद्‌गुरु की शून्य-वीणा से निकली पुकार है। यह रूखे-सूखे सिद्धांतों से बुद्धि को नहीं भरती, बल्कि हृदय के द्वार थपथपाती है—जगाती है, बार-बार टेरती है, कचोटती है। न सुनने पर कान में अंगुली डालकर भी झकझोरती है—'कान अंगुलि मेलि पुकारे दास रे'

ऊपर से सीधे-सादे उपदेश से प्रतीत होने वाले वाजिद के ये सूत्र, भगवान श्री जैसे अपूर्व सद्‌गुरु, जीवन-वीणा के महावादक के स्पर्श से, जीवन्त रागों में मुखरित हो उठे हैं। ये राग—अज्ञेय, अनाहत को शब्दों की राग-रागिनियों में बांधने के स्वतःस्फूर्त प्रयत्न हैं—इसयुग के अनुरूप, जिज्ञासुओं और शिष्यों की अन्तःदशाओं का ख्याल रखते हुए। संगीत के विषय में बोलना नासमझी ही है न, क्योंकि संगीत तो सुनने और रसमग्न के लिये है। फिर परम संगीत के विषय में तो... आपे सुनें, पिएं, डूबें!

सम्बोधि दिवस  
दिनांक: २१ मार्च, १९७९

स्वामी अरुण सत्यार्थी

## अनुक्रम

# पंछी एक संदेस कहो उस पीव सूं

पहला प्रवचन; दिनांक २१ सितम्बर, १९७८;

श्री रजनीश आश्रम, पूना.
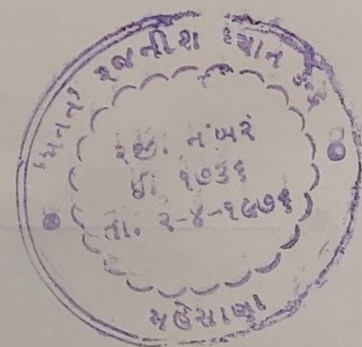
अरध नाम पाषाण तिरे नर लोइ रे।
तेरा नाम कह्यो कलि मांहिं न बूड़े कोइ रे।
कर्म सुक्रति इकवार विलै हो जाहिंगे।
हरि हां, वाजिद, हस्ती के असवार न कूकर खहिंगे ॥
रामनाम की लूट फबी है जीव कूं।
निसबासर वाजिद सुमरता पीव कूं।
यही बात परसिद्ध कहत सब गांव रे।
हरि हां, अधम अजामेल तिर्यो नारायण-नांव रे ॥
कहियो जाय सलाम हमारी राम कूं।
नैण रहे झड़ लाय तुम्हारे नाम कूं।
कमल गया कुमलाय कल्यां भी जायसी।
हरि हां, वाजिद, इस बाड़ी में बहुरि न भंवरा आयसी ॥
चटक चांदणी रात बिछाया ढोलिया।
भर भादव की रैण पपीहा बोलिया।



कोयल सबद सुणाय रामरस लेत है।
हरि हां, वजिद, दाज्यो ऊपर लूण पपीहा देत है ॥
रैण सवाई वार पपीहा रटत है।
ज्यूं ज्यूं सुणिये कान करेजा कटत है।
खान पान वाजिद सुहात न जीव रे।
हरि हां, फूल भये सम सूल बिना वा पीव रे ॥
पंछी एक संदेस कहो उस पीव सूं।
विरहनि है बेहाल जायेगी जीव सूं।
सींचनहार सुदूर, सूक भई लाकरी।
हरि हां, वाजिद, घर ही में बन कियो बियोगनि बापरी ॥
बालम बस्यो विदेस भयावह भौन है।
सोवै पांव पसार जु ऐसी कौन है।
अति ही कठिण यह रैण बीतती जीव कूं।
हरि हां, वाजिद, कोई चतुर सुजान कहै जाय पीव कूं ॥
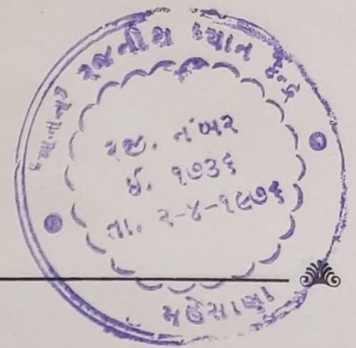
वाजिद—यह नाम मुझे सदा से प्यारा रहा है—एक सीधे-सादे आदमी का नाम, गैर-पढ़े-लिखे आदमी का नाम; लेकिन जिसकी वाणी में प्रेम ऐसा भरा है जैसा कि मुश्किल से कभी ओरों की वाणी में मिले! सरल आदमी की वाणी में ही ऐसा प्रेम हो सकता है; सहज आदमी की वाणी में ही ऐसी पुकार, ऐसी प्रार्थना हो सकती है। पंडित की वाणी में बारीकी होती है, सूक्ष्मता होती है, सिद्धांत होता है, तर्क-विचार होता है, लेकिन प्रेम नहीं। प्रेम तो सरल-चित्त हृदय में ही खिलने वाला फूल है।

वाजिद बहुत सीधे-सादे आदमी हैं। एक पठान थे, मुसलमान थे। जंगल में शिकार खेलने गए थे। धनुष पर बाण चढ़ाया; तीर छूटने को ही था, छूटा ही था, कि कुछ घटा—कुछ अपूर्व घटा। भागती हिरणी को देख कर ठिठक गए, हृदय में कुछ चोट लगी, और जीवन रूपान्तरित हो गया। तोड़ कर फेंक दिया तीर-कमान वहीं। चले थे मारने, लेकिन वह जो जीवन की छलांग देखी—वह जो सुन्दर हिरणी में भागता हुआ, जागा हुआ चंचल जीवन देखा—वह जो बिजली जैसी कौंध गई जीवन की! अवाक रह गए। यह जीवन नष्ट करने को तो नहीं, इसी जीवन में तो परमात्मा छिपा है। यही जीवन तो परमात्मा का दूसरा नाम है, यह जीवन परमात्मा की अभिव्यक्ति है। तोड़ दिये तीर-कमान; चले थे मारने, घर नहीं लौटे—खोजने निकल पड़े परमात्मा को। जीवन की जो थोड़ी-सी झलक मिली थी, यह झलक अब झलक ही न रह जाए—यह पूर्ण साक्षात्कार कैसे बने, इसकी तलाश शुरू हुई।

...बड़ी आकस्मिक घटना है! ऐसा और बार भी हुआ है, अशोक को भी ऐसा ही हुआ था। कलिंग में लाखों लोगों को काटकर जिस युद्ध में उसने विजय पायी थी, लाशों से पटे हुए युद्ध-क्षेत्र को देखकर उसके जीवन में क्रांति हो गई थी। मृत्यु का ऐसा बीभत्स नृत्य देख कर, उसे अपनी मृत्यु की याद आ गई थी—यहां सभी को मर जाना है, यहां मृत्यु आने ही वाली है। और अशोक जगत से उदासीन हो गया था।



रहा फिर भी महल में, रहा सम्राट, लेकिन फकीर हो गया। उस दिन से उसकी जीवन की यात्रा और हो गई। युद्ध विदा हो गए, हिंसा विदा हो गई; प्रेम का सूत्रपात हुआ। उसी प्रेम ने उसे बुद्ध के चरणों में झुकाया।

वाजिद अशोक से भी ज्यादा संवेदनशील व्यक्ति रहे होंगे। लाखों व्यक्तियों को काटने के बाद होश आया, तो संवेदनशीलता बहुत गहरी न रही होगी। बाजिद को होश आया, काटने के पहले। हिरणी को मारा भी नहीं था, अभी तीर छूटने को ही था—चढ़ गया था कमान पर, प्रत्यंचा खिंच गई थी, वहीं हाथ ढीले हो गए। जीवन नष्ट करने जैसा तो नहीं; जीवन पूज्य है, क्योंकि जीवन में ही तो सारा रहस्य छिपा है।

मंदिर-मस्जिदों में जो पूजा चलती है, वह जीवन की पूजा तो नहीं है। जीवन की पूजा होगी, तो तुम वृक्षों को पूजोगे, नदियों को पूजोगे, सागरों को पूजोगे, मनुष्यों को पूजोगे, जीवन को पूजोगे, जीवन की अनंत-अनंत अभिव्यक्तियों को पूजोगे। और यही अभिव्यक्तियां उसके चेहरे हैं। ये परमात्मा के भिन्न-भिन्न रंग-ढंग हैं, अलग-अलग झरोखों से वह प्रगट हुआ है।

अशोक को हत्या के बाद, भयंकर हत्या के बाद, रक्तपात के बाद मृत्यु का बोध हुआ था। मृत्यु के बोध से वह थरथरा गया था, घबड़ा गया था। उसी से उसकी सत्य की खोज शुरू हुई। वाजिद ज्यादा संवेदनशील व्यक्ति मालूम होते हैं। अभी मारा भी नहीं था, लेकिन हिरणी की वह छलांग... जैसे अचानक एक पर्दा हट गया, जैसे आंख से कोई धुन्ध हट गई; वह छलांग तीर की तरह हृदय में चुभ गई! वह सौन्दर्य... हरिणी का वह जीवंत रूप! और परमात्मा की पहली झलक मिली।

ऐसा रामकृष्ण को हुआ था। तालाब के पास से गुजरते हुए—वर्षा के दिन थे, आकाश में काले बादल घिरे थे और बगुलों की एक कतार, रामकृष्ण के पास आने से, जो तालाब के किनारे बैठी होगी—एक पंक्ति बगुलों की, उड़ गई। बगुले उड़े... पीछे काले बादलों की पृष्ठभूमि और सफेद चांदी की तरह उड़ती हुई बगुलों की कतार... और रामकृष्ण भावाविभूत हो गए, ठिठक गए—जैसे श्वास रुक गई, विचार रुक गए, हृदय ठहर गया, समय ठहर गया; गिर पड़े वहीं। वह परमात्मा की पहली झलक थी—पहली समाधि लगी। घर बेहोश ही लाए गए। लोगों को लग रहा है—बेहोश, रामकृष्ण पहली दफा, होश में आए। ऐसी भी एक बेहोशी है, जो होश लाती है और ऐसा भी होश है—हमारा तथाकथित होश, जो कि सिर्फ बेहोशी का एक नाम है। रामकृष्ण जब होश में आए—हमारे तथाकथित होश में, तो रूपान्तरित हो चुके थे। जो आदमी गिरा था तालाब के किनारे, बगुलों की पंक्ति को आकाश में उड़ते देख कर, वही आदमी फिर उठा नहीं, कोई दूसरा आदमी उठा!... यह आंखें और थीं, यह व्यक्तित्व और था;

भीतर कुछ बदल गया था—दृष्टि बदल गई थी! रामकृष्ण को परमात्मा की पहली झलक मिल गई थी—उस सौन्दर्य की घड़ी में!

सौन्दर्य परमात्मा का निकटतम द्वार है। जो सत्य को खोजने निकलते हैं, वे लम्बी यात्रा पर निकले हैं। उनकी यात्रा ऐसी है, जैसे कोई अपने हाथ को सिर के पीछे से घुमाकर कान पकड़े। जो सौन्दर्य को खोजते हैं, उन्हें सीधा-सीधा मिल जाता है; क्योंकि सौन्दर्य अभी मौजूद है—इन हरे वृक्षों में, पक्षियों की चहचहाहट में, इस कोयल की आवाज में—सौन्दर्य अभी मौजूद है! सत्य को तो खोजना पड़े। और सत्य तो कुछ बौद्धिक बात मालूम होती है, हार्दिक नहीं। सत्य का अर्थ होता है—गणित बिठाना होगा, तर्क करना होगा; और सौन्दर्य तो ऐसा ही बरसा पड़ रहा है! न तर्क बिठाना है, न गणित करना है—सौन्दर्य चारों तरफ उपस्थित है।

धर्म को सत्य से अत्यधिक जोर देने का परिणाम यह हुआ—कि धर्म दार्शनिक हो कर रह गया, विचार हो कर रह गया। धर्म सौन्दर्य ज्यादा है। मैं भी तुमसे चाहता हूं, कि तुम सौन्दर्य को परखना शुरू करो। सौन्दर्य को, संगीत को, काव्य को—परमात्मा के निकटतम द्वार जानो।

हिरणी का छलांग लगाना....हिरणी को छलांग लगाते देखा? उसकी छलांग में एक सौन्दर्य होता है, एक अपूर्व सौन्दर्य होता है! अत्यन्त जीवंतता होती है उस छलांग में, त्वरा होती है, तीव्रता होती है—बिजली जैसे कौंध जाए, जीवन की बिजली जैसे कौंध जाए! हाथ तीर-कमान से छूट गए वाजिद के—यह सौन्दर्य नष्ट करने जैसा तो नहीं, यह सौन्दर्य विनष्ट करने जैसा तो नहीं; यह सौन्दर्य ही तो पूजा का आराध्य है—झुक गए वहीं; फिर घर नहीं लौटे। जीवन में क्रांति हो गई!

अब खोज में निकले सद्‌गुरु की, जो इस झलक को सदा के लिए हृदय में विराजमान कर देगा। यह तो अभी बिजली की तरह कौंधा; इसका दीया बनाना होगा—जो जलता रहे, जलता ही रहे—निशिवासर, क्षण-भर को भी न बुझे। बिजलियों की कौंधनी में रोशनी तो है, मगर क्षण-भर को होती है। बिजलियों के कौंधने में कोई किताबें तो नहीं पढ़ सकता, न बिजलियों के कौंधने में कोई पत्र लिख सकता है। बिजली तो आई और गई; बिजली का कोई उपयोग तो नहीं हो सकता।

यद्यपि बिजली के माध्यम से एक बात तय हो जाती है, कि रास्ता है। अंधेरी रात है, तुम जंगल मे खो गए हो। बिजली कौंधी, तुम्हें दिख जाता है कि रास्ता है। यद्यपि फिर भयंकर अंधकार छा जाता है और रास्ता खो जाता है; मगर भरोसा आ जाता है, श्रद्धा आ जाती है—कि रास्ता है; अगर सम्हल कर चला, तो पहुंच जाऊंगा।... रास्ता देख लिया, अपनी आंखों से देख लिया। हालांकि, क्षण-भर को दिखा था, सपने



की तरह दिखा था; अब फिर खो गया है और भयंकर अंधेरी रात है चारों तरफ। लेकिन अब तुम वही नहीं हो; बिजली कौंधने के पहले एक तुम थे, अब बिजली कौंधने के बाद दूसरे तुम हो। बिजली कौंधने के पहले संदेह ही संदेह था—पता नहीं रास्ता है भी या नहीं? अब संदेह नहीं है, अब श्रद्धा है। और यही क्रांति है। जिस घड़ी संदेह श्रद्धा बन जाता है, उसी क्षण क्रांति हो जाती है!

वह जो हरिण की छलांग थी, वह बिजली की कौंध थी! अब तक जैसे आदमी सोया ही रहा था, जैसे अब तक कुछ होश ही न था, जैसे नींद में चलते थे, नींद में उठते थे, नींद में बैठते थे।... मगर आज कुछ हुआ!

किस घड़ी परमात्मा तुम्हें पकड़ लेगा, नहीं कहा जा सकता। इसलिए हर घड़ी तैयार रहो। परमात्मा के लिए न समय है, न असमय है। परमात्मा कब तुम्हारे द्वार पर दस्तक दे देगा, कुछ भी नहीं कहा जा सकता। जागे रहो, प्रतीक्षा करो; छोटी-छोटी घटनाओं में कभी-कभी परमात्मा उतर आता है। अब यह छोटी ही घटना थी। लाखों लोग शिकार करते रहे हैं, लाखों लोग अब भी शिकार कर रहे हैं; हरिण छलांग भरते हैं, लेकिन हाथ तो गिरते नहीं, तीर तो टूटते नहीं! सद्‌गुरू की तलाश तो शुरू होती नहीं!

वाजिद सच में ही संवेदनशील व्यक्ति रहे होंगे—सरल, सीधे। पठान होते भी सरल और सीधे हैं।

जो दिख गया था, अब उसकी तलाश शुरू हुई। तलाश तभी शुरू हो सकती है, जब थोड़ी-सी प्रतीति हो जाए। जो लोग बिना प्रतीति के खोजते हैं, वे व्यर्थ ही खोजते हैं। किसको खोजोगे, क्या खोजोगे? थोड़ी-सी प्रतीति हो जाए; कहीं से हो—प्रेम में हो, सौन्दर्य में हो, संगीत में हो—कैसे भी हो, थोड़ी-सी प्रतीति हो जाए—कि मुझ पर सब समाप्त नहीं है, मुझ से बड़ा भी है, मुझ से विराट भी है! कहीं भी हो, कैसे भी हो, इतना पता चल जाए कि—मैं जैसा हूं, यह बहुत छोटा रूप है—बूंद जैसा...अभी सागर प्रतीक्षा कर रहा है! मैं जहां हूं, वहां अंधकार है, और पास ही कहीं रोशनी का स्रोत भी है। गुरु की तलाश तभी शुरू होती है।

जीवन की यह जो झलक मिली थी, यह ले चली गुरु की तलाश में...। न मालूम कितने गुरुओं के पास वाजिद गए, उठे-बैठे, मगर वह झलक न मिली, जो हिरणी की छलांग में मिली थी! वह झलक, लेकिन एक दिन मिली और भरपूर मिली—मूसलाधार वर्षा हो गई! दादूदयाल को देखते ही...वे आंखें दादूदयाल की...फिर वही जीवन की झलक—और प्रगाढ़तर, और ऐसी की आरपार हो जाए! फिर दादू के चरणों में रुक गए सो रुक गए, फिर चरण नहीं छोड़े। फिर दादू में जो सौन्दर्य मिल गया, वह

सौन्दर्य देह का नही था, वह सौन्दर्य पृथ्वी का भी नहीं था।

सद्गुरु में जो सौन्दर्य दिखाई पड़ता है, वह पारलौकिक है। दादूदयाल के पास और भी बहुत लोग आए और गए, लेकिन जो वाजिद को दिखाई पड़ा, औरों को दिखाई नहीं पड़ा। देखने की क्षमता चाहिए, पात्रता चाहिए। भींगने की तैयारी चाहिए। डूबने का साहस चाहिए। समर्पित होने की जोखिम जो उठाता है, वही सद्गुरु से जुड़ पाता है।

जैसे एक दिन तीर-कमान तोड़ कर फेंक दिए थे, वैसे आज अपने अहंकार को भी तोड़कर फेंक दिया। झुक गए चरणों में तो फिर नहीं उठे। दादू के प्यारे शिष्यों में एक हो गए।

दादू ने हजारों लोगों के जीवन की ज्योति जलाई। दादू उन थोड़े-से संतों में से एक हैं, जिनके पास अनेक लोग ज्ञान को उपलब्ध होते हैं। स्वयं ज्ञान को उपलब्ध हो जाना एक बात है; वह भी बड़ी दूभर, बड़ी कठिन है—जान लेना बड़ा दूभर, बड़ा कठिन, लेकिन जना देना और भी कठिन, और भी दूभर है। खुद पी लेना परमात्मा के घट से, एक बात है, लेकिन दूसरों को भी पिला देना, बड़ी दूसरी बात है। तो दुनिया में करोड़ों में, कभी कोई एकाध परमात्मा को पाने वाला होता है, और करोड़ों परमात्मा को पाने वालों में, कभी कोई एकाध दूसरों को भी पिलाने वाला होता है। दादू उन थोड़े-से लोगों में एक थे। हजारों लोगों ने उनके पास पिया, उनके घाट से पिया। उनके एक सौ बावन निर्वाण की उपलब्ध शिष्यों में, वाजिद भी एक हैं। उनके पास बहुत दीये जले, वाजिद का भी जला।

और जब वाजिद का दीया जला, तो उसके भीतर से काव्य फूटा। सीधा-सादा आदमी...तो उसकी कविता भी सीधी-सादी है, ग्राम्य है; पर गांव की सोंधी सुगंध भी है उसमें! जैसे नई-नई वर्षा हो और भूमि से सोंधी सुगंध उठे, ठीक ऐसी सोंधी सुगंध है वाजिद के काव्य में! मात्रा-छंद का हिसाब नहीं है बहुत; जरूरत भी नहीं है। जब सौन्दर्य कम होता है, तो आभूषणों की जरूरत होती है, जब सौन्दर्य परिपूर्ण होता है, तो न आभूषणों की जरूरत हैं, न साज-श्रृंगार की। जब सौन्दर्य परिपूर्ण होता है, तो आभूषण सौन्दर्य में बाधा बन जाते हैं, खटकते हैं। तब तो सादापन ही अति सुन्दर होता है, तब तो सादेपन में ही लावण्य होता है, प्रसाद होता है। तो जो मात्रा, छंद, व्याकरण, भाषा को बिठाने में लगे रहते हैं, उनके इतने आयोजन का कारण ही यही होता है कि—भाव पर्याप्त नहीं है, भाषा से उसकी पूर्ति करनी है। जब भाव ही पर्याप्त होता है, तो भाषा से पूर्ति नहीं करनी होती। जब भाव बहता है बाढ़ की तरह, तो किसी भी तरह की भाषा काम दे देती है। भाषा पर मत जाना, भाव पर जाना। काव्य फूटा



उनसे! जब दीया भीतर जलता है, तो रोशनी—उसकी किरणें बाहर फैलनी शुरू हो जाती हैं—वही संतों का काव्य है।

इस घटना की तरफ संकेत देने वाला राघोदास का एक कवित्त वाजिद के संबंध में बहुत प्रसिद्ध है—

छाड़िकै पठान-कुल रामनाम कीन्हों पाठ,
भजन प्रताप सूं वाजिद बाजी जीत्यो है।
हिरणी हनन उर डर भयो भयकारी,
सीलभाव उपज्यो दुसीलभाव बीत्यौ है।
तोरे हैं कवांणतीर चाणक दियो शरीर,
दादूजी दयाल गुरु अंतर उदीत्यौ है।
राघो रति रात दिन देह दिल मालिक सूं
खालिक सूं खेल्यो जैसे खेलण की रीत्यौ है।

राघोदास के इन वचनों में कुछ महत्वपूर्ण बातें हैं, जो समझने जैसी हैं। कुछ गलत बातें भी हैं, वे भी समझ लेने जैसी हैं, ताकि वे छोड़ी जा सकें। राघोदास ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति नहीं रहे होंगे। कविता तो सुन्दर लिखी है, मगर उसमें बुनियादी भ्रान्तियां हैं। सत्य की झलक भी आई है, लेकिन अंधेरे में मिश्रित है। जरा सा चांद भी उगा है, लेकिन रात बड़ी अंधेरी है। थोड़ा-सा शुभ्र आकाश भी है, लेकिन बड़े काले बादल घिरे हैं।

छाड़िकै पठान कुल रामनाम कीन्हों पाठ।

राम नाम के पाठ करने के लिए कोई पठान-कुल थोड़े ही छोड़ना पड़ता है। कोई राम का ठेका हिन्दुओं का ही थोड़े ही है! राम से कोई दशरथ-पुत्र राम से थोड़े ही प्रयोजन है। दशरथ पुत्र राम तो इसीलिए राम कहे गए, कि—'राम' उनके पहले भी शब्द चलता था, नहीं तो उन्हें कोई कैसे नाम देता 'राम' का? 'राम' शब्द राजा रामचन्द्र से पुराना है, इसलिए तो दशरथ उनको 'राम' का नाम दे सके, 'राम' चलता रहा था। राम का अर्थ तो परमात्मा है, वह तो परमात्मा का एक नाम है। पठान-कुल छोड़ने की बात आवश्यक नहीं है। मगर यह हमारी भ्रान्त दृष्टियों का हिस्सा है।

मेरे पास कोई आ जाता है, अगर वह संन्यस्थ हो जाता है, तो उसके सम्प्रदाय को, धर्म को मानने वाले लोग कहते हैं: तो तुमने फिर अपना धर्म छोड़ दिया! धर्म कहीं छोड़ा-पकड़ा जाता है? जो छोड़ा जा सकता है, वह धर्म ही नहीं है, जो नहीं छोड़ा जा सकता, उसी का नाम धर्म है। न जिसको हम पकड़ सकते हैं, न छोड़ सकते हैं—उस स्वभाव का नाम धर्म है।

अगर तुम मुझसे पूछो, तो मैं कहूंगा: दादू के चरणों में झुक कर, राम की याद से

भर कर ठीक अर्थों में वाजिद मुसलमान हुए। मैं यह नहीं कह सकूंगा कि—पठान-कुल छाड़िकै...। मैं तो कहूंगा—पठान होना पूरा हुआ—फूल खिला !

धर्म तो एक ही है, मगर राघोदास कि वृत्ति साम्प्रदायिक मालूम होती है। उनको बड़ा रस आ रहा है !

जब भी कोई व्यक्ति एक धर्म में से दूसरे धर्म में जाता है, तो बड़े मजे की घटना घटती है। जिस धर्म को छोड़ता है, उस धर्म के लोग कहते हैं: गद्दार, धोखेबाज, बेईमान ! और जिस धर्म में सम्मिलित होता है, उस धर्म के लोग कहते हैं: अहा, महाज्ञानी ! बोध हुआ इसे, सत्य की पहचान हुई इसे ! हिन्दू ईसाई हो जाता है, तो ईसाई मानते हैं कि—इसको समझ आई, बोध आया, होश आया; पड़ा था कूड़े-करकट में, अब इसको अकल आई ! और हिन्दू समझते हैं—धोखा दे गया बेईमान, गद्दारी कर गया ! अगर ईसाई हिन्दू हो जाता है, तो हिन्दू प्रसन्न होते हैं। क्योंकि जब कोई ईसाई हिन्दू होता है, तो हिन्दुओं को यह भरोसा आता है कि—हमारा धर्म ठीक होगा ही, तभी तो कोई आदमी ईसाई से हिन्दू हुआ। लेकिन जब कोई ईसाई हिन्दू होता है, तो ईसाइयों को संदेह पैदा होता है, डर लगता है कि—हमारे धर्म को छोड़ कर कोई गया, तो जरूर हमारे धर्म में कुछ भूल होगी। इस भूल को छिपाने के लिए, वे क्रोध से भर जाते हैं। इस भूल को ढांकने के लिए, गालियां निकलने लगती हैं।

मगर दोनों दृष्टियां भ्रान्त हैं। न तो ईसाई के हिन्दू होने से कुछ फर्क पड़ता है, न हिन्दू के ईसाई होने से कुछ फर्क पड़ता है। कोई मस्जिद जाता था, मंदिर जाने लगा, इससे क्या फर्क पड़ेगा ? असली क्रांति इतनी छोटी, इतनी ओछी, इतनी सस्ती नहीं होती।

वाजिद की जिंदगी में क्रांति ही हुई ! प्रभु का स्मरण आया, जीवन की झलक को देख कर। जीवन याद दिला गया—महाजीवन की। छोटा-सा सौन्दर्य का कण—प्यास भर गया और सौन्दर्य की। जरा सी बूंद—सन्नाटा...उस घड़ी में हरिण की छलांग... हाथ का रुक जाना, हृदय का ठहर जाना, विचार का बंद हो जाना—थोड़ा-सा स्वाद लगा समाधि का ! ...फिर गुरु की तलाश में निकले।

हिन्दू से कुछ लेना-देना नहीं था। दादूदयाल कोई हिन्दू थोड़े ही हैं। इस ऊंचाई के लोग हिन्दू-मुसलमान थोड़े ही होते हैं ! हिन्दू-मुसलमान होना तो बड़ी नीचाइयों की बातें हैं, बाजार की बातें हैं। यह तो संयोग की बात है कि दादूदयाल हिन्दू घर में पैदा हुए थे, बिलकुल संयोग की बात है।

खोज में निकले थे वाजिद, बहुतों के पास गए, पांडित्य देखा, ज्ञान की बातें सुनीं, मगर जीवंत जलती हुई रोशनी नहीं देखी। शास्त्र तो सुना, सत्संग न हो सका। आंखों



में आंखे डाल कर देखीं, मगर वहां भी विचारों की भीड़ ही देखी, शान्त सन्नाटा, संगीत, नाद वहां से उतरता न आया। बैठे पास बहुतों के, लेकिन खाली गए, खाली लौटे। दादूदयाल को हिन्दू समझकर थोड़े ही गुरु बना लिया था; गुरु थे, इसलिए गुरु बना लिया था।

इस बात को ख्याल रखना, वाजिद कुछ हिन्दू नहीं हो गए हैं ! हिन्दू-मुसलमान की बात ही नहीं है यह; सोया आदमी जाग गया, इसमें हिन्दू-मुसलमान की क्या बात है ? खोया आदमी रास्ते पर आ गया, इसमें हिन्दू-मुसलमान की क्या बात है ? हिन्दू भी खोये हैं, मुसलमान भी खोये हैं; हिन्दू भी सोए हैं, मुसलमान भी सोए हैं। जो जाग गया, वह तो तीसरे ही ढंग का आदमी है; उसको किसी सम्प्रदाय में तुम न रख सकोगे, वह साम्प्रदायिक नहीं होता है।

यहां अड़चन आ जाती है। कोई सिक्ख आकर संन्यास ले लेता है, तो बस उसको सताने लगते हैं लोग, उसके सम्प्रदाय के लोग सताने लगते हैं कि—अब तुम संन्यासी हो गए, अब तुम सिक्ख न रहे ! सच बात यह है, कि वह पहली दफा सिक्ख हुआ ! सिक्ख का अर्थ होता है—शिष्य; शिष्य का ही रूप है सिक्ख। पहली दफा शिष्य हुआ, और तुम कहते हो सिक्ख न रहे ! अब तक सिक्ख नहीं था, अब हुआ; अब तक सुनी-सुनी बातें थीं, अब गुरु से मिलना हुआ। और गुरु कुछ बंधा थोड़े ही है—हिन्दू में, मुसलमान में, ईसाई, जैन में। नानक सिक्ख थोड़े ही हैं, न हिन्दू हैं, न मुसलमान हैं; जागे पुरुष हैं।

जब किसी जाग्रत पुरुष से संबंध हो जाएगा, तो तुम शिष्य हुए, और तभी तुम हिन्दू हुए और तभी तुम मुसलमान हुए। सद्गुरु तुम्हें धर्म से जोड़ देता है, सम्प्रदायों से तोड़ देता है।

मगर राघोदास साम्प्रदायिक वृत्ति के रहे होंगे, खुश हुए होंगे—छाड़िकै पठान-कुल रामनाम कीन्हों पाठ...। उन्हें बड़ा रस आया होगा कि—रामनाम का पाठ किया... देखो, राम से तरे ! कुरान पढ़ते रहे, तब न तरे, दोहराते रहे आयतें, तब न तरे—अब तरे ! राम हैं असली तारणहार !

रामनाम से नहीं तर गए हैं, तर गए हैं दादूदयाल से संबंध होने के कारण। अब दादूदयाल चूंकि हिन्दू हैं और परमात्मा का नाम उनके लिए राम है, इसलिए रामनाम से जुड़ गए हैं। अगर दादूदयाल मुसलमान होते, तो भी तर जाते, अगर दादूदयाल ईसाई होते, तो भी तर जाते। तब हालांकि रामनाम बीच में न आता, तब कोई और नाम आता; सब नाम उसके हैं, और कोई नाम उसका नहीं है।

छाड़िकै पठान-कुल रामनाम कीन्हों पाठ

भजन प्रताप सूं वाजिद बाजी जीत्यो है।

लेकिन कुछ-कुछ सच बातें भी, ठीक बातें भी उतर आई हैं राघोदास में, एकदम सभी असत्य नहीं हैं। यह बात सच है : भजनप्रताप सूं वाजिद बाजी जीत्यो है। यह बात सच है। हिन्दू होने से नहीं, लेकिन भजन प्रताप से...। डूब गए हैं भजन रस में; इससे हारी बाजी बदल गई, जीत गए हैं।

ख्याल रखना, संसार में कितना ही जीतो, हारे ही रहोगे, परमात्मा में थोड़े जीतो, तो ही जीत है। और मजा ऐसा है, कि परमात्मा के सामने जो बिलकुल हार जाता है, वही जीतता है। वही—'भजन प्रताप' है। परमात्मा के चरणों में जो अपने को बिलकुल समर्पित कर देता है, वही जीतता है; वहां हारना ही जीतना है। प्रेम के रास्ते पर हारना ही जीत है—हारना विधि है जीतने की।

हिरणी हनन उर डर भयो भयकारी...। यहां फिर भूल हो गई, वह कहते हैं कि हरिण को मारते वक्त भयभीत हो गए। यह बात गलत है, हरिण को तीर उठा कर मारने चले थे, भयभीत नहीं हो गए, बल्कि प्रेम से भर गए। वह जो जीवन की लपट देखी, वह जो जीवन की तरंग देखी, वह जो हरिण की आंखों में और छलांग में परमात्मा का रूप देखा, उस के प्रति प्रेम से भर गए!

इसलिए मैं कहता हूं, राघोदास जाग्रत पुरुष नहीं हैं...तो जो सुना है, उसे लिख दिया है; उसमें कुछ सत्य आ गया है और कुछ असत्य जुड़ गया है। अंधे आदमी के हाथ में कभी-कभी द्वार भी लग जाता है, और कभी-कभी दीवाल लगती है—दोनों साथ चलता रहता है, अंधा आदमी टटोलता रहता है, दिखाई उसे कुछ भी नहीं पड़ता। राघोदास अंधे आदमी हैं।

हिरणी हनन उर डर भयो भयकारी...। मैं तुम्हें स्पष्ट करना चाहता हूं, कि भय के कारण कोई परमात्मा की तलाश नहीं होती, प्रेम के कारण होती है। प्रेम ही परमात्मा की तरफ ले जाने वाला सेतु है; भय से तो हम दूर हो जाते हैं। जिससे हम भय करते हैं, उससे हमारा संबंध नहीं जुड़ पाता। इसलिए मैं कहता हूं, 'ईश्वरभीरु' जैसे शब्द गलत हैं; धार्मिक व्यक्ति को हम कहते हैं—ईश्वरभीरु, ईश्वर से डरने वाला। जो ईश्वर से डर रहा है, वह ईश्वर को प्रेम कैसे करेगा? जो ईश्वर से डर रहा है, वह ईश्वर को घृणा करेगा। भय से घृणा पैदा होती है, प्रेम पैदा नहीं होता। तुम जरा करके देखो, जिससे भी तुम भयभीत होते हो, उससे तुम प्रेम कर सकते हो? उसकी मान भला लो, क्योंकि भय है, नहीं तो वह नुकसान पहुंचायेगा; मगर भीतर-भीतर तुम बदला लेने की योजना बनाते हो, और मौका मिल जाएगा तो बदला लोगे।

अक्सर ऐसा हो जाता है, छोटे बच्चों को तुम सता लेते हो, भयभीत कर लेते हो,



फिर ये ही बच्चे बड़े होकर तुम्हें सताते हैं और भयभीत करते हैं। और तुम बड़े चौंकते हो बाद में, कि क्या हो गया, मेरे बच्चे बिगड़ क्यों गए! मैंने इनके लिए कितना किया, और ये मुझे पूछते नहीं दो कौड़ी को! बूढ़े अक्सर परेशान होते हैं, बड़े दुखी होते हैं। मगर मामला साफ है बिलकुल—जब ये बच्चे थे, तब तुमने इन्हें डरा लिया था। तब ये असहाय थे, तब तुम डरा सकते थे, भयभीत कर सकते थे; लेकिन हर चोट घाव बना गई! जब ये शक्तिशाली हो जायेंगे, एक दिन तुम असहाय हो जाओगे वृद्ध होकर, तब ये तुमको डराने लगेंगे, तब ये तुम्हें परेशान करने लगेंगे। तब तुम्हें समझ में न आएगा कि बात क्या हो गई! बात कुछ भी नहीं हो गई, अब सिर्फ पलड़ा बदल गया है—शक्ति उनके पास है, तुम निर्बल हो, तब शक्ति तुम्हारे पास थी, वे निर्बल थे।

बूढ़ा आदमी फिर बच्चे जैसा हो जाता है। इसलिए दुनिया में जो बच्चे मां-बाप को सताने लगते हैं, उसका कुल कारण इतना ही है—मां-बाप काफी बच्चों को सता लेते हैं बचपन में। हालांकि, कोई शिकायत करने वाला है नहीं, कोई कर सकता नहीं। तुम्हें शायद यह दिखाई भी नहीं पड़ता कि तुम सता रहे हो, मगर तुम अपनी बात मनवा लेते हो भयभीत करके; डंडा तुम्हारे हाथ में है! शिक्षक मनवा लेता है अपनी बात, डंडा उसके हाथ में है। लेकिन जिसके हाथ में भी डंडा है, उससे हमारी घृणा पैदा हो जाती है।

मैं तुम्हें कहना चाहता हूं, कि परमात्मा तक जाने का रास्ता भय कभी भी नहीं है, प्रेम है। और उस घड़ी में, जब हरिण की तरफ जाता हुआ तीर रोक लिया गया, और धनुष-बाण तोड़ दिया गया, तो यह किसी भय के कारण नहीं हुआ था, यह भय के कारण हो ही नहीं सकता। भय के कारण किसी ने धनुष-बाण तोड़े हैं! तो फिर धनुष-बाण पैदा कैसे हुए? तुमसे मैं कहना चाहता हूं, धनुष-बाण भय के कारण पैदा हुए हैं, नहीं तो पैदा ही नहीं होते।... भय से कोई तोड़ नहीं सकता।

हमारे सब अस्त्र-शस्त्र भय के कारण पैदा हुए हैं। आदमी कमजोर है जानवरों से, यही हमारे अस्त्र-शस्त्रों के पैदा होने का कारण है। तुम अगर सिंह के सामने निहत्थे छोड़ दिए जाओ, तुम्हारी क्या हैसियत है? उसके नाखून, उसके दांत तुम्हें चिंदी-चिंदी कर देंगे। इससे आत्मरक्षा के लिए आदमी ने अस्त्र-शस्त्र खोजे हैं। हमारे नाखून इतने मजबूत नहीं, तो हमने छुरे बनाए, तलवारें बनाईं, भाले बनाए—ये नाखूनों की परिपूर्ति हैं। हमारे दांत इतने मजबूत नहीं हैं, तो हमने अस्त्र-शस्त्र ईजाद किए हैं। फिर हम पास जाने में भी डरते हैं, छुरा लेकर भी पास खड़े होना खतरे से खाली नहीं है, तो हमने तीर बनाए, ताकि दूर से हम मार सकें। फिर हमने गोलियां ईजाद कीं, फिर हमने बम

बनाए कि आकाश से हम मार सकें।

आदमी की असहाय और भयभीत स्थिति के कारण अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण हुआ है। आज दुनिया में हर राष्ट्र बनाए जाता है बम, लगाए जाता है ढेर... किस कारण? भय के कारण! रूस नहीं रुक सकता बमों को बनाने से, क्योंकि डर है कि अमरीका बम बना रहा है, अमरीका नहीं रुक सकता, क्योंकि रूस का डर है कि रूस बना रहा है। यह बड़े मजे की बात है, रूस अमरीका से डरा है, अमरीका रूस से डरा है—दोनों डरे हैं इसलिए अस्त्र-शस्त्र बढ़ते चले जाते हैं! कौन रोके? जो रोकेगा, वह पीछे पड़ जाएगा।

आदमी भूखा मर रहा है और मनुष्य-जाति की सत्तर प्रतिशत ऊर्जा अस्त्र-शस्त्र बनाने में लग रही है। अगर अस्त्र-शस्त्र बनाने बंद हो जाएं, तो सारी पृथ्वी सम्पन्न हो सकती है, किसी आदमी के गरीब होने का कोई कारण नहीं है। लेकिन अमीर मुल्कों की तो बात छोड़ दो, गरीब मुल्क भी पहले शस्त्र बनाते हैं—पहले गोली फिर रोटी!

हमारा देश भी सत्तर प्रतिशत शक्ति को अस्त्र-शस्त्रों पर व्यय करता है। और सत्ता में जो बैठे हैं, वे अहिंसा के प्रचारक हैं, वे अहिंसा के भक्त हैं, और सारी दौड़ यह है कि हम भी कैसे शक्तिशाली हो जायें अस्त्र-शस्त्रों में! भय है, कहीं चीन न चढ़ आये! और चीन भी डरा हुआ है—सब डरे हुये हैं!

अस्त्र-शस्त्र भय के कारण नहीं तोड़े जाते; इसलिये राघवदास को पता नहीं है, प्रेम से टूटते हैं। जहां प्रेम है, वहां अस्त्र-शस्त्र सब व्यर्थ हो जाते हैं।

मैंने सुना है, एक युवक, एक राजपूत युवक विवाह करके लौट रहा है। नाव में बैठा है, जोर का तूफान उठा है। उसकी नववधू कंपने लगी, घबड़ाने लगी; लेकिन वह निश्चिंत बैठा है। उसकी पत्नी ने कहा, कि आप निश्चिंत बैठे हैं! तूफान भयंकर है, नाव अब डूबी तब डूबी हो रही है, आप भयभीत नहीं हैं? उस राजपूत युवक ने म्यान से तलवार निकाली—चमचमाती नंगी तलवार, अपनी पत्नी के गले के पास लाया, ठीक गले में छूने लगी तलवार; और पत्नी हंसने लगी। उस राजपूत ने कहा, कि तू डरती नहीं! तलवार तेरी गर्दन के इतने करीब है, जरा सा इशारा कि गर्दन अलग हो जाये, तू डरती नहीं है? उसने कहा, कि जब तलवार तुम्हारे हाथ में है, तो भय कैसा! जहां प्रेम है वहां भय कैसा! उस युवक ने कहा, कि यह तूफान भी परमात्मा के हाथ में है। यह तलवार बिलकुल गर्दन के करीब है, लेकिन परमात्मा के हाथ में है, तो भय कैसा? जो होगा, ठीक ही होगा; अगर गर्दन कटने में ही हमारा लाभ होगा, तो ही गर्दन कटेगी; तो हम धन्यवाद देते ही मरेंगे। अगर यह तूफान डुबाता है हमें, तो उबारने के लिये ही डुबायेगा। उसके हाथ में तूफान है, भय कैसा! मेरे हाथ में तलवार है, तू भयभीत



नहीं; यह तलवार किसी और के हाथ में होती, तू भयभीत होती। तेरा परमात्मा से प्रेम का नाता नहीं है, इसलिये भयभीत हो रही है, तूफान के कारण भयभीत नहीं हो रही है, परमात्मा से प्रेम नहीं है इसलिये भयभीत हो रही है।

खयाल रखना, जब भी तुम भयभीत होते हो, तो असली कारण एक ही होता है कि—परमात्मा से प्रेम नहीं है। जिसका परमात्मा से प्रेम है, उसके लिये सारे भय विसर्जित हो जाते हैं।

उस क्षण में भय पैदा नहीं हुआ है, अगर भय पैदा होता, तो तीर और जल्दी छूट जाता। उस क्षण में भय विसर्जित हो गया है, प्रेम दीप्त हुआ है, प्रेम का दीया जला है! हृदय गदगद हो गया है इस परमात्मा की झलक से। यह परमात्मा पुकार गया हिरणी के भीतर से! यह पुकार सुन ली गई...। उस क्षण में कारण यही रहा होगा। क्योंकि जब भी कोई आदमी शिकार करता है और तीर उठाता है, तो चित्त एकाग्र करना होता है, नहीं तो तीर चूक जायेगा। भागती हिरणी को तीर मारना कलाकार की बात है, हर कोई नहीं मार सकेगा; थिर लक्ष्य पर भी तीर मारना कठिन होता है, तो भागते हुए लक्ष्य पर तो तीर मारना बड़ा कठिन है!...बड़ा एकाग्र चित्त चाहिये, बड़ा ध्यानस्थ चित्त चाहिये। शायद ध्यान की उस घड़ी के कारण ही प्रेम का जन्म हो गया है, शायद एकाग्र चित्त होने के कारण ही झलक दिखाई पड़ गई है; शायद वैसे दिखाई न भी पड़ती, क्योंकि विचारों का गहरा आविष्ठन चित्त के ऊपर होता, चेतना विचारों में दबी होती। शायद मन बिलकुल एकाग्र रहा होगा, रहा ही होगा; शिकार करना हो, तो मन एकाग्र होना ही चाहिये। मन बिलकुल एकाग्र रहा होगा, सब विचार हट गये होंगे, एक ही विचार रहा होगा—वह हिरणी और तीर...उस कारण झलक मिल गई है। एकाग्रता बहुत बार परमात्मा की झलक ले आती है।

इसलिए तुम जहां भी एकाग्रता बन सकती हो, उन अवसरों को चूकना मत! कोई नर्तकी नाचती हो और अगर चित्त एकाग्र होता हो, तो चूकना मत। अगर कहीं कोई वीणा बजाता हो और चित्त एकाग्र होता हो, तो चूकना मत। अगर आकाश में चांद निकला हो और चित्त एकाग्र होता हो, तो चूकना मत। जहां भी चित्त एकाग्र होता हो—सहज, अपने-आप, हो जाने देना। वहीं से प्रेम का बीज फूटता है, प्रेम अंकुरित होता है। तो मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि भय के कारण यह नहीं हुआ।

हिरणी हनन उर डर भयो भयकारी
सीलभाव उपज्यो दुसीलभाव बीत्यौ है।

राघवदास कहते हैं कि—भय के कारण ही पाप छूट गया है और पुण्य का उदय हुआ है। भय के कारण पुण्य का उदय नहीं होता; पुण्य तो प्रेम की छाया है, और पाप

भय की छाया है। दुनिया में जितना पाप होता है, भय के कारण होता है। जितने तुम भयभीत हो, उतने तुम पापी रहोगे। एक आदमी धन इकट्ठा करने में लगा है, तुमने कभी सोचा, क्यों? भयभीत है, सोचता है धन से सुरक्षा हो जायेगी। एक आदमी पद पर चढ़ने में लगा है—और ऊंची सीढ़ी, और ऊंची कुर्सी...। क्यों? सोचता है जितनी ऊंचाई पर रहूंगा, उतना निर्भय हो सकूंगा, क्योंकि लोगों के शिकंजे के बाहर हो जाऊंगा और लोग मेरे शिकंजे में आ जायेंगे। मैं मार सकूंगा, मुझे कोई न मार सकेगा। मैं बलशाली हो जाऊंगा, शक्ति मेरे हाथ में होगी और सारे लोगों की गर्दन मेरे हाथ में होगी। इसलिए तो लोग प्रधानमंत्री होना चाहते हैं, राष्ट्रपति होना चाहते हैं—गर्दन पकड़ लेंगे!

हालांकि, लोकतंत्र में उन्हें शुरू करना पड़ता है पैर दबाने से। पैर दबाते हैं पहले, सेवक बनकर आते हैं—कि नहीं, दबवा ही लें। बस, तुमने पैर दबवाये, कि तुम फंसे! फिर दबाते-दबाते वे कब गर्दन पर पहुंच जाते हैं, तुम्हें पता भी न चलेगा। पैर दबाने से तुम्हें वैसे ही नींद आने लगती है, तुम झपकी खाने लगे, वे सरकने लगे ऊपर की तरफ...। जब तक तुम्हारी आंख खुलेगी, तब तक उनके हाथ गर्दन पर पहुंच गये! तब बहुत देर हो चुकी, फिर वहां से उन्हें हटाना बहुत मुश्किल है; क्योंकि गर्दन पर हाथ आ गये!

इसलिये तुम्हारे सारे राजनेता तुम्हें धोखा दे जाते हैं। जब तक सत्ता के बाहर होते हैं, तब तक जनसेवक होते हैं; जैसे ही सत्ता में पहुंच जाते हैं, वैसे ही सेवा इत्यादि सब भूल जाते हैं। सेवा तो सीढ़ी थी, साधन थी, सत्ता में पहुंचना लक्ष्य था! सत्ता में पहुंच कर सब आश्वासन झूठे हो जाते हैं।

खयाल रखना, ये सब भयभीत लोग हैं; इनके जीवन में प्रेम नहीं है। इसलिये मुझसे जब कोई पूछता है कि—हम सेवा करें, हम कैसे सेवा करें? तो मैं कहता हूं, तुम सेवा की बात मत सोचो, मैं तुम्हें सेवक नहीं बनाना चाहता, मैं तुम्हें प्रेमी बनाना चाहता हूं तुम प्रेम सीखो। फिर प्रेम से सेवा आयेगी, तो कोई खतरा नहीं है; अगर सेवा पहले आई, तो प्रेम तो नहीं आयेगा, फिर सेवा के पीछे सत्ता आयेगी! और तब खतरा है।

पुण्य आ जाता है प्रेम के पीछे अपने-आप, जैसे फूल के साथ गंध आ जाती है! और जैसे सुबह सूरज ऊगता है और पक्षी गीत गाने लगते हैं, ऐसा ही पुण्य आ जाता है प्रेम के साथ। जब भी तुमने किसी को प्रेम किया है, उसके साथ तो तुम पाप नहीं कर सकते न! यह तुम्हारे जीवन का भी अनुभव है—जिससे तुमने प्रेम किया है, उसके साथ पाप नहीं कर सकते हो, न झूठ बोल सकते, न धोखा दे सकते हो।

जिस आदमी को पाप करना है, धोखा देना है, झूठ बोलना है, बेईमानी करनी है, वह किसी से प्रेम नहीं करता, उसे अपने को प्रेम से बचा लेना होता है। इसलिये राज-



नैतिक कभी किसी के मित्र नहीं होते; मित्रता औपचारिक होती है, ऊपर-ऊपर होती है, धोखा होती है, मित्रता के पीछे शत्रुता छिपी होती है। प्रेमी पाप नहीं कर सकता; कम-से-कम जिससे उसको प्रेम है, पाप नहीं कर सकता।

और जिसका प्रेम समस्त से हो गया है, सारे अस्तित्व से हो गया है; जीवन के चरणों में जिसका प्रेम समर्पित हो गया है, वह तो पाप कैसे कर सकेगा? उसका उठना-बैठना, सब पुण्य है, वह जो भी करता है, वही पुण्य है। उससे पुण्य ही होता है, उससे पाप हो ही नहीं सकता। उसे सोचना भी नहीं पड़ता कि पुण्य कैसे करूं और पाप कैसे छोड़ूं। प्रेम आ जाये, तो प्रकाश आ गया; प्रकाश आ गया, तो अंधकार गया। अंधकार को छोड़ना नहीं पड़ता फिर, न हटा-हटा कर निकालना पड़ता है। फिर न अंधकार से प्रार्थना करनी पड़ती है कि—अब आप जायें, कि महानुभाव, अब आप जायें!...अंधकार समाप्त ही हो जाता है। जरूर वाजिद के जीवन में क्रांति घटी, लेकिन भय के कारण नहीं, प्रेम के कारण।

तोरे हैं कवांणतीर चाणक दियो शरीर
दादूजी दयाल गुरु अंतर उदीत्यौ है।

और जिसके जीवन में प्रेम उपजता है, वही गुरु की तलाश कर सकता है। प्रेम के अतिरिक्त कोई गुरु को नहीं खोज सकता। गुरु के प्रेम में पड़ना, इस पृथ्वी पर प्रेम की सबसे बड़ी घटना है, प्रेम का शुद्धतम रूप है, क्योंकि प्रेम का बेशर्त रूप है।

पत्नी से तुम्हारा प्रेम है, कुछ लेन-देन का नाता है, बेटे से तुम्हारा प्रेम है, कुछ लेन-देन का नाता है—सांसारिक संबंध है; गुरु से तुम्हारा प्रेम बिलकुल असांसारिक संबंध है, न कुछ लेना है, न देना है। गुरु के पास बैठने में ही आनंद है, लेने-देने का सवाल ही नहीं है; गुरु के पास कुछ है भी नहीं देने को।

सत्य दिया नहीं जा सकता। यह कोई वस्तु नहीं है। गुरु के पास बैठते-बैठते, तुम्हारे भीतर का सत्य उमग आता है, गुरु सत्य देता नहीं है। उसके पास बैठते-बैठते, उसके रस में डोलते-डोलते, मस्त होते-होते, तुम्हारा सत्य उपज आता है। गुरु की मस्ती धीरे-धीरे तुम्हें भी मस्ती की तरंगों से भर देती है। गुरु सत्य नहीं देता, लेकिन गुरु के वातावरण में....गुरु ऐसा, जैसे वसंत आ गया! तुम्हारे भीतर पड़ा हुआ सत्य सदियों-सदियों का, जिसे तुमने कभी देखा नहीं, निहारा नहीं, अचानक सिर उठा लेता है! अंकुर निकल आते हैं, बीज टूट जाता है, तुम्हारा अपना फूल खिलना शुरू हो जाता है। न तो गुरु कुछ देता, न कुछ लेता है. गुरु की मौजूदगी आनंद है। उसकी उपस्थिति में रस धार बहती है, वहां कुछ लेने-देने का संबंध नहीं है। इसलिये गुरु से संबंध केवल प्रेमी का हो सकता है, क्योंकि यह प्रेम की आत्यंतिक अवस्था है।

तोरे हैं कवांणतीर चाणक दियो शरीर,
दादूजी दयाल गुरु अंतर उदीत्यौ है।

और अब भीतर गुरु का उदय हो रहा है। बाहर गुरु मिल जाये, तो भीतर गुरु का उदय शुरू होता जाता है। बाहर का गुरु भीतर के गुरु को सजग करने लगता है, बाहर के गुरु की मौजूदगी, भीतर सोये गुरु को जगाने लगती है।...गुरु अंतर उदीत्यौ है—यह बात ठीक है।

और अंतिम वचन तो बड़ा प्यारा है, जैसे अंधे को दरवाजा मिल गया है!

राघौ रति रात दिन देह दिल मालिक सूं। और अब वाजिद डूबे हैं ऐसे मालिक में, जैसे कि कोई अपनी प्रेयसी के आलिंगन में आबद्ध रहे चौबीस घंटे! राघौ रति रात दिन...। रात दिन संभोग चल रहा है परमात्मा से, ऐसे वाजिद हो गये!.... रति रात दिन देह दिल मालिक सूं। शरीर भी परमात्मा में डूबा है और आत्मा भी परमात्मा में डूबी है—सब परमात्मा में डुबा दिया, कुछ बचाया नहीं है बाहर, पूरे-के-पूरे छलांग लगा गये हैं!

खालिक सूं खेल्यो जैसे खेलण की रीत्यो है।

बड़ा प्यारा वचन है, कभी-कभी अंधों के हाथ भी हीरे लग जाते हैं! बड़ा प्यारा वचन है! खालिक सूं खेल्यो जैसे खेलण की रीत्यो है। और वाजिद उस परम मालिक के साथ ऐसे खेलने लगा है, जैसे खेलने की रीति है; उस मालिक के साथ लीला में रत हो गया है। उस मालिक के साथ पहचान ही उनकी होती है, जो खेलने की रीति समझ लेते हैं।

संसार एक खेल है; जब तक तुमने इसे गंभीरता से लिया है, तब तक तुम समझ न पाओगे। अस्तित्व एक लीला है; इसे गंभीरता से मत लो—हंसो, नाचो, गाओ, उत्सव मनाओ।....जैसी खेलण की रीत्यो है। इसे खेल समझो। उस प्यारे ने एक नाटक रचाया है, तुम्हें एक अभिनय दिया है, पूरा करो। खालिक सूं खेल्यो जैसे खेलण की रीत्यो है। और फिर जिन्दगी-भर वाजिद उस रति में डूबे रहे, उस परम रति में, उस परमभोग में डूबे रहे और खेलते रहे खेल, जैसा परमात्मा ने खिलाया है, जैसी रीति है; जरा रीति में भेद नहीं डाला, सब तरह से समर्पित हो गये, उसके हाथ की कठपुतली हो गये!

अरध नाम पाषाण तिरे नर लोइ रे।
तेरा नाम कह्यो कलि मांहिं न बूड़े कोइ रे॥
कर्म सुकृति इकवार बिलै हो जाहिंगे।
हरि हां, वाजिद, हस्ती के असवार न कूकर खाहिंगे॥



सीधे-सादे वचन हैं, अरध नाम पाषाण तिरे नर लोइ रे। राम का आधा नाम लेकर भी बंदरों ने पत्थरों को तैरा दिया था सागर में! पूरा नाम बंदर ले भी नहीं सकते थे, 'रा' इतना ही कह पाते थे। मगर इतना काफी है; इशारे समझे जाते हैं, भाव समझे जाते हैं; भाव का मूल्य है। चमत्कार हो गया था, आधे नाम के लेने से पत्थर तैरा दिये थे! पत्थरों की नावें बना दीं! अरध नाम पाषाण तिरे नर लोइ रे।

तेरा नाम कह्यो कलि मांहिं न बूड़े कोइ रे। और तेरा नाम जिसके प्राणों में समा गया है, वह इस कलियुग में भी डूबा नहीं। कलियुग में डूबना आसान मालूम होता है, क्योंकि चारों तरफ डूबने के उपाय हैं, चारों तरफ जाल फैला हुआ है वासना का! वासना रोज सघन होती जाती है, तृष्णा गहन होती जाती है; और चारों तरफ जो लोग हैं, वे सब वासना में दौड़ रहे हैं, तृष्णा में भागे जा रहे हैं। तो जब नया व्यक्ति जन्मता है इस जगत में, तो स्वभावतः आसपास के लोगों से ही सीखता है। महत्त्वाकांक्षा सबको ज्वर की तरह पकड़े हुए है, उसको भी पकड़ लेती है।

कलियुग का अर्थ क्या होता है? कलियुग का अर्थ होता है—जहां व्यर्थ का मूल्य है और सार्थक का कोई मूल्य नहीं है; जहां संत का कोई मूल्य नहीं है, राजनेता का मूल्य है; जहां ध्यान का कोई मूल्य नहीं है, धन का मूल्य है; जहां प्रेम का कोई मूल्य नहीं है, चालबाजी, गणित, तर्क, चतुरता—इस सब का मूल्य है। जहां प्रेमी लुट जाता है, लूट लिया जाता है और जहां चालबाज सफल हो जाते हैं। जहां ईमानदारी मृत्यु बन जाती है और जहां बेइमानी जीवन का सार है! यहां जो जितना सफल होता है, वह उसी मात्रा में सफल हो पाता है जिस मात्रा में चालबाज हो, चतुर हो, कुशल हो, जिस मात्रा में षड्यंत्र की क्षमता हो। कलियुग का अर्थ होता है—जहां सारे लोग व्यर्थ के लिये दौड़े जा रहे हैं, जहां कूड़ा-करकट मूल्यवान हो गया है! जहां परमात्मा की किसी को याद ही नहीं है, जहां इस जिन्दगी में और सब कर लेना है, सिर्फ परमात्मा को छोड़ देना है!

ऐसे कलियुग में भी जो तेरे नाम से जुड़ गया है, वाजिद कहते हैं, वह नहीं डूबा। ये सारा संसार डुबाने को तत्पर रहा, लेकिन जो तेरे नाम से जुड़ गया, वह तिर गया! पाषाण भी नावें बन जाते हैं, उसके नाम का चमत्कार!

तुम जरा उसकी याद से भरो और तुम चकित होने लगोगे! जैसे ही उसकी याद तुम्हारे भीतर उतरनी शुरू होती है, वैसे ही तुम बाहर के जाल से टूटने लगते हो, बाहर के जाल की मूढ़ता तुम्हें दिखाई पड़ने लगती है। धीरे-धीरे तुम बाजार में खड़े रह जाते हो, लेकिन अकेले; तुम्हारा संबंध परमात्मा से जुड़ जाता है, भीड़ से टूट जाता है।...यही उबरना है; जब तक तुम भीड़ के हिस्से हो, तब तक तुम डूबोगे, तब तक संसार ने तुम्हें

डुबाया है। संसार को छोड़ने का एक ही अर्थ होता है—भीड़ से मुक्त हो जाना। भीड़ ने तुम्हें धारणायें दी हैं, विचार दिये हैं; भीड़ ने तुम्हें वासनायें दी हैं, एषणाएं दी हैं, महत्त्वाकांक्षाएं दी हैं। भीड़ से मुक्त हो जाने का अर्थ है—इन सबकी व्यर्थता को देख लेना।

लेकिन यह तो तभी दिखायी देगा, जब राम के नाम में थोड़ा रस जगे, परमात्मा में थोड़ी झलक मिले, परमात्मा में थोड़ी गति हो। तेरा नाम कह्यो कलि मांहिं न बूड़े कोइ रे।

कर्म सुकृति इकवार बिले हो जाहिंगे। खयाल करना, वाजिद कहते हैं, कर्म भी चले जायेंगे, बुरे कर्म भी चले जायेंगे, अच्छे कर्म भी चलें जायेंगे, दोनों विलीन हो जायेंगे, तुम जरा उसकी याद करो! क्योंकि अच्छा कर्म हो कि बुरा कर्म हो, दोनों कर्म अहंकार को मजबूत करते हैं, कर्ता को मजबूत करते हैं; और अक्सर ऐसा हो जाता है, अच्छे कर्म ज्यादा मजबूत करते हैं बुरे कर्म की बजाय, क्योंकि अच्छे कर्म का मजा ज्यादा-होता है! तुम बुरे कर्मों की तो चर्चा करते ही नहीं किसी से, अच्छे कर्मों की चर्चा करते हो—दो पैसे का दान दे देते हो, तो दो लाख का बताने लगते हो! तुम दो लाख की चोरी करते हो, अगर पकड़े भी जाओ, तो दो पैसे की बताने की कोशिश करने लगते हो।

एक आदमी पकड़ा गया, अस्सी मील की रफ्तार से जा रहा था कार को चलाता। मजिस्ट्रेट के सामने उसने कहा, कि नहीं, नहीं, अस्सी मील से मैं नहीं जा रहा था, ज्यादा से-ज्यादा तीस-चालीस मील...। मजिस्ट्रेट भरोसा करता मालूम पड़ा, तो उसने कहा, कि सच ही अगर आप पूछें, तो पन्द्रह-बीस मील...। मजिस्ट्रेट फिर भी भरोसा करता मालूम पड़ा, तो उसने कहा, कि सच पूछिये तो मैंने बस गाड़ी शुरू ही की थी...।मजिस्ट्रेट ने कहा: रुको, नहीं तो तुम पीछे जाने लगोगे! और पीछे दूसरी गाड़ियां खड़ी हैं, उनसे टकरा जाओगे, जरा रुको।

एक दुकानदार, चश्मे बनाने वाला दुकानदार अपने बेटे को समझा रहा था—कला, जा रहा था कुछ यात्रा पर बाहर, तो बेटे को समझा रहा था। बेटे ने पूछा कि किस प्रकार से दाम लेने? तो उसने कहा, कि ऐसा करना, जितने दाम चश्मे के हैं, दस रुपये समझो, पहले ग्राहक को कहना कि—दस रुपये। और देखो कि वह जरा विचलित नहीं हुआ, तो कहना कि—एक कांच के। देखो कि अभी भी विचलित नहीं हुआ, बीस रुपये हो गये दाम अब, अभी भी विचलित नहीं हुआ, तो कहना—फ्रेम के अलग। देखो, अभी भी विचलित नहीं हुआ, तो कहना कि—सेलटेक्स ऊपर से। देखते रहना, नजर ग्राहक पर रखना; दाम चश्मे के नहीं होते, दाम निर्णीत होते हैं ग्राहक पर; जितना



खींच सको, खींच लेना, अगर भरोसा करता ही चला जाये, मांगता ही चला जाये, तो तुम भी आगे ही बढ़ते चले जाना!

इस जगत में हम जो बुरे कर्म करते हैं, उसको तो छोटा करने लगते हैं और जो छोटे-मोटे अच्छे कर्म कर लेते हैं, उनको बड़ा करने लगते हैं! बुरे कर्म में तो, हम पकड़े जायें, तो ही स्वीकार करते हैं, तो भी मुश्किल से स्वीकार करते हैं, अच्छे कर्म में तो हम ढोल बजाते हैं, हम सारे गांव में डुंडी पिटवाते हैं! अगर तुमने एक दिन उपवास कर लिया, तो तुम चाहते हो कि सारे गांव को पता चल जाये कि तुमने उपवास किया है। अगर तुमने मंदिर में जाकर पूजा कर ली, तो तुम चाहते हो कि अखबार में खबर छपे कि तुमने पूजा की! तुम अगर दो पैसे किसी गरीब को दे देते हो, तो तुम तभी देते हो, जब तुम्हें पक्का हो जाये कि अखबार का फोटोग्राफर मौजूद है! अच्छे कर्म से तो तुम्हारा अहंकार और बढ़ता है। इसलिये वाजिद ठीक कहते हैं:

कर्म सुकृति इकवार विले हो जाहिंगे। बुरे कर्म भी चले जायेंगे, अच्छे कर्म भी चले जायेंगे—कर्ता का भाव ही चला जायेगा, एक बार उस मालिक की याद आये, क्योंकि वही कर्ता है, हम कर्ता नहीं हैं, वह करवा रहा है, वही हम कर रहे हैं। यह है खेलने की

रीति! खालिक सूं खेल्यो जैसे खेलण की रील्यो है।
हरि हां, वाजिद, हस्ती के असवार न कूकर खाहिंगे॥

अब खयाल रखो, वाजिद कहते हैं, कि जैसे कोई हाथी पर चढ़ा है, उसको कुत्तों के भौंकने से क्या भय है? हस्ती के असवार न कूकर खाहिंगे। अब कुत्ते उसे काट नहीं सकते, जो हाथी पर चढ़ा है, ऐसे ही जो राम नाम के हाथी पर चढ़ गया, इस संसार के कूकर, इस संसार के कुत्ते उसे नहीं काट पाते, भौंकने दो! हरि हां, वाजिद, हस्ती के असवार न कूकर खाहिंगे। एक बार तुम राम नाम की ऊंचाई पर उठो, फिर इस जगत की सब चीजें नीचे पड़ जाती हैं, जैसे हाथी पर बैठे आदमी को कुत्ते नीचे पड़ जाते हैं; भौंकते रहने दो, न हाथी फिक्र करता है कुत्तों के भौंकने की, न हाथी पर सवार फिक्र करता कुत्तों के भौंकने की; हाथी की ऊंचाई ऐसी है, हाथी की मस्ती ऐसी है! कुत्तों की बात छोड़ो!

ईसप की कहानी है, सिंह को एक दिन सुबह-सुबह खयाल उठा, कि बहुत दिन से किसी ने मुझसे यह नहीं कहा कि तुम सम्राट हो जंगल के। पकड़ा एक लोमड़ी को, कहा: बोल, सम्राट कौन है? लोमड़ी ने कहा: मालिक, आप और पूछ रहे हैं! क्या अपने आपको भूल गये? आप ही तो हैं सम्राट, आपके सिवाय और कौन है? आपकी ही प्रशंसा के गीत गाये जा रहे हैं! चला आगे, पकड़ा एक हिरण को। हिरण ने कहा, कि आप ही हैं, आपके अतिरिक्त कभी कोई नहीं। ऐसे और दस-पांच जानवरों को पकड़ा, बड़ा अकड़ गया।

मिल गया तब हाथी, हाथी से पूछा, कि तुम्हें मालूम है कि कौन सम्राट है जंगल का ? हाथी ने अपनी सूंड़ में लपेटा सिंह को और इतनी दूर फेंका, कि जब वह नीचे गिरा तो हड्डी चरमरा गई ! बा-मुश्किल उठ पाया; धूल झाड़कर बोला, कि यह भी खूब हो गई, अगर तुमको ठीक उत्तर मालूम नहीं, तो कह देते कि नहीं मालूम। इस तरह सूंड़ में उठाकर फेंकने की जरूरत क्या थी? उत्तर नहीं मालूम, हम समझ जाते कि नहीं मालूम।

मगर हाथी को उत्तर देने की जरूरत नहीं पड़ती, यही उसका उत्तर है ! हाथी पर जो सवार है, वह एक ऊंचाई पर सवार है ! वाजिद, मैंने कहा, सीधे-सादे आदमी हैं। उनके प्रतीक भी सीधे-सादे हैं; मगर सीधे-सादे प्रतीक अभिव्यक्ति में सचोट होते हैं ! हाथी पर चढ़े आदमी को कुत्ते के भौंकने का क्या संबंध, क्या फिक्र ? कहावत है—कुत्ते भौंकते रहते हैं, हाथी चला जाता है। हाथी लौटकर भी नहीं देखता, कुत्ते बिगाड़ेंगे क्या!

तुम्हारी ऊंचाई जितनी बढ़ने लगती है, उतनी ही संसार की एषणायें, तृष्णायें, महत्त्वाकांक्षायें छोटी पड़ जाती हैं, तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगाड़ पातीं। और राम के साथ ही ऊंचाई बढ़ती है, क्योंकि राम उंचाई का ही दूसरा नाम है—चैतन्य की उंचाई, चेतना का आरोहण !

तेरा गम, राज मेरा, खामोशी मेरी, सुखन मेरा
यही है, रूह मेरी, हुस्न मेरा, पैरहन मेरा
मेरा मस्कन, मेरी मंजिल, न दुनिया है न उक्बा है
तेरे दिल के किसी गोशे में था शायद वतन मेरा।

मेरा मस्कन, मेरी मंजिल, न दुनिया है न उक्बा है। न तो यह दुनिया मेरा घर है और न परलोक मेरा घर है, न यह लोक, न वह लोक मेरा घर है। तेरे दिल के किसी गोशे में था शायद वतन मेरा। अगर मेरा घर कहीं है, अगर मेरी मातृभूमि कहीं है, तो वह तेरे हृदय में है, परमात्मा तेरे हृदय में है। तेरे दिल के किसी गोशे में था शायद वतन मेरा।

इसलिये जो उसके हृदय में प्रविष्ट हो जाता है, उसको अपना घर मिल जाता है, अपनी मातृभूमि मिल जाती है। वह स्वदेश लौट आया, अन्यथा सब परदेश में हैं। और कौन उसके हृदय में जगह पा सकता है ? जो पहले उसे अपने हृदय में जगह दे। यह खेलने की रीति है ! खालिक सूं खेल्यो जैसे खेलण की रीत्यो है। क्या है खेलने की रीति ? उसको अपने हृदय में जगह दो, तो तुम्हारी जगह उसके हृदय में हो जाती है।

राम नाम की लूट फवी है जीव कूं। और एक बार तुम्हें स्वाद लग जाये उसका, तो फिर लूटोगे! फिर छोटा-मोटा काम नहीं रह जायेगा। राम नाम की लूट फवी है जीव कूं



फिर तो जग जायेगी लूट ! लूटने योग्य अगर कुछ है, तो राम का नाम है। भोगने योग्य अगर कुछ है, तो राम का नाम है। जीने योग्य अगर कुछ है, तो राम का नाम है। फिर लूटोगे ! फिर ऐसा थोड़े ही है कि लेने में भी कंजूसी करोगे, कि चुल्लू-चुल्लू पियोगे, सागर पूरा पी जाना चाहोगे ! राम नाम की लूट फवी है तो जीव कूं। वाजिद कहते हैं, कि मेरे प्राणों में तो अब तुम ऐसे फब गये, तुम ऐसे जंच गये, कि अब तुम्हें लूटता ही रहता हूं—चौबीस घंटे; और लूटने से वह चुकता नहीं। ईशावास्य कहता है, पूर्ण से हम पूर्ण को भी निकाल लें, तो भी पीछे पूर्ण ही रह जाता है। तुम कितना ही लूटो, परमात्मा लुटता नहीं, अनंत है, तुम लूटते जाओ, वह उतना का उतना शेष है, तुम उसे चुका न पाओगे! इसलिये पियो, जी भर के पियो !

राम नाम की लूट फवी है जीव कूं।
निसवासार वाजिद सुमरता पीव कूं।

इसलिये मैं चौबीस घंटे पीता हूं—निसवासर, रात और दिन, जागते और सोते, तुझे पीता चला जाता हूं। निसवासर वाजिद सुमरता पीव कूं। इसलिये तुझ प्यारे को ही याद करता हूं, बस तेरी याद मेरी श्वास-श्वास में बसी है।

सबसे अच्छी है वह बंसी, जिसमें हों आवाजें तेरी।
सबसे मीठी है वह बोली, जिसमें हो पैगाम तेरा ॥

फिर धीरे-धीरे सभी में सुनाई पड़ने लगती है उसकी आवाज...। कोयल बोली और उसकी आवाज सुनाई पड़ी और पपीहा ने पुकारा और उसकी पुकार आ गयी ! हवा का झोंका आया और वृक्ष नाचे और तुम्हारे भीतर कोई नाचने लगा ! सूरज उगा, किरणें बिखरीं, और तुम्हारे भीतर भी रोशनी जल उठी ! रात हुई और आकाश में तारे छितर गये, और तुम्हारे भीतर भी तारों से भरा आकाश छा गया ! फिर हर तरफ से उसके इशारे आने लगते हैं। एक बार इशारा आना शुरू हो, नाता भर बने; पहले बूंद-भर भी परमात्मा तुम्हारे भीतर उतर जाये, तो फिर पूरा-का-पूरा सागर उतर आता है ! निसवासर वाजिद सुमरता पीव कूं।

यही बात परसिद्ध कहत सब गांव रे।

वे कहते हैं, कि जितने लोग जानने वाले हैं, जो भी जाग गये हैं, वे सभी यही कहते हैं। यही बात परसिद्ध...। यही बात प्रसिद्ध है, हरि हां, अधम अजामेल तिर्‌यो नारायण—नांव रे। कि पापी अजामिल, कहते हैं गांव के लोग, तुम्हारे नाम से ही तिर गया था—सिर्फ नाम से, सिर्फ नाम की याद से तिर गया था !

कहियो जाय सलाम हमारी राम कूं।
नैण रहे झड़ लाय तुम्हारे नाम कूं ॥

कमल गया कुमलाय कल्यां भी जायसी।
हरि हां, वाजिद, इस बाड़ी में बहुरि न भंवरा आयसी ॥

वाजिद कहते हैं, कि अब नहीं लौटूंगा दोबारा इस दुनिया में। कमल तो सूख ही गये, कलियां भी सूखती जाती हैं। अब नहीं लौटूंगा इस जगत में, चेतन वासनायें तो सूख ही गईं, अचेतन वासनायें भी सूखती चली जाती हैं। बड़ा प्यारा प्रतीक लिया है, कि कमल गया कुमलाय कल्यां भी जायसी। जो फूल गये थे, जो खिल गये थे, जो पहचान में आ गये थे, वे तो सब छूट गये, अभी जो पहचान नहीं आई हैं बातें, कहीं भीतर दबी पड़ी हैं, अचेतन गर्भ में पड़ी हैं, अभी कलियां हैं, फूल नहीं बनी हैं, वे भी कुम्हला जायेंगी। क्योंकि जब फूल कुम्हला गये, तो कलियां भी कितनी देर रुकेंगी!

कमल गया कुमलाय कल्यां भी जायसी।
हरि हां, वाजिद, इस बाड़ी में बहुरि न भंवरा आयसी ॥

अब यह भंवरा इस बाड़ी में, इस संसार में दुबारा न आयेगा। अब तो तुम्हारे नाम की लूट मची है! अब तो तुम में ही डूबूंगा; अब तो इस भँवरे ने असली कमल पा लिया! अब तुम्हारे अतिरिक्त कहीं और जाना नहीं। अब खिंचा आ रहा हूं, जैसे कोई चुम्बक खींचे लिये जा रहा है।

तुम्हारी आंखों में इस तरह है, यह उठती-गिरती निगाह 'उजरा'!
शराबखाने में जैसे कोई पिए हुए लड़खड़ा रहा हो।
हवा भी पगली, घटा भी पगली, अभी है धूप और अभी है बदली
कि जैसे कोई नकाब रुख से उठा रहा हो, गिरा रहा हो।

उठता उसका घूंघट, गिरता उसका घूंघट, झलकें उसकी मिलती जाती हैं, बढ़ती जाती हैं; रस सघन होता जाता है...।

शराबखाने में जैसे कोई पिए हुए लड़खड़ा रहा हो
कि जैसे कोई नकाब रुख से उठा रहा हो, गिरा रहा हो।
हवा भी पगली, घटा भी पगली, अभी है धूप और अभी है बदली

अब तो सब सुख-दुख बस तेरे चेहरे पर उठते-गिरते हुए परदे की तरह मालूम होते हैं, और कुछ भी नहीं है। अभी रात, अभी दिन, अभी है घटा, अभी है धूप, अभी आ गयी छाया—अब ये सब खेल मैं देख रहा हूं; ये सब तेरे ही चेहरे से उठती हुई नकाब है, और मैं धीरे-धीरे तेरी शराब में डूबता जा रहा हूं!

चटक चांदणी रात बिछाया ढोलिया। चटक चांदणी रात... उज्ज्वल चांदनी रात है, पूर्णिमा की रात है—ऐसी मेरी हालत है।...रात बिछाया ढोलिया। मैंने सेज लगा दी है। गरीब आदमी...चटक चांदणी रात बिछाया ढोलिया। मैंने अपना पलंग लगा



दिया है।

भर भादव की रैण पपीहा बोलिया। और भरे-भादों की रात और पपीहा बोलने लगा।

कोयल सबद सुणाय रामरस लेत है। और कोयल पुकारने लगी और मुझे रामरस आ रहा है, पपीहा पुकारता है और मुझे रामरस आ रहा है, क्योंकि मुझे सब पुकारों में तेरे ही नाम की गूंज सुनाई पड़ती है!

तुमने कभी यह बात देखी, रेल में बैठे-बैठे कभी तुमने देखा, इंजन की—छक-छक, छक-छक, छूं-छक....तुम जो चाहो उस में सुन लो; कभी कोशिश करना, जो भी सुनना चाहोगे, सुनाई पड़ने लगेगा। इस जगत में हम जो भी सुनना चाहते हैं, वही सुनाई पड़ने लगता है। यह जगत बड़ा सहयोगी है। जो इस जगत में काम देखना चाहता है, उसे काम दिखाई पड़ने लगता है, जो राम देखना चाहता है, उसे राम दिखाई पड़ने लगता है। यह जगत, तुम जो देखना चाहते हो वही दिखा देता है!

कोयल सबद सुणाय...। जैसे कि कोयल वेद बोल रही....सबद सुणाय....जैसे कि कोयल के कंठ से कुहू-कुहू नहीं निकल रही, उपनिषदों का जन्म हो रहा है! कोयल सबद सुणाय रामरस लेत है। मैं भी रामरस ले रहा हूं और लगता है वह भी रामरस ले रही है!

हरि हां, वाजिद, दाज्यो ऊपर लूण पपीहा देत है।

और कहते हैं, कि हां, याद रखना, हरि हां, वाजिद, दाज्यो ऊपर लूण पपीहा देत है। और जब पपीहा पुकारता है—पी कहां–पी कहां...., तो मेरी हालत ऐसी हो जाती है, जैसे किसी ने घाव पर नमक छिड़क दिया! मैं भी पुकार रहा हूं—पी कहां-पी कहां, पपीहा भी पुकारने लगता है, तब जैसे कोई मेरे घाव पर नमक छिड़क दे, ऐसी पीड़ा उठती है, ऐसी सघन पीड़ा उठती है! तुझे पाने के लिये ऐसी प्यास जगती है, जैसे कोई घाव पर नमक छिड़क दे!

रैण सवाई वार पपीहा रटत है।
ज्यूं-ज्यूं, सुणिये कान करेजा कटत है ॥
खान-पान वाजिद सुहात न जीव रे।
हरि हां, फूल भये सम सूल बिना वा पीव रे ॥

तेरे बिना फूल भी शूल हो जाते हैं, तेरे साथ शूल भी फूल हो जाते हैं; तू है, तो रात भी दिन है, तू नहीं है, तो दिन भी रात है; तू है तो मृत्यु भी जीवन है, तू नहीं, तो जीवन भी मृत्यु है; तुझ में सफलता है, तेरे बिना असफलता है; तू है तो साथ है, तू नहीं, तो सारा जगत है तो भी मैं अकेला हूं!

रैण सवाई वार पपीहा रटत है। रात बीतने लगी और पपीहा है कि रटता ही चला जाता है...। ज्यूं-ज्यूं सुणिये कान करेजा कटत है। और जैसे-जैसे सुनता हूं पपीहे की पुकार को, मेरे प्राणों में तीर चुभा जा रहा है! मेरा प्राण कंप रहा है, कट रहा है, छाती मेरी कोई जैसे बेध रहा है!

होने ही को है ऐ दिल! तकमील मुहब्बत की
एहसासे-मुहब्बत भी मिटता नजर आता है।

जब प्रेम की पूर्णता करीब आने लगती हैं, तो सब मिटने लगता है। सब.... प्रेम ही पूरी तरह मिटने लगता है। एहसासे-मुहब्बत भी मिटता नजर आता है। तब तो यह भी पता नहीं चलता कि मैं प्रेमी हूं, कि मुझे प्रेम है; सब मिट जाता है, अस्मिता मिट जाती है। और जब अस्मिता मिट जाये, तभी जाना। होने को ही है ऐ दिल! तकमील मुहब्बत की, अब प्रेम पूर्ण होने के करीब आ रहा है। जब तुम पूरे मिटने लगो, तभी जानना कि प्रेम पूरा होने के करीब आ रहा है; जब तक तुम हो, जितने तुम हो, उतनी प्रेम में कमी है।

पंछी एक संदेस कहो उस पीव सूं। किससे भेजें संदेश? कौन ले जायेगा उस दूर आकाश में? पंछी एक संदेस कहो उस पीव सूं। तो कहते हैं, ऐ कोयल, मेरा संदेश भी पहुंचा देना, कि ऐ पपीहे, मेरा संदेश भी पहुंचा देना।

पंछी एक संदेस कहो उस पीव सूं।
विरहनि है बेहाल जायेगी जीव सूं॥

कह देना अगर कहीं परमात्मा तुम्हें मिल जाये, कि कोई तुम्हारे विरह में मरा जा रहा है; अगर तुम न आये समय पर, तो हाथ से विरहिणी के प्राण निकल जायेंगे! विरहनि है बेहाल जायेगी जीव सूं। मरने के करीब है कोई, बस दिया बुझा-बुझा है...।

होने ही को है ऐ दिल। तकमील मुहब्बत की
एहसासे-मुहब्बत भी मिटता नजर आता है।

तो जाओ कह दो पंछी, कि अब कोई बिलकुल आखिरी घड़ी में है। अब और देर न करो, आ जाओ, उतर जाओ, अन्यथा यह विरहिणी के प्राण गये!

सींचनहार सुदूर सूक भई लाकरी।

तुम इतने दूर हो सींचने वाले, कि मेरी लता तो सूख कर लकड़ी हो गई है।

सींचनहार सुदूर सूक भई लाकरी।
हरि हां, वाजिद, घर ही में बन कियो वियोगनि वापरी॥

और मेरा घर ही जंगल हो गया है, बियावान हो गया है; मुझे कहीं जाना नहीं पड़ा,



जंगल जाना नहीं पड़ा, तेरे प्रेम में, तेरे विरह में, घर में ही जंगल हो गया है!

परमात्मा मिल जाये, तो जंगल में ही मंगल है, और परमात्मा न मिलता हो, विरह की रात हो, तो घर में भी जंगल ही है। जंगल कहां जाना है! लोग जंगल जाते हैं, बड़े पागल हैं! विरह में जाओ, तो जहां हो वहीं जंगल है, और विरह में जलो, तो जहां हो वहीं जंगल है। और विरह में ऐसे जलो, कि राख ही रह जाये, सब मिट जाये।

होने ही को है दिल! तकमील मुहब्बत की
एहसासे-मुहब्बत भी मिटता नजर आता है।

और जब तुम्हें लगे कि बस, शमा कि आखिरी घड़ी आ गई और ज्योति बुझने ही बुझने को है—जल गया तेल, चुक गई बाती, आखिरी क्षण है—अब बुझी तब बुझी, तब समझ लेना कि प्रेम की पूर्णता आ गई! इसी महामृत्यु में, अहंकार के इसी विसर्जन में, परमात्मा परिपूर्ण रूप से उतर जाता है।

बालम बस्यो विदेस भयावह भौन है।
सोवै पांव पसार जु ऐसी कौन है॥
अति ही कठिन यह रैण बीतती जीव कूं।
हरि हां, वाजिद, कोई चतुर सुजान कहै जाये पीव कूं॥

बालम बस्यो विदेस भयावह भौन है।

बड़ी भयानक रात है, क्योंकि बालम, प्यारा, बड़ी दूर बसा है। बालम बस्यो विदेस...। कहां तुम छिप गये हो, कहां तुम बस गये हो? किन दूरियों पर तुम हो? बड़ी भयानक रात है—विरह की रात, बड़ी अंधेरी रात, बड़ी अमावस की रात है!

सोवै पांव पसार जु ऐसी कौन है। ऐसी कौन होगी प्रेयसी, जो प्रेमी दूर गया हो और पांव पसार कर सो जाये! जो पांव पसार कर सो रहे हैं, उन्हें कुछ भी पता नहीं है, उन्हें प्रेमी का कोई पता नहीं, उन्हें प्यारेका कोई पता नहीं है।

जापान में एक सम्राट, रात राजधानी में घूमता था घोड़े पर सवार होकर रोज—देखने, सुनने, समझने कि हालात क्या हैं। रोज एक फकीर के पास से गुजरता था, वह वृक्ष के नीचे हमेशा खड़ा हुआ मिलता—सजग, जागरूक। सम्राट के मन में जिज्ञासा उठनी शुरू हुई—सोता भी है यह आदमी कि नहीं? एक दिन रुका और पूछा, कि एक जिज्ञासा मेरे मन में है। जब भी यहां से गुजरता हूं, कभी आधी रात भी गुजरा हूं, कभी रात बीतने लगी और भोर होने लगी, तब भी गुजरा हूं, लेकिन तुम्हें सदा मैंने जागा हुआ, खड़े पाया। तुम क्यों जागे हुए क्यों खड़े रहते हो? उस फकीर ने कहा: जब तक उससे मिलन न हो जाये, तब तक सोना असंभव है। जागता हूं, कौन जाने कब उसका आगमन हो जाये—किस घड़ी!

जीसस ने कहानी कही है अपने शिष्यों को, कि इस तरह जागो, जिस तरह एक मालिक, एक धनपति तीर्थयात्रा को गया। और अपने राजमहल में अपने नौकरों को कह गया, कि जागे रहना; मैं कभी-भी आ जाऊंगा, किसी-भी क्षण आ जाऊंगा। घर साफ-सुथरा रहे, जैसा छोड़ जा रहा हूं ठीक ऐसा रहे। आधी रात भी आ जाऊं, तो जागे मिलना! कब आ जाऊंगा, कुछ पता नहीं—आज आ जाऊं, कल आ जाऊं, परसों आ जाऊं, महीने लगें, साल लगें—तुम जागे रहना!

जीसस ने कहा है: परमात्मा कब आ जायेगा, कुछ पता नहीं। परमात्मा अतिथि है, तिथि बिना बताये आ जाता है—यह अतिथि का मतलब होता है—कब आ जायेगा, अचानक... ! ऐसा न हो कि आये परमात्मा और तुम्हें सोया हुआ पाये, और लौट जाये! सोवै पांव पसार जु ऐसी कौन है। जिसको याद आनी शुरू हो गई परमात्मा की, वह पांव पसार कर नहीं सो सकता। यही जीवन तब साधना बन जाता है; अभी निद्रा है, तब जागरण का प्रयास बन जाता है; फिर उसे ध्यान कहो, प्रार्थना कहो, या जो भी नाम तुम देना चाहो—जागरण के ही उपाय हैं।

बालम बस्यो विदेस भयावह भौन है।
सोवै पांव पसार जु ऐसी कौन है
अति ही कठिन यह रैण बीतती जीव कूं।

यह विरह की रात बड़ी कठिनाई से बीतती है, बड़ी लम्बी मालूम होती है। समय कोई सुनिश्चित चीज नहीं है, समय बहुत लचीली चीज है; जब तुम सुख में होते हो, जल्दी बीत जाता है, जब तुम दुख में होते हो, देर से बीतता है।

अलबर्ट आइन्सटीन ने विज्ञान के जगत में सापेक्षवाद, रिलेटिविटी के सिद्धांत को जन्म दिया—कि हर चीज सापेक्ष है, कोई चीज थिर नहीं है, विभिन्न संदर्भों में विभिन्न हो जाती है। किसी ने उससे पूछा, कि तुम्हारा सिद्धांत तो बहुत जटिल है और लोग कहते हैं, कि पूरी पृथ्वी पर केवल बारह आदमी हैं जो उसे ठीक से समझते हैं। लेकिन कुछ सरलता से समझा दो हमें भी, सार की बात समझा दो। तो उसने कहा: सार की बात इतनी है, कि ऐसा समझो कि जिस प्रेयसी को पाने के लिये तुम दीवाने थे, वह तुम्हें मिल गई, तो घंटा ऐसे बीत जायेगा, जैसे क्षण में बीत गया! घड़ी एकदम से घूमती मालूम पड़ेगी। रात ऐसे बीत जायेगी, जैसे बहुत छोटी हो गई! और समझो, कि तुम ऐसे मित्र के पास बैठे हो, जो मरण शैया पर पड़ा है—अब मरा तब मरा...रात बड़ी लम्बी हो जायेगी! घड़ियां ऐसी बीतेंगी जैसे सदियां!

समय मनोवैज्ञानिक तथ्य है; तुम जब प्रसन्न होते हो, जल्दी बीतता लगता है, तुम जब दुखी होते, सरकता, घसटता लगता है।



और सबसे बड़े दुख की बात जीवन में एक ही है, कि परमात्मा से मिलन न हो। परमात्मा से अलग होना नरक है—और स्वाभाविक, रात बड़ी मुश्किल से बीतती मालूम पड़ती है! और परमात्मा से जब तक नहीं मिले, तब तक रात ही रात है!

संत ऑगस्टीन ने कहा है; जब परमात्मा को देखा, तब पता चला कि दिन कैसा होता है! श्री अरविन्द का वचन है: कि जब तक उसे नहीं देखा, तब तक तुमने मृत्यु को जीवन समझा है, रात को दिन समझा है, अंधेरे को प्रकाश समझा है। जब उसे देखोगे, तब तुम्हें पता चलेगा... जीवन के सारे मूल्यांकन बदलने होंगे।

अभी हम बिलकुल उल्टी हालत में हैं, शीर्षासन कर रहे हैं! हमें सब चीजें उल्टी दिखाई पड़ रही हैं, जैसी हैं वैसी नहीं दिखाई पड़ रहीं। जब तुम पैर के बल खड़े होओगे, पहली बार सीधे खड़े होओगे, तब तुम्हें समझ में आयेगा। जगत की अवस्था वैसी ही मालूम पड़ती है, जैसी तुम्हारी दृष्टि होती है।

एक कहानी मैंने सुनी है: जवाहरलाल नेहरू प्रधानमंत्री थे, एक गधा उनसे मिलने गया। ऐसे भी गधों के अतिरिक्त और कौन प्रधानमंत्रियों से मिलने जाता है! संतरी झपकी खा रहा था, सुबह–सुबह का वक्त; आदमियों को रोकने की उसे आज्ञा थी, गधों को रोकने को उसे कहा भी नहीं था किसी ने कि गधों को रोकना, गधे क्या बिगाड़ लेंगे। वह झपकी खा रहा था, यह गधा वहां घूम रहा था। वह देखता रहा, झपकी खाता रहा, गधा मौका देख कर भीतर प्रवेश कर गया। पंडित नेहरू शीर्षासन कर रहे थे, सुबह-सुबह का वक्त, बगीचे में। उन्होंने गधे को आकर खड़ा देखा, उल्टा दिखाई पड़ा गधा, स्वाभाविक, वे शीर्षासन कर रहे थे। तो उन्होंने कहा: भाई गधे, तुम उल्टे क्यों खड़े हो? गधा हंसने लगा और उसने कहा: उल्टे आप खड़े हैं। यह देखकर कि गधा बोलता है, नेहरू ने कहा: तो, तुम बोलते भी हो! तो गधे ने कहा: जब कई बोलने वाले गधे होते हैं, तो गधों को बोलने में कौन–सी अड़चन है? आप चौंकें न, और आप चौंकिये मत कि गधा आप से मिलने क्यों आया! नेहरू ने कहा: उसकी तो मैं फिक्र ही नहीं करता, क्योंकि मुझ से गधों के अतिरिक्त और कोई मिलने आता ही नहीं!

शीर्षासन करता हुआ आदमी, उसे सारी चीजें उल्टी दिखाई पड़ेंगी! जिसको अभी जिंदगी कह रहे हो, वह शीर्षासन करती हुई जिंदगी है! अभी सब उल्टा दिखाई पड़ रहा है! अभी तुमने जिसे रोशनी समझा है, वह रोशनी नहीं है, और जिसे तुमने अपने जीवन का सार-सर्वस्व समझा है, वह सार-सर्वस्व नहीं। अभी तुम कंकड़-पत्थर बीन लिये हो और अपनी झोली भर ली, और सोच रहे हो कि हीरे इकट्ठे कर लिये हैं! जब पहली दफा हीरे पर नजर पड़ेगी, तब तुम्हें पता चलेगा, कि ये सब जो अब तक किये गये उपाय थे, व्यर्थ गये। यह झोली व्यर्थ ही भरी! यह तुम ऐसे ही गिरा दोगे, इसको त्यागना भी

नहीं पड़ेगा, इसको छोड़ने के लिये चेष्टा भी नहीं करनी पड़ेगी, यह छूट ही जायेगी तुम्हारे हाथ से, गिर ही जायेगी तुम्हारे हाथ से।

अति ही कठिन यह रैण बीतती जीत कूं। बड़ी कठिनाई से बीतती है यह रात। और जब याद आने लगे, तो और कठिन हो जाती है; जिनको याद नहीं आती, उनकी इतनी कठिनाई से नहीं बीतती, वे तो सोये हैं, बेहोश पड़े हैं। जिनका परमात्मा से मिलन हो गया, उनकी तो कठिनाई से बीतेगी—क्यों? आनंद ही आनंद है, महोत्सव ही महोत्सव है! जिनको परमात्मा की याद भी नहीं है, फ़ुरसत भी नहीं है, सोचा भी नहीं है, विचारा भी नहीं है, वे तो दोनों पांव पसार कर सो रहे हैं, गहरी नींद में बेहोश हैं! अड़चन है बीच वाले की—जिसका परमात्मा से अभी मिलन भी नहीं हुआ और पुकार पैदा हो गई है। अड़चन है भक्त की, पीड़ा है भक्त की। इसलिये भक्त रोता है, इसलिये भक्त के आंसुओं की धार बहती है, इसलिए भक्त का हृदय टूटता है, बिखरता है, इसलिये भक्त का रोआं-रोआं संताप ग्रस्त होता है। उसे पता हो गया है कि परमात्मा है; जरा-जरा झलक भी मिलने लगी है। इसलिये अब इस संसार में मन भी नहीं लगता और अभी मिलन भी नहीं हुआ है। भक्त की दशा बड़ी पीड़ा की है!

शायद इसीलिये बहुत लोग भक्त के जगत से बचते हैं, भागे रहते हैं, शायद इसीलिये बहुत लोग परमात्मा की खोज पर नहीं निकलते, अपने को बचाये रखते हैं, अपनी नींद को बचाये रखते हैं—डर के कारण, क्योंकि बड़ी दुर्दशा होगी! लेकिन उस दुर्दशा के बाद ही सौभाग्य का क्षण है, सुहाग का क्षण है! उतनी कीमत चुकानी पड़ती है।

मैं सदा कहता हूं, कि धर्म केवल साहसी व्यक्ति की ही पात्रता है—सिर्फ साहसी ही पात्र है धर्म का! दुस्साहसी कहना चाहिये, क्योंकि नींद चल रही थी, सपने चल रहे थे; उनको तोड़ लिया, नींद में विघ्न डाल दिया, याद उठा ली; एक सोया स्वर जग गया, एक पुकार मच गई, एक प्यास गहन होने लगी और सरोवर का कोई पता नहीं! यात्रा शुरू हुई, सरोवर मिलेगा, सरोवर है, प्यास के पहले सरोवर है, आत्मा के पहले परमात्मा है।

लेकिन यह जो थोड़ा-सा काल बीतेगा, मध्य का काल, संक्रमण का काल, यह बड़ी पीड़ा का होगा। लेकिन यह पीड़ा निखारती है; यह दुर्भाग्य नहीं है, सौभाग्य है। यह पीड़ा ऐसी है, जैसे हम आग में डालते हैं सोने को। ऐसा भक्त अपने को इस पीड़ा में डाल देता है और निखरता है, कुंदन बनता है, शुद्ध होता है! ऐसे ही पात्रता आती है। ऐसे ही अहंकार मिटता है और शून्यता आती है। और फिर शून्य में पूर्ण का आगमन है। इस प्रेम को जगाओ। इस पीड़ा का स्वागत करो।



उसने-मंशाए-इलाही को मुकम्मिल कर दिया
अपनी आंखों पर लिये, जिसने मुहब्बत के कदम
इश्क ने तोड़ा दिले-शैखो-बरहमन का गरूर
इश्क है, गारतगरे-काशानए-दैरो-हरम
बगैर इश्क खराबाते-जिन्दगी तारीक
अगर यह शमअ फरोजां नहीं तो कुछ भी नहीं
क्या मुहब्बत के सिवा है कोई मकसूदे-हयात
कौन कहता है मुहब्बत में जिया होता है?
मैं निसारे-रहमते-इश्क हूं कि बगैर इश्क के दहर में
न कोई निशात निशात है, न कोई मलाल मलाल है
दहर में नक्शे-मुहब्बत को मिटाकर इक बार
कोई सौ बार बनाये तो बनाये न बने,

इस जगत में प्रेम का मार्ग ही एक मात्र मार्ग है। और जिसने इस जगत में प्रेम के मार्ग को मिटा दिया, वह फिर लाख उपाय करे, कुछ भी बनाये बनने वाली नहीं है। दहर में नक्शे-मुहब्बत को मिटाकर इक बार। जिसने इस संसार में अपनी प्रेम की क्षमता मिटा दी—कोई सौ बार बनाये तो बनाये न बने। फिर वह कुछ भी उपाय करे, लाख उपाय करे, तो उसकी जिन्दगी में कभी फूल न खिलेंगे!

कोई सौ बार बनाये तो बनाये न बने
उसने-मंशाए-इलाही को मुकम्मिल कर दिया।
अपनी आंखों पर लिये, जिसने मुहब्बत के कदम

जिसने अपनी आंखों पर प्रेम को झेला, उसने परमात्मा की इच्छा को पूरा कर दिया।

उसने-मंशाए-इलाही को मुकम्मिल कर दिया
अपनी आंखों पर लिये, जिसने मुहब्बत के कदम
इश्क ने तोड़ा दिले-शैखो-बरहमन का गरूर

और सिर्फ प्रेम ही है, जिसने पंडितों और पुजारियों के अहंकार को तोड़ा है। इश्क है गारतगरे-काशानए-दैरो-हरम। मंदिर और मस्जिदों के झगड़ों को मिटाने वाला अगर कोई है, तो सिर्फ प्रेम है। इसलिये प्रेम ही धर्म है; मंदिर और मस्जिद तो झगड़े करवाते हैं। यह तो प्रेम की मधुशाला में कोई प्रविष्ट हो जाये, तो झगड़ों के पार होता है। बगैर इश्क खराबाते-जिन्दगी तारीक। बिना इश्क के, जीवन का मदिरालय अंधेरा है।

बगैर इश्क खराबाते-जिन्दगी तारीक
अगर यह शमअ फरोजां नहीं तो कुछ भी नहीं

अगर प्रेम की ज्योति नहीं जल रही तुम्हारे जीवन के मदिरालय में, तो फिर कुछ भी नहीं। तुम व्यर्थ हो। तुम हो ही नहीं। तुम्हारा होना झूठा, मिथ्या है। क्या मुहब्बत के सिवा है कोई मकसूदे-हयात। प्रेम के अतिरिक्त जीवन का कोई और लक्ष्य है क्या? कोई और लक्ष्य नहीं है; प्रेम ही प्रारंभ है और प्रेम ही अंत है। जिसने प्रेम को समझ लिया, उसने परमात्मा को समझ लिया। वाजिद के वचन प्रेम के वचन हैं। इनमें पांडित्य नहीं है, पर प्रेम की बाढ़ है! डूबना, डुबकी मारना; जितने गहरे जाओगे, उतने मोती पाओगे!

आज इतना ही।
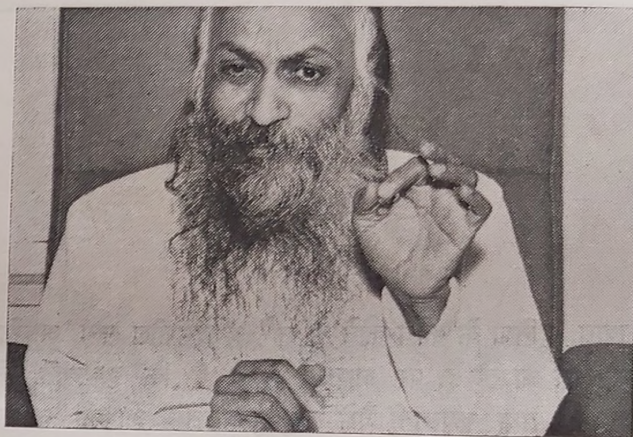
## प्रार्थना के पंख—यात्रा शून्य-शिखरों की

दूसरा प्रवचन; दिनांक २२ सितम्बर, १९७८;
श्री रजनीश आश्रम, पूना.
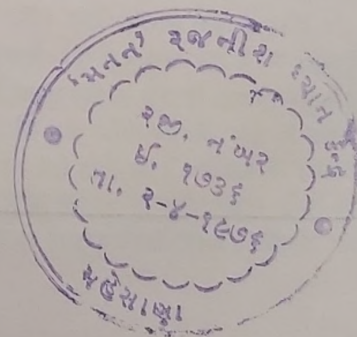
भगवान, दुनिया के कोने-कोने से सारे संवेदनशील लोग आपके पास खिंचे चले आ रहे हैं, पर आश्चर्य होता है कि कृष्णमूर्ति, विनोबा, जयप्रकाश तथा कृपलानी जैसे साधु-पुरुषों तक आपकी आवाज क्यों नहीं पहुंच पाती है? वे क्यों नहीं अनुभव कर पाते हैं कि यहां पूना में वह व्यक्ति मौजूद है, जिसके पास मनुष्यता की मूल व्याधि की औषधि है।

सभ्यता, संस्कृति और संगठित धर्म निन्यानबे प्रतिशत आचरण हैं, अनुकरण हैं, फिर धर्म क्या है?

मेरी जिंदगी किसी के काम आ जाये
कौन जाने मौत का पैगाम आ जाये।

पहला प्रश्न : भगवान ! दुनिया के कोने-कोने से सारे संवेदनशील लोग आपके पास खिंचे चले आ रहे हैं, पर आश्चर्य होता है कि कृष्णमूर्ति, विनोबा, जयप्रकाश तथा कृपलानी जैसे साधु-पुरुषों तक आपकी आवाज क्यों नहीं पहुंच पाती है ? वे क्यों नहीं अनुभव कर पाते हैं कि यहां पूना में वह व्यक्ति मौजूद है, जिसके पास मनुष्यता की मूल व्याधि की औषधि है ?

★ आनंद अरुण ! कृष्णमूर्ति को पूरा बोध है, क्योंकि वे वहीं हैं जहां मैं हूं। मेरी और उनकी चेतना में जरा भी भेद नहीं है। इसलिए पास आने की कोई जरूरत नहीं है। न मेरे उनके पास जाने की कोई आवश्यकता है, न उनको मेरे पास आने की आवश्यकता है। इतना द्वैत भी नहीं है कि पास आया जा सके या दूर रहा जा सके। पास आना और दूर जाना दुई के सम्बंध हैं, भेद के सम्बंध हैं। जहां अभेद है, वहां ऐसे सम्बंध का कोई उपाय नहीं है। मैं वही कर रहा हूं, जो वे कर रहे हैं। वे वही कर रहे हैं, जो मैं कर रहा हूं। एक ही काम के दो पहलू हैं। मै अपने ढंग से करूंगा, वे अपने ढंग से करेंगे। ढंगों में भेद हो सकता है, लक्ष्यों में भेद नहीं है।

कृष्णमूर्ति प्रज्ञा-पुरुष हैं, जाग्रत बुद्ध-पुरुष हैं। ऐसा तो असंभव है कि उन तक मेरी आवाज न पहुंचे। पहुंच गयी है, पहुंच रही है। क्योंकि उन तक आवाज न पहुंचे तो फिर किसी तक न पहुंच सकेगी। कृष्णमूर्ति मुझे न समझ सकें, तो कोई भी न समझ सकेगा। उनकी आवाज मुझ तक पहुंचती रही है, पहुंच रही है। ये आवाजें दो कंठों से निकलती हों लेकिन दो प्राणों से नहीं निकल रही हैं, एक ही प्राण से निकल रही हैं।

यह जानकर तुम्हें आश्चर्य होगा, कि बुद्ध और महावीर एक ही समय में जिये हैं—एक ही स्थान, बिहार में। बहुत बार ऐसे मौके आये, जब एक ही गांव में ठहरे हैं, पर मिले नहीं। और एक बार तो ऐसा हुआ कि एक ही धर्मशाला में दोनों का आवास हुआ, फिर भी मिले नहीं। सदियां इस पर विचार करती रही हैं। और जो भी विचार

अब तक हुआ है, भ्रांत है। जैन सोचते हैं, कि इसलिये नहीं मिले कि महावीर तो प्रज्ञा-पुरुष थे, अभी बुद्ध प्रज्ञा-पुरुष नहीं हुए थे; इसलिये महावीर बुद्ध से मिलने क्यों जायें, कैसे जायें ? प्रज्ञा-पुरुष क्यों मिलने जायेगा अज्ञानी से ? और बुद्ध अज्ञानी थे, इसलिये अहंकारी थे, इसलिये अहंकार के कारण नहीं जा सके। ठीक ऐसा ही बौद्ध भी सोचते हैं, कि बुद्ध तो पहुंचे हुए पुरुष थे, वे क्यों जायेंगे ? और महावीर को तो अभी कुछ पता नहीं था, इसलिये अपने अहंकार में अकड़े रहे।

मेरा देखना कुछ और है, मेरी दृष्टि कुछ और है। पच्चीस सौ साल में जो विचार हुआ है, उससे भिन्न है, बिलकुल भिन्न है। महावीर और बुद्ध भिन्न नहीं थे कि एक-दूसरे के पास जायें, इसलिए पास जाने का सवाल नहीं उठा। दो शून्य अगर पास आ भी जायें तो क्या पास आयेगा ? दो शून्य मिलकर एक ही शून्य हो जाता है। शून्यों के साथ हमारा सामान्य गणित काम नहीं करता। एक और एक को मिलाओ तो दो होते हैं। दो और दो को मिलाओ तो चार होते हैं। लेकिन दो शून्यों को मिलाओ तो एक शून्य हो जाता है। हजार शून्यों को मिलाओ तो भी एक शून्य हो जाता है। अनंत शून्यों को मिलाओ तो भी एक ही शून्य होता है। जो समाधि को उपलब्ध हो गया, वह शून्य हो गया।

नहीं मिले बुद्ध और महावीर एक ही धर्मशाला में रह कर भी, क्योंकि मिलने का कोई प्रयोजन ही नहीं था, अर्थ ही नहीं था। एक के ही इशारे पर चल रहे थे। एक-सा ही फूल खिला था—एक ही फूल खिला था !

तो कृष्णमूर्ति और मेरे बीच तो कोई भेद नहीं। और ऐसा भी हुआ है कि कभी हम दोनों एक ही गांव में रहे हैं। और ऐसा भी हुआ है कि कभी एक ही मुहल्ले में ठहरे हैं। पर मिलने का कोई कारण नहीं है। मिलने में कोई अर्थ भी नहीं। मिले ही हुए हैं, तो मिलना कैसा ?

इसलिये कृष्णमूर्ति को, ऐसा मत सोचना कि बोध नहीं है; या जो काम यहां हो रहा है, उसका कोई स्मरण नहीं है; पूरा-पूरा स्मरण है, पूरा-पूरा बोध है। यद्यपि हमारे ढंग इतने भिन्न हैं, कि कृष्णमूर्ति इस सम्बंध में कुछ कह नहीं सकते, मैं कह सकता हूं कृष्णमूर्ति के सम्बंध में। मेरे ढंग में वह बात समाहित है। मैं बुद्ध पर बोल सकता हूं, महावीर पर बोल सकता हूं, कृष्ण पर, क्राइस्ट पर, लाओत्सु पर, कबीर पर, नानक पर, वाजिद पर। मेरे काम का ढंग सारे जगत के प्रज्ञापुरुषों ने जो कहा है, उसकी एक गंगा बना देना है। कृष्णमूर्ति का काम अलग है। उन्होंने कभी भूल से भी महावीर का नाम नहीं लिया, न लाओत्सु का, न कृष्ण का। वे दूसरे का नाम ही नहीं लेते। वे उतना ही कहते हैं जितना उन्हें कहना है, उससे भिन्न जरा भी नहीं। बस वे अपनी ही कहते हैं। यद्यपि



वे जो कहते हैं, वह वही है जो बुद्ध ने कहा है, जो कृष्ण ने कहा है, उसमें जरा भी भेद नहीं है। लेकिन कृष्णमूर्ति के काम करने का ढंग वह नहीं है। उनके काम करने का ढंग है—उनके निज में जो उत्पन्न हुआ है, उसको ही कह देना। मेरे काम करने का ढंग ऐसा है, कि जो मेरे भीतर हुआ है उसके माध्यम से, समस्त इतिहास में जब-जब यह घटना घटी है, मैं उस सब का साक्षी हो जाना चाहता हूं। मेरा काम समग्र अतीत को इस क्षण में पुकार लेना है। उनका काम केवल इसी क्षण को अभिव्यक्ति देना है। दोनों सुंदर हैं। दोनों के अपने लाभ, अपनी हानियां हैं।

इसलिये कृष्णमूर्ति मेरे सम्बंध में नहीं बोल सकते; मैं उनके सम्बंध में बोल सकता हूं। मेरे लिये पूरा खुला आकाश है। मुझ पर कोई नियंत्रण, कोई सीमा नहीं है। वे सिर्फ अपनी ही बात कहते हैं। मेरी बात का एक लाभ है कि हिन्दू आ सकता है, मुसलमान आ सकता है, ईसाई आ सकता है; ज़रा भी अड़चन नहीं है। इस मंदिर के सारे द्वार हैं। सारे द्वार मैंने इस मंदिर में इकट्ठे कर लिये हैं। यह एक महान समन्वय का प्रयास है।

लेकिन इसका एक खतरा है। क्योंकि मैं इतने विभिन्न प्रज्ञा-पुरुषों पर बोल रहा हूं, जो ठीक से नहीं समझेंगे, जो हृदय से नहीं सुनेंगे, उनके चित्त में बड़े भ्रम पैदा हो जायेंगे—कौन ठीक, कौन गलत ? क्या ठीक, क्या गलत ? वे डावांडोल होने लगेंगे। जो बुद्धि से ही मुझे सुनेंगे, वे विक्षिप्त होने लगेंगे। इसलिए जो बुद्धि से सुनता है, ज्यादा देर मेरे पास टिक नहीं सकता। उसे कठिनाई होने लगेगी। उसे विरोध दिखाई पड़ने लगेगा मेरे वक्तव्यों में। स्वभावतः, जब मैं महावीर पर बोलूंगा, तो मैं महावीर के साथ पूरी ईमानदारी बरतूंगा। महावीर बुद्ध से बिलकुल विपरीत ढंग से काम करते हैं। और जब बुद्ध पर बोलूंगा तो बुद्ध के साथ पूरी ईमानदारी बरतूंगा। तो मेरे वक्तव्य विरोधाभासी हो जायेंगे। जो बुद्धि से सुनेगा, वह तो मुश्किल में पड़ जायेगा। वह तो कहेगा कि मेरे वक्तव्य असंगत हैं, विरोधी हैं, एक दूसरे का खंडन करते हैं।

मेरे वक्तव्यों में कोई एक सिद्धांत नहीं है। जो सिद्धांत पकड़ने आया है, वह तो चला जायेगा। मैं तो सारे सिद्धांतों का सार बोल रहा हूं। इस सार को हृदय से ही समझा जा सकता है। यह मेरी विधि भी है—उनको अलग कर देने की, जो हार्दिक नहीं हैं, भावुक नहीं हैं। जो केवल बुद्धि का विचार लेकर आ गये हैं, उनको विदा कर देने की यह मेरी विधि भी है। पर यह खतरा उसमें है।

कृष्णमूर्ति की बात में एक सुविधा है, संगति है। सुविधा यह है, कि सुनने वाले को कभी ऐसा नहीं लगेगा कि कोई विरोधाभास है। पिछले पचास वर्षों में उन्होंने जो कहा है, निश्चित रूप से वही कहा है, पचास वर्ष सतत वही कहा है। विचार-सरणी में जरा भी,

रत्ती-भर कोई विरोध नहीं निकाल सकता। यह तो लाभ है, कि कृष्णमूर्ति को सुनने वाला सुस्पष्ट होता जायेगा। मगर एक खतरा है, कृष्णमूर्ति को सुनने वाला बुद्धि में अटका रहेगा। क्योंकि सुस्पष्टता, सुसंगति बुद्धि की धारणायें हैं। उसे मौका ही नहीं मिलेगा कि सुसंगति, तर्कबद्धता, विरोधाभास, इनके पार उठ सके। उसे समय ही नहीं मिलेगा कि वह बुद्धि से नीचे उतरे। उसकी बुद्धि इतनी तृप्त हो जायेगी, कि हृदय तक जाने का उसे कारण ही न रह जायेगा। यह खतरा है।

मेरी बात का खतरा है कि जो बुद्धि में ही हैं, वे आज नहीं कल छोड़ देंगे। उन्हें छोड़ना ही पड़ेगा। वे मेरे साथ ज्यादा देर नहीं चल सकते, कुछ कदम चल सकते हैं। उन कुछ कदमों में अगर उन्होंने हिम्मत कर ली और बुद्धि से नीचे उतर गये, गहरे उतर गये और हृदय की थाह ले ली, तो मेरे साथ चल पायेंगे। यह खतरा हुआ, कि उनको जल्दी मुझे छोड़ देना होगा। लाभ यह है, कि अगर उन्होंने हिम्मत रखी, तो बुद्धि के अतीत हो जायेंगे, बुद्धि का अतिक्रमण हो जायेगा!

कृष्णमूर्ति के साथ सुविधा यह है, लाभ यह है कि तुम्हारी बुद्धि सदा तृप्त रहेगी। जो एक बार उनके साथ चला, चलता ही रहेगा। उसे छोड़ने का कोई मौका न आयेगा। क्योंकि जिस कारण वह साथ हुआ था, उसके विपरीत कृष्णमूर्ति कभी भी कुछ न कहेंगे। वे उसी को सिद्ध करते रहेंगे बार-बार, हजार बार। उसकी बौद्धिक धारणा और मजबूत होती चली जायेगी। लेकिन खतरा यह है, कि वह बुद्धि में ही अटका रह जायेगा, हृदय तक कभी न पहुंच पायेगा।

और तुम पूछते हो, कृपलानी...? कृष्णमूर्ति नहीं आ सकते मेरे पास, आने की कोई जरूरत नहीं है। कृष्णमूर्ति धर्म स्वरूप हैं। कृपलानी भी मेरे पास नहीं आ सकते। आने की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि कृपलानी शुद्ध राजनीति हैं। उनका धर्म से कोई सम्बंध नहीं है। कृष्णमूर्ति का धर्म से इतना सम्बंध है, धर्म में प्रतिष्ठित हैं, इसलिये नहीं आ सकते। कृपलानी इसलिये नहीं आ सकते, कि धर्म से उनका कोई लेना-देना नहीं है। पूरी जिन्दगी राजनीति में गयी है—दांव-पेंच बिठाने में, मोहरे सजाने में! शतरंज के खिलाड़ी हैं! नब्बे वर्ष के हो गये, मगर अभी भी रस वहीं अटका है! अभी भी मौत की आवाज उन्हें सुनाई नहीं पड़ी और न जीवन के सत्य की तलाश करने की आकांक्षा उठी है। अभी भी गोटियां ही बिठाते रहते हैं! यद्यपि अब राजनीति से बाहर फेंक दिये गये हैं, क्योंकि इतनी उम्र...। अब बल भी नहीं है वहां टिके रहने का, लेकिन जब भी मौका मिल जाता है, तो बिना बुलाये भी मेहमान हो जाते हैं! जब भी मौका मिल जाये तो राजनीति में जितनी दखलंदाजी कर सकें, करना चाहते हैं और बिना बुलाये भी! रस उनका राजनीति है।



और मेरा काम तो राजनीति से बिलकुल विपरीत है, अराजनैतिक है। इसलिये यहां उनको आने का कोई अर्थ नहीं, न प्रयोजन है, न सवाल है; न ही राजनीतिज्ञों का यहां कोई स्वागत है। न ही उनसे मेरा कोई सम्बंध बन सकता है। कोई सेतु नहीं है मेरे और उनके बीच। इसलिये कृपलानी भी नहीं आ सकते। और उन तक मेरी आवाज पहुंच भी जाये, तो उन्हें सुनाई नहीं पड़ सकती। उनके कान बहरे रहेंगे। वे मेरी आवाज सुन भी लें, तो उनकी समझ में नहीं आ सकती, क्योंकि राजनीतिक के पास समझ जैसी चीज ही नहीं होती। उसके पास तो एक अंधी महत्वाकांक्षा होती है, एक अंधी पद-लोलुपता होती है, एक लिप्सा होती है अहंकार को तृप्त करने की। और धर्म तो बिलकुल विपरीत है। वह अहंकार का विसर्जन है।

इसलिये कृपलानी से भी मेरा कोई सम्बंध नहीं बन सकता। ऐसा नहीं कि मेरा काम उन तक नहीं पहुंचता है, कि मेरे काम की खबर उन तक नहीं पहुंचती। मेरे नाम से और मेरे काम से बचना तो इस देश में असंभव है; इस देश में क्या, दुनिया के किसी देश में बचना असंभव है! सुबह नहीं तो दोपहर, दोपहर नहीं तो सांझ, कहीं-न-कहीं से खबर आ ही जायेगी। और रोज यह खबर बढ़ती जायेगी, क्योंकि मैंने अपने संन्यासियों को कहा है कि चढ़ जाओ घर की मुंडेरों पर और चिल्लाओ जोर से, क्योंकि लोग बहरे हैं, चिल्लाओगे तो ही शायद थोड़ा सुन पायें!

लेकिन फिर भी कृपलानी के यहां आने की कोई संभावना नहीं है। बहुत देर हो गयी, वैसे ही बहुत देर हो गयी...। चिड़ियां चुग गयीं खेत! जिंदगी-भर जो राजनीति में इस बुरी तरह अटका रहा है, अब मरते क्षण में क्रांति की संभावना न के बराबर है।

तीसरा तुम पूछते हो विनोबा के सम्बंध में और चौथा जयप्रकाश के सम्बंध में। कृष्णमूर्ति को मैं कहता हूं—धर्म, कृपलानी को कहता हूं—राजनीति। विनोबा—ऊपर-ऊपर धर्म, भीतर-भीतर राजनीति। जयप्रकाश—ऊपर-ऊपर राजनीति, भीतर-भीतर धर्म। विनोबा—ऊपर-ऊपर धर्म, भीतर-भीतर राजनीति। उनका धर्म भी उनकी राजनीति की ही एक व्यवस्था है। विनोबा धार्मिक व्यक्ति नहीं हैं, धार्मिक आडंबर हैं! इसलिये मुझसे मिलना चाहते थे; लेकिन राजनैतिक आडंबर है, इसलिये मेरे पास तो आ नहीं सकते थे, क्योंकि राजनीतिज्ञ यह भी फिक्र करता है कि कौन किसके पास जाये! तो मेरे पास लोग भेजते थे।

पटना में ऐसा हुआ कि विनोबा भी थे और मैं भी था। तीन दिन निरंतर उनके लोग आते रहे, बार-बार आते रहे कि विनोबा जी मिलने को उत्सुक हैं। मैंने उनसे कहा: वे मिलने को उत्सुक हैं तो आयें; उनका स्वागत है। तब वे चुप हो जाते। फिर उन्होंने कहा, कि वे तो बूढ़े हैं, तबीयत भी ठीक नहीं है; आप ही चलें। जो विनोबा देश-भर में

चल रहा है पैदल, उसको पटना में ही मेरे पास आने में बीमारी है, बुढ़ापा है, चल नहीं सकते....! थोड़ा सोचते हो, इसमें कितना सार हो सकता है इस बात में ? कोई और के सम्बंध में यह बात होती, समझ में भी आ जाती। पदयात्रा पर जो निकले हैं पूरे देश की, वे पटना के ही एक मुहल्ले से दूसरे मुहल्ले में नहीं आ सकते ! तो मैंने कहा : ठीक है, इतना आग्रह है तो मैं आता हूं। तो मैं मिलने गया। डेढ़ घंटा मुझे जाने में खराब हुआ, क्योंकि एक पटना के छोर पर मैं, एक पटना के छोर पर वे। और जो बातचीत हुई, बिलकुल व्यर्थ थी, दो कौड़ी की थी। कुशल-समाचार पूछे। जैसे लोग मिलते हैं....तो मौसम कैसा है, तबीयत कैसी, आप कैसे, सब ठीक। दो-तीन मिनट में बात खत्म हो गयी। मुझे तो इस बात में कोई रस भी न था। मैं थोड़ा हैरान भी हुआ, कि अगर इतनी ही बात पूछनी थी, इतनी ही बात करनी थी, तो व्यर्थ मुझे परेशान क्यों किया है ? उन्होंने कोई मुद्दे की बात न छेड़ी, क्योंकि उनके सारे शिष्य इकट्ठे थे। अगर वे ध्यान की बात मुझसे पूछें तो शिष्यों को शक होगा। अगर वह वह आत्मा-परमात्मा की बात मुझसे करें तो शिष्यों को शक होगा कि बाबा को पता नहीं ? दो-तीन मिनट के बाद ही सारी बातचीत समाप्त हो गयी। अब कुछ करने को न रहा। थोड़ी देर मैं चुप बैठा रहा। मैंने कहा : फिर अब मैं चलूं ? वे भी थोड़े बेचैन हुए मुझे विदा करने को। उनके एक शिष्य ने तत्क्षण कहा, कि आप तो बुजुर्ग हैं, आप की तो उम्र बहुत ज्यादा है, आप क्यों उठ कर खड़े होते हैं ? और जैसे ही उनके शिष्य ने यह कहा, उनका तत्क्षण बैठ जाना, बड़ा हैरानी का था ! जैसे कि वे बेमन से ही खड़े हो गये हों ! जैसे प्रतीक्षा ही कर रहे हों कि कोई कह दे कि बैठ जाओ ! जैसे इसकी राह ही थी।

ये राजनीतिक चित्त के लक्षण हैं। इस चित्त में धर्म जैसा कुछ भी नहीं है—धर्म का का आवरण है; छिपी राजनीति चलती है; ऊपर-ऊपर धर्म की बात चलती है। इसलिये विनोबा से मिलना हुआ है, लेकिन मिलना नहीं हो पाया। कैसे हो ? मिलन का कोई आधार नहीं बन सका। औपचारिक मिलना हुआ, व्यर्थ हुआ।

जयप्रकाश, कृपलानी और विनोबा दोनों से ज्यादा महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हैं। राजनीति ऊपर-ऊपर है, धर्म भीतर है। विनोबा से ठीक उलटे व्यक्ति हैं। चूंकि धर्म भीतर है, इसी कारण विनोबा के चक्कर में भी पड़ गये थे। सीधे-सादे आदमी हैं, इसलिये सारा जीवन विनोबा के काम में भी लगा दिया था। लेकिन धीरे-धीरे यह एहसास होने लगा कि यहां तो भीतर राजनीति है, धर्म का आवरण है। और तब भेद पड़ने सुनिश्चित थे। जो भी मनोविज्ञान की गहराइयां समझता है, वह समझ पायेगा कि विनोबा और जयप्रकाश का करीब आना निश्चित था, सुनिश्चित था, क्योंकि जयप्रकाश की वही तलाश है; गहरी तलाश भीतर धार्मिक है, ऊपर राजनीतिक आवरण है।



जयप्रकाश का विनोबा से मिलन होना निश्चित था, सम्बंध बनना निश्चित था। जयप्रकाश शुद्ध धार्मिक व्यक्ति के पास शायद न जा सकेंगे, क्योंकि वह जो ऊपर का राजनीतिक आवरण है, वह बाधा डालेगा। जयप्रकाश शुद्ध राजनीतिक व्यक्ति से भी प्रभावित नहीं हो सकेंगे। इसलिये जवाहरलाल नेहरू से निरंतर सम्बंध रहने के बाद भी, कोई गहरा सम्बंध नहीं हो पाया। इस देश के सभी राजनीतिज्ञों से उनका सम्बंध रहा, गहरा सम्बंध रहा है; फिर भी कोई गहरा सम्बंध नहीं हो पाया। राजनीति में रह कर भी वे राजनीति के करीब-करीब बाहर रहे हैं।

जवाहरलाल के बाद जयप्रकाश को भारत का प्रधानमंत्री होना ही चाहिए था, कोई वजह न थी। लेकिन भारत के राजनीतिक व्यक्तित्वों से उनका कोई गहरा सम्बंध नहीं बन पाया। उनकी खोज और है। राजनीति की पतली सतह है। विनोबा में उन्हें आदमी दिखाई पड़ा, जिसके ऊपर धर्म दिखाई पड़ा। वे विनोबा से आकृष्ट हुए, जीवन दान कर दिया विनोबा को। जैसे यह घटना घटनी सुनिश्चित थी, ऐसे ही दूसरी घटना भी सुनिश्चित थी कि एक-न-एक दिन उन्हें अलग होना पड़ेगा, विपरीत हो जाना पड़ेगा। क्योंकि कितनी देर तक जयप्रकाश को यह भ्रांति रहेगी ? जल्दी ही यह दिखाई पड़ने लगा कि विनोबा का धर्म विनोबा की दकियानूसी राजनीति का आवरण मात्र है। विनोबा के भीतर क्रांति नहीं है, क्रांति की बातचीत है। और क्रांति की सारी बातचीत मूलतः क्रांति का अवरोध बन गयी है।

विनोबा को समर्थन मिला इस देश में, सिर्फ इसीलिये कि विनोबा में एक आशा दिखाई पड़ी इस देश के पुराणपंथियों को, दकियानूसियों को, कि यह अच्छा है आवरण। इस आवरण में क्रांति रुक सकती है, ठहर सकती है। इस आशा में हम लोगों को अफीम दे सकते हैं। सर्वोदय एक तरह की अफीम सिद्ध हुआ, जिससे हम तीस साल तक लोगों को बेहोश रखे रहे ! उस अफीम से जो व्यक्ति सबसे पहले चौंका और जो सबसे ज्यादा गहरा उसमें था, वह जयप्रकाश था। जयप्रकाश भीतर से धार्मिक व्यक्ति हैं।

आनंद मैत्रेय जयप्रकाश के मित्र हैं। जब जयप्रकाश जेल से छूटे और उनकी तबियत खराब थी, तो मैत्रेय उन्हें मिलने गये। मैत्रेय बहुत चौंके, जब उन्होंने कहा कि 'भगवान को मेरे नमन कहना, उनके चरणों में मेरे प्रणाम कहना।' मैत्रेय बहुत चौंके ! उन्हें भरोसा ही नहीं आया कि जयप्रकाश और मेरे चरणों में प्रणाम भेज रहे हैं ! आये तो मुझे भी कहा, कि मुझे भरोसा नहीं आया जब उन्होंने यह कहा। भरोसा न आने का कारण साफ है, क्योंकि आमतौर से जयप्रकाश को हम राजनैतिक व्यक्ति मानकर चलते हैं। राजनैतिक व्यक्ति वे नहीं हैं। राजनैतिक व्यक्ति होते, तो यह जो दूसरी क्रांति इस

देश में हुई, इसके बाद वे सत्ता में होते। मगर क्रांति जिस व्यक्ति ने की, वही व्यक्ति इस देश में आज बिलकुल सत्ताहीन है, उनके पास कोई सत्ता नहीं।

यह जयप्रकाश का द्वंद्व है। राजनीति से छूट भी नहीं पाते, वह उनके बाहर का आवरण बन गया है, वह उनका व्यक्तित्व बन गया है। और राजनीति में पूरे जा भी नहीं पाते, क्योंकि उनकी आत्मा की गवाही वहां नहीं है। यह उनका द्वंद्व है।

तो इन तीन व्यक्तियों में—विनोबा, कृपलानी और जयप्रकाश—जयप्रकाश मेरे निकटतम हैं। कृष्णमूर्ति को तो निकटतम नहीं कह सकता, क्योंकि कृष्णमूर्ति के साथ मैं एकरस हूं। लेकिन जयप्रकाश को निकटतम कह सकता हूं। जयप्रकाश की संभावना है। अगर वे जीते रहे, अगर शरीर ने उनको थोड़े दिन और टिकाये रखा, तो इन तीन व्यक्तियों में जो व्यक्ति मेरी बात समझ सकता है, वह जयप्रकाश है। उनसे मुझे आशा है। और अगर इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में। लेकिन इन तीन व्यक्तियों में से जयप्रकाश सबसे पहले बुद्धत्व को उपलब्ध होंगे, इसकी घोषणा की जा सकती है। कभी भी, इस जन्म में, अगले जन्म में, और जन्मों में। लेकिन इन तीन व्यक्तियों में जिस व्यक्ति के भीतर सर्वाधिक संभावना है ज्योति के जलने की, वह जयप्रकाश है। उन तक मेरी आवाज पहुंचती है, मगर उनकी राजनीति का आवरण है। उनके आसपास का सारा वातावरण है।

जयप्रकाश बड़े द्वंद्व में ग्रस्त हैं। जहां नहीं होना चाहिए वहां हैं; जो नहीं होना चाहिये वह हैं। और इसे तुम समझोगे, तुम में भी बहुतों का यही द्वंद्व है।

एक मित्र ने पूछा है, कि संन्यास लेना चाहता हूं; अवतार कृष्ण उनका नाम है। जब से आया हूं तब से संन्यास लेने की इच्छा लगी है, मन में एक ही कामना जगी है। मगर डर लगता है कि मैं व्यवसाय में हूं। फिर व्यवसाय में तो झूठ भी बोलना पड़ता है, थोड़ी बेईमानी भी करनी होती है। इन गैरिक वस्त्रों में फिर कैसे व्यवसाय कर पाऊंगा?

अब अवतार कृष्ण की कठिनाई शुरू होगी। व्यवसाय उनकी आत्मा नहीं है। आत्मा होती तो संन्यास का सवाल ही न उठता। लेकिन व्यवसाय उनका आवरण है, जिंदगी-भर की आदत है। जिंदगी-भर व्यवसाय किया है और आज अचानक कैसे उससे बाहर हो जायें, कैसे अचानक छलांग लगा लें? संन्यास की आकांक्षा जगी है, लेकिन उसको दबा रहे हैं। लेकिन एक बात ख्याल रखें, वापिस लौट कर अपनी दुकान पर बैठोगे तो जरूर, लेकिन अब कभी निश्चिंतता से न बैठ पाओगे! क्योंकि तब यह बात तुम्हें बार-बार खलती रहेगी कि इस झूठ को चलाये रखने के लिये संन्यास छोड़ा है! इस झूठ को चलाये रखने के लिए संन्यास को रोक रखा है! इस व्यवसाय को



चलाने के लिये जीवन का परम अर्थ त्यागा है! हीरे छोड़े, कंकड़-पत्थर के लिये! अब वे द्वंद्व में रहेंगे। और मैं जानता हूं, वे संन्यास ले लें तो भी द्वंद्व होगा, तो अड़चन होगी। फिर दुकान चलानी है, बच्चे हैं, पत्नी है। पर मैं कहता हूं कि यह अड़चन ज्यादा बेहतर है। यह अड़चन ज्यादा सृजनात्मक है कि संन्यास लेकर दुकान पर बैठो और अगर झूठ न बोल सको तो मत बोलना, जो हानि होगी सो होगी। मगर क्या खाक हानि हो जायेगी! पाया क्या है दुकान से, जो खो जायेगा? मिला क्या है, मिलना क्या है, जो तुम गंवा दोगे? दुकान करते-करते एक दिन मर जाओगे, ले क्या जाओगे? दुकान पर झूठ बोलने में अड़चन न आये, इसलिये संन्यास छोड़ रहे हो, इसलिये संन्यास का द्वार बंद रखोगे? झूठ को बचाओगे, संन्यास को छोड़ोगे? तो दुकान पर भी शान्ति से बैठ न पाओगे अब। अब मुश्किल हो गयी। अब अवतार मुश्किल में पड़ेंगे। अब दुकान पर तो बैठेंगे, लेकिन यह बात खलेगी, छाती में तीर की तरह चुभेगी कि यह मैंने क्या किया, यह मैं क्या कर हूं? क्या बचाया और क्या छोड़ा?

रामकृष्ण के पास एक दिन एक आदमी आया। उनके चरणों में गिर पड़ा और कहा: आप महात्यागी हैं! रामकृष्ण ने कहा: गलत बात, महात्यागी तू है, हम तो भोगी हैं। उस आदमी ने कहा: क्या कहते हैं परमहंस देव, आप और भोगी और त्यागी मैं! रामकृष्ण ने कहा: हां, यही मेरा अनुभव है। क्योंकि मैं तो परमात्मा को भोग रहा हूं, तूने परमात्मा को त्यागा है। और तू कूड़ा-करकट इकट्ठा कर रहा है। तू कैसा भोगी? हम परम धन जुटा रहे हैं! लोग हमें त्यागी कहते हैं, गलत कहते हैं। हम महाभोग में लीन हैं—समाधि का भोग, स्वर्ग बरस रहा है! तुम कंकड़-पत्थर बीन रहे हो और तुम्हें लोग भोगी कहते हैं? क्या खाक भोग है तुम्हारा!

अवतार दुकान पर बैठ जायेंगे जा कर, अब अड़चन होगी।

ऐसी ही अड़चन जयप्रकाश की है, राजनीति जीवन-व्यवहार बन गया है, व्यक्तित्व बन गया है। उस व्यक्तित्व की परिधि में एक आत्मा तड़प रही है। इस राजनीति के सींकचों में बंद एक पक्षी आकाश में उड़ना चाहता है। इसलिये जयप्रकाश का उपयोग दूसरे राजनीतिक कर लेते हैं, लेकिन जयप्रकाश की सुनते नहीं, मानते नहीं। भीतर तो वे सब समझते हैं कि जयप्रकाश काल्पनिक हैं। जैसा कि सभी धार्मिक व्यक्ति काल्पनिक मालूम होते हैं राजनीतिज्ञों को। तो जयप्रकाश का उपयोग कर लेते हैं।

अब मोरारजी हैं, जयप्रकाश का उपयोग करके सत्ता में बैठ गये हैं। सत्ता में बैठते से ही उन्होंने फिर जयप्रकाश की तरफ पीठ कर ली है। उनकी मान्यता है कि जयप्रकाश तो काल्पनिक बातें करते हैं। ऐसे कहीं राज्य चला है, इन बातों से कहीं राज्य चला है? ये ऊंची-ऊंची बातें, ये सपने, ये कहीं पूरे होने वाले हैं? ये व्यावहारिक बातें

नहीं हैं।

जयप्रकाश की सरलता का शोषण हो गया, और एक बिलकुल गलत आदमी सत्ता में बैठ गया—मोरारजी देसाई जैसा आदमी सत्ता में बैठ गया है। और जयप्रकाश सीधे-सादे हैं, इसलिये यह शोषण हो सका। और जयप्रकाश की मुसीबत यह है कि राजनीति से उनके जीवन-भर का सम्बंध है, वह उनका व्यवसाय है। उसमें पूरे जा नहीं सकते, क्योंकि आत्मा की गवाही नहीं है। अवतार को फिर याद करो। दुकान पर बैठ न सकेंगे अब, क्योंकि आत्मा की गवाही नहीं है। आत्मा तो कहती है संन्यस्थ हो जाओ, रंग जाओ गैरिक में। अब दुकान पर तो बैठेंगे; काम भी चलायेंगे; बेमन से चलेगा भी। कोई चालबाज ग्राहक आयेगा तो धोखा भी दे जायेगा, दुकान पर चोरी भी कर ले जायेगा।

जयप्रकाश की भी कठिनाई यही है। व्यक्तित्व राजनीति का है और उस व्यक्तित्व के कारण राजनीतिज्ञों से सम्बंध बनता है। और वे राजनीतिज्ञ पूरा-का-पूरा शोषण उठा लेते हैं। जितना लाभ ले सकते हैं, ले लेते हैं। राजनीति में पूरे जा नहीं सकते, क्योंकि प्राण कहीं और जाना चाहते हैं। और जहां प्राण जाना चाहते हैं, वहां तक जाने के लिए व्यक्तित्व में कोई सुराग नहीं है, खिड़की नहीं है। ऐसा द्वंद्व है।

लेकिन फिर भी इन तीन व्यक्तियों में—कृपलानी, विनोबा और जयप्रकाश में, जयप्रकाश सर्वाधिक धार्मिक व्यक्ति हैं। अब तुम्हें बड़ी हैरानी होगी। क्योंकि साधारणतः तुम किसी से भी पूछोगे तो वह कहेगा, इन तीनों में विनोबा सबसे ज्यादा धार्मिक आदमी हैं। ऊपर से विनोबा ही धार्मिक दिखाई पड़ते हैं। मौन से रहते हैं, विष्णुसहस्र-नाम का पाठ करते हैं। आश्रम में जीते हैं। ब्रह्मविद्या की शिक्षा देते हैं। ऊपर से पूरा-का-पूरा आचरण धार्मिक है। लेकिन मौन भी धार्मिक नहीं है, राजनीतिक है।

मौन लिया विनोबा ने, इंदिरा ने जब देश के ऊपर संकटकाल थोप दिया तो मौन ले लिया। क्योंकि फिर कुछ बोलेंगे, तो या तो झूठ बोलना पड़ेगा। और अगर सच बोलेंगे, तो इंदिरा के विरोध में पड़ेंगे। तो मौन ले लिया। अब यह मौन बिलकुल धार्मिक ढंग से लिया गया है। ऊपर से दिखता है कि कितना धार्मिक भाव, कि मौन ले लिया! लेकिन इस मौन के पीछे भी राजनीति है! इस चुप्पी के पीछे राजनीति है। इंदिरा के खिलाफ नहीं बोलना चाहते हैं और इंदिरा के पक्ष में बोलने में अड़चन होगी। न पक्ष में बोल सकते हैं, न विपक्ष में बोल सकते हैं। यह मौन, एक राजनीतिक धुआं पैदा कर लिया...। लोगों ने समझा कि मौन है। यह मौन नहीं है, यह शुद्ध राजनीति है।

विनोबा ऊपर से धार्मिक लगते हैं, इसलिये तुम्हें धार्मिक मालूम पड़ेंगे। मेरी बात तुम्हें चौंकानेवाली लगेगी, लेकिन विनोबा भीतर से बिलकुल राजनीतिक व्यक्ति हैं।



जयप्रकाश ऊपर से राजनीतिक हैं, इसलिये तुम्हें राजनीतिक मालूम पड़ेंगे, लेकिन भीतर से उनकी आकांक्षा बड़ी आध्यात्मिक है। एक बड़ी गहरी तड़प उनके भीतर है।

अरुण, तुम्हारा प्रश्न महत्त्वपूर्ण है। तुम कहते हो : दुनिया के कोने-कोने से सारे संवेदनशील लोग आपके पास खिंचे चले आ रहे हैं, पर आश्चर्य होता है कि कृष्णमूर्ति विनोबा, जयप्रकाश तथा कृपलानी जैसे साधु-पुरुषों तक आपकी आवाज क्यों नहीं पहुंच पाती?

कृष्णमूर्ति और मेरी आवाज एक। जयप्रकाश तक आवाज पहुंचती है, उनके हृदय में स्फुरणा भी होती है; मगर उनका व्यक्तित्व पत्थर की तरह उनके चारों तरफ लटका हुआ है, बोझ है। विनोबा तक मेरी आवाज पहुंचती है, लेकिन बस कानों तक। और तुम जानकर यह हैरान होओगे, कि विनोबा के आश्रम में मेरी किताबों पर पाबंदी है। विनोबा मेरी किताबें पढ़ते हैं, मुझे सुनिश्चित पता है। जो लोग उन्हें ले जाकर किताबें देते हैं, वे ही मुझे आकर कहते हैं। वे उत्सुकता से किताबें पढ़ते हैं, लेकिन आश्रमवासियों को नहीं पढ़ने देते। मेरी किताबें अगर इस देश के किसी आश्रम में स्पष्ट रूप से वर्जित हैं तो वह विनोबा का पवनार आश्रम है। वर्जित तो बहुत आश्रमों में हैं, लेकिन इतने खुले रूप से नहीं। और बड़े आश्चर्य की बात है कि जिन-जिन आश्रमों में वर्जित हैं, उन-उन आश्रमों के प्रधान उन्हें पढ़ते ही हैं! उन्हें बिना पढ़े रह भी नहीं सकते। कुतूहल, जिज्ञासा....क्या मैं कह रहा हूं?

अब ये जो बातें मैं आज कह रहा हूं, तुम सोचते हो विनोबा इनसे बच सकेंगे बिना पढ़े? असंभव है। कोई-न-कोई पहुंचा देगा। पढ़ना ही पड़ेगा। मगर चाहेंगे कि उनके आश्रम का कोई व्यक्ति न पढ़े। क्योंकि ये तो बड़ी खतरनाक बातें हो जायेंगी। अगर आश्रम के लोगों को यह समझ में आना शुरू हो जाये कि विनोबा का आंतरिक व्यक्तित्व धार्मिक नहीं है, राजनीतिक है, तो आश्रम उजड़ जायेगा।

मैं सारे न्यस्त स्वार्थों पर चोट कर रहा हूं। इसलिये कठिनाई तो है। जैन मुनि मेरी किताबें पढ़ते हैं, छुप-छुप कर पढ़ते हैं, चोरी-चोरी पढ़ते हैं, मेरी किताबों पर दूसरी किताबों के कवर चढ़ा कर पढ़ते हैं। और अपने श्रावकों को मेरे खिलाफ समझाते हैं। और श्रावकों को बताते हैं, इन किताबों से बचना, बचना, ये खतरनाक हैं! ये तुम्हारे धर्म को नष्ट कर देंगी। ये तुम्हारी श्रद्धा को विनष्ट कर देंगी।

कृष्णमूर्ति और मेरी आवाज एक है। विनोबा तक आवाज पहुंचती है, लेकिन विनोबा की भीतरी राजनीति उस आवाज को दबा डालना चाहती है। जयप्रकाश तक आवाज पहुंचती है। उनकी बाहरी राजनीति उन्हें यहां आने से रोकती है, उनका हृदय आना चाहता है, यह मुझे भलीभांति पता है। इसलिए जब मैत्रेय को उन्होंने कहा, कि

मेरे प्रणाम कहना भगवान को, मैत्रेय भी चौंके, उन्हें आशा नहीं थी। क्योंकि मैत्रेय की भी समझ यही होगी कि जयप्रकाश एक राजनीतिक व्यक्ति हैं। मैत्रेय का सम्बंध भी उनसे इसीलिए रहा है, क्योंकि मैत्रेय खुद ही राजनीति में वर्षों तक थे।

कृपलानी तक मेरी आवाज नहीं पहुंच सकती है, वहां सारे द्वार बंद हैं। विनोबा तक पहुंच जाती है, लेकिन वे उसको नहीं सुनना चाहते। जयप्रकाश तक पहुंचती है; वे उसको सुनना भी चाहते हैं, लेकिन उनका व्यक्तित्व बाधा आ जाता है, उनका आवरण बाधा आ जाता है। वे आना भी चाहते हैं। उनकी तलाश का मुझे पता है।

मगर इस तरह की घटना घटती है। उनकी पत्नी मुझे सुनने आती थीं। उनकी पत्नी ने खबर दी, कि जब मैं पटना कभी-कभी बोलता था तो जयप्रकाश भी सुनने आते थे, लेकिन कार में बैठ कर बाहर ही सुन लेते थे। सब के सामने कैसे आयें? राजनीति बाधा है।

लेकिन यह जो घटना यहां घट रही है, यह कुछ इस तरह के लोगों के सुनने-न-सुनने पर इसका भविष्य निर्भर नहीं है। यह जो घटना यहां घट रही है, इसका भविष्य तो उन लोगों पर है, जिनका भविष्य है। ये तो गये-बीते लोग हैं। ये तो गुजरे हुए लोग हैं। ये तो अतीत हो चुके। ये तो छायायें मात्र हैं अब! मुझे युवकों पर, छोटे बच्चों पर, नये लोगों पर आधार रखने हैं। और वे आ रहे हैं। वे सारी बाधायें तोड़ कर आ रहे हैं।

भविष्य का निर्माण बूढ़ों से नहीं होता, भविष्य का निर्माण युवकों से होता है। जब भी कोई धर्म जीवित होता है तो वह धर्म युवकों को आकर्षित करता है। जब कोई धर्म मर जाता है तो वह बूढ़ों को आकर्षित करता है। मरे हुए धर्मों में, मरी मस्जिदों में, मरे मंदिरों, मरे गुरुद्वारों में, तुम्हें बूढ़े लोग दिखाई पड़ेंगे। जहां धर्म अभी जीवंत है और जहां नयी-नयी सूरज की किरणें उतर रहीं हैं और नया-नया फूल अपनी पंखुड़ियां खोल रहा है, वहां तुम्हें युवक मिलेंगे। और वहां अगर कभी तुम्हें कोई बूढ़ा भी मिल जाये, तो समझ लेना कि वह बूढ़ा आत्मा से युवक ही होगा, तो ही वहां हो सकता है। अब यहां कोई आदमी जो आत्मा से बूढ़ा हो, हो ही नहीं सकता। युवक ही हो सकता है यहां। बूढ़ा-मन तो भाग जायेगा। बूढ़ा-मन तो हजार विघ्न-बाधायें पायेगा। बूढ़े-मन को तो हजार शंकायें उठ आयेंगी। उसका ज्ञान शंकायें उठाने का कारण हो जायेगा। यहां तो युवा-चित्त ही समझ सकता है और उसके ही मुझसे तालमेल बैठ सकते हैं। अगर तुम्हें यहां कोई बूढ़ा व्यक्ति भी मिल जाये, तो यही समझना कि वह बूढ़ा नहीं है। उसकी देह बूढ़ी होगी, आत्मा उसकी युवा है, स्वच्छ है, ताजी है।

इन युवा, स्वच्छ, ताजी और क्वांरी आत्माओं पर मेरा भरोसा है। और उनका



आना शुरू हो गया है। और वे सब बाधाओं को तोड़कर आयेंगे। जितनी बाधायें होंगी, उतने ज्यादा आयेंगे। जीवन के कुछ नियम हैं अनूठे। जब भी सत्य प्रगट होगा, तो असत्य के दुकानदार बाधायें खड़ी करेंगे। लेकिन जितनी वे बाधायें खड़ी करेंगे, उतनी ही सत्य के खोजियों को एक बात स्पष्ट होने लगती है कि अगर सत्य न होता तो असत्य के दुकानदार बाधायें खड़ी न करते।

तुम देखते हो, मोरारजी की सरकार ने सारी दुनिया में भारत के राजदूतावासों में उपाय कर रखे हैं, कि कोई व्यक्ति कहीं से भी पूना न पहुंच पाये। पूना का नाम लेते ही लोगों को प्रवेश की अनुमति नहीं दी जाती। तो लोग नये-नये रास्ते खोज कर आ रहे हैं, थोड़ा-सा रास्ता खोजना पड़ता है। रस और बढ़ रहा है। मोरारजी मेरी सुनें तो मैं उनको कहूं : सब बाधायें अलग करो, नहीं तो रस और बढ़ जायेगा! रस बढ़ रहा है। सैकड़ों पत्र आ रहे हैं कि अब हम आना चाहते हैं, बात क्या है, आखिर रुकावट क्यों है? किसी आश्रम में, भारत के, जाने की रुकावट नहीं है, इसी आश्रम में जाने की रुकावट क्यों है? और लोग रास्ते खोज लेते हैं। पहले लंका जायेंगे, फिर लंका से यहां आयेंगे। पहले नेपाल जायेंगे, फिर नेपाल से यहां आयेंगे। जरा चक्कर लगाना पड़ेगा, और क्या होगा? लेकिन जो चक्कर लगा कर आया है, वह और भी करीब आ गया, क्योंकि जिसने इतना श्रम उठाया, उसकी आकांक्षा और प्रज्ज्वलित हो गयी।

घबड़ाहट क्यों है? घबड़ाहट है, क्योंकि न्यस्त स्वार्थ हैं। मैं फिर वही घबड़ाहट पैदा कर रहा हूं तुम्हारे राजनीतिज्ञों, तुम्हारे धर्म-पुरोहितों में, जो जीसस ने पैदा की थी या बुद्ध ने पैदा की थी। वही घबड़ाहट पैदा हो रही है! लेकिन इस घबड़ाहट से कोई बाधा नहीं पड़ेगी। इससे चिंता में मत पड़ना। ये सब सीढ़ियां हैं। इन सब सीढ़ियों पर ही मंदिर का शिखर पाया जायेगा। ऐसे ही रास्ता बनता है। ये बाधायें और बढ़ती जायेंगी, ये सघन होती जायेंगी, क्योंकि यही मूढ़ता के लक्षण हैं! लोग कुछ सीखे ही नहीं हैं, मनुष्य-जाति का पूरा इतिहास जैसे ऐसे ही गुजर गया है! राजनीतिक और धर्म-पुरोहित कुछ सीखते ही नहीं, कुछ सीखे ही नहीं। वही-की-वही बात फिर दोहराते हैं। वे ही बाधायें फिर खड़ी करने लगते हैं जो उन्होंने पहले की थीं। वही जालसाजियां फिर करने लगते हैं जो पहले की थीं। न पहले जालसाजियां काम आयीं न अब काम आ सकती हैं, न कभी काम आयेंगी। सत्य यदि कहीं है तो उसकी जीत सुनिश्चित है। देर–अबेर हो सकती है, अंधेर नहीं हो सकता है।

दूसरा प्रश्न : सभ्यता, संस्कृति और संगठित धर्म निन्यानबे प्रतिशत आचरण हैं, अनुकरण हैं, फिर धर्म क्या है?

धर्म है स्वभाव, न आचरण, न अनुकरण। अनुकरण का अर्थ होता है—दूसरे के पीछे चल पड़े। दूसरे के पीछे चलने का साफ अर्थ है, कि तुमने अपने स्वभाव को छोड़ दिया, तुम दूसरे की कार्बनकापी होने लगे।

और परमात्मा एक व्यक्ति को बस अनूठा बनाता है, हर व्यक्ति को अनूठा बनाता है; कोई किसी दूसरे जैसा नहीं हो सकता, न होने की कोई जरूरत है। तुम्हें होना है—तुम जैसे, तुम्हें होना है—तुम, तुम्हें अपनी निजता में खिलना है!

धर्म का अर्थ है—तुम जो हो, वही हो सको। अनुकरण का अर्थ है—तुम्हें बुद्ध जैसा होना है, तो तुम बौद्ध हो गये, तुम्हें ईसा जैसा होना है, तो तुम ईसाई हो गये।

मगर देखते हो, करोड़ों ईसाई हैं, हजारों साल से हैं, एक-आध भी ईसा हुआ! इतने दिन का अनुभव कुछ कहता है कि नहीं कहता? दो हजार साल हो गये ईसा को गये; इस बीच करीब-करीब पृथ्वी का चौथाई हिस्सा ईसाई हो गया, सबसे बड़ा धर्म हो गया ईसाइयत! मगर कितने ईसा पैदा हुए? दूसरा ईसा पैदा नहीं हुआ, न दूसरा बुद्ध, न दूसरा महावीर, न दूसरा कृष्ण! पुनरुक्ति यहां होती ही नहीं, परमात्मा सदा मौलिक निर्माण करता है। तुम बस तुम जैसे हो, न तुम जैसा पहले कभी कोई था, न पीछे कोई कभी होगा, न अभी कोई है। तुम बिलकुल अकेले हो!

यही तो गरिमा है मनुष्य की, यही तो गौरव है मनुष्य का। मनुष्य का गौरव और गरिमा उसकी अद्वितीयता में है। न तो तुम्हारा गौरव और गरिमा है तुम्हारे धन में, न तुम्हारे पद में है; क्योंकि पद आज है, कल छीना जा सकता है और धन आज है कल दीवाला निकल सकता है। तुम्हारी गरिमा, तुम्हारा गौरव तुम्हारी देह में भी नहीं है, क्योंकि देह आज सुन्दर है, कल कुरूप हो जायेगी, आज जवान है, कल बूढ़ी हो जायेगी, यह तो मिट्टी है, मिट्टी में गिर जायेगी! तुम्हारा गौरव कहां है? तुम्हारा गौरव है सिर्फ एक बात में कि—तुम अद्वितीय हो!

और जो लोग भी कहते हैं, अनुकरण करो, वे तुमसे तुम्हारी अद्वितीयता छीन लेते हैं। यह सबसे बड़ा घात है, यह सबसे पाप है। और धर्मों के नाम पर यही चलता है। जीसस नहीं चाहते की तुम्हारी अद्वितीयता छिने; लेकिन जीसस के पीछे जो संप्रदाय खड़ा होता है, पंडित और पुजारी और पुरोहितों और पोपों का जो जाल खड़ा होता है, वह चाहता है कि तुम अद्वितीय न रह जाओ, वह चाहता है कि तुम एक अनुकरण मात्र हो जाओ। वह तुम्हें आचरण की विधियां देता है, आत्मा नहीं देता, आत्मा का जागरण नहीं देता, आचरण की विधि देता है, फर्क समझ लेना।

आत्मा के जागरण से एक तरह का आचरण पैदा होता है, लेकिन वह स्वस्फूर्त होता है। जागा हुआ आदमी कुछ काम कर ही नहीं सकता, इसलिए नहीं करता है



और कुछ काम ही कर सकता है, इसलिए उनको करता है। जागा हुआ आदमी किसी की हत्या नहीं कर सकता है, इसलिए नहीं कि हत्या करना पाप है, कि हत्या करूंगा तो नरक जाऊंगा, कि हत्या करूंगा तो पीछे कष्ट पाऊंगा, कि हत्या करूंगा तो हानि होगी। नहीं, इसलिये नहीं, हत्या नहीं करता, क्योंकि नहीं कर सकता है। उसके जागरण ने उसे कह दिया है कि—दूसरे के भीतर भी वही विराजमान है, जो तुम्हारे भीतर है। उसके जागरण ने उसे कह दिया है कि—शाश्वत है जीवन, हत्या हो भी नहीं सकती, हत्या का कोई उपाय नहीं है। हत्या छोड़ता नहीं जागा हुआ आदमी, हत्या उससे छूट जाती है। सोया हुआ आदमी आचरण करता है अहिंसा का, जागा हुआ आदमी आचरण नहीं करता अहिंसा का, अहिंसा उसकी आत्मा से सहज प्रवाहित होती है।

मैं तुम्हें आत्मा देना चाहता हूं, आचरण नहीं। तुम भी चाहते हो कि मैं तुम्हें आचरण दे दूं, क्योंकि आचरण सस्ता है, और आचरण की लकीर पर चलना कठिन नहीं, आचरण को नियोजित करना आसान है।

एक मित्र ने पूछा है कि—शादी-शुदा संन्यासी अपनी पत्नी के साथ कैसा व्यवहार करे?

तुम आचरण चाहते हो, कि मैं तुमसे कह दू कि ऐसा-ऐसा व्यवहार करो। तुम चाहते हो सीधे निर्देश; मगर वे निर्देश मेरे होंगे, और तुम्हारी आत्मा से नहीं जन्मे होंगे। आचरण बन जायेगा, आत्मा पैदा नहीं होगी। मैं तुमसे कहूंगा—तुम ध्यान करो, यह मत पूछो कि पत्नी के साथ कैसा व्यवहार करें? फिर तुम्हारे ध्यान से जैसा व्यवहार निकले, वह ठीक।

मैं तुम्हारे व्यवहार का लेखा-जोखा भी रखता नहीं, तुम्हारे ध्यान का ही मात्र लेखा-जोखा है। ध्यान अर्थात् जागने की प्रक्रिया। तुम जागते जाओ, फिर जागने के अनुसार तुम्हारा आचरण बदलता जायेगा। एक दिन तुम अचानक पाओगे—कौन पत्नी है, कौन पति है? एक दिन तुम अचानक पाओगे—कौन पुरुष है, कौन स्त्री है? एक दिन तुम अचानक पाओगे—ब्रह्मचर्य का फूल अपने-आप खिल गया है! एक सुबह—बस फूल खिला है और सुवास उठ रही है!

मगर यह नियोजित फूल नहीं है। अगर तुमने नियोजन किया, तो यह कभी नहीं खिलेगा। नियोजन से खतरा हो जायेगा, बड़ा खतरा हो जायेगा; तुम जबर्दस्ती करोगे, तुम कामवासना को दबा दोगे। और जिसे दबा दिया है, वह मिटता नहीं, जो दबा दिया है, वह भीतर बैठा रहता है; फिर फन उठायेगा, जब भी कभी मौका मिलेगा फिर फन उठायेगा। और धीरे-धीरे तुम कमजोर होते जाओगे, दबानेवाला आदमी रोज रोज कमजोर होता जायेगा, बुढ़ापा आ रहा है। दबानेवाला आदमी जब कमजोर हो

जायेगा, फन उठा देगी वासना फिर से ! इसलिये जिन लोगों ने युवावस्था में कामवासना को दबा लिया, बुढ़ापे में बड़ी पीड़ा से भर जाते हैं !

मेरी मां ने परसों मुझे खबर दी, एक जैन साध्वी हैं—विमला देवी। मैं तो छोटा-सा था, तब से उन्हें जानता हूं। उनका बड़ा आदर था जैन समाज में; मेरे घर में, मेरे परिवार में बड़ी समादृत थीं। युवावस्था में ही उन्होंने बड़ा त्याग किया, बड़े उपवास किये, शरीर को सुखा डाला; ब्रह्मचर्य का व्रत लिया। मेरी मां मुझे परसों कहीं, की विमलादेवी पागल हो गयी हैं। मैं चौंका नहीं, यह होना ही था। अब पागलपन में वे क्या कर रही हैं ? वही सब कर रही हैं, जो जीवन भर दबाया है ! संवेदनशील महिला हैं, बुद्धिमान महिला हैं, मगर बुद्धुओं के चक्कर में पड़ गयीं ! आचरण तो सम्हाल लिया, अब हालत यह हो गयी है, कि अब खाने के सिवाय और कुछ सूझता ही नहीं। ...जिंदगी-भर उपवास किया, सुखा डाला ! और वे जो मूढ़ इकट्ठे थे उनके चारों तरफ, वे कहते थे—आह, कैसी पवित्रता, कैसा आचरण !...वह महिला सूखती चली गयी, वह महिला भूख में पीली पड़ती चली गयी।

जब भी मैं उन्हें मिला पहले, बचपन से उनको जानता हूं, जब भी उनको बचपन में गया देखने, तो मुझे वे सदा पीली दिखाई पड़ें, मगर उनके भक्त कहें कि—देखो, कैसी स्वर्ण जैसी काया ! मैं चौंकता भी था, लेकिन चुप रहता था। जब सभी लोग कहते हैं कि—'स्वर्ण जैसी काया,' तो स्वर्ण जैसी ही काया होगी। वह बिलकुल पीली पड़ गयीं, पीले पत्ते जैसी काया ! मगर वे कहते—स्वर्ण जैसी काया, कुंदन हो गयी हैं ! कैसा निखार आ गया है, कैसी प्रतिभा आ गयी ! रुग्ण दशा थी वह...।

अब विमला देवी कुछ भी खाती हैं। कोई दूसरा खाता हो, उससे छीन कर खा लेती है। जिंदगी-भर रात पानी नहीं पिया, अब रात में भी खाना खाती हैं। अब भक्त कहते हैं—पागल हो गयीं ! पहले महासाध्वी थीं, अब महापातकी हो गयीं ! और यह सहज परिणाम है, वह जो जिंदगी-भर किया था दमन, उसका ही परिणाम है। वह जो दबाया था, अब दबाने की क्षमता क्षीण हो गयी, अब उम्र आ गयी, अब देह कमजोर होती चली गयी और जीवन-भर के दबाये हुए रोग फन उठाने लगे, अब बड़ी मुश्किल हुई !

मेरी प्रक्रिया दूसरी है। मैं उनके भक्तों को कहूंगा, जो अब उनके दुश्मन हो गये हैं, उन्हें यहां ले आओ, वे पागल नहीं हैं। पागल तो वे पूरी जिंदगी थीं तुम्हारी बातों में पड़ कर, अब थोड़ा होश आना शुरू हुआ है, अब तुम उन्हें पागल कह रहे हो !

सामान्यतः कोई आदमी रात को खाना खाता है, उसे हम पागल तो नहीं कहते, कितने लोग रात को खाना खाते हैं; मगर विमला देवी रात को खाना खाती हैं, तो



पागल हैं ! क्यों ? कितने करोड़-करोड़ लोग खाना खाते हैं रात को, अरबों लोग खाना खाते हैं रात को, कोई पागल नहीं है। विमला देवी खाती हैं तो पागल हैं ! यह बड़ा मजा हुआ, वह पागलपन की परिभाषा भी वह जो महात्मापन की परिभाषा थी, उसी से निकल रही !

वह जो पुण्य का भाव था, वही भ्रांत था। और तुमने पुण्य-पुण्य कह कर उनके अहंकार को बढ़ावा दिया। और कुछ नहीं हुआ, अहंकार बढ़ा।

अच्छा हुआ अब, कि इस महिला ने सारा अहंकार छोड़ दिया; ये सरल हो गयीं, पहले जटिल थीं। अब इनको खाने का मन होता है, तो किसी दूसरे की थाली में से भी उठाकर खा लेती हैं, तो तुम कहते हो—पागल है। यह बच्चों जैसी सरलता आयी, यह फिर से बचपन आया ! अब अगर इसे कोई ठीक-ठीक मार्ग-निर्देश मिल जाये, तो अभी भी उपाय है, अभी भी सब नष्ट नहीं हो गया है।

मगर बड़ी कठिनाई है, जिन्होंने पुण्य कह कर, तपश्चर्या कह कर समादर दिया था, वे ही अब अनादर देंगे। वे ही अब उसको पागलखाने में भर्ती करवायेंगे—वे ही लोग ! वे ही लोग इलेक्ट्रिक के शॉक लगवायेंगे, इंजेक्शन लगवायेंगे। मगर जागेंगे न एक बात से, कि हमारा ही किया हुआ है कृत्य और उसका यह फल है !

मैं आचरण नहीं सिखाता, मैं तो सिर्फ एक बात ही सिखाता हूं—ध्यान। तुम निर्विचार होने लगो, तुम शान्त होने लगो, तुम मौन होने लगो; फिर शेष सब उससे आयेगा। फिर एक दिन ब्रह्मचर्य भी आयेगा। और एक दिन तुम्हारा भोजन में जो पागल रस है, वह भी चला जायेगा। वस्त्रों से जो तुम्हारा मोह है, वह भी छूट जायेगा। मगर मैं कहता नहीं कि—छोड़ो; छूटना चाहिए—सहज, अपने-आप; तो फिर कभी इस तरह की विक्षिप्तता नहीं आती। नहीं तो आज नहीं कल तुम विमला देवी जैसी स्थिति में उलझ जाओगे; करोड़ों लोग उलझे हैं, इसी तरह उलझे हैं। मैं इस उलझाव से तुम्हें मुक्त करना चाहता हूं।

आचरण नहीं, आत्मा; अनुकरण नहीं, निजता, स्वतंत्रता। मेरा संन्यास इसी स्वतंत्रता की उद्घोषणा है।

इसलिये मैं तुम्हें नियम नहीं दूंगा, मर्यादायें नहीं दूंगा; मैं तुम्हें आदेश नहीं दूंगा, उपदेश दूंगा। समझाऊंगा कि क्या ठीक है, और कहूंगा कि उस ठीक की तलाश में प्रतीक्षा करना, ध्यानपूर्वक प्रतीक्षा करना; उसे आने देना, अपने-आप आने देना, खींचतान मत करना और जल्दी मत करना। खींचतान और जल्दी दुष्परिणाम लाती हैं।

पूछा : सभ्यता, संस्कृति और संगठित धर्म निन्यानबे प्रतिशत आचरण हैं, अनुकरण

हैं, फिर धर्म क्या है ?

इसीलिये तो धर्म खो गया है, तुम्हारी तथाकथित सभ्यता, संस्कृति और तुम्हारे तथाकथित धर्म, इनमें ही धर्म खो गया है।

धर्म है—तुम्हारे भीतर जो चेतना है, उसका आविर्भाव। धर्म है—तुम्हारे भीतर जो बोध है, उसका प्रज्ज्वलित हो जाना। धर्म है—तुम्हारे भीतर होश का आगमन, ध्यान का आगमन, समाधि का अवतरण! धर्म का बाहर से कोई भी सम्बंध नहीं है, धर्म आन्तरिक क्रांति है।

फिर बाहर के लोग क्या कहते हैं, कौन फिक्र करता है! व्यक्ति अपने आनंद में जीता है, व्यक्ति जीवन के महोत्सव में जीता है। फिर बाहर के लोग क्या कहते हैं, कौन फिक्र करता है! अच्छा कहें तो अच्छा, बुरा कहें तो अच्छा, सम्मान दें तो ठीक, अपमान दें तो ठीक। जिसको भीतर का स्वाद आने लगा और भीतर की गंध आने लगी, अब बाहर के मूल्यों का कोई अर्थ नहीं रह जाता। मैं तुम्हें ऐसी स्वतंत्रता देता हूं।

हालांकि तुम स्वतंत्रता नहीं चाहते, तुम परतंत्रता चाहते हो। तुम कहते हो, नियम बता दें। तुमको लगता है—ध्यान, समाधि....दूर की बातें हैं, अपने बस की नहीं। आप तो हमें बता दें कि रात पानी न पियें। यह तो छोटे बच्चों जैसी बात है, न भी पिया तो क्या हो जायेगा और पी लिया तो क्या खो जायेगा! तुम छोटी-छोटी बातें चाहते हो, क्षुद्र और व्यर्थ—कि दिन में दो बार खाना खाये कि तीन बार खाना खाये? क्या फर्क पड़ता है, दो बार खाये तो स्वर्ग नहीं चले जाओगे, तीन बार खाये तो नरक नहीं चले जाओगे। तुम्हारे खाने-पीने, तुम्हारे उठने-बैठने की क्षुद्र बातों की कौन व्यवस्था देता रहे!

और उस व्यवस्था का खतरा है, क्योंकि जो एक के लिए उपयोगी है वह दूसरे की लिये घातक हो जाता है। हो सकता है किसी के लिए एक नियम सहयोगी हो जाये; मगर नियम तो अंधे होते हैं, एक दफा बना दिया, तो सभी लोगों को उनका पालन करना पड़ता है।

इसलिये मैं जानकर अपने संन्यासियों को कोई नियम नहीं दे रहा हूं, नहीं तो मुझे पता है, अगर मैंने नियम दिया, तो जो उन नियमों को पालने लगेंगे, वही पुरोहित हो जायेंगे और दूसरों को सताने लगेंगे कि—तुम इस नियम का पालन क्यों नहीं कर रहे हो? और दूसरों पर जबरदस्ती करने लगेंगे, और दूसरों के मन में अपराध का भाव पैदा करने लगेंगे कि—हम कुछ भूल कर रहे हैं, हम से कुछ गलती हो रही।

तुमसे अगर कोई गलती हो रही है, तो सिर्फ एक गलती है कि तुम सोये हुए हो, बस। और तुमसे अगर जिंदगी में कोई ठीक काम होने वाला है तो एक काम है—वह है जागना, शेष सब अपने-आप निर्णीत होगा। सोया हुआ आदमी कुछ भी करे,



गलत है और जागा हुआ आदमी कुछ भी करे, सही है। इसलिये मैं तुम्हें गलत और सही के नियम नहीं बता सकता कि कौन-सा नियम सही है, कौन-सा नियम गलत। जागरण सही है, निद्रा गलत। होश जगाओ और अपने को अंगीकार करो; अपने पर श्रद्धा लाओ, तभी तुम्हारा असली जन्म हो सकेगा!

हम सब संदर्भों में जीते हैं!<br>
जो कुछ हैं, हम सब<br>
सन्दर्भों के जाये हैं<br>
अपने अस्तित्वों का<br>
हम पर कुछ श्रेय नहीं!<br>
एक परिधि<br>
हम सबकी आत्मा है,<br>
ईश्वर है!<br>
हम सबको घेरे हैं लक्ष्मण की रेखाएं,<br>
जिनके उल्लंघन की<br>
कल्पना असंभव है,<br>
बाहर भय के दशमुख<br>
आंखें तेरेरे हैं!<br>
डर से हम लोगों की<br>
नस-नस में बर्फ जमी<br>
हृदयों की धड़कन पर<br>
भारी से पत्थर हैं।<br>
जीते हैं—<br>
जीने की गतिविधि के द्योतक हैं;<br>
उसके कुछ आगे से<br>
अपना क्या सरोकार<br>
हम सब क्या जानें<br>
क्या संस्कृति,<br>
क्या संस्कार!<br>
जन्मे हम नहीं,<br>
अभी गर्भों में जीते हैं!<br>
हम सब संदर्भों में जीते हैं!

जब तक तुम सभ्यता और संस्कृति और मर्यादा और संप्रदाय में जी रहे हो, याद रखना, अभी तुम जन्मे नहीं !

जन्मे हम नहीं,
अभी गर्भों में जीते हैं
हम सब संदर्भों में जीते हैं !

तुम्हारे वास्तविक जीवन की शुरुआत तब है, जब तुम सारे संदर्भ छोड़ दो—हिन्दू के, मुसलमान के, ईसाई के, जैन के, बौद्ध के। जब तुम बाहर से सारे नियम लेने बंद कर दो और तुम घोषणा कर दो कि—अब भीतर से जिऊंगा, और जो भी परिणाम होंगे स्वीकार करूंगा। अब मैं अपने ढंग से जिऊंगा, अब मैं अपनी निजता को अंगीकार करता हूं; जो मुझे सुखद, प्रीतिकर, सत्यकर लगेगा, वैसा जिऊंगा; दुनिया क्या कहती है उसकी मुझे फिक्र नहीं, दुनिया का कोई ठेका नहीं है।

दुनिया की बात उतने ही दूर तक माननी उचित है, जितने दूर तक दुनिया के साथ चलने में सुविधा रहती है, उससे ज्यादा मानने की कोई जरूरत नहीं। जैसे सड़क पर नियम है कि—बायें चलो, इतना मानना जरूरी है, क्योंकि तुम दायें चलने लगो, तो उपद्रव होगा, तुम ही टकरा जाओगे किसी कार से। 'बायें चलो', यह कोई शाश्वत नियम नहीं है, व्यावहारिक नियम है। इससे रास्ते पर लोगों के चलने में सुविधा होती है, लोगों की गतिविधि में आसानी होती है। बस, इस तरह के जो नियम हैं, वे पालन करना। जब सड़क की बत्ती कह रही हो—आगे मत बढ़ो, तो रुक जाना, यह मत कहना कि—हम अपनी निजता से जियेंगे, नहीं तो तुम जी ही नहीं पाओगे, आयेगी एक ट्रक, और उसके नीचे दब जाओगे।

निजता से जीने का अर्थ यह नहीं है कि तुम जीवन के व्यवहार-व्यवस्था को छोड़ दो। व्यवहार की व्यवस्था ठीक है, उसका पालन कर लेना; लेकिन व्यवहार की व्यवस्था धर्म नहीं है, और व्यवहारी की व्यवस्था पर तुम समाप्त नहीं हो, और व्यवहार की व्यवस्था पर ही अपने को पूरा मत मान लेना कि—सब काम ठीक हो गया, क्योंकि हम बायें चलते हैं, रात पानी नहीं पीते, शराब नहीं पीते, मांसाहार नहीं करते—बस, ठीक हो गया है सब। कुछ भी नहीं हुआ !

यह सब ठीक है, यह सब व्यावहारिक है, लेकिन इसमें आत्यंतिक कुछ भी नहीं है। अब एक आदमी यही सोच रहा है कि वह सिगरेट नही पीता, इसलिए मोक्ष जायेगा। सिगरेट पीने से कुछ नुकसान है जरूर, मगर मोक्ष जाने में बाधा सिगरेट पीने से पड़ती हो, तो मोक्ष दोकौड़ी का हो गया ! जितनी कीमत सिगरेट की, उतनी कीमत मोक्ष की हो गयी ! अब कोई सज्जन धुआं भीतर ले जाते हैं, बाहर निकालते हैं, इससे उनके



मोक्ष में बाधा पड़ जायेगी ! फेफड़ों में थोड़ा-सा धुआं भीतर ले गये, फिर बाहर निकाल दिया, इससे मोक्ष में बाधा पड़ जायेगी ? मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम धुआं ले जाओ और निकालो; मैं यह कहना चाहता हूं कि धुएं का ले जाना और निकालना पाप नहीं है, सिर्फ मूढ़ता है; इससे तुम नरक नहीं जाओगे और न निकालने से तुम स्वर्ग नहीं जाओगे, लेकिन तुम मूढ़ हो इतना पक्का है ! पापी तुम्हें नहीं कहता, सिर्फ बुद्धिहीन कहता हूं; क्योंकि शुद्ध हवा ले जाने का मौका छोड़ रहे हो, गंदा धुआं फेफड़ों में भर रहे हो।... फिर तड़पोगे, फिर क्षय रोग होगा, फिर कैन्सर होगा, फिर अस्पतालों में सड़ोगे—वह सब झेलोगे, मूढ़ता है और कुछ भी नहीं।

आदमी कैसा अंधा है ! अमरीका की सरकार ने तय किया कि सब सिगरेट के डिब्बों पर लिख देना चाहिए कि—सिगरेट का पीना जीवन के लिये घातक है। सिगरेट कम्पनियां बहुत घबड़ाईं, बहुत बेचैन हुईं, कि अगर डिब्बों पर लिखा रहेगा, हर डिब्बे पर कि—सिगरेट पीना घातक है जीवन के लिये, तुम्हारे जीवन को खतरा है, तो पियेगा कौन ? मगर उन कंपनियों को कुछ पता नहीं, कि आदमी महामूढ़ है ! जब बड़ा विरोध किया कंपनियों ने, कि हमें नुकसान हो जायेगा, हमारे कारखाने टूट जायेंगे...। मगर नियम बन गया और सिगरेट के डिब्बों पर लिखा जाने लगा। हां, कोई तीन-चार सप्ताह सिगरेट की बिक्री में कमी हुई, बस, फिर बिक्री दुगनी हो गयी ! क्योंकि वह जो तीन-चार सप्ताह नहीं पी थी मूढ़ों ने, फिर वे एकदम से टूट पड़े; क्योंकि तीन-चार सप्ताह कोई कम संयम रखा उन्होंने ! उन्होंने कहा, जाने भी दो, जो होगा होगा। अब डिब्बी पर लिखा हुआ है, लेकिन पढ़ता कौन है ! अब उसका कोई अर्थ नहीं। लिखा है कि नहीं लिखा है, कोई नहीं पढ़ता, लिखा रहने दो। एक डर था, वह डर भी गया। अगर तुम किसी से कहो कि—भई जल्दी मर जाओगे; वह कहता है : जल्दी मर जायेंगे, और क्या होगा ? ठीक है, मगर सिगरेट पीते ही मरेंगे, यह मौका नहीं छोड़ सकते ! सिगरेट पीने से कोई पाप नहीं होता, मूढ़ता तो होती है।

बस, तुम्हारी जिंदगी में जिनको तुम नियम बना लिये हो, सोच-समझ कर चलो, मूढ़ता न करो। और जीवन का जो व्यवहार है, उसमें व्यर्थ के उपद्रव खड़े मत करो, क्योंकि उन उपद्रवों से साधना में सहायता नहीं मिलेगी, बाधा पड़ जायेगी। इसलिए कोई हानि नहीं है कि कोई आदमी सड़क पर नंगा चले, कोई पाप भी नहीं है उसमें, लेकिन चूंकि लोगों का जीवन-व्यवहार है, कपड़े जो लोग पहने हुए हैं, वे लोग नाराज हो जायेंगे।

क्योंकि जब तुम नंगे चलते हो, तो तुमने उनको नंगा कर दिया ! तुमने उनको यह याद दिला दी कि कपड़ों के भीतर हम भी नंगे हैं। वे गुस्सा हो जाते हैं। किसी तरह भूले-भाले

बैठे थे, भूल चुके थे कि हम नंगे हैं; तुमको बिना कपड़े के देख कर एकदम उनको भी याद आती है कि अरे...! तुम्हारे नंगेपन से वे नाराज इसीलिए होते हैं, कि तुमने उनका नंगापन जाहिर कर दिया!

तुमको नहीं होता, मरे हुए आदमी को देख कर याद नहीं आती अपनी मौत की, कि अब मरूंगा। जब लाश निकलती है रास्ते से, तुम्हें एक-क्षण को स्मरण नहीं आ जाता कि मेरी मौत...अब ज्यादा देर नहीं है, यह आयेगी! यह आदमी भी कल भला-चंगा था, मैं आज भला-चंगा हूं, कल की कौन जाने? आज इसकी अर्थी निकल रही है, मैं देख रहा हूं, कल मेरी अर्थी निकलेगी, कोई देखेगा। याद नहीं आती तुम्हें? याद आ जाती है। ऐसे ही नंगे आदमी को देख कर, तुम्हें याद आ जाती है कि—भीतर मैं नंगा हूं। तो मैं नहीं कहता, कि सड़क पर नंगे चलो। क्यों किसी को याद दिलानी, जो याद नहीं करना चाहता, वह उसकी मर्जी। क्यों किसी को याद दिलाना? क्यों किसी के जीवन में बाधा डालनी! फिर तुम्हारे नंगे चलने से तुम्हें भी बाधा पड़ेगी—पुलिस आ जायेगी, लोग घेरा डालेंगे, पकड़ेंगे—कि दिमाग खराब हो गया है। हालांकि, कुछ भी नहीं हुआ है; कितने पशु-पक्षी...सभी तो नंगे; किसी का दिमाख खराब नहीं हुआ है। असल में पशु-पक्षी सोचते होंगे कि आदमी को क्या हो गया है! आखिर उनकी संख्या बहुत है। अगर लोकतंत्र चलता हो, तो नंगों की संख्या दुनिया में बहुत है, कितने पशु-पक्षी....सब नग्न हैं! वे जरूर बैठ कर सोचते होंगे वृक्षों पर कि इन आदमियों को क्या हो गया है, ये कपड़ा क्यों टांगे फिरते हैं?

और आदमी ऐसा पागल है! इंग्लैंड में महिलाओं का एक समाज है, जो कुत्तों को कपड़ा पहनाने का आंदोलन चलाती है। अब यह सोचते हो, इन महिलाओं का दिमाग बिलकुल खराब होना चाहिए! कुत्तों को कपड़े पहनाना! क्योंकि नंगे कुत्ते देख कर इनको अपने नंगेपन का याद आ रहा है या क्या हो रहा है! तुम जानकर हैरान होओगे, कि विक्टोरिया के जमाने में इंग्लैण्ड में, कुर्सियों के पैर को भी ढांक कर रखा जाता था, क्योंकि वे पैर हैं! कुर्सियों के पैर, उनको भी ढांक कर रखा जाता था, उनको कपड़ा पहना दिया जाता था, क्योंकि पैर है न, पैर की याद आती है। पैर नंगे नहीं होना चाहिए। हद हो गयी पागलपन की! पशु-पक्षियों को दिखाई पड़ते होओगे तुम, तो थोड़ा हैरान तो होते होंगे, कि परमात्मा ने नग्न पैदा किया था, तुम कपड़े क्यों पहने हो!

मगर जिनके बीचे तुम रहते हो, वे सब कपड़े पहने हैं; अच्छा यही है कि तुम भी कपड़े पहने रहो, उचित यही है, यह व्यावहारिक है। इसलिये मैं तुमसे कहता हूं व्यवहार के कोई नियम व्यर्थ मत तोड़ना, जब तक कि ऐसा कोई नियम न हो जो तुम्हारी आत्मा



की स्वतंत्रता में बाधा बन रहा हो, जो तुम्हारे और परमात्मा के बीच बाधा बन रहा हो, मत तोड़ना, उसे चुपचाप स्वीकार कर लेना, उसकी स्वीकृति में कोई हानि नहीं है। जैसा देश हो, वैसा वेश रखना और अपने भीतर की खोज में लगे रहना। अपनी आत्मा को मत बेच देना, अपनी आत्मा की स्वतंत्रता को अक्षुण्ण रखना। तो धीरे-धीरे एक दिन तुम जान सकोगे—असली जन्म क्या है। तब तुम संदर्भों में नहीं जियोगे, तब तुम हिन्दू नहीं, मुसलमान नहीं, ईसाई नहीं, पहली दफा मनुष्य होओगे। और जो मनुष्य हो गया, उसके परमात्मा होने में ज्यादा देर नहीं है, उसने आधी यात्रा पूरी कर ली।

> यह तहजीबे-जर-अफ्सां दागदारे खूने-आदम है
> अब खूं आशामिए-सरमाया कज्जाकी से क्या कम है
> अब इस लानत को दुनिया से मिटा देने का वक्त आया
> है रौशन कस्ने-दौलत में चिरागे-सरखुशी अब तक
> खफा है झोंपड़ों से जिंदगी कीं रोशनी अब तक.
> अंधेरे में नयी शमाएं जला देने का वक्त आया।
> तमद्दुम खुदफरेबी और स्यासत तंग दामानी
> बहुत गमनाक है कासानए-आदम की वीरानी
> अब इस उजड़े हुए घर को बसा देने का वक्त आया
> यह तूफाने हसर यह साजिशे बुग्गजूरिया कब तक
> यह नफरत आह! जंजीर-दरे खल्के खुदा कब तक
> हर इक दर पे मुहब्बत की सदा देने का वक्त आया

एक समय आ गया है, जब आदमी क्षुद्र सीमाओं के पार उठे! अब इस लानत को दुनिया से मिटा देने का वक्त आया। समय आ गया है, जब हम क्षुद्र व्यावहारिकताओं को ही धर्म न समझ लें, अंतस की ज्योति को धर्म समझें।

अंधेरे में नयी शमाएं जला देने का वक्त आया।

अब समय आ गया है, कि हम आदमी को होश के बिना न जीने दें, क्योंकि होश नहीं, तो आदमी नहीं। होश नहीं, तो तुम खाली घर हो, घर का कोई मालिक नहीं।

अब इस उजड़े हुए घर को बसा देने वक्त आया।

अब समय आ गया है, कि हम बहुत जी लिये घृणा, वैमनस्य, ईर्ष्या, द्वेष के आधार पर। अब हम जीवन का एक नया ढंग खोजें; हम एक नयी मनुष्यता को जन्म दें—एक नये मनुष्य को, एक नयी चेतना को।

हर इक दर पे मुहब्बत की सदा देने का वक्त आया।

ध्यान भीतर जगे, तो तुम्हारे जीवन में प्रेम फैल जाता है। जैसे दिया जलता है, तो

किरणें फैल जाती हैं, रोशनी फैल जाती है, ऐसे ध्यान जलता है, तो प्रेम फैल जाता है! और अगर तुम प्रेम फैला दो, तो ध्यान जल जाये। ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

अगर तुम मुझसे पूछना चाहो, तो धर्म की मैं छोटी-सी परिभाषा करता हूं : ध्यान और प्रेम। बस ये दो शब्द याद रखो, इन दो शब्दों पर कसते रहना अपने को। दूसरे से सम्बन्ध हो तो प्रेम पर कसना, अगर प्रेम गवाही दे कि ठीक तो ठीक, अगर प्रेम कहे : नहीं, मेरे विपरीत, तो समझ लेना धर्म के विपरीत। और भीतर की दुनिया में, अपने अन्तस की दुनिया में, ध्यान की कसौटी पर कसते रहना। तुम जो भी भीतर करो, ख्याल करना, इससे ध्यान सधेगा, घटेगा, बनेगा, बिगड़ेगा...? अगर बनता हो, तो ठीक, धर्म। अगर बिगड़ता हो ध्यान, तो अधर्म। बस प्रेम और ध्यान की दो कसौटियों पर तुम जीवन को कसते रहो। ये दो पंख बन जायेंगे; ये तुम्हें उस विराट परमात्मा तक ले जाने के लिये काफी हैं, पर्याप्त हैं।

आखिरी प्रश्न : मेरी जिंदगी किसी के काम आ जाये
कौन जाने मौत का पैगाम आ जाये
जिंदगी की आखिरी शाम कब आ जाये
ऐसे मौके पर तलाश करता हूं मैं भगवन्!
कि मेरी जिंदगी किसी के काम आ जाये।

★ प्रदीप! भावना शुभ है, पर जिंदगी अभी है कहां? काम क्या आयेगी? अभी तुम हो कहां? भाव शुभ है, लेकिन कहावत तो तुमने सुनी न, कि नरक का रास्ता शुभ भावनाओं से पटा पड़ा है। यह शुभ भावना भी नरक के रास्ते पर पट जायेगी? लोग सोचते हैं, किसी के काम आ जाऊं। अभी तुम अपने भी काम आये नहीं, कैसे किसी और के काम आ सकोगे! लोग सोचते हैं, किसी का दिया जला आऊं। अभी अपना दिया जला नहीं, और तुम दूसरे के दिये जलाने चले! डर यही है, कि तुम जलते दिये बुझा मत देना! अभी अपनी आंख खुली नहीं, और तुम दूसरों को मार्गदर्शन देने की आकांक्षा से भरने लगे!...और आकांक्षा शुभ है; मगर अंधा आदमी दूसरे अंधों को राह दिखाये...दोनों खाई-खड्ड में गिरेंगे! और फिर भी मैं कहता हूं, तुम्हारी भावना शुभ है, लेकिन उस भावना को पूरी करने की क्षमता अभी तुममें कहां? तुम समाज सेवक हो जाओगे; और वह खतरा है।

मैं समाज-सेवक पैदा नहीं करना चाहता, मैं चाहता हूं ऐसे लोग—जो जीवंत हैं, जो आनंद से भरे हैं, और जिनके आनंद से अपने-आप सेवा निकले, उन्हें पता भी न चले, कि हम सेवा कर रहे हैं! मैं तुमसे कोई कर्तव्य करने को नहीं कह रहा हूं, मैं तो चाहता



हूं, तुम्हारे जीवन में जो भी हो, वह प्रेम से हो, कर्तव्य से नहीं। कर्तव्य से जब भी कोई बात होती है, तो चूक हो जाती है। कर्तव्य का मतलब ही होता है—करने की इच्छा नहीं है, कर रहे हैं—कर्तव्य है! 'कर्तव्य है' का अर्थ होता है—चाहते तो नहीं हैं, मजबूरी है...। प्रेम से जब तुम करते हो, तो कर्तव्य नहीं होता, तब तुम्हारा आनंद होता है, तुम्हारा रस होता है। तो तुम पहले ध्यान को जगाओ, पहले प्रेम को जगाओ, फिर यह अपने से हो जायेगा।

मत पूछो : मेरी जिंदगी किसी के काम आ जाये...। अभी तुम्हारे पास जिंदगी कहां? अभी तो संदर्भों में जी रहे हो! अभी जन्म कहां हुआ? अभी तो गर्भों में जी रहे हो! अभी जन्म कहां हुआ...?

और मैं जानता हूं, कि यह बात उठती है..., संवेदनशील व्यक्ति के मन में यह विचार उठना शुरू होता है, क्योंकि चारों तरफ बड़ा दुख है। जिसको भी थोड़ी संवेदना है, उसके मन में यह भाव आता है—कैसे इस दुख को मिटाऊं? क्या करूं?

लेकिन दुनिया में कितने लोग आ चुके और दुख को नहीं मिटा पाये हैं, खयाल रखना। और कितने उपाय दुख को कम करने के किये जाते हैं, दुख कमता नहीं, बढ़ता जाता है, हर उपाय से बढ़ता जाता है।

हैलसियासी योथोपिया के सम्राट थे। ईसाई मिशनरियों ने सम्राट को जा कर कहा, कि हम चाहते हैं योथोपिया को भी हम शिक्षा दें, स्कूल खोलें, शिक्षा का व्यापक प्रसार होना चाहिए, योथोपिया में शिक्षा नहीं है। सम्राट ने जो बात कही, बड़ी हैरानी की थी! सम्राट ने कहा : तुम्हारे देश में तो शिक्षा का खूब प्रसार हो गया है, लाभ क्या हुआ? अगर तुम्हारे पास पक्का प्रमाण हो, कि शिक्षा के प्रसार से तुम्हारे लोग ज्यादा आनंदित, ज्यादा शान्त, ज्यादा प्रफुल्लित हुए हैं, ज्यादा भले हुए हैं, तो फिर ठीक है, तुम मेरे देश में भी शिक्षा का प्रसार करो। वे ईसाई मिशनरी सिर झुका कर रह गये, यह बात तो उन्होंने सोची ही न थी! लोग तो मान ही लेते हैं, कि शिक्षा का प्रसार यानी अच्छा काम....।

लेकिन शिक्षा के प्रसार से हुआ क्या है? विश्वविद्यालयों में क्या हो रहा है सारी दुनिया के—देखो! विश्वविद्यालय से निकलने वाला आदमी ज्यादा चिंतित, ज्यादा तनावग्रस्त हो जाता है, ज्यादा बेचैन, परेशान हो जाता है, ज्यादा महत्त्वाकांक्षी, ज्यादा अहंकारी हो जाता है; कोई चीज उसे तृप्त नहीं करती, उसकी आकांक्षा ऐसी हो जाती है, कि कोई चीज उसे कभी तृप्त नहीं कर सकेगी! विश्वविद्यालय से निकला हुआ आदमी कुछ भी नहीं करना चाहता और सब पाना चाहता है। बेईमान हो जाता है, चालाक हो जाता है, चालबाज हो जाता है; सरलता खो देता है, सहजता खो देता है।

सम्राट हेलसियासी की बात में मूल्य है, कि जरूर करो, मगर तुम्हारे देश में जहां
शिक्षा खूब व्यापक हो गयी है, लाभ क्या है ? जहां जितनी शिक्षा है, वहां उतना पागल-
पन हो रहा है। जहां जितनी शिक्षा है, वहां उतनी हत्या, उतनी चोरी, उतनी
बेईमानी...! जहां जितनी शिक्षा है, उतना अनाचार, उतना व्यभिचार ! तो जरूर
शिक्षा फैलाओ, अगर तुम यह प्रमाण दे सकते हो कि शिक्षा से कुछ लाभ हुआ है। अब
जरा सोचो, जिन लोगों ने शिक्षा फैलाने के लिये अपने जीवन चढ़ा दिये, हजारों लोगों ने
अपने जीवन लगा दिये शिक्षा के प्रसार में; उन बेचारों क्या हुआ, उनकी आकां-
क्षाओं का क्या हुआ ? लाभ तो कुछ हुआ नहीं, हानि हो गई।

ऐसे विचारक भी हैं दुनिया में अब, जैसे डी. एच. लॉरेन्स। डी. एच. लॉरेन्स ने
कहा, कि अब मनुष्य को बचाना हो, तो सौ साल के लिये सारे विश्वविद्यालय बंद कर
दो, सौ साल के लिये भूल ही जाओ शिक्षा को। सब पुस्तकालय जला दो और सारे
विश्वविद्यालय बंद कर दो। और सौ साल आदमी को छोड़ दो, बिलकुल अशिक्षित हो
जाने दो, तो शायद आदमी बच सके। शायद ऐसा हम कर न पायें, शायद इलाज
ऐसा है कि हम हिम्मत न जुटा पायें; मगर लगता है कि अगर कर पायें, तो लाभ तो
हो, हानि न हो। होता क्या है, शिक्षा फैल गयी...तुम्हारी जिंदगी तो काम आ गयी
शिक्षा फैलाने में, मगर शिक्षा फैलाने का अंतिम परिणाम क्या है, क्या करोगे ?

सेवा से कुछ भी नहीं होता। जागो, होश सम्हालो ! और तब तुम्हें दिखाई पड़ेगा
कि आदमी दुखी है, इसलिए नहीं कि दुनिया में शिक्षा कम है, या दवाइयां कम हैं।
आदमी दुखी है इसलिये कि दुनिया में ध्यान कम है। लेकिन यह भी तभी पता
चलेगा, जब तुम्हारा ध्यान जगेगा और तुम्हारे दुख विसर्जित हो जायेंगे—तब तुम्हें
पता चलेगा। फिर तुम दूसरों में भी ध्यान को जगाने की कोशिश में लगना।

बस एक ही काम करने जैसा है कि लोगों का ध्यान लगे। मनुष्य इतना परेशान
है, क्योंकि मूर्च्छित है और मनुष्य मूर्च्छित होने के कारण दुखी है।

खयाल करना, दुख का और कोई कारण नहीं है, सब कारण टटोल लिये गये हैं।
जैसे कि मार्क्स ने कहा, कि दुख का कारण है आदमी का कि धन का वितरण ठीक नहीं है।
लाखों लोग मरे, मारे गये, खून बहा... रूस में धन का वितरण हो गया, मगर आदमी
का दुख वैसा का वैसा है ! सच तो यह है, रूस में आज आदमी और ज्यादा दुखी है,
क्योंकि धन का वितरण हो गया, लेकिन आत्मा की सारी आजादी छिन गयी !
धन का वितरण करना हो, तो आत्मा की आजादी छीननी ही पड़ेगी। क्योंकि अगर
आत्मा आजाद हो, तो लोगों की धन कमाने की क्षमता अलग-अलग है, अगर आत्मा
आजाद हो, तो एक आदमी धनी हो जायेगा और एक आदमी गरीब ही रह जायेगा।



अगर प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्रता से जीने का हक हो, तो समानता कभी हो ही नहीं
सकती। इसे थोड़ा समझना, समानता और स्वतंत्रता साथ-साथ नहीं हो सकते।

और तुम्हारे तथाकथित राजनीतिक नेता यही नारा दिये जाते हैं—समानता चाहिए,
स्वतंत्रता चाहिये; जैसे कि दोनों बातें साथ हो सकती हैं ! समानता होगी, तो स्वतंत्रता नहीं
होगी, क्योंकि मनुष्य समान नहीं है; जबर्दस्ती समान करना पड़ेगा। अब ऐसा ही समझो
कि किसी ने सिद्धांत बना लिया कि सबकी ऊंचाई समान होनी चाहिए। अब अगर सब
की ऊंचाई समान करनी है, तो स्वतंत्रता छीननी पड़ेगी—किसी का सिर काटो, किसी का
पैर काटो, सब को बराबर करो काट-छांट कर ! आदमी तो मर जायेंगे, ऊंचाई बराबर हो
जायेगी ! आत्मा खो जायेगी। और अगर आत्मा को बढ़ने देना है अपनी स्वाभाविकता
से, तो निश्चित ही कोई ऊंचा होगा, कोई ठिगना होगा, कोई धन कमाने में कुशल होगा,
कोई नहीं होगा, कोई बहुत धन कमा लेगा और कोई बिलकुल नहीं कमा पायेगा; और कोई
यशस्वी हो जायेगा और कोई बिलकुल यशस्वी नहीं हो पायेगा। कोई सफल होगा, कोई
सफल हो नहीं पायेगा; सबकी गुणवत्ताएं अलग-अलग हैं, समान नहीं है आदमी ! दुनिया
में इससे बड़ा कोई झूठा सिद्धांत नहीं है कि आदमी समान है। मनोविज्ञान की सारी
खोजें कहती हैं—आदमी असमान है। और आदमी को समान बनाने की कोशिश
चली है ! तो रूस में लाखों लोग मार डालने पड़े; वही काटना पड़ा किसी का सिर, किसी
का पैर ! जबर्दस्ती कर के धन बांट दिया। फिर बांटने से भी कुछ नहीं होता, अगर
एक बार बांट दो और फिर लोगों को छोड़ दो...। तुम थोड़ा सोचो, यहां इतने लोग बैठे
हैं, सबको हजार-हजार रुपये दे दिये जायें और सबको छुट्टी दे दी जाये कि तीन
महीने बाद आकर खबर करना। कोई सज्जन तो बाहर तक भी नहीं पहुंच पायेंगे, जेब
कट जायेगी, दरवाजे के बाहर न निकल पायेंगे ! कोई हजार तो गंवा ही देंगे और उनके
पास जो था, वह भी उनके साथ चला जायेगा। कोई हजार के दस हजार बना लायेगा।

एक सम्राट मरने के करीब हुआ, तो उसने अपने बेटों को, तीन बेटे थे, बुलाया।
और उनको एक-एक थैली भर कर फूलों के बीज दे दिये और कहा, कि मैं यात्रा पर
जा रहा हूं—तीर्थयात्रा...। मैं लौटूं, तब मैं ये बीज वापस चाहता हूं, और इन्हीं बीजों
में निहित है सब कुछ ! सोच-समझ कर इन बीजों को सम्हालना, क्योंकि जो इसमें
जीतेगा, वही साम्राज्य का मालिक हो जायेगा। बड़ा विचार किया तीनों ने। पहले ने
सोचा, कि यह तो झंझट की बात है, बीज घर में रखूं—चूहे खा जायें, चोरी हो जाये,
क्या भरोसा बीज के बचने का ! और बाप कहे कि हमने सड़े बीज नहीं दिये थे, यह
तो सड़ गया। फिर पता नहीं बाप कब तक लौटे—साल लगे, दो साल लगे ? पुराने जमाने
की कहानी है, तीर्थयात्रा पर गया आदमी—वर्षों लग जाते थे !....कितनी देर लगेगी ?

उसने सोचा, होशियार आदमी था, उसने कहा, बाजार में बेच दो, रुपया अपने पास रखो; जब बाप आयेगा, जल्दी से जा कर बाजार से दूसरे बीज खरीद कर रख देंगे। क्या पहचान पायेगा। बीज बीज हैं, बीज जैसे हैं, सब बीज एक जैसे हैं! यही के यही फूलों के बीज खरीद लाऊंगा। जा कर बेच आया; निश्चिंत हो गया। रुपये तिजोड़ी में डाल कर ताला लगा दिया। दूसरे भाई ने सोचा, कि अगर बेचूं, जैसा एक भाई ने किया है, तो बाप कहीं कह न कहे, कि ये तो वही बीज नहीं हैं। पता तो चल ही जायेगा। और कहीं इसी कारण राज्य न गंवा बैठूं! तो उसने बीजों को तिजोरी में बंद करके ताला लगा दिया। बाप जब तक आया, तब तक वे बीज सड़ गये, उनसे बदबू आने लगी। तीसरे लड़के ने जा कर बीज बगीचे में बो दिये; सोचा कि बीज का तो अर्थ होता है—संभावना...। इसलिये पिता का इशारा साफ है, कि संभावना को जो वास्तविक करेगा, वही मेरे साम्राज्य का मालिक हो सकेगा। बीज को सम्हाल कर नहीं रखा जाता, बीज को बोया जाये—यही उसका सम्हालना है। और फिर जब बीज हम बो देंगे, तो जल्दी ही हजार गुने बीज पौधों पर आ जायेंगे। सम्हालना क्या है, जब हजार गुने हो सकते हैं, तो हजार गुने कर के देना चाहिए, लाख गुने हो सकें, तो लाख गुने कर के देना चाहिए। उसने बीज बो दिये। जब बाप लौटा, पहले बेटे ने कहा, कि जरा बैठिये, मैं अभी जाता हूं, बाजार से बीज ले आता हूं। बाप ने कहा : लेकिन जो बीज मैंने तुम्हें दिये थे, वे ही बचाने थे। ये वही बीज नहीं हैं, ये स्वीकार नहीं होंगे। तुम परीक्षा में असफल हुए। दूसरा बेटा बहुत खुश हुआ, उसने कहा : आइये, वही बीज हैं। तिजोड़ी खोली, वहां से सड़े बीजों की बास आयी। बाप ने कहा : लेकिन मैं तुम्हें बीज दे गया था, जिनमें दुर्गंध नहीं थी, और मैं तुम्हें बीज दे गया था, जिनसे तुम चाहते तो फूल पैदा होते और सुगंध पैदा होती। यह तो बात गड़बड़ हो गयी, यह स्वीकार नहीं हो सकता। तुम हार गये। तीसरे बेटे से कहा...., उसने कहा, कि आइये, बगीचे में, क्योंकि बीज की जगह बगीचे में है। तिजोड़ी कोई बीज की जगह है! बाप पीछे गया...बगीचे में फूल ही फूल खिले थे, हजारों फूल खिले थे! फूलों में फिर बीज आ रहे थे। बेटे ने कहा कि बीज आ गये हैं, वही बीज हैं, उन्हीं की संतान हैं, उन्हीं का सिलसिला है...। और ये फूल मुफ्त, और यह बगीचे का सौंदर्य मुफ्त! और फिर बीज हजार गुने हो गये हैं! मैंने सोचा, उन्हीं को क्या बचाना, जब हजार गुने हो सकते हैं। बाप ने कहा : तू मेरे साम्राज्य का मालिक है। तुझसे मेरा साम्राज्य हजार गुना होगा! तू सिर्फ बचाने वाला नहीं होगा, बढ़ाने वाला होगा और बढ़ाने वाला ही बचाने वाला है!

लोग अलग-अलग हैं। रूस में जबर्दस्ती समानता बिठा दी है। मगर लोग बड़े दुखी हो गये हैं, आत्मा खो गयी, स्वतंत्रता खो गयी, दुखी न होंगे तो क्या होंगे!



बोलने की आजादी नहीं रही...।

मैंने सुना है, कुत्तों की एक प्रदर्शनी हुई फ्रांस में। सारी दुनिया के कुत्ते इकट्ठे हुए, उसमें रूस के कुत्ते भी आये—बड़े तगड़े थे! फ्रांसीसी कुत्तों ने पूछा, कि रूस में सब मजा है? उन्होंने कहा, बहुत मजा है—सब खाने की सुविधा है, आदमी को जो न मिले वह हमें मिलता है—बड़ा मजा है! मगर हम जाना नहीं चाहते वापिस। फ्रांसीसी कुत्तों ने कहा : यह बात समझ में नहीं आती, अगर इतना मजा है, तो तुम वापिस क्यों नहीं जाना चाहते? उन्होंने कहा : और सब तो ठीक, भौंकने की आजादी नहीं है। और बिना भौंके कुत्ते की क्या जिंदगी! कितना ही भोजन दो, भोजन थोड़े ही जिंदगी है, भौंकने का रस....!

रूस में बोलने की आजादी नहीं है, दीवालों को कान हैं! स्वतंत्रता नहीं है। लोग प्रार्थना करते हैं अपने तलघरों में छिपकर। प्रार्थना तलघरों में छिपकर! बाइबिल पढ़ते हैं चोरी से, कि किसी को पता न चल जाये। जीसस का नाम लेते हैं डरते हुए, कि कोई सुन न ले। पति को अपनी पत्नी से डर है, क्योंकि पत्नी कौन जाने खबर कर दे, या किसी गुस्से के क्षण में चली जाये पुलिस दफ्तर में और खबर कर आये। अपने बेटे से बाप डरता है, कि पता नहीं स्कूल में किसी को कह दे; ऐसा भय व्याप्त है...। यह सुख हुआ? समानता हो गयी, स्वतंत्रता खो गयी, आत्मा खो गयी!

तुम दुनिया में जो भी करोगे, उससे सुख होनेवाला नहीं है, दुख के नये आवर्तन, दुख के नये चाक घूमते रहेंगे! और दुनिया बड़ी दुखी है, यह सच है। फिर क्या करें? दुख का मूल आधार तोड़ना पड़ेगा। दुख का मूल आधार है—आदमी का अज्ञान, आत्म-अज्ञान।

तो यह मत पूछो : मेरी जिंदगी किसी के काम आ जाये। अभी तो यह पूछो, कि मेरी जिंदगी जिंदगी कैसे हो जाये, मेरा जन्म कैसे हो? और फिर तुम्हारा जो रास्ता बनेगा जिंदगी का, जिस तरह तुम जिंदगी को जानोगे, रसमग्न होओगे, वही खबर औरों तक पहुंचा देना प्रदीप, औरों की जिंदगी में भी दिये जलेंगे। एक दिया जल जाये तो उससे और दिये जल सकते हैं। ज्योति से ज्योति जले...!

मगर मैं नहीं चाहता कि तुम सेवा में लगो, और मैं नहीं चाहता कि तुम सत्ता में जाओ। दो ही उपाय हैं दुनिया को बदलने के अब तक—एक है सत्ता, एक है सेवा। सेवा करो, तो लोग सुखी हो जायेंगे—यह बात भी गलत हो गयी। सेवा हो चुकी बहुत, कोई सुखी नहीं हुआ। दूसरा उपाय है—सत्ता में चले जाओ और जबर्दस्ती लोगों को सुखी कर दो। लेकिन कोई जबर्दस्ती किसी को सुखी कर सकता है?

लोग सुखी हो नहीं सकते, क्योंकि उनके भीतर दुख के कारण मौजूद हैं, दुख के

बीज मौजूद हैं, दुख के आधार मौजूद हैं। उनके दुख के बीज दग्ध होने चाहिए। वे बीज ध्यान में ही दग्ध होते हैं। ध्यान में बीज दग्ध हो जायें, तो प्रेम का प्रकाश पैदा होता है और प्रेम आनंद है। ध्यान और प्रेम का जहां मिलन होता है, वहीं परमात्मा की अनुभूति है और वही अनुभूति सच्चिदानंद है। उसी रस को तलाशो! दूसरे की अभी फिक्र न करो प्रदीप, पहले अपनी चिंता कर लो... इक साधे सब सधे...!

आज इतना ही।
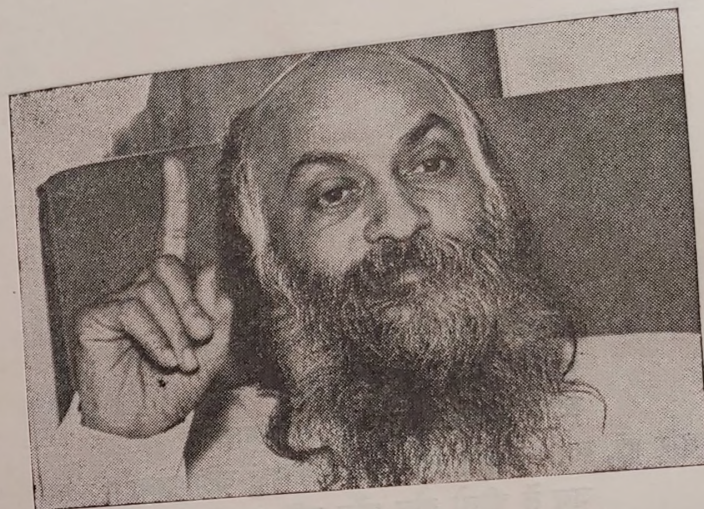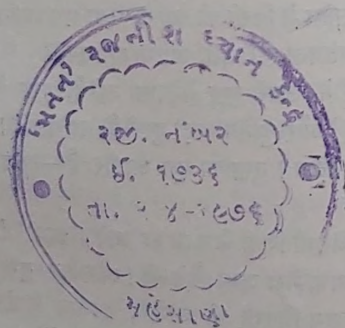
## पीव बस्या परदेस

तीसरा प्रवचन; दिनांक २३ सितम्बर १९७८;

श्री रजनीश आश्रम; पूना.

पीव बस्या परदेस कि जोगन मैं भई।
उनमनि मुद्रा धार फकीरी मैं लई॥
ढूंढ्या सब संसार क अलख जगाइया।
हरि हां, वाजिद, वह सूरत वह पीव कहूं नहिं पाइया॥
जब तें कीनो गौन भौन नहिं भावही।
भई छमासी रैण नींद नहिं आवही॥
मीत तुम्हारी चीत रहत है जीव कूं।
हरि हां, वाजिद, वो दिन कैसो होइ मिलौं हरि पीव कूं॥
कहिये सुणिये राम और नहिं चित्त रे।
हरि-चरणन कों ध्यान सु धरिये नित्त रे॥
जीव विलंब्या पीव दुहाई राम की॥
हरि हां, सुख संपति वाजिद कहै किस काम की॥
तुमहि बिलोकत नैण भई हूं बावरी।
झोरी डंड भभूत पगन दोउ पांवरी॥

कर जोगण को भेष सकल जग डोलिहूं।
वाजिद, ऐसो मेरो नेम राम मुख बोलिहूं॥
सूर कमल वाजिद न सुपने मेल है।
जरै द्यौस अरु रैण कड़ाई तेल है॥
हमही में सब खोट दोष नहिं स्याम कूं।
हरि हां, वाजिद, ऊंच नीच सों बंबे कहो किहिं काम कूं॥
भूखे भोजन देह उघारे कापरो।
खाय धणी को लूण जाय कहां बापरो॥
भली बुरी वाजिद सबै ही सहेंगे।
हरि हां, दरगह को दरवेश यहां ही रहेंगे॥
हरिजन बैठा होय तहां चल जाइये।
हिरदै उपजै ग्यान रामगुण गाइये॥
परिहरिये वह ठाम भगति नहिं राम की।
हरि हां, वाजिद, बीन विहूणी जान कहौ कि किस काम की॥

मुझे था शिक्वा-ए-हिज्रां कि ये हुआ महसूस
मिरे करीब से होकर वो नागहां गुजरे
बहुत हसीन मनाजिर भी हुस्ने फितरत के
न जाने आज तबीयत पे क्यों गरां गुजरे
मिरा तो फर्ज चमन-बन्दी-ए-जहां है फक़त
मिरी बला से, बहार आए या खिजां गुजरे
कहां का हुस्न कि खुद इश्क़ को खबर न हुई
रहे-तलब में कुछ ऐसे भी इम्तिहां गुजरे
भरी बहार में ताराजी-ए-चमन मत पूछ
खुदा करे न फिर आंखों से वो समा गुजरे
कोई न देख सका जिनको दो दिलों के सिवा
मुआमलात कुछ ऐसे भी दर्मियां गुजरे
कभी-कभी तो इसी एक मुश्ते-खाक के गिर्द
तवाफ़ करते हुए हफ्त-आस्मां गुजरे
बहुत अजीज हैं मुझको उन्हीं की याद 'जिगर'
वो हादिसाते-मोहब्बत जो नागहां गुजरे

प्रेम का पंथ प्यारा भी, सहज, सुगम भी, कठिन और दुर्गम भी। प्रेम का पंथ प्यारा है, क्योंकि प्रेम प्यारा ही हो सकता है। प्रेम मधुर है, माधुरी है; लेकिन प्रेम का पंथ कठिन भी बहुत, क्योंकि अपने को मिटाये बिना कोई चारा नहीं। और जब तक तुम न न मिटो, जब तक तुम न न हो जाओ, तब तक परमात्मा की कोई प्रतीति सम्भव नहीं है।

मुझे था शिक्वा-ए-हिज्रां कि ये हुआ महसूस
मिरे करीब से होकर वो नागहां गुजरे



...जलना होगा पहले तो विरह की अग्नि में।

मुझे था शिक्वा-ए-हिज्रां कि ये हुआ महसूस...। बड़ी शिकायतें उठेंगी विरह की रात में, बहुत संदेह उठेंगे। बहुत बार मन वापिस संसार में लौट जाने का होने लगेगा, क्योंकि संसार भी हाथ से गया, राम की कोई खबर मिलती नहीं! चले थे प्रकाश की खोज में, अंधेरा और सघन होता जाता है। मुझे था शिक्वा-ए-हिज्रां कि ये हुआ महसूस...और विरह की बड़ी शिकायत उठती है मन में। लेकिन तभी, उन्हीं आखिरी क्षणों में, जब विरह की अग्नि सहनी असह्य हो जाती है, मिरे करीब से होकर वो नागहां गुजरे... तभी अचानक उसका आगमन हो जाता है। जब तुम मिटे-मिटे होने को हो, तभी अचानक...।

बहुत हसीन मनाजिर भी हुस्ने-फितरत के
न जाने आज तबीयत पे क्यों गरां गुजरे

और जिसने उसकी एक झलक देख ली, फिर प्रकृति का सारा सौन्दर्य फीका पड़ जाता है। फिर सूरज में रोशनी नहीं, जिसने उसकी रोशनी देख ली! फिर फूलों में सुगंध कहां, जिसने उसकी गंध पा ली! फिर इस जगत का रूप, इस जगत का सौन्दर्य, इस जगत का रंग, सब फीका हो जाता है, प्रतिम्बिब हो जाता है। इस जगत का श्रेष्ठतम संगीत प्रतिध्वनि से ज्यादा नहीं रह जाता।

बहुत हसीन मनाजिर भी हुस्ने-फितरत के
न जाने आज तबीयत पे क्यों गरां गुजरे

फिर प्रकृति का बड़ा सौंदर्य भी हृदय पर बोझ जैसा मालूम होता है...जिसने उसके सौन्दर्य को जाना!

मिरा तो फर्ज चमन-बन्दी-ए-जहां है फकत
मिरी बला से, बहार आए या खिजां गुजरे

और जिसने उसे देख लिया, जिसकी उससे आंखें चार हो गईं, फिर कोई फर्क नहीं पड़ता इस संसार में—बहार आए कि खिजां गुजरे, फिर बसंत हो कि पतझड़ हो, फिर सफलता मिले कि विफलता, कि फिर सुख आए कि दुख, कोई फर्क नहीं पड़ता। यही विराग की परम अनुभूति है। लेकिन भक्त का विराग तपस्वियों के विराग से बड़ा भिन्न है। तपस्वी विराग साधता है, आयोजित करता है, अभ्यास करता है। भक्त राग साधता है परमात्मा से, और जब राग का तार जुड़ जाता है तो संसार से विराग अपने-आप घटित हो जाता है। और जो विराग अपने से घटित हो जाए, उसकी महिमा अपार है। जो विराग जबर्दस्ती थोप दिया जाए, उसका दो कौड़ी भी मूल्य नहीं है। क्योंकि जो थोपा है, ऊपर-ऊपर रहेगा; जो उठा है अंतस से, वही रूपान्तरण करता है, उसी से क्रांति होती है।

कहां का हुस्न कि खुद इश्क को खबर न हुई
रहे-तलब में कुछ ऐसे भी इम्तिहां गुजरे

और जब उस परम प्यारे के सौन्दर्य से आंखें भरतीं हैं, तो यह भी याद नहीं पड़ता कि क्या मैं देख रहा हूं, क्या घट रहा है ! कहां का हुस्न कि खुद इश्क को खबर न हुई...ऐसी बेहोशी तारी हो जाती है, ऐसा उन्माद छा जाता है, ऐसा मस्त हो जाता है मन !

कहां का हुस्न कि खुद इश्क को खबर न हुई
रहे-तलब में कुछ ऐसे भी इम्तिहां गुजरे

उस प्यारे की खोज में, उस प्यारे की राह में ऐसे भी क्षण आते हैं, जब पता ही नहीं चलता अपना न उसका ।.... पता ही मिट जाता है, ज्ञान ही खो जाता है । प्रेम की पराकाष्ठा तभी है, जब ज्ञान बिल्कुल शून्य हो जाए—न दृश्य रहे, न द्रष्टा रह जाए, न ज्ञाता, न ज्ञानी; वहीं मिलन है, वहीं व्यक्ति परमात्मा से एक होता है । वहीं बूंद सागर से मिलती है । प्रेम का रास्ता प्यारा भी बहुत, क्योंकि प्रेम का रास्ता है ।.... प्रेम से ज्यादा मधुर इस संसार में कुछ और नहीं, इससे ज्यादा सुस्वादु इस संसार में कुछ और नहीं। प्रेम तो मधुशाला है, मादक है, मधु है; लेकिन प्रेम को पीने की तैयारी अति कठिन है। रहीम का वचन है—प्रेम पंथ ऐसो कठिन...कैसो कठिन ? क्या कठिनाई होगी प्रेम पंथ की ? कठिनाई यह है कि प्रेमी को मिटना पड़ता है, तब प्यारा मिलता है । मिलता है तब तो बड़ा ही अपूर्व है, मगर मिलने के पहले जो शर्त पूरी करनी पड़ती है, बड़ी दुर्गम है । वाजिद के आज के सूत्र विरह की रात्रि के सूत्र हैं । खूब मनपूर्वक उन्हें समझाना....।

पीव बस्या परदेस कि जोगन मैं भई ।
उनमनि मुद्रा धार फकीरी मैं लई ॥
ढूंढ्या सब संसार क अलख जगाइया ।
हरि हां, वाजिद, वह सूरत वह पीव कहूं नहिं पाइया ॥
पीव बस्या परदेस कि जोगन मैं भई ।...

प्यारा बहुत दूर...यह भी ठीक पता नहीं कि कहां ? प्यारा बहुत दूर... यह भी ठीक पता नहीं कि कौन ? प्यारा बहुत दूर... यह भी पता नहीं उसका रूप क्या, रंग क्या, नाम क्या, धाम क्या ? प्यारा बहुत दूर.... यह भी पता नहीं कि है भी या नहीं है । भक्त की पीड़ा....प्यारे का होना भी अभी प्रमाणित नहीं है । सरोवर होगा भी कहीं, इसका कोई सबूत नहीं है । सबूत तो मिले कैसे, जब तक सरोवर न मिल जाए ! हां, और लोग कहते हैं—बुद्ध कहते हैं, महावीर कहते हैं, मीरा कहती है, चैतन्य



कहते हैं । और लोग कहते हैं, पर औरों का कैसे भरोसा हो ? कौन जाने झूठ ही कहते हों, क्योंकि कहने वाले तो बहुत कम हैं, उंगलियों पर गिने जा सकें इतने हैं । और परमात्मा जिनको नहीं मिला है, वे तो अनंत हैं । परमात्मा जिनको नहीं मिला, उनकी तो बड़ी भीड़ है । जिनको मिला, वे तो बहुत कम हैं, इक्के-दुक्के कभी किसी को...। कौन जाने झूठ ही कहते हों, और कौन जाने झूठ शायद न भी कहते हों, खुद ही धोखा खा गए हों । किसी सपने को सच मान लिया हो, किसी मन की भ्रांति में उलझ गए हों, किसी विभ्रम के शिकार हो गए हों... कौन जाने ? कैसे भरोसा करो ?

दूसरे पर भरोसा हो नहीं सकता । अपना अनुभव हो तो ही श्रद्धा उमगती है । अपना अनुभव न हो तो विश्वास सब सांत्वनाएं हैं— थोथी, ऊपर-ऊपर, मन को समझाने को हैं, मान लेने की हैं; और मान लेने से कोई यात्रा नहीं होती है ।

तुमने सुना है, सदा कहा गया है—विश्वास करो तो ज्ञान होगा । इससे बड़ी झूठी कोई और बात नहीं हो सकती । ज्ञान हो तो विश्वास होता है । विश्वास पहले नहीं; विश्वास परिणति है, निष्कर्ष है । बोध हो तो श्रद्धा का फूल लगता है । श्रद्धा पहले नहीं हो सकती । किसी तरह ठोंक-ठांक कर बिठा लोगे । क्या उसका मूल्य ? कैसी, क्या उसकी अर्थवत्ता ? भीतर तो संदेह जगता रहेगा । भीतर तो प्रश्न बना ही रहेगा। इसलिए तुम पृथ्वी पर इतने धार्मिक लोग देखते हो और फिर भी अधर्म के सिवाय पृथ्वी पर और क्या है !

यह है दूरी परमात्मा से । उस प्रेमी की कठिनाई समझो, जिसे उसके प्रति प्रेम पैदा हो गया है जिसे देखा नहीं, उसके प्रति आकर्षण पैदा हो गया है जिसका कोई पता नहीं। पता हो तो भी मिलना सुनिश्चित कहां है ! मजनू को पता है लैला का, मिल कहां पाती है !

मजनू की पीड़ा कुछ भी नहीं है, कम-से-कम उसे पता तो है, कम-से-कम उस रास्ते पर तो खड़ा हो जाता है जहां से लैला गुजरती है । दूर से ही सही, झलक तो देख लेता है । मजनू की पीड़ा कुछ भी नहीं है भक्त की पीड़ा के मुकाबले । कहां है वह राह जहां भक्त खड़ा हो जाए, किस राह से उसका गुजरना होता है ? किस राह से निकलता है उसका स्वर्ण रथ ? किस घड़ी में निकलता है उसका स्वर्ण रथ । कुछ भी तो पता नहीं ।

मगर जिसका कोई पता नहीं, उसके प्रति भी प्रेम का जन्म हो सकता है । बड़ी छाती चाहिए इस प्रेम के लिए ! भोजन का पता न हो भूख लग सकती है न, तो प्रेमी का पता न हो प्रेम पैदा हो सकता है । सरोवर का पता न हो प्यास लग सकती है न, मंजिल का पता न हो यात्रा की आकांक्षा तो जग सकती है न ।.... अज्ञात की खोज पर निकलता है भक्त । उसका साहस अदम्य है; कहो, दुस्साहस है !

जो लोग चांद पर जाते हैं, हम उनका बड़ा स्वागत करते हैं; दुस्साहस करते हैं वह !

लेकिन चांद पर जाने में कोई इतना दुस्साहस नहीं है। चांद है, तो दिखाई तो पड़ता है। फासला कितना ही हो, नापा जा सकता है। मगर परमात्मा और आदमी के बीच फासला ऐसा है कि मापने का कोई उपाय नहीं। परमात्मा दिखाई भी तो नहीं पड़ता। इस अदृश्य की यात्रा पर जो निकलता है उसकी छाती समझते हो! उसकी हिम्मत, उसकी जोखम उठाने की... आग में कूद जाने की बात है! तो ठीक ही कहते हैं रहीम : प्रेम पंथ ऐसो कठिन...!

पीव बस्या परदेस कि जोगन मैं भई...। वाजिद कहते हैं, कि तुम न मालूम किस परदेश में बसे हो, कितनी दूरी पर तुम्हारा घर है, कुछ पता नहीं। उस घर में तुम हो भी या नहीं, यह भी पता नहीं। कुछ मेरी सोचोगे.... और मैं तुम्हारे लिए जोगन हो गई! और मैं तुम्हारी प्यास से भर गई, और मैं तुम्हें पुकारती हूं, और मेरा रोआं रोआं तुम्हारी प्रार्थना बन गया है, और मेरी धड़कन-धड़कन में तुम समा गए हो। यह पीड़ा है भक्त की!

यह पीड़ा बड़ी अनूठी है। और यह पीड़ा बड़ी सौभाग्य भी....। जो बहुत धन्यभागी हैं, उन्हीं के जीवन में ऐसा अवसर आता है।... अदृश्य से जो आकर्षित हो जाते हैं, अगोचर की जो खोज पर निकल पड़ते हैं, अज्ञात में जिनकी उत्सुकता जग जाती है, यही मनुष्य जाति के नमक हैं! इन्हीं के कारण मनुष्य के जीवन में थोड़ा गौरव है, थोड़ी गरिमा है। नहीं तो धन के खोजी हैं, पद के खोजी हैं, दिल्ली की यात्रा पर निकले लोग हैं, ये कूड़ा-करकट हैं! इन्हीं के कारण मनुष्य का अगौरव है, अगरिमा है। इन्हीं के कारण मनुष्य पतित है, क्षुद्र है।

पीव बस्या परदेश कि जोगन मैं भई।
उनमनि मुद्रा धार फकीरी मैं लई।।

उनमनि मुद्रा धार...। इस शब्द 'उनमनि' को समझना, क्योंकि यही भक्त की साधना का सार-सूत्र है। रहस्यों का रहस्य, महामंत्र, मूल-बीज—उनमनि मुद्रा। उनमन का अर्थ होता है वही जो झेन फकीर नो-माइन्ड से करते हैं। उनमन का अर्थ होता है—जहां मन नहीं, मन के पार, मनातीत। उनमनि मुद्रा धार फकीरी मैं लई...। जिन्होंने फकीरी ले ली है और उनमनि मुद्रा नहीं धारी है, उनकी फकीरी पाखण्ड है!

इसलिए मुझसे जब कोई संन्यासी पूछता है—हमारे संन्यास का नियम क्या? तो एक ही नियम है—मन के पार हो जाओ, ध्यान करो, उनमनि मुद्रा धारो। मन को पोंछो और मिटा दो। मन क्या है? विचारों का सतत प्रवाह...। जैसे राह चलती... दिन भर चलती है, चलती ही रहती है, भीड़-भाड़ गुजरती ही रहती है; कोई उधर जा रहा है, कोई पूरब, कोई पश्चिम, कोई दक्षिण, कोई उत्तर! ऐसा मन एक चौराहा है, जिस



पर विचारों के यात्री चलते हैं, वासनाओं के यात्री चलते हैं, कल्पनाओं, आकांक्षाओं के यात्री चलते हैं, स्मृतियों, योजनाओं के यात्री चलते हैं। तुम मन नहीं हो, तुम चौराहे पर खड़े द्रष्टा हो, जो इन यात्रियों को आते-जाते देखता है। लेकिन इस चौराहे पर तुम इतने लम्बे समय से खड़े हो, सदियों-सदियों से कि तुम्हें अपना विस्मरण हो गया है। तुम्हें अपनी ही याद नहीं रही है। तुमने मान लिया है कि तुम भी इसी भीड़ के हिस्से हो जो मन में से गुजरती है। तुम मन के साथ एक हो गए हो, तादात्म्य हो गया है। तुम मन की भीड़ में अपने को डुबा दिए हो, भूल गए हो, विस्मरण कर दिए हो। और यही मन तुम्हें भरमाये है। इसी मन का नाम संसार है।

संसार से तुम अर्थ मत समझना... ये निर्दोष हरे वृक्ष, संसार नहीं हैं। इन्होंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है! कभी छाया दे दी होगी भला, और कभी फल दे दिए होंगे। इन वृक्षों ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? इन चांद-तारों ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? दिया है खूब, लिया तो तुमसे कुछ भी नहीं है। संसार से तुम अर्थ यह जो विस्तार है अस्तित्व का, ऐसा मत समझ लेना। इस संसार से तुम्हारी क्या हानि हुई है? क्या हानि हो सकती है? यही संसार तो तुम्हें जीवन दे रहा है। नहीं, जिस संसार से भक्त कहते हैं—मुक्त हो जाओ, वह है तुम्हारे मन का संसार, मन का विस्तार। तुम्हारे मन में जो ऊहा-पोह चलता है, वह जो भीड़ तुम्हारे मन में सदा मौजूद रहती है, वह जो तरंगें बनी रहती हैं विचार की और जिनके कारण तुम कभी शांत नहीं हो पाते, और जिनके कारण तुम सदा विबूचन और विडम्बना में उलझे रहते हो, जिनके कारण तुम सदा किंकर्तव्यविमूढ़ हो—क्या करूं क्या न करूं, यह करूं वह करूं....? और मन हजार योजनाएं देता है.... कोई योजना न कभी पूरी होती, न पूरी हो सकती है। और मन तुम्हें कितने सब्जबाग दिखलाता है, कितने मरुद्यान! कितने सुन्दर-सुन्दर सपने देता है और उलझाता है और भरमाता है और अटकाता है। मन माया है, संसार माया नहीं। मन का संसार ही माया है।

उनमनी का अर्थ है—जागो! यह जो मन का जाल है, इसके द्रष्टा बनो; भोक्ता न न रहो, कर्ता न रहो। इससे जरा दूर हटो, इसके जरा पार हटो। रास्ते की भीड़ में अपने को एक न मानकर रास्ते के किनारे खड़ा हो जाना और रास्ते को चलते देखना, ऐसे जैसे हमें रास्ते से कुछ लेना-देना नहीं है—निर्पेक्ष, निष्पक्ष, उदासीन, तटस्थ, साक्षी मात्र।...और उनमनी सदा फलेगी; क्योंकि जैसे ही तुम मन से अलग हुए कि मन मरा।

तुम्हारे सहयोग से ही मन के विचार चलते हैं। तुम्हारी ही ऊर्जा उन्हें जीवन देती है। उनकी अपनी कोई ऊर्जा नहीं है, तुम्हीं अपने सहयोग से उनमें प्राण डालते हो, श्वासें डालते हो। तुम्हारी ही श्वासों से वे जीते हैं और तुम्हारे ही हृदय की धड़कन से

धड़कते हैं। और तुमने हाथ खींच लिया कि उनके आधार गए, कि वे ताश के पत्तों के महल की तरह गिर जायेंगे, उनके गिरने में क्षण-भर का भी विलम्ब नहीं होगा। वे तुम्हारे मेहमान हैं, तुम मेजबान हो। तुम उनका स्वागत कर रहे हो, इसलिए वे तुम्हारे मन में टिक गए हैं। जिस दिन तुम्हारा स्वागत तुम वापिस लौटा लोगे और उन्हें नमस्कार कर लोगे और कहोगे— बहुत हो गया! और हट जाओगे स्वागत से, उसी दिन मेहमान विदा होने शुरू हो जायेंगे! और तब आती है चित्त की उनमनी दशा। धीरे-धीरे विचार दूर होते जाते हैं, दूर और दूर... और मजा समझ लेना, जैसे-जैसे विचार दूर होते हैं, वैसे-वैसे परमात्मा करीब होता है।

जितने ज्यादा विचार तुम्हारे मन में हैं, उतनी ही परमात्मा से ज्यादा दूरी है; जितने कम विचार रह जायेंगे, उतनी ही कम दूरी। विचार का अनुपात परमात्मा से दूरी है। उसी अनुपात में दूरी होती है। जिस दिन विचार बिलकुल शून्य हो जाएंगे, उस दिन कोई दूरी न रह जाएगी।

संन्यास की एक ही प्रक्रिया है—उनमनी मुद्रा! इसलिए संन्यास को बाहर से आयोजित नहीं करना होता। क्या खायें, क्या पियें, कैसे उठें, कैसे बैठें— यह सब गौण है। असली बात भीतर घटती है, अंतरतम में।

उनमनि मुद्रा धार फकीरी मैं लई...। और जिसने ऐसी मुद्रा धारी, वही फकीर है, वही संन्यासी है।

ढूंढ्या सब संसार क अलख जगाइया...। उनमनि मुद्रा धार ली है। सारे संसार में ढूंढ़ती फिरती हूं, अलख जगाती हूं कि कहीं होओ तो मिल जाओ। द्वार-द्वार खटखटाती हूं, पुकार पर पुकार लगाती हूं...।

ढूंढ्या सब संसार क अलख जगाइया
हरि हां, वाजिद, वह सूरत वह पीव कहूं नहीं पाइया

लेकिन जिसे भीतर देखा है... बहुत सूरतें हैं बाहर, मगर जो झलक भीतर मिली है, वह सूरत कहीं दिखाई नहीं पड़ती। जिस प्यारे का थोड़ा-सा स्वाद भीतर मिला है उनमनि मुद्रा में, जो अचानक ज्योति की तरह छा गया था, हजार-हजार रंगों में फूट पड़ा था, फिर सारा संसार अलख जगा कर देख लिया है, न वैसा रंग कहीं मिलता, न वैसा रूप कहीं मिलता है। संसार फीका हो जाता है। संसार बिलकुल ही अर्थहीन हो जाता है। इतना भी अर्थ नहीं रह जाता संसार में कि इसे छोड़कर भागो।

जो छोड़कर भागते हैं, उनको अर्थ अभी कायम है। वे तो भय के कारण ही भाग रहे हैं। जिससे तुम भयभीत हो, उसमें तुम्हें बहुत अर्थ होगा, नहीं तो भयभीत भी क्या होओगे! जो आदमी रात छाया देखकर भाग जाता है, उसने छाया को सच माना होगा,



तभी तो भागा, सच न मानता तो भागता भी नहीं! इसलिए भगोड़ों को कुछ भी पता नहीं चलता है।

संन्यास भगोड़ापन नहीं है। अगर तुम भागे, तो एक ही सबूत दिया कि तुमने अभी भी छाया में सत्य माना है, अभी भी तुम्हें लगता है कि संसार में कुछ है।

जिसने उनमनि दशा धारी, और जिसने भीतर प्रीतम की थोड़ी-सी भी झलक पा ली— थोड़ी-सी, रंच-मात्र, एक किरण, झरोखा एक बार खुला और बिजली कौंधी... बस जीवन में रूपान्तरण का क्षण आ गया, आ गई सुहागरात!

ढूंढ्या सब संसार क अलख जगाइया।
हरि हां, वाजिद, वह सूरत वह पीव कहूं नहि पाइया ॥

न तो वह सूरत दिखाई पड़ती है, न वह प्यारा कहीं अनुभव में आता है। वह प्यारा तुम्हारे प्राणों के प्राण में छिपा है। यह रहस्य है कि जिसे हम खोज रहे हैं वह खोजने वाले में छिपा है, और शायद इसलिए हमारी सारी खोज व्यर्थ हो जाती है। दौड़-धाप होती बहुत, आपा-धापी होती बहुत, पहुंच कहीं भी नहीं पाते।

चाक हो सीनए-कौनैन तो खुल जाये राज
जिन्दगी दर्द है, और दर्द सरापाए-गजल

चाक हो सीनए-कौनैन....विश्व का सीना अगर खुले, तो खुल जाए यह राज....तो यह रहस्य तुम्हें पता चले— जिंदगी दर्द है और दर्द सरापाए-गजल...जिंदगी एक दर्द है, एक पीड़ा है, एक पीड़ा की गजल है, एक पीड़ा से भरा हुआ गीत है, एक दुखान्त नाटक है, इसमें सुख कहीं भी नहीं है।

सुख का आश्वासन देता है जगत, सुख मिलता नहीं। सुख का भरोसा दिलाता है, लेकिन सुख कभी हाथ नहीं आता। जितना तुम खोजते हो, उतना ही दूर होता चला जाता है। सुख बाहर मिल नहीं सकता, बाहर दुख है। सुख भीतर है। सुख स्वभाव है। सुख तुम्हारी निजता में है। सुख अपने घर लौट आने में है। सुख विचारों से मुक्त हो जाने में है। क्योंकि सुख शांति में है और विचार में अशांति है।

जब तें कीनो गौन भौन नहिं भावही...। कहते हैं वाजिद, जबसे गौना हो गया...। गांव में शादी होती है तो गौना हो जाता है, फिर गौने के कई वर्षों बाद.... गौना बचपन में हो जाता है, फिर वर्षों बाद विवाह रचता है, दूल्हा आता है, डोली उठती, भांवर पड़ती है। बड़ा प्यारा प्रतीक है, गांव का प्रतीक है। जैसे किसी लड़की का गौना हो गया, अब वह जानती है कि प्यारा कहीं है। अब जानती है कि सुनिश्चित प्यारा है, और आज नहीं कल प्यारे से मिलन भी होगा। लेकिन अभी देखी नहीं उसकी तस्वीर; कौन है, कैसा है, कुछ पता नहीं।

जब तें कीनो गौन भौन नहिं भावही... वाजिद कहते हैं : ऐसे ही तूने जो उनमनी दशा में एक झलक दिखा दी थी, गौना तो हो गया ! अब जगत में कुछ भाता नहीं, अब तेरी याद बहुत सताती है। झलक नहीं थी, तब तक याद में कोई बल भी न था। अब तो श्रद्धा है कि तू है, और अब दूरी नहीं सही जाती, अब दूरी बहुत छलती है !

ऐसा मेरा भी हजारों लोगों के साथ ध्यान का अनुभव है। जब तक किसी को ध्यान की झलक नहीं मिली, तब तक भी वह ध्यान के लिए प्रयास करता है, लेकिन उसके प्रयास आंशिक होते हैं। हो भी कैसे सकते हैं पूर्ण, जिसकी झलक ही नहीं मिली उसको हम पूरा-पूरा पुकारें भी कैसे ? लेकिन जब एक दफा झलक मिल जाती है, एकाएक, अनायास प्यारा पास से गुजर जाता है, उसके पांव की आवाज कानों में पड़ जाती है; बस, फिर उत्तप्त होती है अग्नि, फिर प्राण धू-धू कर जलते हैं ! इसको ठीक शब्द उपयोग किया है वाजिद ने; गांव के ग्रामीण आदमी हैं... जब तें कीनों गौन भौन नहिं भावही... अब कुछ ठीक नहीं लगता है।

थरथराता है, अब तलक खुशीदं
सामने तेरे आ गया होगा

यह सूरज अभी भी कंप रहा है; पता नहीं कब परमात्मा के सामने आ गया होगा, इसीलिए थरथराता है।

थरथराता है, अब तलक खुशीदं
सामने तेरे आ गया होगा

ऐसा ही भक्त फिर थरथराता है। उसे रोमांच होता रहता है। उसके भीतर अहिर्निशि पुकार उठती रहती है, एक ही पुकार—कि जो अभी बूंद की तरह मिला है वह अब पूर्ण की तरह मिल जाए ! जो अभी एक घूंट पिया है, उससे सरोबोर होने की आकांक्षा जगती है।

लज्जते-बाक़ी को ए जौंके फना ! रहने भी दे
कुछ तो बहे-इम्तियाजे-जानां चाहिए
एक-दो चुल्लू में बुझती है कहीं रिन्दों की प्यास
हर निगाहे-मस्ते-साक़ी सागरस्तां चाहिए
आर्जू-ओ-शौक तो है अंजुमन-दर-अंजुमन
अब तिरा जल्वा गुलिस्तां-दर-गुलिस्तां चाहिए

एक-दो घूंट से कहीं प्यास बुझी है, और बढ़ जाती है, और प्रज्वलित हो जाती है।

एक-दो चुल्लू में बुझती है कहीं रिन्दों की प्यास
हर निगाहे-मस्ते-साकी सागरस्तां चाहिए



अब तो हर निगाह तेरी ही निगाह हो जाए, हर निगाह से तेरे ही शराब का सागर बहने लगे, तब मिले तृप्ति तो शायद मिले।

एक दो चुल्लू से बुझती है कहीं रिन्दों को प्यास
हर निगाहे-मस्ते साक़ी सागरस्तां चाहिए
आर्जू ओ-शौक तो है अंजुमन-दर-अंजुमन
अब तिरा जल्वा गुलिस्तां-दर गुलिस्तां चाहिए

अब तो हर बगीचे में, हर बाग में, हर चहक में, हर पुलक में, सब ओर तेरा ही जल्वा हो, तेरा ही उत्सव हो, तब कुछ बात बने तो बने। पहले तो आदमी मांगता है, एक बूंद मिल जाए....। जब बूंद मिल जाती है, जब स्वाद लग जाता है, तब मांगता है कि अब सागर से कम में काम न चलेगा, अब तू पूरा मिले, पूरा-पूरा मिले तो ही काम चले !

जब तें कीनो गौन भौन नहिं भावही।
भई छमासी रैण नींद नहिं आवही।।
मीत, तुम्हारी चीत रहत है जीव कूं।
हरि हां, वाजिद, वो दिन कैसो होइ मिलौं हरि पीव कूं।।

अब तो बस एक ही धुन बजती है, एक ही राग छिड़ा—भई छमासी रैण नींद नहिं आवही...। अब कैसी नींद ! अब तो रात ऐसी हो गई जैसी छह महीने लम्बी हो ! अब तो रात काटे नहीं कटती।

साधारण आदमी इतना परेशान नहीं होता, चले जाता है। जिंदगी में धक्के खाते, रास्ते के किनारे कंकड़ बीनते, क्योंकि कंकड़ उसे हीरे-जवाहरात मालूम होते हैं। और छोटी-छोटी सफलताएं हैं, तहसीलदार से एस. डी. ओ. हो गया, एस. डी. ओ. से कलेक्टर हो गया, कलेक्टर से कमिश्नर हो गया, छोटी-छोटी सफलताएं हैं... और सोचता है मंजिल करीब आ रही है। चलता जाता है मस्ती में, चलता जाता है अहंकार की तृप्ति में। कहीं जा नहीं रहा है, कोल्हू का बैल है, न कहीं जाने वाला है न कहीं पहुंचने वाला है। कोल्हू का बैल कहीं पहुंचता थोड़ ही है, चलता दिन-भर है। सोचता वह भी होगा कि अब मंजिल करीब आई, अब मंजिल करीब आई....। मंजिल कैसे आएगी, गोल चाक में घूम रहा है ! मंजिल आनी कहां है, वहीं-वहीं घूम रहा है ! इसलिए कोल्हू के बैल की आंख पर पट्टियां बांध देते हैं, ताकि उसे दिखाई न पड़े। उसे दिखाई पड़ जाए तो शायद ठहर जाए, रुक जाए।

मैंने सुना है एक दार्शनिक, एक तार्किक, एक महापंडित सुबह-सुबह तेल खरीदने तेली की दुकान पर गया। विचारक था, दार्शनिक था, तार्किक था, जब तक तेली ने तेल तौला, उसके मन में यह सवाल उठा—उस तेली के पीछे ही कोल्हू का बैल चल रहा है,

तेल पेरा जा रहा है। न तो उसे कोई चलाने वाला है, न कोई उसे हांक रहा है, फिर यह बैल रुक क्यों नहीं जाता ? फिर यह क्यों कोल्हू पर तेल पेरे जा रहा है ?

जिज्ञासा उठी, उसने तेली से पूछा कि भाई मेरे, यह राज मुझे समझाओ, न कोई हांकता, न कोई कोल्हू के बैल के पीछे पड़ा है, यह दिन-रात चलता ही रहता, चलता ही रहता, रुकता भी नहीं !

उस तेली ने कहा : जरा गौर से देखो, उपाय किया गया है, उसकी आंख पर पट्टियां बंधी हैं। जैसे तांगे में चलने वाले घोड़े की आंख पर पट्टियां बांध देते हैं, ताकि उसे सिर्फ सामने दिखाई पड़े। इधर-उधर दिखाई पड़े तो झंझट हो, रास्ते के किनारे घास उगी है तो वह घास की तरफ जाने लगे, इस रास्ते की तरफ नदी की धार बह रही है तो वह पानी पीने जाने लगे। उसे कहीं कुछ नहीं दिखाई पड़ता, उसे सिर्फ सामने रास्ता दिखाई पड़ता है। इसलिए कोल्हू के बैल की आंख पर पट्टियां बांधी हुई हैं; उस तेली ने कहा।

विचारक तो विचारक, उसने कहा : वह तो मैंने देखा कि उसकी वजह से उसे पता नहीं चलता कि गोल-गोल घूम रहा है।

ऐसी ही आदमी की आंख पर पट्टियां हैं—संस्कारों की, सभ्यताओं की, संप्रदायों की, सिद्धांतों की, शास्त्रों; की बचपन से ही हम पट्टियां बांधनी शुरू कर देते हैं। हमारी शिक्षा और कुछ भी नहीं है आंखों पर पट्टियां बांधने का उपाय है—महत्वाकांक्षा की पट्टियां, कुछहोकर मरना... जैसे कोई कभी कुछ होकर यहां मरा है ! प्रधानमंत्री बनकर मरना...जैसे कि प्रधानमंत्री बनकर मरोगे तो मौत कुछ तुम्हारे साथ भिन्न व्यवहार करेगी, कि फिर तुम्हारी मिट्टी मिट्टी में नहीं गिरेगी और सोना हो जाएगी ! कुछ धन छोड़कर मरना, जैसे धन छोड़कर मरनेवाला किसी स्वर्ग में प्रवेश कर जाएगा ! कुछ करकर, नाम कमा कर मरना... ! तुम्हीं मर गए तो तुम्हारा नाम कितनी देर टिकेगा ! कितने लोग आए और कितने लोग गए, क्या नाम टिकता है, किसका नाम टिकता है ! सब पुंछ जाते हैं समय की रेत पर पड़े हुए चरण-चिह्न कितनी देर तक बने रहेंगे, हवा के झोंके आयेंगे और पुंछ जायेंगे, और हवा के झोंके न भी आएं तो दूसरे लोग भी इसी रेत पर चलेंगे, उनके पैरों के चिह्न कहां बनेंगे, अगर तुम्हारे चिन्ह बने रहे ! तो बड़े से बड़े नामवर लोग होते हैं और मिटते चले जाते हैं, और उनके नाम भूलते चले जाते हैं। सब धूल में समा जाते हैं ! इतिहास के पन्नों में कहीं-कहीं पाद-टिप्पणियों में छोटी-मोटी जगह नाम छूट जाएगा, मगर उसका भी क्या मूल्य है ! इतिहास की किताबें भी खो जाती हैं, जल जाती हैं, जल दी जाती हैं। आदमी कितनी सदियों से जी रहा है, इतिहास तो हमारे पास केवल दो हजार साल का है। और जैसे-जैसे इतिहास लम्बा होता



जाएगा, पुराना इतिहास छोटा होता जायेगा, क्योंकि नए को याद करें कि पुराने को ! इसका क्या मूल्य है ? अनंत काल में इसका क्या मूल्य है !

मगर आंख पर पट्टियां बांध देते हैं ! प्रथम होकर बताना, छोटे बच्चे को कहते हैं; जहर डालते है उसमें ! राजनीति भरते हैं उसके प्राणों में।

उस विचारक ने कहा : पट्टियां तो मुझे दिखाई पड़ती हैं ठीक वैसी ही जैसी हर आदमी की आंख पर पट्टियां बंधी हैं, मगर फिर भी मैं यह पूछता हूं कि पट्टियां तो बंधी हैं, कोई हांक तो नहीं रहा है, यह चलता क्यों है ? रुक क्यों नहीं जाता ? और तेरी तो पीठ है इसकी तरफ।

उसने कहा : जरा गौर से देखो, मैंने इसके गले में एक घंटी बांध दी है, जब तक इसकी घंटी बजती रहती है, मैं समझता हूं कि बैल चल रहा है। जैसे ही इसकी घंटी बजनी रुकती है, उछल कर मैं जाकर इसको हांक देता हूं। इसको कभी पता नहीं चल पाता कि हांकनेवाला पीछे है या कि नहीं। इधर घंटी रुकी और मैंने हांका। यह कोड़ा देखते हो बगल में रखा है, यहीं बैठे-बैठे फटकार देता हूं तो भी चल पड़ता है।

विचारक तो विचारक, उसने कहा : यह भी मैं समझा। घंटी भी सुनाई पड़ रही है मुझे। यह भी तूने खूब तरकीब की ! लेकिन मैं यह पूछता हूं कि यह बैल खड़ा होकर और गला हिलाकर घंटी तो बजा सकता है !

तेली ने कहा : धीरे-धीरे आहिस्ता बोलो, कहीं बैल सुन ले तो मेरी मुसीबत हो जाए। तुम जल्दी अपना तेल लो और रास्ते पर लगो। बैल न सुन ले कहीं तुम्हारी बात। यह बैल इतना तार्किक नहीं है, बैल सीधा-साधा बैल है। यह कोई दार्शनिक नहीं है, यह इतना गणित नहीं बिठा सकता कि खड़े होकर गला हिलाने लगे। यह तो सिर्फ चालबाज आदमी ही कर सकता है !

साधारण आदमी तो कोल्हू का बैल है, चलता जाता है। उसकी आंखों पर पट्टियां बंधी हैं ! उसे ठीक-ठीक दिखाई नहीं पड़ता कि गोल घेरे में चल रहा है, नहीं तो रुक जाए। तुम वही करते हो सुबह रोज, वही दोपहर, वही सांझ, वही रात, जो तुम सदा करते रहे हो। तुम्हें कभी खयाल में आया कि तुम एक वर्तुल में घूम रहे हो ! वही क्रोध, वही काम, वही लोभ, वही मोह, वही अहंकार...। तुम्हारे सुख और तुम्हारे दुख, सब पुराने हैं। वही तो तुम कितनी बार कर चुके हो, और उन्हीं की तुम फिर मांग करते हो, फिर-फिर ! तुम गोल वर्तुल में घूम रहे हो और सोचते हो कि तुम्हारी जिंदगी यात्रा है। जरा एक वर्ष का अपना हिसाब तो लगाओ, जरा डायरी तो लिखनी शुरू करो कि मैं रोज-रोज क्या करता हूं; और चार-छह महीने में तुम खुद ही चकित हो जाओगे। यह जिंदगी तो कोल्हू के बैल की जिंदगी है! यह तो मैं रोज ही रोज करता हूं वही—

वही झगड़ा, वही फसाद, फिर वही दोस्ती, फिर वही दुश्मनी....। तुम्हारे संबंध, तुम्हारा जीवन, तुम्हारे रंग-ढंग, सब वर्तुलाकार हैं। इसलिए तुम्हारी जिंदगी में कोई निष्कर्ष आनेवाला नहीं है। तुम कहीं पहुंचेगे नहीं। तुम चलते-चलते मर जाओगे, और फिर किसी गर्भ में पैदा होकर चलने लगोगे। इसलिए हमने इस वर्तुलाकार चक्कर का ही नाम संसार दिया है। संसार शब्द का अर्थ होता हैं : चाक, जो चाक की तरह घूमता रहे ! तुम्हारी जिंदगी एक-चाक की तरह घूम रही है। इसलिये ज्ञानी पूछते हैं इस आवागमन से छुटकारा कैसे होगा, इस चाक से हमारा छुटकारा कैसे होगा? यह जो संसार का चक्र है, जिसमें हम उलझ गये हैं, इसको हम कैसे छोड़ें ?

कठिनाई तो तब शुरू होती है, जब तुम्हारी जिंदगी में थोड़ी-सी झलक मिलती है राह की। आंख तुम्हारी थोड़ी-सी खुलती है, तुम्हारी पट्टी थोड़ी-सी सरकती है आंख पर बंधी। तुममें थोड़ा होश आता है। क्योंकि तुम्हारे गले में भी घंटियां बंधी हैं और घंटियां बजती रहती हैं। तुमने कभी ख्याल नहीं किया होगा, तुम्हारे गले में भी घंटियां बंधी हैं। जरा ही घंटियां बजनी बंद हुईं, कि कोई कोड़ा फटकारता है ! समझो कि तुम एक महीना बीत गया और पहली तारीख को घर तनख्वाह ले कर न आए, पत्नी ने कोड़ा फटकारा ! वह घंटी है ! वह गले में बंधी है। बजाई नहीं तुमने.... कि क्या मामला है ? तनख्वाह कहां है ? कहां गवां कर आ गए ! महीने-भर कहां रहे, क्या किया ? तुम्हारे गले में भी घंटियां बंधी हैं। अगर तुम जरा ऐसा-वैसा किए, समाज की धारणा के प्रतिकूल किए, कि बस कोड़ा किसी ने फटकारा, किसी ने तुम्हें मुसीबत में डाला।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं : संन्यास तो लेने की बड़ी आतुरता है, मगर गैरिकवस्त्र पहनकर गांव में जायेंगे तो बड़ी मुसीबत होगी। मुसीबत क्या होगी ? लोग कोड़े फटकारेंगे, लोग कहेंगे, यह तुम्हें क्या हो गया ! लोग चाहते हैं तुम ठीक वैसे रहो जैसे वे हैं, जरा भी भिन्न नहीं। तुम जरा ही भिन्न हुए कि वे सब बेचैन हो जाते हैं। उनकी बेचैनी का कारण क्या है ? उनकी बेचैनी का कारण यह है कि तुम वर्तुल से बाहर होने की कोशिश कर रहे हो। हम सब कोल्हू के बैल बने, और तुम मुक्त होने की चेष्टा में लगे, चलो वापिस ! उनकी बर्दाश्त के बाहर हो जाता है। यह बर्दाश्त नहीं किया जा सकता कि हमारे जैसे हड्डी-मांस के आदमी...तुम इतना साहस दिखला रहे हो ! तुम्हें मजा चखा कर रहेंगे। तुम्हें वापिस कोल्हू में जोतकर रहेंगे !

जब भी कोई एक व्यक्ति गुलामों में से मुक्त होने लगे तो सबसे ज्यादा नाराज बाकी गुलाम होते हैं। जब कोई गरीब आदमी अमीर होने लगे तो सबसे ज्यादा नाराज उसके आसपास के गरीब होते हैं। क्योंकि उनके अहंकार को चोट लगती है, उन्हें पीड़ा होती है कि हम न कर पाए और यह आदमी कर रहा है ! हम से न हो सका तो हम कमजोर,



तो हम नपुंसक, और यह आदमी पुरुषार्थ दिखला रहा है ! इस बात को स्वीकार नहीं किया जा सकता। इस आदमी को पाठ पढ़ाना ही पड़ेगा।

और फिर उनकी भीड़ है, वे तुम्हें पाठ पढ़ाना शुरू कर देते हैं। उसने कोड़े फटकारने शुरू किए ! तुम्हें घंटी बजानी पड़ेगी ! जैसे सबकी घंटी बज रही है, वैसे तुम्हारी भी बजनी चाहिए। और जैसे सब गोल वर्तुल में घूम रहे हैं, वैसे ही तुम्हें भी घूमना चाहिए। समाज ने हर बात का हिसाब कर रखा है। छोटी-छोटी बात का, तुम्हारे बाल कैसे कटना चाहिये; यह भी समाज ने हिसाब कर रखा है। उतनी भी तुम्हें स्वतंत्रता नहीं है....उतनी भी तुम्हें स्वतंत्रता नहीं है ! तुम्हें कपड़े कैसे पहनना चाहिए, वह भी समाज ने इन्तजाम कर रखा है। कपड़े पहनने तक की तुम्हें आजादी नहीं है !

और आजादी की बातें चलती हैं, बड़ी बातें चलती हैं—ऐसी आजादी, वैसी आजादी...और तुम चौबीस घंटे गुलाम हो। कहां की आजादी ! आजादी सिर्फ एक थोथा शब्द है, जिसको हम दोहराते रहते हैं तोतों की तरह; और बहुत दिन दोहराने के कारण खुद ही भरोसा कर लेते हैं। जरूर आजादी होगी, क्योंकि सभी लोग आजादी की बातें कर रहे हैं। आजादी कहां है ? तुम जरा सा भिन्न होकर देखो !

इस पृथ्वी पर आजादी उस दिन होगी, जिस दिन हम व्यक्ति को भिन्न होने की स्वतंत्रता देंगे। तुम्हारे सारे साथी अगर मस्जिद जाते हैं, तुम जरा मंदिर जाकर देखो।

यहां कुछ मुसलमान मित्रों ने संन्यास ले लिया। उनकी बड़ी मुसीबत हो गई है। बाकी मुसलमान उनको मार डालने की धमकी देते हैं, जिंदा न रहने देंगे। तुम काफिर हो गए ! उन्होंने कुछ बुरा नहीं किया है, किसी हत्या नहीं की है, किसी की चोरी नहीं की है, किसी को धोखा नहीं दिया है, सिर्फ संन्यास लिया है। और संन्यास लेने से न कोई हिन्दू होता, न कोई मुसलमान होता है, न कोई ईसाई होता हैं; संन्यास से तो सिर्फ उन्होंने एक दृढ़ किया है, निश्चय अपने मन में कि उनमनि मुद्रा को धारेंगे, ध्यान में प्रवेश करेंगे। उससे किसी का नुकसान नहीं हो रहा है।

अब यह बड़े आश्चर्य की बात है, चोरी करो तो समाज तुम्हें स्वीकार कर लेता है कि कोई हर्जा नहीं, क्योंकि वे सब चोर हैं। बेईमानी करो तो भी ठीक है, झूठ बोलो तो भी चलेगा, लेकिन ध्यान, संन्यास...नहीं चलने दिया जाएगा। हां, सब मस्जिद जाते हैं, तुम भी मस्जिद जाओ और सब गुरुद्वारा जाते हैं तो तुम भी गुरुद्वारा जाओ।

मुझे पंजाब से पत्र आते हैं सिक्ख संन्यासियों के कि हम बड़ी मुसीबत में हैं, क्योंकि बाकी सिक्ख हमें बर्दाश्त नहीं करते। हमने उनका कुछ बिगाड़ा नहीं है। हम ठीक वैसे के वैसे हैं। हम पहले से बेहतर हो गए हैं। अब हम गुरुद्वारा जाते हैं तो हमारा गुरुद्वारा जाना सप्राण है। अब हम गुरुद्वारे में एक आनंदमग्न भाव को उपलब्ध होते हैं। मगर

गैरिकवस्त्र कष्ट दे रहे हैं ! माला क्यों ? तो तुम सिक्ख नहीं रहे !

हिन्दू की कठिनाई है, जैन की कठिनाई है। सब भीड़ें अपने व्यक्ति को पंजे के बाहर नहीं होने देना चाहतीं। तुम पंजे के बाहर हुए कि अड़चन शुरू हुई। भीड़ तुम्हें घेर लेगी कि वापस लौटो। जैसे हम सब हैं, वैसे ही रहो। छोटी-छोटी बात पर नियम हैं—बाल कितने काटो, कैसे काटो, कपड़े कैसे पहनो, कैसे उठो-बैठो। तुम अपनी जिंदगी को जरा विचार करना कि तुम्हारी स्वतंत्रता कितनी है। और तुम पाओगे—नकार है स्वतंत्रता के नाम पर, कोई स्वतंत्रता नहीं है।

जिंदगी में हम ऐसे ही जीते रहते हैं। हमें पता भी नहीं चलता कि जिंदगी क्या होने के लिए थी, जिंदगी क्या हो सकती थी, जिंदगी कैसा सौभाग्य अपने में लिए थी। यह तो पता उन्हें ही चलता है, जिन्हें थोड़ी झलक मिलनी शुरू होती है। मगर झलक के साथ एक आनंद भी आता है स्वतंत्र होने का और एक अड़चन भी आती है। एक आनंद भी आता है कि प्रभु के निकट होने लगे और एक महान पीड़ा भी आती है कि अब बूंद से मन नहीं भरता।

जब तें कीनो गौन भौन नहिं भावही।
भई छमासी रैण नींद नहिं आवही॥
मीत तुम्हारी चीत रहत है जीव कूं।

अब एक ही चिंता लगी है, एक ही चित्त में सतत धार लगी है, एक ही स्मरण है, एक ही ध्यान—प्यारे का, मीत, मित्र का। मीत तुम्हारी चीत रहत है जीव कूं।

...बस तुम्हारे में ही ध्यान लगा है—और मिलो, और मिलो, पूरे मिलो !

जब तक तुम्हें परमात्मा की कोई किरण नहीं मिली, तब तक तुम अपनी अमावस की रात में ही चले जा रहे हो, तुम्हें बोध भी नहीं है। किरण मिलेगी, प्रभात की पहली किरण तो तुम्हें याद पड़ेगा कि कैसे अंधेरे में जिये ! और अब प्रकाश की बड़ी आकांक्षा जगेगी, अभीप्सा जगेगी। इसीलिए लोग सत्संग में आने से डरते हैं, भयभीत होते हैं। भय क्या है ? भय यही है कि कहीं कोई किरण न दिखाई पड़ जाए, अन्यथा फिर हम कैसे जियेंगे। फिर किरण की तलाश शुरू करनी पड़ेगी।

हरि हां, वाजिद, वो दिन कैसो होइ मिलौं हरि पीव कूं।... अब तो बस एक ही गूंज उठती रहती है कि वह दिन कैसा होगा, वह दिन कब होगा, जब पूरा-का-पूरा मिलन हो जाएगा। जरा सी झलक दे गए थे, जरा सा झरोखा खुला था, जरा सी हवा आई थी तुम्हारी, और ऐसे आनंदमग्न कर गई !

वहां पीछे मेरे एक संन्यासी एडवोकेट गोरे ( स्वामी सत्यप्रेम तीर्थ ) बैठे हैं। पुराने समाज सेवी हैं। एक मिनिस्टर को मिलने दो दिन पहले गए, पुराने मित्र हैं मिनिस्टर के।



मिनिस्टर ने पूछा, कि आपको संन्यास लेने से क्या मिला ? और उन्हें कुछ मिला है, उनकी जिन्दगी रूपान्तरित हो गई है। वृद्ध हैं, लेकिन जवानों की मस्ती फीकी पड़ जाए इतने मस्त हैं ! तो उन्होंने कहाः मस्ती मिली, आनंद मिला। और मिनिस्टर ने क्या कहा ? कि मस्ती आनंद ठीक, मस्ती आनंद से धर्म का क्या संबंध है ? मैं पूछता हूं तुम्हें मिला क्या संन्यास से ? पता नहीं...।

मिनिस्टर सोचता है कि अगर मिनिस्ट्री मिलती तो कुछ मिलता। मिला क्या ? मस्ती मिली, आनंद मिला, यह तो ठीक है। जैसे मस्ती और आनंद कोई चीज ही नहीं ! शायद सोचते हों, धन मिला, पद मिला, प्रतिष्ठा मिली ?

लोग भूल ही गए हैं कि इस जीवन का सबसे बड़ा धन आनंद है। और उन्होंने कहा कि आनंद का धर्म से क्या संबंध, मस्ती का क्या संबंध ? ये कोई धर्म है !

धर्म का किस बात से संबंध है, रामायण पढ़ लेने से, गीता दोहरा लेने से ? अगर रामायण पढ़ लेने से धर्म का संबंध है, तो फिर तोते भी धार्मिक हो जायेंगे ! रामायण से संबंध नहीं है धर्म का; और अगर रामायण से कभी संबंध जुड़ता है धर्म का तो तभी जुड़ता है, जब रामायण पढ़ने से किसी को मस्ती मिलती है। तुलसीदास का वचन है : स्वान्तः सुखाय रघुनाथ गाथा...। जब भीतर सुख का झरना फूट पड़ता है—स्वान्तः सुखाय...। मस्ती छा जाती है। रोयें-रोयें में शराब आ जाती है, एक सुरूर आ जाता है।

गोरे (सत्यप्रेम) ने ठीक कहाः मस्ती मिली। लेकिन शायद मिनिस्टर सोचते हों, गणेश जी के दर्शन हुए ? गणेश जी के दर्शन से क्या होगा ? गणेश जी मिल भी जाएं तो करोगे क्या ? महाराष्ट्रियन मिनिस्टर हैं, जरूर गणेश जी का दर्शन सोचते होंगे कि गणेश जी के दर्शन हुए, नहीं हुए। यह कोई धर्म है ! स्वर्ग में कोई सीट रिजर्व हुई, नहीं हुई; यह कोई धर्म है ! कोल्हू के बैल...! अगर कोल्हू का कोई बैल छूट जाए, मुक्त हो जाए, जंगल का सौन्दर्य मिल जाए उसे, मस्त होकर नाचे जंगलों में, स्वतंत्रता से आचरण करे, विचरण करे, और फिर लौट आए कोल्हू के बैलों के पास, तो वे पूछेंगे : मिला क्या ? घास मिलती है ? घंटी बजती है ? सोने की घंटी मिली ? अच्छा मालिक मिला ? मिला क्या ? और वह अगर बैल कहे—मस्ती मिली, स्वतंत्रता मिली, आनंद मिला, तो कोल्हू के बैल कहेंगे : इससे क्या मतलब, इसको करोगे क्या ? घंटी कहां है सोने की ? कोई मालिक मिला ऐसा, गणेश जी जैसा ! पाया क्या है तुमने ?

अंधे लोगों की अंधी दुनिया है। अगर तुम्हें परमात्मा भी मिल जाए, तो भी वे परमात्मा से राजी न होंगे। वे तुमसे कुछ अंधेरे की बात पूछेंगे। वे तुमसे कुछ पूछेंगे, जिसको वे सम्पदा समझते हैं, वह मिला कि नहीं मिला। इस कारण इस देश की सरकार मुझे धार्मिक मानने को राजी नहीं है, और यहां जो घट रहा है यह धर्म नहीं है। क्योंकि

मस्ती, आनंद, यह कैसा धर्म? धर्म के नाम पर तो लोगों की मस्ती खो जाती है। वे उदास हो जाते हैं, जराजीर्ण हो जाते हैं, सूख जाते हैं। मुस्कुराहट उनकी विलीन हो जाती है। जीवन का नृत्य सदा के लिए उनका साथ छोड़ देता है। जब वे मुर्दों की भांति बैठ जाते हैं। तब लोग उनको कहते हैं—ये धार्मिक व्यक्ति....!

मीत तुम्हारी चीत रहत हैं जीव कूं।
हरि हां, वाजिद, वो दिन कैसों होइ मिलौं हरि पीव कूं॥

वह दिन बड़ी मस्ती का दिन होगा। वह दिन बड़े आनंद का दिन होगा। गोरे (सत्यप्रेम) ने ठीक कहा।

कहिये सुणिये राम और नहिं चित्त रे।... कहता हूं तो राम, सुनता हूं तो राम। और नहीं चित्त रे...और कहीं मेरा ध्यान नहीं जाता।

हरि-चरणन को ध्यान सुधरिये नित्त रे ...और तुमसे भी मैं यही कहता हूं, वाजिद कहते हैं, कि बस हरि के चरणों में ही चित्त को लगा दो ...चित्त हरि के चरणों में लगा दो।

जीव विलंब्या पीव दुहाई राम की।

और वाजिद कहते हैं, मैं तो रम गया राम में।....लेकिन यह भक्तों की सदा की घोषणा रही—दुहाई राम की! इसमें मेरी कोई पात्रता नहीं है, इसमें मेरा कोई गुण नहीं है। दुहाई राम की...। राम की कृपा! मैं तो अपात्र था, मुझे छुआ और पात्र बना दिया। मैं तो मिट्टी था, मुझे देखा और अमृत कर दिया। मैं तो लोहा था, आए, पारस पत्थर की तरह कर दिया, दरस-परस हो गया स्वर्ण! दुहाई राम की... ! भक्त कभी क्षण-भर को भी यह खयाल नहीं लाता कि मेरे कारण जीवन में कुछ हो रहा है या हो सकता है....उसकी अनुकम्पा से होता है। उसकी अनुकंपा अपार है! मेरी अपात्रता अपार है, उसकी अनुकंपा अपार है। मेरा अंधेरा भयंकर है, मगर उसकी रोशनी कैसे भी अंधेरे को तोड़ने में समर्थ है।

जीव विलंब्या पीव दुहाई राम की।...मैं अगर प्यारे में रम गया हूं तो दुहाई राम की!

हरि हां, सुख-संपत्ति वाजिद कहो किस काम की...।

और अब न सुख में कोई मूल्य है, न संपत्ति में कोई मूल्य है। अब वे सारे सुख और सम्पत्तियां, आंखों की पट्टियां और गले की घंटियां हो गए! अब उनका कोई मूल्य नहीं है।

तुमहि विलोकत नैण भई हूं बावरी।

तुम्हें ही देखते-देखते एक पागलपन छा गया है, एक बेहोशी आ गई है। तुमहि विलोकत नैण भई हूं बावरी।...और जब तक तुम पागल ही न हो उठो देखते-देखते



परमात्मा को, तब तक रुकना मत। पागल होना ही पूर्णता है। बावरा हो जाना ही पूर्ण आहुति है!

न सोजे-गम को समझा और न दर्दे-दिल को पहचाना
कहां दुनिया ने हुस्नो-इश्क की महफिल को पहचाना?
रहा ना-आश्नां जिनका तसव्वर रहनुमाओं से
उन्हीं गमगुश्तगाने-शौकने मंजिल को पहचाना
मजाले-हक-शनासी है यहां किसको, मगर वाइज!
तुझे देखा तो हर अन्देशए-बातिलको पहचाना
हमें पहचान लो, ऐ रहखाने! वादिए-उल्फत।
कि हमने नक्श-पाए-रहबरे-कामिल को पहचाना।

जिसने भक्त की पीड़ा को नहीं समझा, जिसने भक्त के रुदन को नहीं समझा, जिसने प्रेम की जलन को नहीं समझा, आग को नहीं समझा, उसने कुछ भी नहीं समझा।

न सोजे-गम को समझा और न दर्दे-दिल को पहचाना
कहां दुनिया ने, हुस्नो-इश्क की महफिल को पहचाना?

यह भक्त की दुनिया तो हुस्न की और इश्क की दुनिया है। हुस्न यानी उस प्यारे का सौन्दर्य, और इश्क यानी भक्त के हृदय में जलती हुई आग।

न सोजे-गम को समझा और न दर्दे-दिल को पहचाना
कहां दुनिया ने हुस्नो-इश्क की महफिल को पहचाना?

इसलिए दुनिया हुस्न और इश्क की महफिल को नहीं पहचान पाती। तुम भी हुस्न और इश्क की महफिल में बैठे हो, दुनिया तुम्हें नहीं पहचान पाएगी। मैं यहां दीवाने पैदा कर रहा हूं....दुनिया तुम्हें नहीं पहचान पाएगी।

रहा ना-आश्नां, जिनका तसव्वर रहनुमाओं से
उन्हीं गमगुश्तगाने-शौकने मंजिलको पहचाना

वे ही लोग पहुंचे हैं मंजिल तक, जो दीवाने हैं, पागल हैं! इतने पागल हैं कि शास्त्र भी छोड़ दिए उन्होंने, शास्ता भी छोड़ दिए उन्होंने। पथप्रदर्शकों की भी न सुनी। चल पड़े अपने प्रेम की ज्योति से, अपने प्रेम की आग से ही जल पड़े।

रहा ना-आश्नां, जिनका तसव्वर रहनुमाओं से। नेताओं के पीछे जो नहीं चले, रहनुमाओं के पीछे जो नहीं चले, जो अपरिचित ही रहे नेताओं से।

रहा ना-आश्नां, जिनका तसव्वर रहनुमाओं से
उन्हीं गमगुश्तगाने-शौकने मंजिल को पहचाना

उन्हीं भूले-भटके प्रेमियों ने, उन्हीं पागलों ने मंजिल को पहचाना है, वे ही मंजिल तक पहुंचे हैं।

मजालेहक-शनासी है यहां किसको, मगर वाइज !
तुझे देखा तो हर अन्देशए-बातिल को पहचाना

और अगर तुम देखोगे तथाकथित त्यागियों, साधु-संन्यासियों को, तो ज्यादा-से-ज्यादा तुम्हें जो दिखाई पड़ेगा, वह इतना ही दिखाई पड़ेगा—हिसाब-किताब, गणित, होशियारी, चालाकी, सौदा, दुकानदारी...। जिनको तुम तथाकथित रूप से त्यागी और महात्मा समझते हो, वे अगर त्याग भी कर रहे हैं तो एक सौदे की तरह ! परमात्मा से कुछ पाना है तो स्वभावतः उसकी कीमत चुका रहे हैं, अपने को पात्र बना रहे हैं।

तुझे देखा तो हर अन्देशए-बातिल को पहचाना
हमें पहचान लो, ऐ रहरवाने ! वादिए-उल्फत !

प्रेमी कहते हैं : पहचानना हो तो हमें पहचान लो, हमें देख लो।

हमें पहचान लो, ऐ रहरवाने ! वादिए-उल्फत
कि हमने नक्श-पाए-रहबरे-कामिलको पहचाना

कि हमने परमात्मा के चरण-चिह्न पहचाने। मगर वे चरण-चिह्न उन्हीं को दिखाई पड़ते हैं, जो पागल होने की क्षमता रखते हैं।

तुमहि बिलोकत नैण भई हूं बावरी।
झोरी डंड भभूत पगन दोउ पांवरी॥

लगा ली है भभूत तुम्हारे ही प्रेम की। झोली ले ली है तुम्हारी ही आकांक्षा की। पैरों में खड़ाऊं डाल ली हैं, तुम्हारी खोज के लिए चल पड़ी हूं हाथ में डंडा लेकर।

झोरी डंड भभूत पगन दोउ पांवरी॥
कर जोगण को भेष सकल जग डोलिहूं।

और प्रेमिका बनकर, विरहिणी बनकर, जोगन बनकर... कर जोगण को भेष सकल जग डोलिहूं। सारे जगत में डोलूंगी।

वाजिद, ऐसो मेरो नेम राम मुख बोलिहूं॥

मगर एक कसम खा ली है कि तुमसे मिल कर रहूंगी, तुमसे बोलकर रहूंगी। तुमसे आमना-सामना कर कर रहूंगी। तुम्हारे गले में बांहें डालकर रहूंगी।....एक अर्थ, और दूसरा अर्थ : वाजिद ऐसो मेरो नेम राम मुख बोलिहूं। कि अपने मुंह से, सिवाय तुम्हारे नाम के कुछ भी न बोलूंगी। भटकती रहूंगी सारे संसार में, पुकारती रहूंगी तुम्हें ही और तुम्हें ही...। पिय-कहां, पिय-कहां... जैसा पपीहा पुकारता और टेरता, ऐसी दीवानी होकर तुम्हें टेरती हुई घूमूंगी।



उन्हें नकाब उठाना भी हो गया दुश्वार
कुछ इस तरह से निगाहों ने इजदहाम किया
रहे-तलब में कहां इम्तयाजे-दैरो-हरम
जहां किसी ने सदा दी, वहीं कयाम किया
दिले-रविश को तेरे इन्तजार ने ऐ दोस्त !
चिरागे-सुबह किया आफताबे-शाम किया

उन्हें नकाब उठाना हो गया दुश्वार
कुछ इस तरह से निगाहों ने इजदहाम किया

भक्त आंख ही आंख हो जाता है। उसके सारे शरीर पर आंखें उग आती हैं ! क्योंकि उसकी दर्शन की आतुरता ऐसी है। आंखों की भीड़ इकट्ठी हो जाती है। उसका सारा जीवन आंख ही आंख बन जाता है ! उन्हें नक़ाब उठाना भी हो गया दुश्वार...। और जब इतनी आंखों की भीड़ प्रेमी पर पड़ेगी, प्रेयसी पर पड़ेगी, नकाब उठाना भी मुश्किल हो जाएगा।

उन्हें नकाब उठाना भी हो गया दुश्वार
कुछ इस तरह से निगाहों ने इजदहाम किया
रहे-तलबमें कहां इम्तयाजे-दैरो-हरम

प्यारे की तलाश में कहां खबर रही मंदिरों की और मस्जिदों की। भूल गए काबा और कैलाश !

रहे-तलबमें कहां इम्तयाजे-दैरो-हरम
जहां किसी ने सदा दी, वहीं कयाम किया

और जहां किसी ने उसका नाम लिया, वहीं झुक गए। जहां उसकी याद आ गई, वहीं झुक गए। वहीं पवित्र-स्थल आ गया, वहीं काबा हो गया। जहां माथा टेका, वहीं काबा हो गया; जहां पूजा की, वहीं काशी हो गई।

दिले-रविश को तेरे इन्तजार ने ऐ दोस्त !
चिरागे-सुबह किया आफताबे-शाम किया

हर घड़ी उसी की याद में हो जाए... हो जाती है। उनमनि मुद्रा से शुरू करो, चित्त शून्य करने से शुरू करो। चित्त की शून्यता में अपने-आप उसकी पुकार उठने लगती है, उसका नाद गूंजने लगता है।

सूर कमल वाजिद न सुपने मेल है।
जरै द्यौस अरु रैण कड़ाई तेल है॥
हमही में सब खोट दोष नहिं स्याम कूं।

हरि हां, वाजिद, ऊंच नीच सों बंधे कहो किहिं काम कूं ॥
सूर कमल वाजिद न सुपने मेल है।...

सूर्य और कमल जब तक मिलें नहीं, तब तक कमल खिलता नहीं है। लेकिन हमारी हालत ऐसी है, वाजिद कहते हैं, जैसे सूरज और कमल का मेल न हो, सपने में भी मेल न हो। इसलिए हम खिल नहीं पाते, क्योंकि हमारा सूरज रोशनी नहीं बरसाता।

सूर कमल वाजिद न सुपने मेल है।

हमारी हालत ऐसी हो गई है, जैसे कमल को सपने में भी सूरज न मिले। सपने में भी तुम मिल जाओ तो हम खिल जाएं। झूठे भी तुम मिल जाओ तो हम खिल जाएं। अगर तुम मिलो तो ही खिलें। ख्याल रखना, भक्त की सारी जीवन-व्यवस्था उसको प्रसाद पर है! सूरज उगे तो कमल खिले!

जरै द्यौस अरु रैण कड़ाई तेल है।...

और जब तक तुम न मिलो, तब तक दिन भी हम जल रहे हैं और रात भी हम जल रहे हैं। हमारी जिंदगी ऐसी हो गई है, जैसे कोई तिल में से तेल निचोड़ रहा हो। हमारी जिंदगी निचुड़ रही है, हम पीसे जा रहे हैं!

जरै द्यौस अरु रैण कड़ाई तेल है।
हमहीं में सब खोट दोष नहिं स्याम कूं ॥

और जानते हैं, शिकायत नहीं कर रहे हैं—हमहीं में सब खोट....अगर कुछ भूल है तो हमारी है। हमहीं में सब खोट दोष नहिं स्याम कूं—तुम्हारा कोई कसूर नहीं है....। हमारी खोट क्या है? हमारी खोट यह है—

हरि हां, वाजिद, ऊंच नीच सों बंधे कहो किहि काम कूं—हम ऊंचे-नीचे की भावना से बंधे हैं, यही हमारी खोट है। यहां न कोई ऊंचा है न कोई नीचा, न कोई ब्राह्मण न कोई शूद्र, न कोई हिन्दू न कोई मुसलमान, न कोई पुरुष न कोई स्त्री।...सब ऊपर के खेल हैं। न कोई धनी न कोई गरीब, न कोई सफल न कोई असफल—यह सब ऊपर के खेल हैं। भीतर तो एक ही विराजा है। और भीतर हम सब उसी एक से जुड़े हैं, संयुक्त हैं। इसलिए जितने हमने भेद कर लिए हैं खड़े, उन्हीं भेदों के कारण परमात्मा से हमारा सपने में भी मेल असम्भव हो गया है। और जब तक न मिले परमात्मा, जब तक उसका सूरज न उगे, तब तक हमारा कमल खिलेगा नहीं।

फर्क ख्याल रखना, योगी, तपस्वी कोशिश करता है अपने सहस्रदल कमल को खिला लेने की—अपने ही बल से, अपने ही संकल्प से। भक्त कहता है—उगोगे तुम, होगी प्रभात, खिलेगा कमल, मेरे किए क्या होगा! मुझमें तो खोट-ही-खोट भरी है। और बड़ी-से-बड़ी खोट तो यह है कि मैं भेद से मुक्त नहीं हो पाता, मुझे भेद दिखाई ही पड़ता



रहता है। किसी को देखता हूं बुद्धिमान, किसी को बुध्दू। किसी को देखता हूं अच्छा, किसी को देखता हूं बुरा।

जरा समझना, खोट बड़ी महत्वपूर्ण पकड़ी है वाजिद ने। हमारे जीवन में हमने भेद कर रखे हैं—भेद पर भेद, भेदों में भेद, पर्त-पर्त भेद समा गए हैं! कब तुम देखोगे अभेद से? कब तुम्हें सिर्फ वही दिखाई पड़ेगा! कब तुम भूलोगे सुन्दर-असुन्दर, बुद्धि-अबुद्धि के भेद! कब तुम देखोगे एक ही चैतन्य, एक ही जीवन का प्रसार? कब तुम छोटी-छोटी लहरों के अन्तरों से बचोगे और एक ही सागर को सबके भीतर समाया देखोगे! जिस दिन यह घटना घट जायेगी—अभेद, अद्वैत, उसी क्षण सूरज उग आएगा। सूरज उगा ही हुआ है, भेद ने तुम्हारी आंखों पर पर्दा डाल दिया है। मगर कितने भेद हमने खड़े कर रखें हैं! अगर हम अपने भेदों का हिसाब लगायें तो बड़ी आश्चर्यजनक अवस्था है!

इस देश में, जिसको धार्मिक होने की भ्रांति हैं, इतने भेद हैं जितने दुनिया के किसी दूसरे देश में नहीं हैं। और धार्मिक होने की भ्रांति है इस देश को! अगर भेद इतने हैं, तो सबूत है कि तुम धार्मिक नहीं हो। भेद खबर दे रहा है...अद्वैत की बातें चल रही हैं!

शंकर के जीवन में उल्लेख है, कि शंकर सुबह-सुबह नहा कर ब्रह्ममुहूर्त में काशी के गंगा-घाट पर सीढ़ियां चढ़ रहे हैं कि एक शूद्र ने उन्हें छू लिया।.... नाराज हो गए, क्रुद्ध हो गए, कहा कि—देख कर नहीं चलते हो, आंख नहीं है, मुझ ब्राह्मण को छू लिया! अब मुझे फिर स्नान करने जाना पड़ेगा।

शूद्र ने जो कहा....लगता है जैसे स्वयं परमात्मा ने शूद्र के रूप में आकर शंकर को जगाया होगा। शूद्र ने कहा: एक बात पूछूं, तुम तो अद्वैत की बात करते हो—एक ही परमात्मा है दूसरा है ही नहीं। तो तुम अलग, मैं अलग!

शंकर ठिठके होंगे। बड़ी चोट पड़ी होगी। बड़े-बड़े विवादों में जीते थे। शास्त्रार्थ में बड़े प्रवीण थे। दिग्विजय की थी पूरे देश की। आकर हारना पड़ेगा इस शूद्र से, यह कभी सोचा भी न होगा। मगर बात तो चोट की थी। सुबह के उस सन्नाटे में, एकांत घाट पर, शंकर को कांटे की तरह चुभ गई...! बात तो सच थी—अगर एक ही परमात्मा है, तो कौन शूद्र, कौन ब्राह्मण!

फिर उस शूद्र ने कहा: मेरे शरीर ने तुम्हें छुआ है, तो मेरे शरीर में और तुम्हारे शरीर में कुछ भेद है? खून वही, मांस वही, हड्डी वही....। तुम भी मिट्टी से बने, मैं भी मिट्टी से बना। मैं भी मिट्टी में गिर जाऊंगा, तुम भी गिर जाओगे। अगर मेरे शरीर ने तुम्हारे शरीर को छू लिया, तो अपवित्रता क्या हो गई? मिट्टी मिट्टी को छुए, इसमें क्या अपवित्रता है? और अगर तुम सोचते हो कि मेरी आत्मा ने तुम्हारी आत्मा को छू

लिया, तो क्या आत्मा भी पवित्र और अपवित्र होती है !

कहानी कहती है, शंकर उसके चरणों पर झुक गए। इसके पहले कि उठें, शूद्र तिरोहित हो गया था। बहुत खोजा घाट पर, बहुत दौड़े, कुछ पता न चल सका। जैसे परमात्मा ने ही शंकर को बोध दिया हो कि बहुत हो चुकी बकवास माया और ब्रह्म की, जागोगे कब ? बातें ही करते रहोगे अभेद की और सब तरह के भेद पालते रहोगे ? जियोगे भेद में, और बातें करोगे अभेद की !

शंकर की सब दिग्विजय व्यर्थ हो गई। वे जो सब जीतें थीं, हारें सिद्ध हो गईं, और यह जो हार हुई शूद्र से, यही जीत बनी। इसी घटना ने उनके जीवन को रूपान्तरित किया। अब वे केवल दार्शनिक नहीं थे, अब केवल बात की ही बात न थी, अब जीवन में उनके एक नया अनुभव आया—नहीं कोई भिन्न है, नहीं कोई भिन्न हो सकता है।

हरि हां, वाजिद, ऊंच नीच सों बंधे कहो किहि काम कूं।...

हम ही बंधे हैं ऊंच-नीच से, इसलिए हमारा सूरज नहीं उगता। भेद से बंधे हैं, अभेद का सूरज उगे तो कैसे उगे ? सब हमारी खोट है। मिलेगा तू तो—दुहाई राम की...।

भूखे भोजन देह उघारे कापरो।...

तू ही भूखे को भोजन देता, नंगे को कपड़ा देता है।

खाय धणी को लूण जाय कहां बापरो ॥

मैं तेरा ही तो नमक खाता हूं, सब तरह से तेरा नमक खाता हूं। मैं तुझे छोड़कर जाऊं तो जाऊं कहां ? और जिनको यह भ्रांति है कि वे अपना खा रहे हैं, वे गलती में हैं।

भूखे भोजन देह उघारे कापरो।

खाय धणी को लूण जाय कहां बापरो ॥

भली बुरी वाजिद सबै ही सहेंगे।

तू ही देने वाला है, तो भली दे तो, बुरी दे तो, सभी सहेंगे।

हरि हां, दरगह को दरवेश यहां ही रहेंगे।...

लेकिन तेरे द्वार को छोड़ेंगे नहीं...हटाये कितना ही, धक्के मारे कितना ही, यहीं रहेंगे। तेरा द्वार नहीं छोड़ेंगे। असफलता तो असफलता, पीड़ा तो पीड़ा, दुर्दिन आयें तो भी ठीक। मगर तू ही देने वाला है। तेरे हाथ जो भी आता है, वह मेरे लिए सुदिन है, सौभाग्य है। अगर तू दुर्भाग्य भी देता है, तो जरूर उसमें छिपा हुआ सौभाग्य होगा।

> हर्फ-शिकवा की नारसाई तक
> लुत्फ था शिकव :-ओ-शिकायत का
> शबे-महताब हो कि सुब्हे-बहार
> पैरहन है तेरी लताफत का



अब तो पता चल गया; जब तक पता नहीं था, शिकायत थी, अब तो पता चल गया !

शबे-महताब हो कि सुबहे-बहार...रात चांदनी हो छाई आकाश में, शबे-महताब हो कि सुबहे-बहार; कि फिर सुबह की ठंडी हवा हो।

...पैरहन है तेरी लताफत का, सब तेरे ही वस्त्र हैं। तू ही रात पहन लेता है चांदनी का वस्त्र, तू ही सुबह पहन लेता है सुबह की ताजी हवा का वस्त्र। कभी दुख, कभी सुख, कभी वसंत, कभी पतझड़, मगर तू ही है। अब तेरे वस्त्रों के धोखे में हम न आयेंगे। अब हमने तुझे देख लिया है, अब तू किसी भी शकल में आ, हम पहचान लेंगे।

मंसूर को जब सूली लगी, वह हंसने लगा। किसी ने भीड़ में से पूछा...भीड़ में से किसी ने पूछा, कि मंसूर हंसते क्यों हो ? उसने कहा : मैं इसलिए हंस रहा हूं कि वह फांसी की शकल में आया, लेकिन फिर भी मैं उसे पहचान गया ! वह मौत बनकर आया है, लेकिन मुझे धोखा न दे पायेगा। मंसूर हंसा, और उसने आकाश की तरफ देखकर कहा : कर तुझे जो करना है, लेकिन तू मुझे अब धोखा न दे पायेगा ! मैं तुझे इस शकल में भी पहचानता हूं।

भली-बुरी वाजिद सबै ही सहेंगे।

हरि हां, दरगह को दरवेश यहां ही रहेंगे ॥

यहीं रहेंगे, आ गए मुकाम पर !

> जौके-यकीं ने कुफ्र को ईमां बना दिया
> जिस दर पै सर झुका दरे-जानां बना दिया
> हुस्ने-खुलूसे लगजिशे-आदम तो देखिए
> वीरानए-जहां को गुलिस्तां बना दिया
> क्या आईने का जिक्र है, उस खुश जमाल ने
> जिस पर निगाह की उसे हैरां बना दिया
> उस राज को जो कल्बे-अजल में न छुप सका
> आखिर अमानते-दिले-इन्सां बना दिया

जौके-यकीं ने कुफ्र को ईमां बना दिया

जब श्रद्धा पैदा होती है तो अधर्म भी धर्म हो जाता है, दुख भी सुख हो जाता है, मृत्यु भी महाजीवन का द्वार हो जाती है।

जौके-यकीं ने कुफ्र को ईमां बना दिया

जिस दर पै सर झुका दरे-जानां बना दिया

सिर झुकना सीख लो...जिस दर पै सर झुका दरे-जानां बना दिया। फिर जहां सिर झुक जाएगा, वहीं प्यारे का घर हो जाएगा। फिर मंदिर जाने की जरूरत नहीं है,

मंदिर तुम्हारे साथ डोलेंगे! जहां बैठ जाओगे मस्त होकर, वही मंदिर बन जाएगा। जहां सिर झुका, वहीं मस्जिद हो जाएगी। जहां तुम गीत गा दोगे, वहीं तीर्थ! जहां तुम्हारे चरण पड़ेंगे मस्ती के, नाच के, नृत्य के, वही भूमि पवित्र हो जाएगी।

जिस दर पै सर झुका दरे-जानां बना दिया
हुस्ने-खुलूसे-लगजिशे आदम तो देखिए
वीरानए-जहां को गुलिस्तां बना दिया

एक बार झलक उसकी पड़ जाए आंखों में, फिर पतझड़ भी बहार है!

वीरानए-जहां को गुलिस्तां बना दिया। फिर तो वीरान भी बगीचा बन जाता है, मरुस्थल मरूद्यान बन जाता है।

क्या आईने का जिक्र है, उस खुश जमाल ने
जिस पर निगाह की उसे हैरां बना दिया

एक बार उसकी आंख तुम्हारी आंख पर पड़ जाए; फिर चकित हो उठोगे, अवाक हो उठोगे, आश्चर्य से ही भरे रहोगे। प्रतिपल, प्रति-श्वास आश्चर्य की श्वास होगी। और जो आश्चर्य-विमुग्ध जीता है, वही भक्त है! जो आश्चर्य में जीता है, वही भक्त है। भरोसा नहीं आता....! अपनी पात्रता देखता है तो लगता है—नर्क में होना चाहिए था मुझे! राम की दुहाई देखता है, स्वर्ग में विराजमान है! भरोसा ही नहीं आता, विश्वास ही नहीं बैठता कि मुझ अपात्र पर और इतनी वर्षा प्रसाद की!

उस राज को जो कल्बे-अजल में न छुप सका;

जो सारे विश्व के भीतर भी नहीं छुप पाता है राज और रहस्य....आखिर अमानते-दिले-इनसां बना दिया; उसे मेरे दिल के भीतर अमानत की तरह रख दिया। उस रहस्य को, उस आश्चर्यचकित करने वाले रहस्य को, मेरी सम्पदा बना दिया।

हरिजन बैठा होय तहां चल जाइये।

...जहां कोई हरिजन बैठा हो, जहां कोई प्रभु का प्यारा बैठा हो, जहां उसकी मस्ती में कोई गीत गा रहा हो, जहां उसके भजन में कोई झुका हो, जहां उसकी मौज-मस्ती में कोई नाचता हो...हरिजन बैठा होय तहां चल जाइये। चूकना मत वह मौका, उसके पास चले जाना। उसकी गंध लेना, उसका प्रकाश पीना, उसके रस में डूबना, नहाना—यही सत्संग है। और सत्संग सरोवर है, और जो सरोवर में उतर जाए उसे भक्ति का स्नान उपलब्ध होता है!

हरिजन बैठा होय तहां चल जाइये।
हिरदै उपजै ग्यान रामगुण गाइये।

बैठो उनके पास जो हरि के प्यारे हो गए हैं, और तुम पाओगे—अचानक हृदय में



उठने लगा ज्ञान। राम का गुण तुम्हारे भीतर भी फूटने लगा, राम के गीत तुम्हारे भीतर भी जगने लगे।....

परिहरिये वह ठाम भगति नहिं राम की।

बिना राम की भगति के, उस मंजिल को न कोई पहुंचा है, न कोई पहुंच सकता है।

हरि हां, वाजिद, बीन विहूणी जान कहो किस काम की....और बिना प्यारे के नव-वधू क्या मूल्य है? विहूणी—नई-नई वधू, और उसका प्यारा उसे खो जाए, और प्रीतम न मिले, तो प्रियतमा का क्या मूल्य है!

क्या आईने का जिक्र है, उस खुश जमाल ने
जिस पर निगाह की उसे हैरां बना दिया

हरि हां, वाजिद, बीन विहूणी जान कहो किस काम की।...बिना प्रीतम के प्यारी का क्या अर्थ! तुम्हारे जीवन में भी अगर अर्थ नहीं है तो एक ही बात समझना, इसलिए नहीं अर्थ नहीं है कि तुम्हारे पास धन कम है; क्योंकि जिनके पास धन बहुत है, उनके जीवन में भी अर्थ नहीं है। जिनके पास बड़े पद हैं, उनके जीवन इतने ही व्यर्थ हैं जितने तुम्हारे। इस जगत की कोई चीज जीवन में अर्थ नहीं देती। क्या होगा अर्थ, अगर वधू को हम हीरे-जवाहरातों से लाद दें और उसका प्यारा उसे कभी मिले न! हम वधू को स्वर्ण-सिंहासन पर बिठाल दें, और उसका प्यारा उसे कभी मिले न...क्या होगा अर्थ! न हों हीरे, न हों जवाहरात, न हों स्वर्ण-शिखर, लेकिन प्यारा मिल जाए...सब मिल गया। परमात्मा के मिलने में जीवन में अर्थ का उदय है, जीवन में गरिमा है, महिमा है।...लेकिन परमात्मा के मिलन पर ही!

और आदमी जैसा जी रहा है अर्थहीन...और बड़ी चेष्टा करता है कि किसी तरह जीवन में थोड़ा अर्थ आ जाए, व्यर्थता मिट जाए, मगर मिटती नहीं है।

इस सदी में मनुष्य को जितनी व्यर्थता का अनुभव हो रहा है, कभी नहीं हुआ था। क्योंकि इस सदी का परमात्मा से जितना सम्बन्ध टूट गया है, इतना कभी न टूटा था। वाजिद जैसे लोग होने कम हो गए। ये महफिलें अब नहीं सजतीं, ये सत्संग अब नहीं होते। अब तो हालतें बदल गईं!

महात्मा गांधी ने तो अछूतों को 'हरिजन' का नाम दे दिया, अब हरिजन की जो महिमा थी, वह कहां रही! हरिजन हम उनको कहते थे, जिन्होंने परमात्मा को पा लिया है, जो उसके हैं। अब तो 'हरिजन' शब्द सुनकर जो खयाल आता है, वह खयाल आता है अछूतों का। अछूत मिटने चाहिए, लेकिन अछूत हरिजन नहीं हैं यह मैं तुमसे कहना चाहता हूं। यह तो सिर्फ व्यर्थ की बकवास है! ब्राह्मण सोचता था कि वह ब्रह्मज्ञान को उपलब्ध है इसलिए ब्राह्मण है; वह उसकी मूढ़ता थी। उस मूढ़ता को उत्तर देने के

लिए गांधी ने दूसरी मूढ़ता की। उन्होंने हरिजन कह दिया अछूत को। न तो ब्राह्मण ब्रह्म को उपलब्ध हुआ है, क्योंकि ब्राह्मण-कुल में पैदा होने से कोई ब्राह्मण नहीं होता, न ब्रह्मज्ञान को उपलब्ध होता है।

उद्दालक ने अपने बेटे श्वेतकेतु को कहा था, जब वह लौटा ब्रह्मविद्या की शिक्षा पूरी कर के, वेदों को कण्ठस्थ करके...तो उद्दालक ने अपने बेटे को कहा था : तूने वह भी जाना या नहीं—वह एक, जिसको जानने से सब जान लिया जाता है। श्वेतकेतु ने कहा : कौन-सा एक? मैंने चारों वेद जाने, मैंने सारे उपनिषद जाने, मैंने सब शास्त्र पढ़े, मगर आप किस एक की बात कर रहे हैं? उद्दालक उदास हो गया, उसने कहा : बेटा तू वापिस जा, अभी तूने जो जाना, वह जानकारी है। उस एक को जानकर आ, जिसको जान लेने से कोई सभी जानने के पार हो जाता है, और मैं मुझे याद दिला दूं कि हमारे कुल में नाममात्र के ब्राह्मण नहीं होते रहे हैं, हमारे कुल में वस्तुतः ब्राह्मण होते रहे हैं।

पूछा श्वेतकेतु ने, क्या अर्थ है वस्तुतः ब्राह्मण का? उसने कहा : जो ब्रह्म को जान ले, वह ब्राह्मण।

बुद्ध ने भी यही कहा—जो ब्रह्म को जान ले, वही ब्राह्मण। महावीर ने भी यही कहा—जो ब्रह्म को जान ले वही ब्राह्मण। ब्राह्मण घर में पैदा होने से कोई ब्राह्मण नही होता। यह एक मूढ़ता की बात चल रही है कि ब्राह्मण घर में पैदा हो गए तो ब्राह्मण हो गए! इस मूढ़ता का उत्तर गांधी ने दूसरी मूढ़ता से दिया कि अछूत हरिजन हैं। भंगी के घर में पैदा होने से कोई हरिजन नहीं हो जाता।

'हरिजन' बड़ा बहुमूल्य शब्द है; इसे मत लथेड़ो! हां, अछूत मिटना चाहिए; लेकिन एक बीमारी को दूसरी बीमारी से नहीं मिटाया जा सकता, और एक अतिशयोक्ति को दूसरी अतिशयोक्ति से नहीं मिटाया जा सकता। न तो ब्राह्मण ब्राह्मण है, न हरिजन हरिजन है। दोनों आदमी हैं। ब्राह्मण से ब्राह्मण शब्द छीन लो, हरिजन से हरिजन शब्द छीन लो, दोनों को आदमी रहने दो। हां, जिस वे दिन जागेंगे; और परमात्मा को जानेंगे, उस दिन फिर उनको ब्राह्मण कहो या हरिजन कहो, एक अर्थ ही होता है। हरिजन बड़ा प्यारा शब्द है, खराब कर दिया उसे! उसे राजनीति की गंदगी में घसीट दिया।

हरिजन बैठा होय तहां चल जाइये।
हिरदै उपजै ग्यान रामगुण गाइये ॥
परिहरिये वह ठाम भगति नहिं राम की।

बिना इसके; बिना सत्संग के; बिना किसी हरिजन का साथ जोड़े; बिना राम की भगति के जगे, नहीं पहुंच पाओगे। न ही तुम्हारे जीवन में कोई अर्थ होगा, न ही कोई सुगंध होगी, न ही कोई गीत होगा।



हरि हां, वाजिद, बीन विहूणी जान कहो किस काम की...।

तब तक तुम ऐसे ही हो जैसे प्यारे के बिना उसकी प्रियतमा।...तुम्हारा जीवन एक मरुस्थल है। खोजो पिया को, पुकारो पिया को!

आज इतना ही
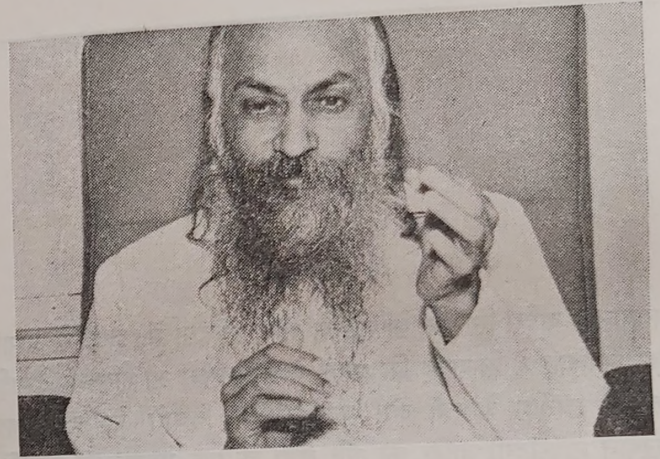
## सहज—सोपान मुक्ति-मंदिर का

चौथा प्रवचन; दिनांक २४ सितंबर, १९७८;

श्री रजनीश आश्रम, पूना.
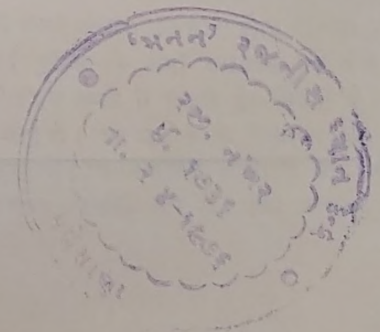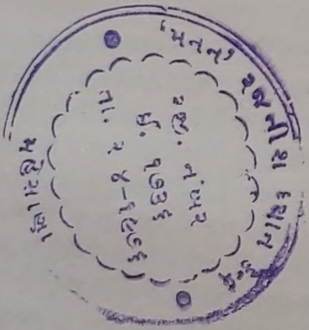
भगवान ! बाईस सितम्बर के टाइम्स ऑफ इण्डिंया में, इन्दौर से प्रसारित एक समाचार में लिखा है कि भारत के प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई ने आचार्य रजनीश के स्त्री और यौन संबंधी विचारों के प्रति अपनी बलवान नापसंदगी जाहिर की और कहा कि एक मुक्ताचारी परमिसिव-समाज अन्ततः सर्वनाश को प्राप्त होता है। इस प्रसंग में उन्होंने कहा कि प्राचीन भारत में भी समाज एक बार मुक्ताचारी हुआ था। कलिंग-काल में बने भुवनेश्वर और पुरी के मंदिर इस बात की खबर देते हैं। और यही कारण है कि कलिंग साम्राज्य समाप्त हो गया। भगवान, श्री मोरारजी देसाई के इस वक्तव्य पर कुछ कहने की कृपा करें।

जब सभी पहुंचे हुए पूर्ण-पुरुष परमात्मा को पुकार करते हैं, तभी मेरी समझ में नहीं आता कि पुकारने के लिए वे बचते हैं कहां?

पहला प्रश्न : भगवान ! बाईस सितम्बर के टाइम्स ऑफ इण्डिया में, इन्दौर से प्रसारित एक समाचार में लिखा है कि भारत के प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई ने आचार्य रजनीश के स्त्री और यौन सम्बन्धी विचारों के प्रति अपनी बलवान नापसंदगी जाहिर की और कहा कि एक मुक्ताचारी परमिसिव-समाज अन्ततः सर्वनाश को प्राप्त होता है। इस प्रसंग में उन्होंने कहा कि प्राचीन भारत में भी समाज एक बार मुक्ताचारी हुआ था। कलिंग-काल में बने भुवनेश्वर और पुरी के मंदिर इस बात की खबर देते हैं। और यही कारण है कि कलिंग साम्राज्य समाप्त हो गया। भगवान, श्री मोरारजी देसाई के इस वक्तव्य पर कुछ कहने की कृपा करें।

* आनंद मैत्रेय ! इससे मुझे याद आता है, एक जैन साधु के साथ मैं सुबह-सुबह घूमने निकला था। रास्ते के किनारे एक गरीब शराबी मर गया था। उसकी अर्थी बांधी जा रही थी। जैन साधु ने बड़ी प्रसन्नता से मुझसे कहा : देखो, शराबियों की ऐसी गति होती है। मैंने पूछा : शराबी शराब के कारण मरते हैं, फिर साधु क्यों मरते हैं? आप मरोगे या नहीं? इस बात को बीते तो कोई बीस वर्ष हो चुके, उत्तर वे अभी भी नहीं दे पाये हैं। उत्तर वे कभी भी नहीं दे पायेंगे।

कलिंग साम्राज्य इसलिये नष्ट हो गया, क्योंकि मुक्ताचारी था। और भुवनेश्वर और पुरी जैसे सुंदर मंदिर बनाये—प्रेम के मंदिर। तो फिर और साम्राज्य मोरारजी भाई किसलिये नष्ट होते हैं? कलिंग साम्राज्य ही अगर अकेला नष्ट हुआ होता तो बात अर्थ-पूर्ण थी, और साम्राज्यों का क्या हुआ? दुनिया के सभी साम्राज्य नष्ट होते हैं। साम्राज्यों को नष्ट होना पड़ता है। जो चीज इस जगत में बनती है; मिटती है। जो जन्मता है, मरता है, फिर शराबी हो कि साधु हो। फिर अशोक के साम्राज्य का क्या हुआ, जिसने कलिंग साम्राज्य को नष्ट किया था? जिसने कलिंग साम्राज्य को भयंकर हिंसा से, रक्तपात से भर दिया था; एक लाख आदमी मारे थे। फिर अशोक जैसे

सदाचारी के साम्राज्य का क्या हुआ ? कहां है वह साम्राज्य, अब कोई नाम-निशान तो रह नहीं गया ! और-और साम्राज्यों क्या हुआ—रोम के महासाम्राज्य का क्या हुआ, यूनान का क्या हुआ, बेबीलोन का क्या हुआ, मिस्र का क्या हुआ, असीरिया का क्या हुआ, चीन का क्या हुआ ?

अनंत-अनंत साम्राज्य बने और मिट गये। या तो सभी मुक्ताचारी थे, या फिर मिटने का कारण कुछ और होगा, मुक्ताचार नहीं। और अगर सभी मिट जाते हैं तो मिटने का कारण अलग-अलग खोजने की जरूरत नहीं है; जो भी चीज बनती है, मिट जाती है।

मुल्ला नसरुद्दीन अस्सी वर्ष का हो गया था और अभी भी दौड़ में उसका कोई मुकाबला न था ! तो पत्रकार उसके घर इकट्ठे हुए और पूछा कि तुम्हारे इस स्वास्थ्य का राज क्या है ? क्या तुम भी मोरारजी भाई की तरह 'जीवन-जल' पीते हो ? मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि नहीं, इसका राज है कि मैं कभी शराब नहीं पीता, मांसाहार नहीं करता, परस्त्रीगमन नहीं करता। इसलिये इतना स्वस्थ हूं कि आज भी दौड़ में मेरा कोई मुकाबला नहीं। तभी बगल के कमरे में जोर से किसी के गिरने और किसी के चिल्लाने की आवाज आयी। तो पूछा पत्रकारों ने चौंककर कि क्या मामला है ? मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा : कोई फिक्र न करें, मेरे पिताजी हैं। उन्होंने फिर नौकरानी को पकड़ लिया है। पिताजी ! उनकी उम्र कितनी है ? उनकी उम्र सौ वर्ष है। नौकरानी को पकड़ लिया ! मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा : जब भी वे ज्यादा पी लेते हैं, तब इसी तरह का व्यवहार करते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन अस्सी वर्ष का है, क्योंकि शराब नहीं पीता, क्योंकि मांसाहार नहीं करता। पिता सौ साल के हैं, अभी भी शराब पीते हैं और अभी उन्होंने नौकरानी को पकड़ लिया है ! उम्र का राज कहां है, उम्र का राज किस बात में है ? जो शराब नहीं पीते हैं वे सोचते हैं इसलिये ज्यादा जिंदा रह रहे हैं। जो शराब पीते हैं वे सोचते हैं इसलिये ज्यादा जिंदा रह रहे हैं कि शराब पीते हैं। इन व्यर्थ के कारणों में उतरने का कोई अर्थ नहीं है। जीवन बनता है तो एक दिन मिटता है—देर-अबेर।

कलिंग साम्राज्य इसलिये नहीं मिटा कि यौनाचारी था और अशोक इसलिये नहीं जीता कि सदाचारी था। अशोक इसलिये जीता कि उसके पास हिंसा करने की बड़ी शक्ति थी और कलिंग के पास कम शक्ति थी। कलिंग छोटा राज्य था। यहां जिसकी लाठी उसकी भैंस...।

क्या तुम सोचते हो अमरीका इसलिये जीता जापान से कि अमरीका ज्यादा सदाचारी है और जापानी मुक्ताचारी हैं इसलिये हार गये ? अमरीका से ज्यादा मुक्ताचारी कौन है आज ? लेकिन अमरीका जीता, क्योंकि एटमबम उसके पास था। जापान एक सदाचारी मुल्क है—अतिधार्मिक वृत्ति का—संस्कारशील; लेकिन हारा, क्योंकि एटमबम उसके पास नहीं था।



हिटलर क्यों हारा ? क्या तुम सोचते हो हिटलर मुक्ताचारी था ? हिटलर मोरारजी देसाई से ज्यादा बड़ा महात्मा था ! न उसने कभी मांसाहार किया, न कभी सिगरेट पी, न कभी शराब पी; उसने 'जीवन-जल' भी नहीं पिया ! ब्रह्ममुहूर्त में उठता था। व्यायाम करता था। कभी विवाह नहीं किया। मोरारजी देसाई ने तो कम-से-कम विवाह किया और कान्ति देसाई जैसे महापुत्र पैदा किये ! कुछ-न-कुछ यौनाचार तो किया ही होगा। हिटलर तो कोई बाल-बच्चे नहीं छोड़ गया। फिर हिटलर हारा कैसे ? और उसने सारे जर्मनी को ऐसे नियमों में आबद्ध कर दिया था, जैसा इस जमीन पर कभी किसी ने नहीं किया था। सारा जर्मनी एक सदाचरण, एक अनुशासन, एक सैन्य-शिविर बन गया था। फिर हारा क्यों ?

क्या तुम सोचते हो चर्चिल ज्यादा सदाचारी था ? चर्चिल में तो सदाचार जैसा कुछ दिखाई पड़ता नहीं—शराबी, मांसाहारी... ब्रह्ममुहूर्त में तो चर्चिल कभी उठा नहीं। दस बजे से पहले कभी नहीं उठा; कहते हैं सिर्फ एक बार उठा। और एक बार उठकर उसने देख लिया सूरज का ऊगना, और उसने कहा बार-बार क्या उठ कर देखना, यही सूरज बार-बार ऊगेगा। और एक दिन उठा, उसने पा लिया कि कोई सार नहीं; सब बकवास है जो लोग कहते हैं कि सुबह उठने से ताजगी रहती है। क्योंकि उस दिन वह दिन-भर बेचैन रहा, परेशान रहा, नींद पूरी नहीं हो पायी।

चर्चिल जीता, हिटलर हारा। सदाचारी हार गया, दुराचारी जीत गया। इस जगत में जीत सदाचार और दुराचार से नहीं होती। इस जगत में जीत और हार होती है हिंसक तत्व की मात्रा पर। क्या तुम सोचते हो चीन ने हिन्दुस्तान की जमीन छीन ली और हिन्दुस्तान हारा तो हिन्दुस्तान दुराचारी है और चीन सदाचारी है ?

अगर सदाचार से ही निर्णय होता हो तो मोरारजी भाई, किसलिये अणुशक्ति बनाने के लिये अमरीका के द्वार पर भीख मांगते फिरते हो, किस कारण ? सत्तर प्रतिशत भारत की संपदा क्यों सैनिकों को खिलाकर और सेना पर समाप्त कर रहे हो ? देश गरीब है, भूखा मर रहा है। अगर सदाचार से जीत होती है तो ये सारे सैनिकों को विदा करो; यह सारा पैसा देश को सदाचारी बनाने में लगा दो। और तब तुम्हें पता चल जायेगा कि कौन जीतता है और कौन हारता है।

महात्मा गांधी जीवन-भर कहते रहे; मोरारजी देसाई के गुरु थे वे; जीवन भर कहते रहे : अहिंसा। लेकिन जैसे ही देश आजाद हुआ और सत्ता हाथ में कांग्रेस के आयी,

फिर उन्होंने अहिंसा की बात नहीं की। फिर उन्होंने काश्मीर के लिये जाते हुए भारतीय हवाई जहाजों को, जो पाकिस्तान पर जाकर बम गिरायेंगे, आशीर्वाद दिया। पहले कहते थे कि देश आजाद हो जायेगा तो सेना को हम विदा कर देंगे। सेना की क्या जरूरत रहेगी, अहिंसा से जीतेंगे। अहिंसा पर कौन हमला कर सकता। लेकिन जब देश आजाद हो गया तो गयी सब बकवास ! फिर भूल गये बात कि सेना को अब विदा कर दें। और अब सेना रखने की कोई जरूरत नहीं है, हम अहिंसा से जीतेंगे। अगर चीन हमला करेगा या पाकिस्तान हमला करेगा तो उपवास करेंगे, चर्खा कातेंगे। और जीतकर दिखलायेंगे। फिर नहीं की यह बात। और अगर ऐसा ही था, तो जब गोडसे ने गोली मारी तो गांधी को नहीं मरना था। सदाचारी मर गया, ब्रह्मचारी मर गया ! तो कल तो कोई यही कह सकता है कि गांधी सदाचारी न रहे होंगे, इसलिये मर गये; नहीं तो गोडसे मार पाता ? ब्रह्मचर्य का तेज; गोली क्या कर लेती; छिटक कर उलटी गोडसे को लगती ! अगर गोडसे की गोली गांधी को मार सकती है तो सोचो थोड़ा, अशोक के पास बड़ी शक्ति थी, विराट साम्राज्य था, कलिंग छोटा-सा देश था।

अगर गरीब कलिंग को अशोक के साम्राज्य ने नष्ट कर दिया तो मोरारजी भाई, इस तरह की बेहूदी बातें तो मत कहो। इस तरह की अर्थहीन बकवास तो मत करो।

हां, यह हो सकता है कि कलिंग के हारने का कारण यह रहा हो कि कलिंग, जहां भुवनेश्वर और पुरी के सुंदर मंदिर बने; मंदिरों के बनाने में लगा रहा हो और उसने बंदूकें नहीं ढालीं और तलवारें नहीं ढालीं। सुंदर मंदिर खोदने में लगा रहा हो, प्रभु की पूजा करने में लगा रहा हो। और तोपें और तोपों के गोले ढालने का समय न पाया हो। उसकी ऊर्जा सौंदर्य की सेवा में लग गयी हो। और यह भी हो सकता है कि कलिंग के लोग एक-दूसरे को प्रेम करते हों। जहां भी लोग एक-दूसरे को प्रेम करते हैं, वहां लोग लड़ने को उत्सुक नहीं होते। लड़ने को उत्सुक वे ही लोग होते हैं, जिनके जीवन में प्रेम शून्य होता है।

और इसीलिये सारी दुनिया के राजनेता इस बात की कोशिश करते हैं कि दुनिया में प्रेम न फैल पाये। क्योंकि प्रेम फैला तो कौन लड़ने जायेगा ? इस विज्ञान को समझ लो ठीक से। अगर किसी व्यक्ति को लड़ाना हो, उसको प्रेम से वंचित कर दो।

प्रेम की ऊर्जा ही हिंसा बन जाती है। अगर प्रेम की ऊर्जा को निकास न मिले, विकास न मिले; अगर प्रेम के फूल न खिलें, तो प्रेम की ऊर्जा ही हिंसा बन जाती है। किसी भी व्यक्ति को अगर लड़ाना हो तो उसको प्रेम से रोक दो, वह लड़ने को उत्सुक हो जायेगा।

मनोविज्ञान की खोजें यह अब निर्णायक रूप से कहती हैं कि सैनिक को प्रेम करने से रोकना पड़ता है इसीलिये, ताकि वे लड़ सकें, क्योंकि जो प्रेम करता है उसकी लड़ने



की वृत्ति कम हो जाती है। प्रेमी की वृत्ति लड़ने में नहीं रह जाती। इसलिये सैनिकों के साथ उनकी पत्नियों को हम युद्ध पर नहीं भेजते। सैनिकों को हम वर्जित करते हैं उनके प्रेम से। ताकि प्रेम न कर पाने का जो क्रोध उनके भीतर इकट्ठा होता है, जो जहर इकट्ठा होता है, वह जहर वे अपने दुश्मनों पर निकाल लें। जिनको जीवन का मजा नहीं आ रहा है, वे मरने-मारने को उत्सुक हो जाते हैं।

तो यह हो सकता है कि कलिंग में जहां पुरी और भुवनेश्वर के प्यारे मंदिर बने, तंत्र के मंदिर हैं वे, प्रेम की आभा रही हो, लोग लड़ने को आतुर न रहे हों। लोग जीने को आतुर हों तो लड़ने को आतुर नहीं होते।

तुम्हारे जीवन में जब रस होता है, तब तुम लड़ने को आतुर नहीं होते, क्योंकि लड़ने से तुम्हारा रस जायेगा। जब जीवन में कुछ खोने को होता है तो आदमी लड़ने को जरा भी उत्सुक नहीं होता। जब जीवन में कुछ भी नहीं होता तो लड़ने के सिवाय और बचता नहीं। तो युद्ध ही उत्सुकता रह जाती है। इसलिए सैनिक को उसकी कामवासना के दमन की सारी की सारी प्रक्रिया में हम गुजारते हैं। उसकी कामवासना को दबाओ, ताकि जो ऊर्जा उसके जीवन को रस से भर सकती है, वह विक्षिप्त होकर भीतर घूमने लगे और उसे मार्ग न मिले। और उसी विक्षिप्तता में वह मारने को तैयार हो जाये।

प्रेम से जन्म होता है, और अगर प्रेम का मार्ग अवरुद्ध किया जाये तो प्रेम से ही मृत्यु घटित होती है। लेकिन क्या इस कारण हम लोगों के जीवन को प्रेम से वंचित कर दें ? ऐसे समाज को बचाने से क्या सार है, जहां युद्ध के, वैमनस्य के, ईर्ष्या के आधार रखे जाते हों; जहां आदमी सिर्फ मरने और मारने को जीता हो। ऐसे समाज से क्या प्रयोजन है ? समाज तो ऐसा चाहिए जो व्यक्ति को उसकी परिपूर्णता में खिलने का अवसर देता हो। और प्रेम जीवन की गहनतम बात है।

फिर समाज तो सभी बनेंगे और मिटेंगे, आयेंगे और जायेंगे। नहीं तो नये समाज कैसे बनेंगे ? पुराने समाज न मिटेंगे तो नये समाजों का आविर्भाव कैसे होगा ? सांझ सूरज न डूबेगा तो फिर दूसरे दिन सुबह नया सूरज कैसे ऊगेगा, नयी सुबह कैसे होगी ? अगर बूढ़े न मरेंगे तो बच्चे कैसे पैदा होंगे ? बूढ़े इसलिये नहीं मरते कि अनाचारी थे, बूढ़े इसलिये मरते हैं कि बूढ़े थे। और बच्चे इसलिये पैदा नहीं होते कि सदाचारी हैं, बच्चे इसलिए पैदा होते हैं कि बच्चे हैं। नया आता है, पुराना जाता है। पुराने को जाना ही चाहिए, नहीं तो नये के लिये जगह न बचेगी।

कलिंग के साम्राज्य का हार जाना और उसका कारण मोरारजी भाई का यह बताना—कि चूंकि वहां तंत्र का प्रचार था और भुवनेश्वर जैसे प्यारे मंदिर उन्होंने

बनाये, इसलिये वे हारे। यह मेरे खिलाफ वे वक्तव्य दे रहे हैं, कि अगर मेरी बातें मानी गयीं तो समाज नष्ट हो जायेगा। यह उतना ही मूढ़तापूर्ण है, जैसा महात्मा गांधी ने बिहार में आये भूकंप के समय कहा था। बिहार में आया भूकंप और महात्मा गांधी ने क्या कहा मालूम है? कहा कि—बिहार में हरिजनों के साथ जो अत्याचार हुआ है, उस पाप का फल भगवान दे रहा है बिहारियों को! क्या हरिजनों के साथ अत्याचार सिर्फ बिहार में ही हुआ है? हरिजनों के साथ अत्याचार तो पूरे भारत में हुआ है, सिर्फ बिहारियों को दण्ड दिये जा रहे हैं! सच तो यह है कि बिहार में इतना अत्याचार नहीं हुआ है, जितना और देश के दूसरे हिस्सों में हुआ है। सिर्फ बिहारियों को दण्ड दिया जा रहा है और बाकी सारा देश मजा कर रहा है!

इस तरह की आदतें होती हैं, किसी भी बहाने अपनी धारणा को प्रचलित करने की चेष्टा की जाती है। अभी कुछ दिन पहले दक्षिण में प्रचंड झंझावात आया। आन्ध्र में लोग मरे, कर्नाटक में लोग मरे। तो श्री राजनारायण ने कहा कि—यह इसलिये हुआ कि वहां लोगों ने जनता को वोट नहीं दी। अब दिल्ली में पूर आया और उत्तर में लोग मर रहे हैं, किसलिये? जनता को वोट दिये इसलिये? ये कैसी मूढ़तापूर्ण बातें हैं!

और किसी देश का प्रधानमंत्री जब इस तरह की मूढ़तापूर्ण बातें करे तो बड़ी दयनीय हो जाती है। यह बड़े अभाग्य की बात है कि हमने एक अति मंदबुद्धि आदमी को इस देश का प्रधानमंत्री बना कर बिठाल दिया है, अति जड़बुद्धि व्यक्ति को! और इसलिये मैं निरंतर कहता हूं कि जयप्रकाश नारायण को इस देश का भविष्य क्षमा न कर सकेगा। क्रांति के नाम पर कब्रों में गड़े मुर्दों को निकालकर देश की सत्ता दे दी। जिनको कभी का मर जाना चाहिए था। जिनके होने का कोई प्रयोजन नहीं है। जिनके पास बुद्धि है कम-से-कम पचास-साठ साल पुरानी। दुनिया में कोई देश बयासी-तिरासी साल के लोगों को प्रधानमंत्री नहीं चुनता। कोई देश नहीं चुनता, यह हम ही अभागे लोग हैं! क्योंकि इनसे अब क्या आशा हो सकती है? ये चल-चुकी कारतूस है! बस कारतूस जैसे दिखाई पड़ते हैं; अब इनमें कुछ है नहीं। और इनके जीवन का एक मात्र लक्ष्य था, वह इन्होंने तिरासी साल तक दौड़-दौड़ कर पूरा कर लिया। अब कुछ बचा नहीं करने को, अब बस ये बैठे है। अब ये कुर्सी से चिपके रहेंगे।

क्या तुम सोचते हो, इतिहास का ऐसा विश्लेषण किया जाता है? इतिहास की कुछ सूझबूझ है! इतिहास पढ़ा है मोरारजी भाई! कितने साम्राज्य बने और मिटे, सिर्फ कलिंग पर दोषारोपण? फिर और सब साम्राज्यों क्या हुआ? या तो सभी अनाचारी थे, और या फिर यह मानना होगा कि सदाचारी भी मिटते हैं, साधु भी मिटते हैं। तो फिर मिटने और न मिटने का कोई सम्बन्ध सदाचार और अनाचार से नहीं है। फिर किस बात को सदाचार कहते हो?



मुझसे वे नाराज हैं। कारण कई हो सकते हैं। पहला कारण: जब वे उपप्रधानमंत्री थे, तब मेरा इंदिरा से मिलना हुआ। इंदिरा की सदा से मेरे विचारों में उत्सुकता रही है। तो इंदिरा ने मेरी बातें बड़े गौर से सुनीं, विचार से सुनीं। और मुझे कहा कि आप जो कहते हैं, ठीक कहते हैं। और आप जो कहते हैं, मैं भी करना चाहूं। लेकिन आप थोड़ा सोचें, मैं किस तरह के लोगों के साथ बंधी हूं। मोरारजी भाई के संबंध में सोचें। वे उपप्रधानमंत्री हैं। कुछ भी नयी बात कहो, वे तत्क्षण अड़ंगा लगा देते हैं। तो मैंने इंदिरा को कहा कि—ऐसे लोगों को विदा करना चाहिये। इनको छुट्टी दो। या तो कुछ करो। और अगर करने में जो बाधा बनते हों लोग, उनको हटाओ। और अगर न हटा सकती होओ उनको, तो खुद हट जाओ। क्योंकि फिर रहने का प्रयोजन क्या है?

और लगता है यह बात इंदिरा को चोट कर गयी। क्योंकि मैं दिल्ली से मिलकर जबलपुर वापस पहुंच भी नहीं पाया कि मोरारजी भाई निकाल बाहर कर दिये गये। शायद उस कारण बड़ी गहरी चोट उन पर पहुंची। कहीं-न-कहीं से उनको खबर लगी होगी कि जैसे उनको विदा करवाने में मेरा भी हाथ है।

जैसे ही मैं लौटकर जबलपुर पहुंचा, और मुझे खबर मिली, तो मैं भी थोड़ा-सा तो चिंतित हुआ। ऐसा मैंने सोचा नहीं था कि ऐसा हो ही जायेगा। तो दोबारा जब मैं दिल्ली गया, तो मैं मोरारजी भाई को मिला। सिर्फ यह देखने के लिये इस बेचारे को बाहर कर दिया गया है तो थोड़ी सांत्वना प्रगट कर आऊं। लेकिन जब मिला तो ऐसी जड़ता मैंने उनमें पायी कि सांत्वना प्रगट करने गया था, लेकिन प्रसन्न चित्त लौटा कि अच्छा हुआ यह आदमी विदा हो गया। फिर सांत्वना प्रगट नहीं की; करने की कोई जरूरत ही नहीं समझी, बल्कि अपने को धन्यवाद दिया कि मैंने जो सुझाव दिया, ठीक ही दिया था। जो उनसे थोड़ी-सी बातचीत हुई, सोच ही सकते हैं कि मेरे और उनके बीच जो बातचीत होगी वह क्या होगी! वह झंझट की थी। मेरा और उनका किसी तल पर कोई मेल नहीं हो सकता। क्योंकि सोच-विचार उन्हें छू नहीं गया है। बंधी-बंधाई धारणायें हैं, उन बंधी धारणाओं को बिलकुल आंख बंद करके दोहराते जाने की आदत है। उन बंधी धारणाओं के लिये न कोई तर्क है, न कोई समर्थन है।

फिर दोबारा मेरा उनसे मिलना हुआ। आचार्य तुलसी ने निमंत्रण दिया था। वे भी मौजूद थे, मैं भी मौजूद था। हम दोनों आचार्य तुलसी के मेहमान थे। आचार्य तुलसी बैठे थे अपने तख्त पर, हम सब नीचे बैठे थे। मोरारजी भाई को खला, बहुत अखरा। संगोष्ठी थी; कोई बीस निमंत्रित व्यक्ति थे, बैठ कर कुछ विचार करना था देश के लिये। मगर वह विचार न हो सका, क्योंकि मोरारजी भाई ने कहा कि और

बातों का विचार हम बाद में करेंगे, तुलसी जी, पहले मैं यह पूछता हूं कि आप ऊपर क्यों बैठे हैं, हम लोग नीचे क्यों बैठे हैं ? अब तुलसी जी बड़े पशोपेश में पड़ गये, कहें तो क्या कहें ? इतना ही कहा कि—चूंकि मैं भिक्षु-संघ का आचार्य हूं, और यह हमारी परंपरा है कि जो आचार्य है वह ऊपर बैठे। तो मोरारजी भाई ने कहा कि—आप होंगे भिक्षु-संघ के आचार्य, हमारे आचार्य नहीं हैं। हमारे साथ बैठे हैं, कोई भिक्षु-संघ के साथ नहीं बैठे हैं। फिर आप तो अपने को क्रांतिकारी संत कहलवाते हैं, यह कैसी क्रांति !

मैंने देखा कि यह तो बात बिगड़ गयी। अब बात आगे चल न सकेगी, यह तो बात खराब हो गयी। तो मैंने आचार्य तुलसी को कहा कि यद्यापि मुझसे पूछा नहीं गया है, इसलिये आप और मोरारजी भाई दोनों राजी हों तो मैं इस बात का उत्तर दूं। दोनों राजी थे तो मैंने कहा : देखें मोरारजी भाई, मैं भी नीचे बैठा हूं, मुझे नहीं अखरा, आपको क्यों अखरा ? आचार्य तुलसी ऊपर बैठे हैं, बैठे रहने दो। छिपकली देखते हो, और भी ऊपर बैठी है। तो बैठे रहने दो। मूढ़ मालूम पड़ रहे हैं, कोई समझदार नहीं मालूम पड़ रहे हैं, क्योंकि गोष्ठी के लिये बुलाया है। हां, अगर प्रवचन देते होते, थोड़ी-ऊपर बैठना जरूरी है, ताकि लोग देख सकें। यह तो विचार-गोष्ठी है, बीस लोगों के साथ बैठे हैं और खुद हम उनके द्वारा आमंत्रित हैं, वे हमारे आतिथेय हैं, हम उनके अतिथि हैं। और अब यह बड़ी अजीब-सी बात हो गई है कि आतिथेय ऊपर चढ़ कर बैठ गया है, अतिथि नीचे बैठे हैं ! हम उनके निमंत्रण पर आये हैं। मगर ठीक है, अगर उनको इसमें मजा आ रहा है, रस आ रहा है, उनको बैठा रहने दो। बीस लोगों में सिर्फ आपको क्यों अखरी यह बात ? शायद आप भी ऊपर बैठना चाहते हैं। आप भी चढ़ जाइये, वे तो उतरने से रहे, क्योंकि आपने पूछा, अगर उनमें जरा-भी हिम्मत होती तो उतर आये होते। उन्होंने कहा होता कि यह भूल हो गयी। नीचे बैठ गये होते। वे तो बेशर्मी से बैठे हैं। आप भी क्यों डरते हो, चढ़ जाओ ! आप दोनों बैठ जाओ, ताकि चर्चा तो शुरू हो।

यह अहंकार, एक अहंकार ऊपर चढ़ा बैठा है, दूसरा अहंकार नीचे तड़प रहा है। उस दिन से तुलसी जी भी नाराज हैं, मोरारजी भी नाराज हैं। उनकी नाराजगी के कारण हैं। लेकिन नाराजगी के कारण सीधे-सीधे तो वह कह नहीं सकते, इसलिये परोक्ष रूपेण जाहिर करते हैं। उनका यह कहना कि : आचार्य रजनीश के स्त्री और यौन सम्बन्धी विचारों के प्रति अपनी बलवान नापसंदगी जाहिर की है—स्ट्रांग डिस-लाइक...। मूल शब्द ऐसे हैं: " ही एक्सप्रेस्ड हिज स्ट्रांग डिसलाइक फॉर द व्यूज ऑफ आचार्य रजनीश ऑन वीमेन एण्ड सेक्स. सेइंग दैट ए परमिसिव सोसायटी अल्टीमेटली



डिस्ट्रायड इट सेल्फ. इन एन्सिएन्ट इंडिया टू सोसायटीज हैड बन्स बिकम् परमिसिव द टेम्पिल्स ऑफ भुवनेश्वर एण्ड पुरी बिल्ट ड्यूरिंग द कलिंगा पीरियड इन्डिकेटेड दिस एण्ड दैट वाज व्हॉय द कलिंगा एम्पायर वेनिश्ड. ए परमिसिव सोसायटी हैज नो मॉरल स्टैण्डर्ड. "

मोरारजी भाई, सदाचार और दमन एक ही बात नहीं है। ठीक-ठीक सदाचारी दमित नहीं होता, मुक्त होता है। मुक्ताचारी ही होता है, स्वतंत्र होता है, स्वच्छंद होता है। उसने वासना को दबाया नहीं होता, जाना होता है, जिया होता है। जानने और जीने की प्रक्रिया से उसका अतिक्रमण किया होता है।

मैं लोगों को नियम तोड़कर पशु-पक्षियों की भांति जीने को नहीं कह रहा हूं। मैं लोगों को जागकर बुद्धों की भांति जीने को कह रहा हूं। इस मुक्ताचार को उसी अर्थ में मुक्ताचार नहीं कहा जा सकता जिस अर्थ में पश्चिम में एक समाज निर्मित हो रहा है। यह मुक्ताचार—मुक्तों का आचरण है।

मेरी दृष्टि में और मेरी दृष्टि के समर्थन में मनुष्य की अब तक की सारी खोजें हैं। यदि व्यक्ति अपनी कामवासना को दबाता है, तो सदा के लिये वह उसी कामवासना से भरा रह जायेगा। और वही मोरारजी के साथ हुआ है। कोई पचास साल उन्होंने कामवासना को दबाया है, दबाते रहे हैं, उस दबाने को वे सदाचरण समझते हैं। वह कामवासना उनके भीतर भरी पड़ी है। वह जो नहीं पूरा किया है, वह जो नहीं जिया है, वह अभी भी तरंगें ले रहा है। अभी भी वे मुक्त नहीं हैं, अभी भी उसके पार नहीं जा सके हैं। अभी भी रोग की तरह, एक गांठ की तरह उनके भीतर सारी वासना पड़ी है। वे चाहे इसे स्वीकार न भी करें। हिम्मत होनी चाहिए, कम-से-कम उनके गुरु महात्मा गांधी में इतनी हिम्मत थी कि अपने अंतिम समय तक भी उन्होंने यह स्वीकार किया कि मेरी वासना समाप्त नहीं हुई है। दबा लिया था, समाप्त कैसे होती ?

और महात्मा गांधी को अपने जीवन के अंतिम चरण में तंत्र की ही शरण लेनी पड़ी। उसी तंत्र की, जिसके कारण कलिंग का साम्राज्य नष्ट हो गया है मोरारजी देसाई के अनुसार। जीवन-भर तो उन्होंने दमन किया...।

लेकिन एक बात महात्मा गांधी के सम्बन्ध में स्वीकार करनी होगी कि वे आदमी ईमानदार थे। गलत किया तो उसे स्वीकार करने की क्षमता उनमें सदा थी। जीवन-भर दमन किया। किसी तरह अपनी कामवासना को जीतने की कोशिश की और ब्रह्मचर्य को थोपने की कोशिश की। वह नहीं हो सका, तो धोखा नहीं दिया, स्वीकार करते रहे कि मेरे स्वप्नों में अभी भी कामवासना के ही स्वप्न आते हैं।

सत्तर साल की उम्र में भी कामवासना ही मेरे स्वप्नों में चक्कर काटती है। दिन में

तो मैंने विजय पा ली है लेकिन रात्रि में मैं अभी विजय नहीं पा सका हूं। दिन-भर तो किसी तरह कोई आदमी अपने को रोक सकता है, क्योंकि होश में हो तुम, दबा सकते हो। लेकिन जब सो गये, तो फिर कैसे दबाओगे? सोओगे कि दबाओगे? तुम सो गये तो जो दिन-भर दबाया था, वह उठेगा, उभरेगा। वही तो स्वप्नों में व्याप्त हो जाता है। सिगमण्ड फ्रायड की सारी खोज यही है। पर मैं समझता हूं कि मोरारजी देसाई ने शायद सिगमण्ड फ्रायड का नाम भी न सुना हो। महात्मा गांधी ने भी सिगमण्ड फ्रायड की कोई एक किताब जीवन-भर में नहीं पढ़ी।

इस तरह का अज्ञान! सिगमण्ड फ्रायड को बिना जाने कोई आदमी आज आधुनिक नहीं कहा जा सकता। जो आदमी सिगमण्ड फ्रायड को नहीं जानता, उसे म्युजियम में रख देना चाहिए। उसे जिंदा आदमियों के साथ रहने का कोई हक नहीं है। क्योंकि सिगमण्ड फ्रायड की खोज ने एक अपूर्व तथ्य प्रगट किया है और वह यह कि—जो हम दबाते हैं, वही हमारे स्वप्नों में आच्छादित हो जाता है। और जो हम दबाते हैं, उसे हमें जिंदगी-भर दबाना पड़ता है फिर भी हम उससे कभी छुटकारा नहीं पा सकते। और जो दबाते हैं, मरते वक्त वही पूरा-का-पूरा हमारे सामने खड़ा हो जायेगा। हम उसी गर्त में पड़े हुए मरेंगे।

महात्मा गांधी कम-से-कम ईमानदार थे, मोरारजी देसाई उतने ईमानदार नहीं। ...स्वीकार करते थे कि मेरे चित्त में अभी भी वासना है। अब इस वासना से कैसे छुटकारा पाऊं? और जैसे-जैसे मौत करीब आने लगी वैसे-वैसे उनकी चिन्ता बढ़ने लगी कि इस वासना से मैं अब तक मुक्त नहीं हुआ। और अगर मुक्त न हो सका तो फिर जन्मना होगा, फिर गर्भ में आना होगा। फिर यही चक्कर शुरू होगा, फिर आवगमान शुरू होगा। तो क्या करूं?

कोई और उपाय न देखकर उन्होंने अन्ततः तंत्र की शरण ली। अपने अंतिम जीवन के दिनों में उनके सारे निकट के शिष्य, और मैं मानता हूं कि मोरारजी देसाई भी उनमें एक हैं, उनके विपरीत हो गये थे। क्योंकि वे एक युवा नग्न स्त्री के साथ रात नग्न सोने लगे—बुढ़ापे में, वृद्धावस्था में।

यह तो तंत्र की एक जानी-मानी प्रक्रिया है कि जिस चीज से मुक्त होना हो, उस चीज से भागो मत। जिससे मुक्त होना हो, उसमें पूरे-पूरे चले जाओ—सहजता से। उसे समझो, उसके प्रति जागो, उस पर ध्यान करो, दबाओ मत। और अगर कामवासना को जिया जाये सचेतित रूप से, जाग्रत रूप से तो कामवासना समाप्त हो जाती है, निश्चित समाप्त हो जाती है।

कामवासना का समाप्त हो जाना कठिन नहीं है, लेकिन दमित करनेवालों की नहीं



समाप्त होती। अब इस भेद को समझ लेना, जो कि मोरारजी देसाई की समझ में नहीं आता! उतनी बारीक उनकी समझ है भी नहीं, बहुत स्थूल समझ है। तीन बातें, एक; भोगी—जो बिना समझे बेहोशी से भोगता रहता है। और दूसरा उसके विपरीत है योगी—जो बिना समझे बेहोशी से दबाता रहता है। और उन दोनों से भिन्न है तांत्रिक।

तंत्र का मार्ग है: भोगी जो जी रहा है, उसको जियो। योगी की तरह दबाओ मत और भोगी की तरह बेहोश मत रहो। योगी की तरह होश साधो, ध्यान साधो और भोगी के जीवन को बदलो मत। क्योंकि जीवन को बदल लिया, तो फिर ध्यान किसका करोगे? साधोगे किस पर ध्यान? जीवन उपकरण है ध्यान का, परिस्थिति है ध्यान की।

इसलिये मैं अपने संन्यासियों को कहता हूं: भागो मत। न पत्नी छोड़ो, न बच्चे छोड़ो, न दुकान, न बाजार—कुछ भी मत छोड़ो। जहां हो वहीं रहो। रहो वैसे ही जैसे भोगी रहता है, और भीतर योग को जगाओ, ध्यान को जगाओ। स्थिति भोगी की और चित्त योगी का—इन दो का जहां मिलन होता है, वहां तंत्र की महाप्रज्ञा पैदा होती है, महामुद्रा पैदा होती है। तंत्र भोगी की परिस्थिति का उपयोग कर लेता है और योगी की मनःस्थिति का उपयोग कर लेता है। तंत्र बड़ा समन्वय, बड़ी अदभुत कीमया है।

मैं भी वही शिक्षा दे रहा हूं। मैं कोई स्वेच्छाचारी समाज की शिक्षा नहीं दे रहा हूं। मैं निश्चित ही चाहता हूं कि तुम वासना से मुक्त हो जाओ। लेकिन वासना से तुम मुक्त हो ही तब सकोगे, जब तुम वासना के प्रति सारा दुर्भाव छोड़ दो, सारी निंदा छोड़ दो। तुम वासना से मैत्री साधो। क्योंकि वासना तुम्हारी है, तुम वासना हो। दुर्भाव साधोगे, तो मुक्त कैसे होओगे? दुश्मनी की, तो भीतर एक कलह शुरू हो जायेगी, शान्ति निर्मित नहीं होगी। लड़ो मत। लड़ोगे तो खण्ड-खण्ड हो जाओगे, दो टुकड़ों में बंट जाओगे। और जो आदमी दो टुकड़ों में बंट गया है, वह आदमी परमात्मा को कभी भी न जान पायेगा। परमात्मा को वही जान पाता है जो एक हो गया है। लेकिन एक होने का उपाय क्या है? एक होने का उपाय है—जीवन जैसा है वैसा ही उसे स्वीकार कर लो।

सिर्फ एक नये तत्व का उदभावन करो। जीवन जैसा है वैसा ही रहने दो, तुम भीतर जागरण को सम्हालो, होशपूर्वक जियो। पत्नी के पास ही बैठो, लेकिन होशपूर्वक बैठो अब। बच्चों के साथ ही रहो, लेकिन होशपूर्वक रहो अब। दुकान पर भी जाओ, लेकिन ध्यानपूर्वक जाओ अब। और तुम चकित हो जाओगे, दुकान वैसी की वैसी रहती है, तुम दुकान पर होते हो और दुकान से मुक्त हो जाते हो। पत्नी भी, बच्चा भी—सब चलता रहता है। और तुम सब के बीच सब से भिन्न हो जाते हो। तुम जल में कमलवत हो जाते हो!

तो मैं कोई पाश्चात्य ढंग का स्वेच्छाचार नहीं सिखा रहा हूं। मैं तो सदियों-सदियों में परखी गयी तंत्र की जो प्रज्ञा है, तंत्र का जो सार है, वही तुम्हें दे रहा हूं। लेकिन जो दमितचित्त लोग हैं, उनको लगता है कि मैं मुक्ताचार सिखा रहा हूं। यह उनके दमितचित्त के कारण लग रहा है उन्हें।

मोरारजी देसाई ने जो वक्तव्य दिया है, वह मेरे सम्बन्ध में नहीं है, उनके सम्बन्ध में है। उसमें मेरे सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा गया है, उसमें सिर्फ उन्होंने अपने सम्बन्ध में कहा है। यह हालत ऐसी ही है जैसे एक आदमी बैठकर अपना भोजन कर रहा हो और तुमने उपवास किया हो कई दिन का और तुम वहां से गुजरो। तुम्हारे मन में आये कि यह देखो, भोगी, भोजनभट्ट! भोजन के पीछे पड़ा है। अभी तक इसको बोध नहीं आया। नरक में सड़ेगा। इस समय तुम अपने सम्बन्ध में वक्तव्य दे रहे हो कि तुम बहुत पीड़ित हो उपवास से। लेकिन अपनी रक्षा के लिये तुम उसको गाली दे रहे हो। और वह बेचारा सहज प्रक्रिया में लीन है। भूख लगी है तो भोजन कर रहा है। प्यास लगी है तो पानी पी रहा है। तुम रुग्ण-चित्त हो। शरीर भोजन मांग रहा है, तुम भोजन नहीं दे रहे। तुम शरीर से लड़ रहे हो। मन कह रहा है: भूख लगी है, मैं तड़प रहा हूं; तुम मन से लड़ रहे हो।

अध्यात्म लड़ने से पैदा नहीं होता, अध्यात्म बोध का परिणाम है। जागने से पैदा होता है; ध्यान की फलश्रुति है।

मोरारजी देसाई की समझ में यह बात नहीं आ सकती। मेरी किताब भी पढ़ने की हिम्मत नहीं जुटा पाते हैं। लक्ष्मी पीछे उनसे मिलने गयी। मेरी कुछ किताबें ले गयी, मैंने कहा देना उन्हें। वे हाथ में तक लेने को राजी नहीं, मुझे समझेंगे कैसे? मुझे बिना समझे ऐसे वक्तव्य देते हैं! जिसको भी देख लेते हैं गैरिक वस्त्रों में...और बहुत लोग हैं मेरे, सारे मुल्क में हैं। वे जहां जाते हैं वहीं कोई गैरिक वस्त्रधारी पहुंच जाता है, मुझसे बचकर जा नहीं सकते! न मालूम कितने लोगों ने मुझसे आकर कहा है। क्योंकि उनके कई पुराने परिचित अब मेरे संन्यासी हैं। जब मेरे संन्यासी उनको मिलने जाते हैं, वे एकदम से अकड़ जाते हैं। एकदम उफान आ जाता है उनमें। एकदम क्रोधित हो जाते हैं। वे कहते हैं: आप भी फंस गये इस चक्कर में! यह चक्कर है या चक्कर से मुक्ति है। इस सम्बन्ध में पढ़ो, लिखो, सोचो, समझो।

संन्यासी को कहते हैं—आप भी पड़ गये चक्कर में! और खुद किस चक्कर में पड़े हैं? चौबीस घंटे चक्कर चल रहा है, खींचातनी चल रही है। कोई टांग खींच रहा है, कोई हाथ खींच रहा है, कोई कुर्सी ले भागा जा रहा है....। अखाड़ा मचा हुआ है! तालें ठोकी जा रही हैं। हनुमानजी की जै बोली जा रही, हनुमानचालीसा पढ़ा आ रहा



है...। ये मेरे संन्यासी को कहते हैं: तुम भी पड़ गये चक्कर में। मेरा संन्यासी तो चक्कर से मुक्त होने की चेष्टा में लगा है।

लेकिन न तो मैं जो कह रहा हूं उसे सुना है, न जो मैं कह रहा हूं उसे पढ़ा है, न जो मैं कह रहा हूं उसे किया है। पीछे उन्होंने एक वक्तव्य दिया था प्रधानमंत्री बनने के ठीक दूसरे-तीसरे दिन। किसी ने उनसे पूछा कि क्या आप ध्यान भी करते हैं? तो उन्होंने कहा: हां, आचार्य रजनीश ने मुझे ध्यान की प्रक्रिया बताई थी। लेकिन मैंने कभी की नहीं, क्यों कि मुझे जंची ही नहीं। ध्यान की प्रक्रिया बिना किये कैसे तय करोगे ठीक है या गलत? यह तो खूब मजे की बात हुई! करते और कहते कि नहीं जंची तो वैज्ञानिक बात होती। करते और पाते कि नहीं, योग्य नहीं हैं तो वैज्ञानिक बात होती। बिना किये कहते हो—जंची नहीं, इसलिये कभी की नहीं। बिना किये कैसे पता चलेगा?

ध्यान तो एक प्रयोग है, जीवंत प्रयोग है। इसका तो स्वाद लेना पड़ता है। और स्वाद सस्ता भी नहीं है कि आज ही करोगे तो मिल जायेगा। साल-छह महीने चेष्टा करनी होगी। और मोरारजी जैसी पथरीली बुद्धि को तो शायद और भी लम्बा समय लगेगा। तब कहीं अनुभव हो सकता है कि ध्यान क्या है? फिर तुम निर्णय कर सकते हो कि ध्यान ठीक है या गलत है, करना या नहीं करना। लेकिन बिना अनुभव के इस तरह के वक्तव्य का कोई मूल्य नहीं होता है।

मैं यहां एक नयी जीवन-दृष्टि दे रहा हूं। इस जीवन-दृष्टि का मौलिक आधार, इस जीवन-दृष्टि की मौलिक क्रांति इस बात में है कि यह योग और भोग का समन्वय है।

मैं संन्यासी को संसार से तो तोड़ना नहीं चाहता हूं। क्योंकि सदियों में हमने प्रयोग किया, संन्यासी को संसार से तोड़ लिया और तब उसके दुष्परिणाम हुए हैं। जब भी संन्यासी को हमने संसार से तोड़ा तो दो घटनायें घटीं। एक तो यह घटी घटना कि उस आदमी के जीवन से चुनौतियां समाप्त हो गयीं। और जब चुनौतियां नहीं होतीं तो यह भ्रांति पैदा होती है कि शायद मैं रूपान्तरित हो गया। ऐसा ही समझो कि तुम जाकर एक गुफा में बैठ गये जंगल की। अब वहां कोई क्रोध दिलवाने का मौका ही नहीं है। न कोई गाली देता है, न कोई निंदा करता है। तो क्रोध नहीं आता। वर्ष-दो-वर्ष गुफा में बैठे-बैठे तुम्हें लगेगा कि मैं क्रोध का विजेता हो गया! जाओ वापिस भीड़ में। फिर देने दो किसी को गाली, फिर करने दो किसी को अपमान। और तुम अचानक पाओगे कि दो साल जो क्रोध दबा पड़ा रहा था; बीज की तरहा पड़ा रहा था; उसमें फिर अंकुर आ गये। वह फिर उठकर खड़ा हो गया।...मरा नहीं था। सांप सिर्फ फन मारकर बैठ गया था, फिर फन उठा दिया उसने!

एक आदमी तीस साल तक हिमालय पर रहा और सोचा कि मेरा क्रोध अब समाप्त

हो गया। फिर कुंभ का मेला भरा था तो आया, सोचा, अब क्या हर्जा है ? तीस साल काफी समय होता है। तीस साल में एक बार क्रोध नहीं आया। महाक्रोधी था, इसीलिए हिमालय चला गया था कि किसी तरह क्रोध से छुटकारा हो जाये....। सोचकर कि क्रोध से छुटकारा हो गया, और तीस साल काफी लम्बा समय है। जब लौटकर आया कुंभ के मेले में, इभी-भाड़....किसी का पैर उसके पैर पर पड़ गया। बस, तीस साल एक क्षण में खो गये ! पकड़ ली उसकी गर्दन, कहा : तूने समझ क्या है ? जब वह गर्दन पकड़े था और दबा रहा था उसकी गर्दन और कह रहा था : तूने समझा क्या है, किसके पैर पर पैर रखा, होश है ? यह उससे वह रहा था, 'होश है ?' तभी उसे खयाल आया अपने होश का, कि अरे, तीस साल का क्या हुआ ! हाथ वहीं छोड़ दिये। आंख से आंसू गिरने लगे। तब उसे पता चला कि वे तीस साल व्यर्थ गये, बेकार गये। अवसर न था इसलिये क्रोध नहीं पैदा हुआ था। बारूद में चिनगारी न पड़े तो बारूद हजारों साल तक रखी रहे, पता ही न चलेगा कि बारूद है। चिनगारी पड़े और बारूद में आग पैदा न हो, तब समझना कि बारूद बुझी।

इसलिये मैं कहता हूं, संसार मत छोड़ो, क्योंकि संसार में चिनगारियां हैं। चारों तरफ से चिनगारियां पड़ रही हैं। तुम बैठ गये एक जंगल में जाकर। वहां चिनगारियां नहीं हैं। वहां तुम चुनौतियों से हट गये। तुम पलायनवादी हो, भगोड़े हो। तुम जीवन के युद्ध से भाग गये। मैं तुम्हें जीवन के युद्ध से नहीं हटाना चाहता। इसलिये मैं कहता हूं, रहो संसार में। इसलिये तथाकथित योगी मुझसे नाराज हैं; वे कहते हैं यह मैं कैसा संन्यास दे रहा हूं ?

दूसरी बात, मेरी मान्यता है, तुम जितनी चुनौतियों का सामना करोगे, उतना ही तुम्हारे भीतर जागरण बढ़ेगा। हर चुनौती का सामना करना विकास है। हर चुनौती एक सोपान है, एक सीढ़ी है। हर चुनैती तुम्हें जगाने का एक अवसर है। अगर तुम जरा कला सीख जाओ जागने की, वही ध्यान है कला, तो तुम हर चुनौती से लाभ उठा लोगे। जो चुनौती अगर तुम बेहोश उसका सामना करो तो नर्क ले जाती है, वही चुनौती होशपूर्वक सामना करने से स्वर्ग बन जाती है।

चीन का एक सम्राट एक झेन फकीर के पास गया और उसने कहा कि मैं जानना चाहता हूं स्वर्ग और नर्क होते हैं या नहीं ? इसका मुझे प्रमाण चाहिये। मैं बातचीत सुनने नहीं आया। शास्त्र मैंने सब पढ़े हैं, और बड़े-बड़े ज्ञानियों की बातें सुनी हैं, मगर मैं यह प्रमाण चाहता हूं कि स्वर्ग और नरक होते हैं या नहीं ? उस फकीर ने सम्राट की तरफ देखा और कहा : तुम हो कौन ? सम्राट ने कहा : आपको समझ में नहीं आता कि मैं कौन हूं ! मैं सम्राट हूं। वह फकीर हंसने लगा, बोला : हा-हा..., शकल देखी है आईने



में ? उल्लू के पट्ठे ! मक्खियां भिनभिना रही हैं... सम्राट ! सम्राट तो एकदम आगबबूला हो गया कि यह तो हद हो गई ! इस तरह का अपमान कभी किसी ने किया नहीं था। ...भूल गये और निकाल ली तलवार। तलवार चमक गयी ! फकीर की गर्दन के पास जा रही थी, फकीर ने कहा : एक क्षण रुक, यही नरक का द्वार है। एक क्षण रुकना उस घड़ी में और बात समझ में आ गयी सम्राट को कि नरक का द्वार यही है। तलवार वापिस म्यान में गयी। सम्राट के चेहरे का भाव बदला। और फकीर ने कहा : यही स्वर्ग का द्वार है।

स्वर्ग और नरक दूर-दूर नहीं हैं। एक ही चुनौती है; कैसे ली, इस पर निर्भर करता है; वही चुनौती है। क्रोध की चिनगारी फेंकी गयी, तुम उतप्त हो गये, ज्वर-ग्रस्त हो गये, निकाल ली तलवार—नरक हो गया ! जलोगे आग में; कल नहीं, अभी, यहीं। आग पैदा हो गयी। रख दी तलवार। बोध हुआ, होश आया—यह मैं क्या कर रहा हूं ? यही स्वर्ग का द्वार है। चुनौती वही है....। चुनौती से मत भागना।

इसलिये तथाकथित धार्मिक....मोरारजी तथाकथित धार्मिक व्यक्ति हैं, उनको लगता है कि मैं लोगों को भ्रष्ट कर रहा हूं। क्योंकि मैं एक नये संन्यास को जन्म दे रहा हूं, जो चुनौतियों से भागता नहीं, चुनौतियों को अंगीकार करता है, सब तरह की चुनौतियों को अंगीकार करता है। क्योंकि परमात्मा ने तुम्हें जो जीवन दिया है, जो संसार दिया है, जो देह दी, जो मन दिया है, जो वासना दी, वह किसी उपयोग के लिये दी है। उसका उपयोग करो ! भागो मत, दबाओ मत, जागो ! हर चोट खाओ और जागो।

और तब जिंदगी एक अलार्म बन जाती है, सोने से तुम्हें जगाती है। इसी जागरण के मार्ग पर अन्ततः बुद्धत्व का दीया जलता है। उस बुद्धत्व के दीये में कुछ दमित नहीं रह जाता। और जहां कुछ दमित नहीं है, वहीं मुक्ति है। तो सच, ठीक अर्थों में मैं तुम्हें मुक्ताचार सिखा रहा हूं। परमिसिव-सोसायटी के अर्थों में नहीं, बुद्धत्व के अर्थ में मुक्ताचार सिखा रहा हूं।

और मैं चाहता हूं कि तुम यह बात समझो कि परमात्मा ने तुम्हें जो दिया है, वह सब सार्थक है; कामवासना भी सार्थक है, क्योंकि कामवासना के ही आरोहण में राम की अनुभूति है। काम ही राम बन जायेगा।

अगर तुम्हारे भीतर कामवासना न हो, तो तुम्हारे भीतर भक्ति कभी पैदा न हो सकेगी, क्योंकि भक्ति कामवासना का ही शुद्धतम रूप है, उसका ही निखार है। कामवासना ऐसे है, जैसे सोना पड़ा कूड़े-करकट में मिला, मिट्टी से भरा, और भक्ति ऐसे है जैसे सोना आग से गुजरा। आग संसार है, तुम सोना हो। अभी कूड़ा-करकट भरे हो। गुजरो संसार से, गुजरो आग से—निखरो, जलो ! तो जो कचरा है, जल जायेगा, एक

दिन तुम कुंदन होकर प्रगट होओगे ! उस कुंदन की दशा को ही मैं जीवन की परम दशा कहता हूं।

इसलिये मैं कहता हूं कि परमात्मा ने जो भी दिया है, उसका निषेध मत करना। यही तंत्र की देशना है।

और वे जो मंदिर पुरी और भुवनेश्वर के हैं, वे इस देश की सबसे बड़ी संपदाओं में से एक हैं। उन मंदिरों की कला तुमने देखी ? मंदिर के बाहर की दीवाल पर मिथुन-चित्र हैं, नग्न मूर्तियां हैं, युगल हैं प्रेम करते हुए। स्त्री और पुरुष हैं, अनेक-अनेक भाव-मुद्राओं में मंदिर के बाहर की दीवाल पर। और मंदिर में भीतर प्रवेश करो तो प्रभु विराजमान है। मंदिर के भीतर वासना नहीं है। मंदिर की दीवाल वासना से भरी है।

जीवन की दीवाल वासना से बनी है, काम से बनी है। और इसी काम की दीवालों के बीच में बैठा राम है। ये बड़े महत्त्वपूर्ण प्रतीक हैं !

मगर मोरारजी देसाई की कठिनाई मैं समझता हूं। महात्मा गांधी की भी यही कठिनाई थी। महात्मा गांधी का तो प्रस्ताव था कि पुरी, कोणार्क, भुवनेश्वर, खजुराहो के मंदिरों को मिट्टी में दबा देना चाहिए, ताकि लोग उनके दर्शन न कर सकें। वह तो रवींद्रनाथ के कारण यह होने से बचा, नहीं तो यह होता। तो रवींद्रनाथ ने बड़ा विरोध किया कि यह तो बात बड़े पागलपन की है ! इतने सुंदर मंदिर ! इनको मिट्टी से दबा देने का आयोजन है !

और ये मंदिर अद्भुत हैं ! मगर मोरारजी देसाई को अद्भुत नहीं मालूम पड़ेंगे। वे शायद आंख भरकर इन मिथुन प्रतिमाओं को देख भी न सकेंगे। क्योंकि उनके भीतर जो दबी वासना है, वह एकदम हुंकार भरने लगेगी।

खजुराहो विन्ध्य प्रदेश में है। विन्ध्य प्रदेश में एक मंत्री मेरे मित्र थे। एक अमरीकी कलाकार, चित्रकार, मूर्तिकार, खजुराहो देखने आया। वह पंडित जवाहरलाल नेहरू का का मित्र था। तो जवाहरलाल नेहरू ने मेरे मित्र को, जो मंत्री थे विन्ध्य प्रदेश में, खबर की कि तुम खुद साथ जाना और जाकर खजुराहो के सब मंदिर ठीक से दिखा देना। वे गये। वे बड़े परेशान थे। गांधीवादी हैं; बड़ी मुश्किल में पड़े थे कि कैसे समझाऊंगा, क्या बताऊंगा। लज्जित से हो रहे थे कि वह भी अमरीकी यात्री देख कर क्या सोचेगा ?

क्योंकि खजुराहो जैसे चित्र तो दुनिया में कहीं भी नहीं हैं ! इतने अहोभाव से परमात्मा के दान को कहीं स्वीकार किया गया नहीं है। कामवासना को भी इतना आध्यात्मिक गौरव कहीं दिया गया नहीं है। खजुराहो का तो कोई मुकाबला ही नहीं है। हजार ताज महल बनें और मिट जायें, कोई मूल्य नहीं है। खजुराहो की एक-एक प्रतिमा, एक-एक ताजमहल से ज्यादा मूल्यवान है। और उन प्रतिमाओं की जो सब से बड़ी खूबी



है, महिमा है वह यह कि यद्यपि जोड़े नग्न हैं, आलिंगनबद्ध हैं, प्रेयसी और प्रेमी का मिलन है, मगर उनके चेहरे देखो, उनके चेहरे पर समाधि है ! उनके चेहरे पर कहीं कोई कामवासना या काम-लिप्सा नहीं है। पत्थर में भी जिन्होंने यह खोदा है...समाधि को उतार लाये हैं—पत्थर में भी !

मगर उन चेहरों को तो तुम तभी देख पाओगे, जब तुम नग्न शरीरों को आलिंगन-बद्ध देख सको। अगर नग्न शरीरों को आलिंगनबद्ध देखते ही, तुम को ज्वर चढ़ गया और एकदम तुम्हारा एक सौ पांच डिग्री पर बुखार हो गया ! और तुम्हारे भीतर की सारी दबी वासना उठने लगी...और तुमने कहा कि—कहां फंस गये, किस पाप में फंस गये ! या तुम्हारी आंखें नीचे झुक गयीं, या तुम डर गये, या भयभीत हो गये....हो ही जाओगे। मोरारजी देसाई नहीं देख सकेंगे खजुराहो की प्रतिमाओं को पूरी नजर भरके; असंभव है। क्योंकि जब किसी स्त्री को पूरी नजर भरकर नहीं देखा और डरे-डरे जिये, तो कैसे इन प्रतिमाओं को देख सकेंगे !

ये प्रतिमायें तो परम सुंदर हैं ! कोई स्त्री इतनी सुंदर नहीं होती। यह तो अनेक-अनेक स्त्रियों का सार है। स्तन किसी सुंदर स्त्री के हैं, चेहरा किसी और सुंदर स्त्री का है, पैर किसी और सुंदर स्त्री के हैं, हाथ अंगुलियां किसी और सुंदर स्त्री की हैं। ऐसी सुंदर स्त्री तुम कहीं भी पा न सकोगे। यह तो हजार सुंदर स्त्रियों को तोड़ोगे और जोड़ोगे, बनाओगे, तब कहीं बन पायेगा।

मोरारजी देसाई तो घबड़ा जायेंगे। मेरे मित्र भी घबड़ाये हुए थे। उस मूर्तिकार को दिखा तो दिया उन्होंने जल्दी-जल्दी...। जब लौटने लगे, मूर्तिकार चुप ही रहा...सीढ़ियां उतरते वक्त कहा कि क्षमा करें, इससे आप यह खयाल मत लेना कि यह हमारी संस्कृति की मूल-धारा है। वही मोरारजी देसाई कह रहे हैं—कलिंग में कभी एकबार इस देश में एक छोटा-सा समाज मुक्ताचारी हो गया था। वही मेरे मित्र ने उनसे कहा कि—आप यह मत सोचना कि हमारी मूल-धारा है। बस दो-तीन मंदिर हैं इस तरह के करोड़ों मंदिरों में। यह हमारी मूल-धारा नहीं है। यह कुछ विक्षिप्त, कुछ स्वच्छंद लोगों ने ये मंदिर बना दिये हैं,। आप क्षमा करना। इससे आप यह खयाल लेकर मत लौट जाना कि ये भारत के प्रतीक हैं।

इसलिए तो मोरारजी देसाई भयभीत हैं मुझसे। पश्चिम से यात्रियों को यहां नहीं आने दे रहे, क्योंकि वह कहते हैं कि मैं भारत का प्रतीक नहीं हूं, असली भारत का मैं प्रतिनिधि नहीं हूं। असली भारत के प्रतिनिधि मोरारजी देसाई हैं ! उन्होंने कहा है, इस वक्तव्य में भी, कि एक...कलिंग में एक बार ऐसा हुआ था...। यह बात गलत है कि कलिंग में ही ऐसा एक बार हुआ था। खजुराहो कलिंग में नहीं है। और इस तरह

के मंदिर पूरे देश में थे, इसके उल्लेख हैं। लेकिन मोरारजी देसाई जैसे मतांध लोगों ने उन मंदिरों गिरा दिया, मिटा दिया। आश्चर्य तो यही है कि खजुराहो, पुरी और कोणार्क और भुवनेश्वर के मंदिर बच कैसे गये! करोड़ों मंदिर थे, मिटा दिये गये। उनकी जड़ें काट दी गयीं। उनके पुजारी मार दिये गये। राजा भोज ने एक लाख तांत्रिकों को भारत में मरवाया—अकेले राजा भोज ने! ये सब ऐतिहासिक तथ्य हैं। फिर वात्स्यायन के कामसूत्र कलिंग में नहीं लिखे गये थे। फिर वात्स्यायन को इस देश के मनीषियों ने महर्षि कहा है। मोरारजी देसाई न कह सकेंगे महर्षि।

मेरे मित्र डरे थे, तो उन्होंने क्षमा मांगी, कहा: आप क्षमा करें, आपको एक बात निवेदन कर दूं, यह हमारी मूल-धारा नहीं है, यह प्रकारान्तर से है, कुछ किनारे पर...। भटके-भूले लोगों ने बना दिये ये मंदिर।

उस मूर्तिकार ने कहा: आप कुछ लज्जित मालूम पड़ते हैं। आप कुछ बेचैन मालूम पड़ते है। आपको इन मंदिरों में कुछ गलत दिखाई पड़ रहा है?

मेरे मित्र ने कहा: गलत...नंगी प्रतिमायें हैं, अश्लील मूर्तियां—अश्लील! स्वेच्छाचारी!

उस अमरीकी चित्रकार ने कहा: तो फिर मुझे दोबारा अंदर जाना होगा। आप फिर मेरे साथ आयें। क्योंकि मैं तो कहीं अश्लीलता देख ही न सका। मैंने तो इतने सुंदर प्रेम और प्रार्थना और समाधि के अंकन ही नहीं देखे! अपने जीवन में अगर कहीं मैंने कोई चीज संभोग से समाधि तक उठाने वाली देखी हो, तो ये खजुराहो की प्रतिमायें हैं, जिन्होंने कीचड़ को कमल बना दिया है! मालूम होता है आप केवल मूर्तियों के आधे अंग को ही देखते रहे, आपने मूर्तियों के चेहरे नहीं देखे हैं!

चेहरे तक नजर ही न जायेगी। जो आदमी कामवासना को दबाये बैठा है, वह मूर्तियों के आधे अंग के ऊपर न जा सकेगा। वहीं से डर जायेगा और वापिस लौट आयेगा, भयभीत हो जायेगा। चेहरे को देखने तक आंख उसकी ऊपर उठ न सकेगी।

खजुराहो की मूर्तियों के चेहरे सच में अद्भुत है! समाधि को पत्थर पर छापना कितना कठिन रहा होगा! और फिर ऐसे संदर्भ में, यौन के संदर्भ में। मगर यह घटना घटी है, यह अलौकिक घटना घटी है।

पर याद रखना, ये सब मंदिर की बाहर की दीवाल पर है, खजुराहो में भी। फिर मंदिर के भीतर जायें, अन्तःकक्ष, अन्तःपुर मंदिर का—गर्भ, वहां यौन नहीं है, वहां परमात्मा विराजमान है। इसका अर्थ क्या है? इसका अर्थ है: संसार—मंदिर की बाहरी दीवाल से, जब तक पूरी तरह मुक्त नहीं हो गये हो, तब तक तुम भीतर प्रवेश के अधिकारी नहीं हो। जब इस बाहर की दीवाल से तुम मुक्त हो जाओगे, तो भीतर के



प्रवेश का हक मिलता है। क्योंकि अगर बाहर की दीवाल से मुक्त न हुए तो भीतर जाकर भी तुम बाहर की दीवाल के सम्बन्ध में ही सोचोगे, विचारोगे।

कामवासना को दबाकर प्रार्थना करने बैठोगे तो वासना ही उठेगी। कामवासना को दबाकर ध्यान करने बैठोगे, बस स्वर्ग से अप्सरायें उतर आयेंगी, चित्त में उर्वशी नाचने लगेगी! ये ऋषि-मुनि-जिनके पास उर्वशी आकर नाचती है, मोरारजी देसाई जैसे लोग रहे होंगे। ये कोई ऋषि-मुनि नहीं, ये उनकी दमित वासनायें हैं। क्योंकि कहां, कौन उर्वशी है? कहां, कौन इन्द्र बैठा है? किस इन्द्र को फिक्र पड़ी है! क्या प्रयोजन है? किसी गरीब साधु को, जो किसी झाड़ के नीचे बैठकर उपवास करके ध्यान कर रहा है, इसको भ्रष्ट कर के क्या मिल जाना है!

कहीं से कोई अप्सरायें नहीं आतीं। मगर यह प्रतीक महत्त्वपूर्ण है। अप्सरायें तुम्हारे ही दमित चित्त से आती हैं। तुम्हारे ही अचेतन पर्तों से उठती हैं। तुम्हारे ही हृदय के गर्भ से उठती हैं। जो तुमने दबा दिया है, वही तुम्हारे सामने प्रगट होता है। वे तुम्हारे ही सपने हैं, तुम्हें घेर लेते हैं।

जब तक तुम वासना के प्रति परिपूर्ण जागरूक न हो जाओगे, तब तक तुम मंदिर में प्रवेश के अधिकारी नहीं हो। तुम ध्यान न कर सकोगे, प्रार्थना न कर सकोगे, पूजा न कर सकोगे। तुम्हें अड़चन पड़ेगी। तुम्हारा चित्त हजार अवरोध खड़े करेगा।

मेरी देशना है कि तुम जीवन की बाहर की दीवाल से भागो मत। इसको पूरा-पूरा समझो। समझ मेरा सूत्र है, दमन नहीं—निरीक्षण, साक्षी-भाव। तुम अपनी कामवासना में भी साक्षीभाव से उतरो। और तुम एक दिन पाओगे, और यहां अनेक पा रहे हैं। और मैं कुछ ऐसा ही सैद्धांतिक वक्तव्य नहीं दे रहा हूं। अब यह तो हजारों लोग मेरे साथ अनुभव कर रहे हैं, मेरे साथ प्रयोग कर रहे हैं, उनका सुनिर्णीत मत है।...तुम एक दिन पाओगे कि वासना से बाहर हो गये हो, और बिना बाहर होने की चेष्टा के। क्योंकि चेष्टा में दमन है। तुम सहज ही बाहर हो गये हो। और जब कोई सहज ही बाहर होता है तो अपूर्व सौंदर्य है उस सहजता में।

मेरा मार्ग सहज का मार्ग है। मैं सहजिया हूं। साधो, सहज समाधि भली!

लेकिन मोरारजी देसाई जैसे तथाकथित दमित-चित्त के लोग इस देश की छाती पर बैठे हैं, सदियों से बैठे हैं। उन्होंने इस देश को विकृत किया है, इस देश के जीवन को कुंठित किया है। मोरारजी देसाई कहते हैं— मुक्ताचार के कारण कलिंग का नाश हुआ। मैं तुमसे कहता हूं—मोरारजी देसाई जैसे लोगों के कारण इस पूरे देश का विनाश हुआ!

सभ्यतायें तो बनती हैं, मिटती हैं, सभ्यताओं का कुछ नहीं। कलिंग में एक सभ्यता

थी, आयी और गयी। सभ्यताओं का तो जन्म होता है, अन्त होता है। यह तो कोई बड़ी बात नहीं। सभी सभ्यतायें बनती हैं, मिटती हैं।

लेकिन इस देश की छाती पर जो सबसे बड़ा बोझ है, वह तथाकथित नैतिकतावादियों का है, झूठे नैतिकतावादियों का है। वे इस देश की छाती पर बैठे हैं। उन्होंने इस देश को समृद्ध नहीं होने दिया। क्योंकि समृद्ध होने के लिये एक मुक्तता चाहिए, जीवन का सहज स्वीकार चाहिए। उन्होंने इस देश को दरिद्र बना कर रख दिया है।

यह देश समृद्ध हो भी नहीं सकता। क्योंकि जब तक तुम खुलकर न जियोगे, कैसे समृद्ध होओगे? हर चीज की निंदा है; काम की निंदा है, प्रेम की निंदा है, भोग की निंदा है, भोजन की निंदा है, वस्त्रों की निंदा है, सौंदर्य की निंदा है— हर चीज की निंदा है! फिर तुम समृद्ध कैसे होओगे? समृद्ध किसलिये फिर, फिर जरूरत क्या है?

समृद्ध कोई समाज तभी होता है, जब जीवन का स्वीकार होता है—जीवन का बहुरंगी स्वीकार! वस्त्र भी सुंदर हैं, देह भी सुंदर है, देह का स्वास्थ्य भी सुंदर है, देह का जीवन भी सुंदर है। भोजन में भी रस है, संगीत में भी, साहित्य में भी...। जब जीवन सब रंगों से भरा होता है तो जीवन समृद्ध होता है।

यह देश सिकुड़ गया है। इसको मार डाला है। इस देश को समझाया गया है कि दरिद्रता में कोई अध्यात्म है! दरिद्रता में कोई अध्यात्म नहीं है। दरिद्र आदमी धार्मिक ही नहीं हो पाता। दरिद्रता सबसे बड़ा महापाप है। दरिद्रता से और सारे पाप पैदा होते हैं।

मैं इस देश को कुछ और बात कहना चाह रहा हूं। इसलिये अड़चन तो होगी। इस देश के ठेकेदारों को अड़चन होगी, पंडित-पुरोहितों को अड़चन होगी, राजनेताओं को अड़चन होगी। यह स्वाभाविक है।

मैं यह कह रहा हूं कि देश को अब जीवन अंगीकार से भरना चाहिए। बहुत हो गया निषेध, अब विधेय से भरना चाहिए। बहुत कह चुके हम—नहीं, नहीं, नहीं! और सिकुड़ गये और मर गये और सड़ गये! अब हमें कहना है—हां! अब हमें जीना है। अब हमें जीवन के अभियान पर निकलना है। अब हम जियेंगे, जीवन के सब आयामों में जियेंगे। हम सुंदर वस्त्र तलाशेंगे, सुंदर देहें तलाशेंगे। हम सुंदर भोजन तलाशेंगे। हम सुंदर मकान बनायेंगे।

यहां आते हैं लोग, उनको बड़ी हैरानी होती है। वे कहते हैं, आश्रम तो झोंपड़े इत्यादि होना चाहिए। उन्हें मेरी दृष्टि का पता नहीं है। झोंपड़े तो कहीं भी नहीं होना चाहिए, आश्रम में क्यों, कहीं भी नहीं होना चाहिए। सब जगह तो आज मैं नहीं मिटा सकता हूं, लेकिन कम-से-कम अपने आश्रम में तो मिटा सकता हूं। यहां तो नहीं होने दूंगा झोंपड़े।



तुम्हारा झोंपड़ों से मन नहीं भरता, काफी नहीं हैं तुम्हारे पास! और दो-चार यहां बना दूंगा तो तुम्हारा चित्त प्रसन्न होगा! कि यहां लोग सुव्यवस्था से, शालीनता से क्यों रहते हैं? और कैसे रहना चाहिए! सुव्यवस्था से, स्वच्छता से, शालीनता से रहना चाहिए। यही रहने का ढंग होना चाहिए। जीवन में एक ऐश्वर्य होना चाहिये। तुम देखते हो, हमारा ईश्वर शब्द ऐश्वर्य से बना है। एक सज्जन मेरे पास आ गये। वह कहने लगे: आप इतनी महंगी कार में क्यों बैठते हैं? मैंने उनसे पूछा: कृष्ण जी कोई बैलगाड़ी में बैठते थे? यह कार, बेंच कार उस समय उपलब्ध नहीं थी, नहीं तो कृष्ण इसमें बैठते। रथ पर बैठते थे, वह महंगा पड़ता था इससे। वे बोले: हां, यह बात तो ठीक है। अब इसमें जरा उन्हें अड़चन हुई कि अब क्या करें? अब कृष्ण जी भी कोई बैलगाड़ी में तो बैठते नहीं थे। और अगर दरिद्रनारायण को ही मानते थे, तो फिर तो किसी गधे पर ही सवारी करनी थी, क्योंकि गधे से दरिद्र और कौन होगा? गधा तो बिलकुल दरिद्रनारायण है, दीन-हीन है!

जिस दिन से इस देश ने ऐश्वर्य के विपरीत निर्णय ले लिया, उसी दिन से यह देश दरिद्र होने लगा। कृष्ण के समय तक बात और थी! एक जीवन का रस था, उमंग थी; नाच था, गीत था, गान था।...तो दूध-दही की नदियां बहती थीं। कहां खो गयीं दूध-दही की नदियां? कहां खो गये वे सुंदर लोग? अब यमुना-तट पर वंशी नहीं बजती और न ही वृन्दावन में रास रचा जाता है। अब हमारी होली भी क्या होली है! रंग-गुलाल फेंक लेते हैं, मगर रंग-गुलाल फेंकनेवाली आत्मा कहां है? खो गयी बहुत पहले, मोरारजी देसाई जैसे लोगों के कारण खो गयी! अब हमारी दीवाली भी क्या दीवाली है—दीवाला है! जला लेते हैं किसी तरह दीये कि जलाने चाहिए। मगर जीवन के दीये ही नहीं जल रहे हैं तो दीवाली के दीये क्या अर्थ रखेंगे? झूठे हैं, बेमानी हैं। उनका हमसे कुछ सम्बन्ध और तुक नहीं है, तालमेल नहीं है। हमसे उनका छंद नहीं बैठता।

तुम्हें पता है, उपनिषद के ऋषियों के आश्रम समृद्ध थे। कथा है: जनक ने एक बड़े विवाद की घोषणा की कि जो भी इस विवाद में जीत जायेगा, उसे एक हजार गायें भेंट करूंगा। उन गायों के सींघों पर सोना चढ़वा दिया, हीरे जड़वा दिये। वे गायें खड़ी हैं महल के द्वार पर। आने लगे विचारक, दार्शनिक विवाद के लिये। विवाद शुरू होने लगा। दोपहर हो गयी तब याज्ञवल्क्य आया—उस समय का एक महर्षि। उसका बड़ा आश्रम था; जैसा आश्रम यह है, ऐसा आश्रम रहा होगा। याज्ञवल्क्य आया अपने शिष्यों के साथ और उसने कहा, कि गऊएं धूप में खड़े-खड़े थक गयीं और उनको पसीना आ रहा है; शिष्यों से कहा कि बेटो! तुम ले जाओ गऊओं को आश्रम में, विवाद मैं निपट लूंगा। और उसके शिष्य खदेड़ कर गऊओं को ले गये। हजार गऊएं—सोने के सींघ

चढ़ीं, हीरे-जवाहरात जड़ीं। जनक भी खड़ा रह गया, और पंडित भी भौंचक्के रह गये! क्योंकि यह तो विवाद के बाद पुरस्कार है मिलनेवाला। याज्ञवल्क्य ने कहा: चिंता ही मत करो, विवाद हम निपट लेंगे; विवाद में क्या रखा है! लेकिन गऊएं क्यों सताई जायें?

अब जिस आश्रम में हजार गऊएं हों सोने के सींग चढ़ी, वह क्या तुम सोचते हो बम्बई की झोपड़पट्टियां रही होंगी! तो हजार गऊओं को खड़ा कहां करोगे, बांधोगे कहां? हजारों विद्यार्थी आते थे गुरुकुलों में....। और क्या तुम सोचते हो, ये जो तुम्हारे गुरुकुल के ऋषि-मुनि थे, ये जीवन से भागोड़े थे? इनकी पत्नियां थीं, इनके बेटे थे। और इनके पास जरूर सुंदर पत्नियां रही होंगी। क्योंकि कहानियां कहती हैं, देवता भी कभी-कभी इनकी पत्नियों के लिये तरस जाते थे। कभी चन्द्रमा आ गया चोरी से, कभी इन्द्र आ गये चोरी से...। तो पत्नियां भी कुछ साधारण न रही होंगी! क्योंकि कहानियां यह नहीं कहतीं कि राजाओं की पत्नियों के लिए देवता तरसते थे।...कहानियां तो साफ हैं। एक कहानी नहीं कहती कि राजाओं की पत्नियों से, राजमहल की पत्नियों के लिए देवता तरसते थे। लेकिन ऋषि-मुनियों की पत्नियों के लिए तरस जाते थे। सौंदर्य भी रहा होगा, ध्यान की गरिमा भी रही होगी—तो सौंदर्य हजार गुना हो जाता है!...तो सुंदर पत्नियां थीं। कभी-कभी ऐसा भी हो जाता था, गुरु का शिष्य भी गुरु की पत्नी के प्रेम में पड़ जाता था। कभी ऐसा भी हो जाता था कि गुरुकुल में पढ़ते हुए...युवक और युवतियां, दोनों पढ़ते थे। तुम्हें शकुंतला की कथा तो याद ही है कि कभी राजा भी गुरुकुल में पढ़ती हुई युवतियों को देखकर मोहित हो उठता था।...सुंदर थे, वैभव था, ऐश्वर्य था। जीवन के जीने की एक शैली थी; दरिद्रता, दीनता, सिकुड़ाव नहीं था।

इस देश में सिकुड़ाव की शुरुआत हुई जैनों और बौद्धों के प्रभाव से। जैनों और बौद्धों के प्रभाव में इस देश की संस्कृति मरी। जैनों और बौद्धों के प्रभाव में नकार पैदा हुआ, निषेध पैदा हुआ, और उनके साथ ही इस देश का पतन शुरू हुआ। कलिंग का पतन नहीं, एक-आध सभ्यता का पतन नहीं, इस देश का पतन जैनों और बौद्धों के निषेध के कारण शुरू हुआ। दीनता और दरिद्रता, तपश्चर्या और जीवन निषेध—इनके कारण इस देश का पतन शुरू हुआ। यह देश सिकुड़ता चला गया...। धीरे-धीरे इस देश ने सारी सामर्थ्य खो दी। कितने विदेशी आये, और यह देश सबसे हारता चला गया।

अगर मोरारजी सही हैं, तो कलिंग भर हारना चाहिए था, यह सारा देश क्यों हारता चला गया? यह सारा देश इसलिये हारता चला गया, क्योंकि इस देश में जीवन जीने का अभियान ही न रहा। यह देश मुर्दा हो गया। इस देश के, जीवन में उत्सव न रहा। मरे और जिये बराबर हो गया, मरना, जीना एक जैसा हो गया। बल्कि ऐसा लगे कि मर



ही गये तो अच्छा, झंझट मिटी। जिंदगी झंझट मालूम होने लगी। इसलिये यह देश सिकुड़ा।

इसमें छोटे-छोटे लुटेरे आये, जिनकी कोई ताकत न थी बड़ी, मगर उनके सामने यह देश हारता चला गया। यह करोड़-करोड़ लोगों का देश, थोड़ी-थोड़ी संख्या वाले लोग आये और उनसे हारता चला गया। क्या मोरारजी सोचते हैं, सिकन्दर जब भारत आया और पौरुस हारा, तो पौरुस इसलिये हारा कि मुक्ताचारी समाज था पौरुस का? पौरुस इसलिये हारा कि जीवन को जीतने की आकांक्षा खो गयी थी। जीवन को फैलाने का आयोजन खो गया था, इसलिये हारा।...और फिर हारते चले गये। तुर्क आये, और मुगल आये, और हारते चले गये। और हूण आये और पठान आये और हारते चले गये। और फिर अंग्रेज आये और फ्रांसीसी आये और पुर्तगाली आये और स्पेनिश आये, और हारते चले गये....।

और अब भी वही वृत्ति है सिकुड़ाव की...। अब भी जीवन को फैलने का, विस्तार देने का, जीवन के आनंद को परमात्मा की भेंट स्वीकार करने का, भाव पैदा नहीं हुआ है।

मैं तुम्हें चाहता हूं कि तुम फिर अभियान करो। फिर जीवन को उसके सब रंगों, सब स्वरों में स्वीकार करो। फिर नाचो, फिर गाओ, फिर प्रेम करो। निश्चित ही प्रेम, नृत्य और गान के पार एक घड़ी है ध्यान की भी, समाधि की भी; लेकिन वह जीवन का अंतिम शिखर है। पहले मंदिर तो उठाओ, फिर स्वर्ण-शिखर भी रखेंगे। पहले मंदिर तो बनाओ। मंदिर ही नहीं होगा तो स्वर्ण-शिखर कहां रखोगे? जीवन के मंदिर पर ही समाधि का कलश चढ़ता है!

लेकिन मेरी बात अड़चन तो देगी। क्योंकि मेरी बात आज अकेली है। मैं जो कह रहा हूं, वह वही है जो वेदों ने कहा। मैं जो कह रहा हूं, वह वही है जो उपनिषदों ने कहा। लेकिन उपनिषद और वेदों के बीच और मेरे बीच कोई ढाई हजार-तीन हजार साल का फासला पड़ गया है। इन ढाई-तीन हजार सालों में सब नष्ट-भ्रष्ट हुआ है। और अब भी ताकत इसी तरह के लोगों के हाथ में है।

और जीवन के कुछ नियम हैं। जब एक बार गलत बात प्रभावी हो जाती है, तो हम उसी के प्रभाव में जिये चले जाते हैं। हम फिर सुनते ही नहीं दूसरी बात। हम दूसरी बात को समझने के योग्य भी नहीं रह जाते।

अब जैसे समझो, सारी दुनिया समृद्ध होती जा रही, हम अपना चरखा लिये बैठे हैं! मोरारजी देसाई अभी भी चरखा कातते रहते हैं बैठे। चरखे से कहीं कोई दुनिया समृद्ध हुई है! चरखे से होती तो तुम दरिद्र ही क्यों हुए, चरखा तो तुम कात ही रहे हो सदियों से। कोई गांधी ने चरखा ईजाद नहीं किया, चरखा तो कत ही रहा है यहां,

हजारों साल से कत रहा है। हमें चाहिए बड़ी टेक्नालॉजी। हमें चाहिये तकनीक के नये-से-नये साधन। समृद्धि तकनीक से पैदा होती है। क्योंकि एक मशीन हजारों लोगों का काम कर देती है, लाखों लोगों का काम कर सकती है। मशीन से लाखों गुना उत्पादन हो सकता है।

लेकिन गांधी इस देश की छाती पर बैठे हैं! गांधी की पूजा चल रही है। गांधी को माननेवाले लोग छाती पर चढ़े हैं। जो भी गांधी बाबा का नाम ले, वही छाती पर चढ़ जाता है। तुम दरिद्र हो गये हो, और दरिद्र होने की तुम्हारी आदत हो गयी है। इसलिये जो भी तुम्हारी दरिद्रता से मेल खाता है, वह तुम्हें जंचता है।

मैं तुम्हारी दरिद्रता तोड़ना चाहता हूं, मैं तुम्हें नहीं जंच सकता। तुम्हें यह बात बहुत जंचती है कि गांधी बाबा थर्ड क्लास में चलते हैं। उनके थर्ड क्लास में चलने से क्या होनेवाला है? उनके थर्ड क्लास में चलने से तुम सोचते हो सारा देश फर्स्ट क्लास में चलने लगेगा। उनके थर्ड क्लास में चलने से सिर्फ और थर्ड क्लास में भीड़ बढ़ गयी। वैसे ही भीड़ थी, और एक सज्जन घुस गये! और एक ही सज्जन नहीं, गांधी बाबा जब चलेंगे थर्ड क्लास में तो पूरा डिब्बा उनके लिये...। जिसमें कोई साठ-सत्तर, अस्सी-नब्बे आदमी चढ़ते हैं, उसमें अब एक आदमी चल रहा है अपने दो-चार सेक्रेटरी वगैरह को लेकर। थर्ड क्लास में चलने से क्या होगा?

अगर मैं गरीब हो जाऊं, नंगा होकर सड़क पर भीख मांगने लगूं, तुम सोचते हो, इस देश की समृद्धि आ जायेगी? अगर मेरे नग्न होने से और सड़क पर भीख मांगने से इस देश की समृद्धि आती तो कितने लोग तो नंगे हैं और कितने लोग तो भीख मांग रहे हैं, समृद्धि आयी क्यों नहीं?

लेकिन हम इसी तरह की मूढ़ता की बातों में पड़ गए हैं! तुमको भी जंचेगा...अगर मैं नग्न होकर सड़क पर भीख मांगने लगूं, तब तुम देखना कि भारतीयों की भीड़ मेरे पीछे खड़ी हो जाएगी। लाखों भारतीय जयजयकार करने लगेंगे। हालांकि तब मैं उनके किसी काम का नहीं रह गया, मगर जयजयकार वे तभी करेंगे। अभी मैं उनके किसी काम का हो सकता हूं, लेकिन अभी वे जयजयकार नहीं कर सकते। क्योंकि उनकी तीन हजार साल की बंधी हुई धारणाओं से मैं विपरीत पड़ता हूं।

मैं चाहता हूं, इस देश में उद्योग हो, इस देश में बड़ा तकनीक आए, बड़ी मशीनें आएं। इस देश में विज्ञान का अवतरण हो। यह देश फैले। लेकिन यह देश तभी फैल सकता है, जब हम जीवन को स्वीकार करें—उसके सब रंगों में, सब ढंगों में।

जीवन-निषेध की प्रक्रिया आत्मघाती है। जीवन-विधेय की प्रक्रिया ही अमृतदायी है। उस जीवन-विधेय के आयाम में ही मैं सब स्वीकार करता हूं—कामवासना भी



अंगीकार है।

श्री मोरारजी देसाई को कहना चाहता हूं कि आप जैसे लोगों की व्यर्थ बकवास के कारण ही इस देश का दुर्भाग्य सघन होता जा रहा है। इस पर दया करो! पुनः सोचो, पुनर्विचार करो। इस देश को उमंग दो, निराशा नहीं। हताशा मत दो। इस देश के प्राणों को उत्साह दो। इसकी मरी आत्मा में सांस फूंको। इस देश के जीवन में नये खून का संचार करो। वही मैं कर रहा हूं। इसलिये मेरी बात पश्चिम के लोगों को ज्यादा अनुकूल पड़ रही है। इसलिये अनुकूल पड़ रही है कि वे जीवन के प्रेमी हैं, वे फैलाव के आतुर हैं। उनके और मेरे बीच तर्क ठीक बैठ रहा है।

मुझसे लोग पूछते हैं: यहां भारतीय क्यों कम दिखाई पड़ते हैं? वे इसीलिए कम दिखायी पड़ते हैं कि भारत ने तीन हजार साल में एक गलत ढंग की सोचने की प्रक्रिया बना ली। मेरा उससे कोई तालमेल नहीं है। मेरे पास तो वे ही भारतीय आ सकते हैं, जो थोड़े आधुनिक हैं; जिनमें थोड़ा सोच-विचार का जन्म हुआ है, जिन्होंने आंखें खोली हैं और जो देख रहे हैं कि दुनिया में क्या हो रहा है। अब कोई देश गरीब रहने के लिये बाध्य नहीं है। अगर हम गरीब रहेंगे, तो अपने ही कारण। अब तो विज्ञान ने इतने साधन उपलब्ध कर दिये हैं कि हर देश समृद्ध होना चाहिए। कोई कारण नहीं है। अगर हम दरिद्र हैं तो हमारी दार्शनिक वृत्ति, हमारे सोचने-विचारने की प्रक्रिया में कहीं कोई भूल है।

मैं कहता हूं: जीवन परमात्मा है। इसे जिओगे तो परमात्मा को जिओगे। जीवन प्रार्थना है, पूजा है। इसको मस्ती से, आनंद से अंगीकार करो। इसको ऐसा मत समझो कि तुम पाप के कारण जीवन में भेजे गये हो, पाप का भुगतान करवाने के लिए, कि पाप का दण्ड दिया गया है इसलिए जीवन में भेजे गये हो।

गांधी की मत सुनो, रवीन्द्रनाथ की सुनो। रवीन्द्रनाथ ने मरते वक्त कहा है कि, 'हे प्रभु! मुझे बार-बार भेजना, तेरा जीवन बड़ा प्यारा था!' आवागमन से छूट जाऊं, ऐसा नहीं कहा—'बार-बार भेजना, तेरा जीवन बहुत प्यारा था! फिर अनुकंपा करना!'

आवागमन से छूट जाऊं, ऐसा जो मानकर बैठा है, ऐसा जो सोच रहा है, वह ठीक से जी नहीं सकेगा; वह तो मरने को तैयार है। उसकी वृत्ति में आत्मघात है।

मैं तुम्हें एक नया धर्म दे रहा हूं, एक धर्म का नया उद्घोष दे रहा हूं। इस उद्घोष को ठीक-ठीक स्पष्ट करने के लिए, चाहता हूं कि एक छोटा नगर ही बस जाए। उसकी कोशिश में लगा हूं। लेकिन मोरारजी भाई एण्ड कंपनी सब तरह से बाधाएं डालने की कोशिश करती है। उनको क्या अड़चन है, मुझे एक छोटा-सा गांव बसा कर दिखा

देने दें मुल्क को कि कैसा गांव होना चाहिए, कैसे लोग जिएं, कैसे लोग रहें। मगर उनको डर होगा कि कहीं सर्वनाश न हो जाए; जैसे कि सर्वनाश अभी हो नहीं गया है! अब और क्या होने को बचा है ? तुम्हारे पास खोने को है भी क्या ? और मैं क्या तुम्हारा सर्वनाश करूंगा ? तुम्हारे महात्मा-गण पहले ही कर चुके मोरारजी भाई ! कुछ बचा-खुचा तुम किये दे रहे हो ! मेरे लिए सर्वनाश करने को बचा कहां है ?

मैं एक छोटा-सा नगर बसा लेना चाहता हूं—सिर्फ एक प्रतीक नगर। ताकि मैं तुम्हें कह सकूं कि कितनी समृद्धि हो सकती है, सरलता से हो सकती है ! और कितना आनंद हो सकता है। और जीवन कितना रस-विमुग्ध हो सकता है।

मैं तो परमात्मा की परिभाषा रस ही मानता हूं। रसो वै सः ! और जितने तुम रस-मग्न हो जाओ, उतने ही उसके निकट हो जाते हो। मैं चाहता हूं कि तुम नाचो, गाओ, प्रेम करो ! तुम फूलों, पक्षियों, चांद-तारों की भांति हो जाओ। तुम्हारी जिन्दगी से चिंताएं समाप्त हों। और यह सब हो सकता है ! कोई कारण नहीं है, इसमें कोई बाधा नहीं है। यह पहले शायद नहीं भी हो सकता था, लेकिन अब हो सकता है। क्योंकि विज्ञान ने सब साधन मुक्त कर दिये हैं।... मगर हम सिकुड़ कर जी रहे हैं।

और उनको डर भी यही है कि अगर मैं एक नगर बसा कर बता सकूं... मैं बता कर ही रहूंगा ! उनकी बाधाओं से कुछ बाधा पड़ने वाली नहीं है। मैं दस हजार गैरिक संन्यासियों का नगर बसा कर ही रहूंगा। और मैं इस देश के सामने एक नमूना खड़ा कर देना चाहता हूं कि अगर यह दस हजार संन्यासियों के जीवन में हो सकता है, यह पूरे देश के जीवन में क्यों नहीं हो सकता ? उससे भी भय है कि कहीं यह मैं करके बता पाऊं तो फिर उन्हें बड़ी अड़चन होगी। फिर वे लोगों से यह न कह सकेंगे कि मैं सर्वनाश का कारण पैदा कर रहा हूं। फिर उनको इस तरह के वक्तव्य देने कठिन हो जाएंगे। फिर प्रमाण होगा मेरे पास। इसलिए वे उसे नहीं बसने देना चाहते।

तुम्हें जानकर हैरानी होगी, कितनी कानूनी उलझनें वे रोज खड़ी करते हैं ! पांच-सात वकीलों को मुझे निरंतर उलझाए रखना पड़ता है, सिर्फ उनसे कानूनी... । सीधा मुझसे कुछ झंझट कर भी नहीं सकते, तो कानूनी तो कर सकते हैं। कुछ भी छोटे-छोटे दांव लगाए रखते हैं—जितना समय अटका सकें, जितना समय टाल सकें...। मैं किसी को कहता भी नहीं कि वे कितनी अड़चनें खड़ी करते हैं। उसका कोई प्रयोजन भी नहीं है कहने से, कोई अर्थ भी नहीं है कहने से।

यह नगर तो बनकर रहेगा, क्योंकि उसके लिए परमात्मा से स्वीकृति मिल चुकी है। यह नगर तो एक प्रमाण बनेगा। और तब मैं मोरारजी भाई को और उनके आसपास जो चंडाल-चौकड़ी है, उसको कहूंगा कि आओ और देखो।



दूसरा और आखिरी प्रश्न : जब सभी पहुंचे हुए पूर्ण-पुरुष परमात्मा को पुकार करते हैं, तभी मेरी समझ में नहीं आता कि पुकारने के लिये वे बचते हैं कहां ?

★ आनंद भारती, तेरा प्रश्न ठीक है, लेकिन एक भ्रांति पर खड़ा है, एक छोटी-सी भूल पर खड़ा है। पूछा तूने : जब सभी पहुंचे हुए पूर्ण-पुरुष परमात्मा की पुकार करते हैं, तभी मेरी समझ में नहीं आता कि वे पुकारने के लिये बचते हैं कहां ?

दो बातें खयाल रख, एक : भक्त पुकारता है परमात्मा को, जब तक वह परमात्मा तक पहुंचा नहीं है, इसलिये परमात्मा को पुकारता है। फिर जब पहुंच जाता है, और भक्त भगवान हो जाता है, तो परमात्मा को भक्त नहीं पुकारता। फिर भक्त के माध्यम से परमात्मा संसार को पुकारता है। फिर परमात्मा ही पुकारता है उससे। ये दो अलग-अलग पुकारे हैं। एक भक्त की पुकार है कि आन मिलो, कि मुझे समा लो अपने में, कि बहुत देर हो गई, कि अब और देर नहीं सही जाती, कि रोता हूं, कि मनाता हूं तुम्हें, कि रूठो मत, कि मान जाओ, कि द्वार खोलो, कि कितनी देर हो गई, कितने जन्मों से मैं रो रहा हूं और पुकार रहा हूं, तुम कहां खो गये हो ! यह भक्त की पुकार है, ये भक्त के आंसू हैं !

अभी भक्त पुकार रहा है। भक्त लीन होना चाहता है। जैसे नदी पुकार रही है सागर को, क्योंकि सागर में लीन हो जाए तो सीमाओं से मुक्त हो जाये, चिन्ताओं से मुक्त हो जाये !

फिर जब नदी सागर में लीन हो गई, तो सागर गरजेगा ! नदी सागर का हिस्सा हो गई। अब नदी नहीं है। अब नदी पुकारने के लिये बची नहीं है। अब तो नदी सागर है। अब तो नदी का जल भी सागर की गर्जन-तर्जन बनेगा। ऐसा ही भक्त जब भगवान को पहुंच जाता है, जब पूर्ण हो जाता है, तब भी पुकारता है। लेकिन अब भक्त नहीं पुकारता, अब भगवान पुकारता है। अब तो सागर का गर्जन है ! अब भगवान औरों को पुकारता है।

इससे भूल हो सकती है। जैसे ये ही वाजिद के वचन, वाजिद कहते हैं—कहै वाजिद पुकार...। यह वाजिद जो पुकार कर कह रहे हैं, यह अब परमात्मा वाजिद से पुकार रहा है। अब यह वाजिद नहीं पुकार रहे हैं। वाजिद तो गये, कब के गये ! जब तुम बांस की पोंगरी की तरह पोले हो जाओगे, तब उसके ओठों पर रखने के योग्य होओगे। तब बजेंगे स्वर ! गीत फूटेगा तुमसे ! तब उसकी श्वासें तुम्हारे भीतर से बहेंगी....। फिर बांसुरी औरों को पुकारेगी, फिर बांसुरी की टेर औरों को पुकारेगी। भक्त पहले भगवान को पुकारता है, फिर भगवान भक्त के माध्यम से और रास्तों पर जो भटक गये हैं, अंधेरे में जो अटक गए हैं, उन्हें पुकारता है। ये दोनों अलग-

अलग पुकारें हैं। इनको एक ही मत समझ लेना। पहली पुकार में द्वैत है; भक्त है और भगवान है, बीच में फासला है। दूसरी पुकार में अद्वैत है; न भक्त है अब, न भगवान अलग है। अब तो एक है और एक ही गूंज रहा है—सागर का गर्जन है!

आज इतना ही।
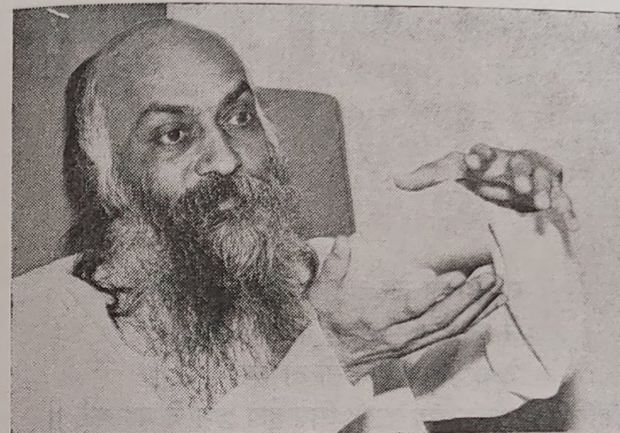
## साधां सेती नेह लगे तो लाइये

पांचवां प्रवचन; दिनांक २५ सितम्बर १९७८;

श्री रजनीश आश्रम; पूना.

साधां सेती नेह लगे तो लाइये ।
जे घर होवे हांण तहु न छिटकाइये ॥
जे नर मूरख जान सो तो मन में डरै ।
हरि हां, वाजिद, सब कारज सिध होय कृपा जे वह करै ॥
बेग करहु पुन दान बेर क्यूं बनत है ।
दिवस घड़ी पल जाय जुरा सो गिनत है ॥
मुख पर देहैं थाप सूंज सब लूटिहै ।
हरि हां, जम जालिम सूं वाजिद, जीव नहिं छूटिहै ॥
कहै वाजिद पुकार सीख एक सुन्न रे ।
आड़ो बांकी वार आई है पुन्न रे ॥
अपनों पेट पसार बड़ौ क्यूं कीजिये ।
हरि हां, सारी मैं-तैं कौर और कूं दीजिये ॥
धन तो सोई जाण धणी के अरथ है ।
बाकी माया वीर पाप को गरथ है ॥

जो अब लागी लाय बुझावै भौन रे ।
हरि हां, वाजिद, बैठ पथर की नाव पार गयौ कौन रे ॥
जो भी होय कछु गांठि खोलिकै दीजिये ।
साईं सबही माहिं नाहिं क्यूं कीजिये ॥
जाको ताकूं सौंप क्यूं न सुख सोवही ॥
हरि हां, अंत लुणै वाजिद, खेत जो बोवही ॥
जोध मुये ते गये, रहे ते जाहिंगे ।
धन सांचता दिनरैण कहो कुण खाहिंगे ॥
तन धन है मिजमान दुहाई राम की ।
हरि हां, दे ले खर्च खिलाय धरी किहि काम की ॥
गहरी राखी गोय कहो किस काम कूं ।
या माया वाजिद, समर्पो राम कूं ॥
कान अंगुली मेलि पुकारे दास रे ।
हरि हां, फूल धूल में झरै न फैलै बास रे ॥

साधां सेती नेह लगे तो लाइये।
जे घर होवे हांण तहुं न छिटकाइये ॥
जे नर मूरख जान सो तो मन में डरै।
हरि हां, वाजिद, सब कारज सिध होय कृपा जे वह करै ॥

एक-एक शब्द बहुमूल्य है। हीरों में तौला जाए ऐसा है!

साधां सेती नेह लगे तो लाइये—प्रेम करना हो तो किसी साधु से करना। प्रेम ही करना हो तो साधु से करना; कर सको तो साधु से करना। क्योंकि बाकी सब प्रेम डुबाने वाले हैं, साधु से हुआ प्रेम पार लगाने वाला है। साधु से हुआ प्रेम सत्य से हुआ प्रेम है।

साधु का अर्थ है—झरोखा, जिससे सत्य की थोड़ी-सी झलक मिली है। साधु का अर्थ है—जैसे बिजली कौंध गई; राह दिखी, मार्ग मिला। साधु का अर्थ है—हमारे पास तो आंखें नहीं हैं, हमें तो परमात्मा की कोई प्रतीति नहीं होती, लेकिन किसी के पास आंखें हैं और किसी को प्रतीति हुई है, और उसके पास भी बैठ जाते तो वर्षा की दो बूंदें हम पर भी पड़ जातीं! साधु से प्रेम का अर्थ है—सत्संग।

शास्त्र से नहीं मिलेगा सत्य, क्योंकि शास्त्र तो मुर्दा हैं। शास्त्र में तो तुम वही पढ़ लोगे जो तुम पहले से ही जानते हो। शास्त्र में तो तुम अपने को ही पढ़ लोगे।

साधु जीवंत है। साधु का अर्थ है—अभी शास्त्र जहां पैदा हो रहा है; शास्त्र का अर्थ है—कभी वहां साधु था। साधु तो जा चुका है, रेत पर पड़े चिह्न रह गए हैं। पक्षी तो उड़ गया है, पिंजड़ा पड़ा रह गया है। शास्त्र का अर्थ है—साधुओं की याद। साधु का अर्थ है—शास्त्र जहां अभी पैदा हो रहा है। जहां शास्त्र में अभी नए पल्लव आ रहे हैं, नई कलियां उग रही हैं, नए फूल खिल रहे हैं।

फूल शब्द में तो सुगंध होती नहीं, ऐसे ही शास्त्र में भी सुगंध नहीं होती, क्योंकि शास्त्र तो केवल शब्द मात्र हैं। और कितना ही तुम पाकशास्त्र पढ़ो, इससे भूख न मिटेगी।



भोजन पकाना होगा। भोजन ही भूख मिटाएगा।

साधु भोजन है। उसके पाठ, उसकी शिक्षायें, उसकी देशनाएं, उसकी मौजूदगी—सब पौष्टिक है। जीसस ने कहा है अपने शिष्यों से: करलो मेरा भोजन। पी लो मुझे, खा लो मुझे। पचा लो मुझे।....इसी अर्थ में कहा है।

फिर पीछे तुम दोहराओगे शब्दों को। फिर शब्दों को कितना ही दोहराओ, उन दोहराये गए शब्दों से तुम्हारा मस्तिष्क भरा-भरा हो जाए, तुम्हारे प्राण तो खाली-के-खाली ही रहेंगे। साधु अभी जीवंत तरंग है। अभी वहां संगीत उठ रहा है। अभी कान खोलो, अभी हृदय खोलो, तो तुम्हारे भीतर भी दौड़ जाए लहर...। तुम भी कंपित हो उठो। तुम भी नाच जाओ! तुम्हारी आंखें भी गीली हो जायें। तुम भी भींग जाओ!

साधां सेती नेह लगे तो लाइये:

बन सके तो एक बात बन लेना, कहते हैं वाजिद....कहते हैं पुकार-पुकार कर कि बन सके... जिंदगी में कुछ बनाने जैसा है तो एक बात है—सत्संग में डुबकी लगा लेना। किसी साधु से मैत्री बना लेना। किसी साधु के प्रेम में पड़ जाना।

और निश्चित ही यह प्रेम जैसा ही मामला है। जैसे प्रेम हो जाता है, ऐसे ही सत्संग है। प्रेम कोई कर नहीं सकता; या कि तुम सोचते हो कर सकते हो? किसी की आज्ञा पर तो प्रेम नहीं किया जा सकता। कोई कहे कि करो इस व्यक्ति को प्रेम, और व्यक्ति कितना ही सुन्दर हो और कितना हो मोहक हो, लेकिन कैसे प्रेम करोगे? प्रेम कोई कृत्य तो नहीं है जिसे तुम जन्मा लो! और अगर करोगे, तो अभिनय होकर रह जाएगा, नाटक हो जाएगा। हां, छाती से छाती लगा सकते हो, गलबांही डाल सकते हो, लेकिन हृदय तो कोसों फासले पर रहेंगे। हड्डियां मिल जायेंगी, भीतर छिपे हुए प्राण तो एक साथ नहीं नाचेंगे। गले में बांहे डालने से तो कोई बांह नहीं डलती। प्राण तो दूर-दूर ही जायेंगे...अनंत फासला होगा।...अभिनय हो जाएगा। और अभिनय तो प्रेम नहीं है।

इसलिए प्रेम कोई कृत्य नहीं है जिसको तुम कर सको। प्रेम तो घटना है जो घटती है...आकाश से उतरती है और तुम भर जाते हो! जैसे वर्षा होती, मेघ घिरते, ऐसे ही आकाश में मेघ घिरते हैं प्रेम के और बरसते हैं!

हां, यह सच है कि जो घड़ा उलटा रखा हो, वह आकाश से बरसते मेघ के क्षण में भी खाली-का-खाली रह जाएगा। जो घड़ा सीधा रखा हो, वह भर जाएगा। तो ज्यादा-से-ज्यादा हमारे हाथ में इतना है कि हम अपने घड़े को सीधा रखें और जब प्रेम आए तब हम अंगीकार करें। हम अपने खिड़की, द्वार-दरवाजे खुले रखें, और जब प्रेम का झोंका आए तो हम उसका आनंद से स्वागत करें, मंगल गीत गाएं। प्रेम के हवा के झोंके को हम ला नहीं सकते, बुला भी नहीं सकते, पुकार भी नहीं सकते,

आता है तब आता है....।

प्रेम की यह महत्वपूर्ण घटना तुम समझ लेना, होता है तब होता है, आदमी के हाथ के बाहर है। जो आदमी के हाथ के बाहर है, वही परमात्मा के हाथ में है। जो आदमी कर लेता है, वह तो दो-कौड़ी का है। जो आदमी के हाथ के भीतर है, वह आदमी से छोटा है। प्रेम ऐसी घटना है जो तुम से बड़ी है। प्रेम तुम्हारे भीतर नहीं घट सकता, हां, तुम अपने को प्रेम में समाविष्ट कर ले सकते हो।....तो खुले रहना!

वाजिद कहते हैं: साधां सेती नेह लगे तो लाइए—जब घटना घटने लगे तो रोकना मत, लग सके तो लग जाने देना। यह प्रेम बने तो बन जाने देना, बाधा मत डालना।

और हजार बाधायें डालता है मन, क्योंकि मन प्रेम के बड़े विपरीत है। मन क्यों प्रेम के विपरीत है? मन इसलिए प्रेम के विपरीत है कि प्रेम में मन को मरना होता है। प्रेम तो मन की मृत्यु पर ही खड़ा होता है। मन को तो मरना होता है। अहंकार को मरना होता है, 'मैं' भाव को मरना होता है। प्रेम की बुनियाद ही अहंकार की मृत्यु पर रखी जाती है। अहंकार की जली हुई राख पर ही प्रेम का मंदिर उठता है।.... इसलिए अहंकार डरता है, भयभीत होता है। मन हजार उपाय करता है बच निकलने के, भाग जाने के।

इस बात को खयाल में रखकर वाजिद कह रहे हैं—हो सके तो हो जाने देना, रोकना मत; साधां सेती नेह लगे तो लाइये।... अगर साहस बन सके, तो हो जाने देना यह अपूर्व घटना। जब प्रेम बनता हो तो लाख मन कहे, लाख तर्क दे....और मन के पास बहुत तर्क हैं। मन के पास तर्क ही तर्क हैं और तो कुछ है भी नहीं।

और प्रेम तर्क नहीं है, प्रेम अतर्क्य है। जैसे समझो, जिनका मुझसे प्रेम बन गया है, उनसे कोई पूछे...उत्तर नहीं दे पाते हैं। उत्तर देने का उपाय नहीं है। उन्हें कोई भी कह सकता है—तुम पागल हो गए हो! वे अपनी सुरक्षा भी न कर पायेंगे। वे विवाद भी न कर सकेंगे। उनके ओंठ सिये रह जायेंगे, उनसे शब्द भी न फूटेगा। और अगर उन्होंने चेष्टा करके कुछ कहा, तो उनको खुद ही दिखाई पड़ेगा कि यह वह नहीं है जो हम कहना चाहते थे, यह वही नहीं है जो हुआ है।

शब्द बड़े छोटे हैं, प्रेम आकाश जैसा विराट...। कैसे समाओ शब्दों में उसे? और प्रेम अतर्क्य है, इसलिए कोई नहीं कह सकता कि क्यों हो गया है। प्रेम के लिए कोई 'क्यों' का उत्तर नहीं है।

साधारण प्रेम के लिए भी 'क्यों' का उत्तर नहीं होता। तुम किसी स्त्री के प्रेम में पड़ गए, या किसी पुरुष के प्रेम में पड़ गए, या किसी से मैत्री बन गई। तुमसे कोई पूछे—क्यों? तलाशो, खोजो; कोई उत्तर सूझता नहीं। और जितने उत्तर तुम दोगे,



सब झूठे हैं। जैसे तुम कहोगे कि यह स्त्री सुन्दर है—इसलिए। मगर यह स्त्री सुन्दर है....और भी तो सैकड़ों लोग हैं, वे कोई इसके प्रेम में नहीं पड़े। और यह स्त्री सुन्दर है...।

एक दिन पहले, तुम्हारे प्रेम में पड़ने के एक दिन पहले, यह स्त्री तुम्हारे सामने से निकली होती, तो तुम प्रेम में नहीं पड़ गए होते। हो सकता है यह तुम्हारे मोहल्ले में ही रही हो। वर्षों तुमने इसे आते-जाते देखा हो। और कभी प्रेम की तरंग नहीं उठी थी; और एक दिन उठी और घटना घटी। शायद उसके पहले तुमने ध्यान भी न दिया हो कि यह कौन है। शायद इसका चेहरा भी ठीक से न देखा हो। अब कहते हो—क्योंकि यह सुन्दर है इसलिए प्रेम हो गया! सुन्दर यह कल भी थी और परसों भी थी, सुन्दर यह सदा से थी। आज क्यों प्रेम हुआ, इस क्षण में क्यों प्रेम हुआ?

तुम उलटी बात कर रहे हो। यह स्त्री सुन्दर मालूम होने लगी, क्योंकि प्रेम हो गया है। तुम कह रहे हो—सुन्दर होने के कारण प्रेम हो गया है। प्रेम हो जाने के कारण अब यह सुन्दर मालूम होती है। जिससे प्रेम हो जाता है, वही सुन्दर मालूम होता है। इसलिए लोग कहते हैं, किसी मां को अपना बेटा कुरूप नहीं मालूम होता, किसी बेटे को अपनी मां कुरूप नहीं मालूम होती। जहां प्रेम हो जाता है, वहीं सौंदर्य दिखाई पड़ने लगता है। प्रेम की आंख ही सौन्दर्य की जन्मदात्री है।

तो साधारण प्रेम के लिए भी निरुत्तर हो जाना पड़ता है। इतना ही कह सकते हो—बस हो गया, असहाय, अवश, अपने हाथ में नहीं! जब साधारण प्रेम के संबंध में ऐसी बात है, जो कि तुम्हारे निम्नतम व्यक्तित्व से घटता है, तुम्हारे जीवन की सबसे नीची ऊर्जा से घटता है, कामवासना से घटता है।

प्रेम की तीन सीढ़ियां हैं: काम, प्रेम, भक्ति। काम सबसे नीची घटना है। आमतौर से जिसको तुम प्रेम कहते हो, वह कामवासना ही होती है। उसके रहस्य तुम्हारे शरीर के भीतर छिपे होते हैं। उसके रहस्य तुम्हारी कामवासना की वृत्ति में दबे होते हैं। उसके रहस्य तुम्हारे हारमोन और तुम्हारा रसायन शास्त्र...। उसका रहस्य अचेतन चित्त है। कामवासना को ही लोग प्रेम कहते हैं। सबसे निम्नतम ऊर्जा तुम्हारी जो है, जीवन के सीढ़ी का जो पहला सोपान है, उसका भी तुम उत्तर नहीं दे पाते। वह भी बेबूझ मालूम होती है बात।

प्रेम काम के बाद की सीढ़ी है। प्रेम और अड़चन की बात है; और सूक्ष्म हो गई...। ऐसा समझो कि काम घटता है तुम्हारे शारीरिक रसायन में, तुम्हारे शरीर की भौतिक प्रक्रिया में, प्रेम घटता है तुम्हारे हृदय की गहराइयों में। प्रेम मानसिक है, काम शारीरिक है।

भक्ति आध्यात्मिक है। वह तो तुम्हारे शरीर, मन दोनों के पार है। वह तो तुम्हारी ऊंची से ऊंची सीढ़ी है। वह तो तुम्हारी ऊंची से ऊंची उड़ान है! उस भक्ति को ही नेह कह रहे हैं। इसलिए प्रेम नहीं कहा, नेह कहा। प्रेम से तुम्हें शायद भूल हो जाए। शायद तुम प्रेम से सामान्य प्रेम की बातें समझ लो। इसलिए वाजिद ने उसे नेह कहा। यह तो सबसे ऊंची घटना है। और जितनी ऊंची होती जाती है बात, उतनी ही मुश्किल होती जाती है, उतनी ही बेबूझ होती जाती है, उतनी रहस्यपूर्ण होती जाती है।.... आश्चर्यचकित, विस्मय-विमुग्ध तुम ठगे-से रह जाते हो, तुम लुटे-से रह जाते हो!—अवाक, श्वासें बंद, विचार बंद; तर्क तो कबके बहुत पीछे छूट गए, जैसे उड़ती धूल कारवां के पीछे छूट जाती है....कारवां तो कितना आगे बढ़ गया!

नहीं, उत्तर नहीं है। उत्तर कोई नहीं दे पाएगा। तुमने किया होता तो उत्तर भी दे पाते। तुमने किया ही नहीं है, तुम पर प्रसाद की वर्षा हुई...। परमात्मा उतरा है और तुम्हारे प्राणों को आन्दोलित कर गया है। परमात्मा आया है और उसने तुम्हारी हृदय-तंत्री के तार छेड़ दिये हैं। परमात्मा आया और तुम्हारी बांसुरी में एक फूंक मार गया, एक टेर मार गया! उसी टेर का नाम नेह है। उसी टेर का नाम भक्ति है, प्रार्थना है।

साधु से जो प्रेम होता है, वह प्रार्थना है। उसमें न तो काम है; शरीर का नाता नहीं है वह, न ही साधारण अर्थों में जिसको हम प्रेम कहते हैं वही है; मन का नाता भी नहीं है वह। वह तो प्राण से प्राण का संवाद है। वह तो आत्मा से आत्मा की वार्ता है। वह तो केन्द्र का केन्द्र से मिलन है।

हो जाता है कभी; हो जाता है यह जीवन का सौभाग्य है। हो जाने दो तो तुम धन्य-भागी हो। रोकना मत, अटकाना मत; क्योंकि बहुत हैं अभागे जो अटका लेते हैं, रोक लेते हैं।

और रोकना चाहो तो रोक भी सकते हो, यह बात खयाल में ले लेना। करना चाहो तो कर नहीं सकते, लेकिन रोकना चाहो तो रोक सकते हो। तुम भीतर हवा के झोंके को निमंत्रण नहीं दे सकते कि—आओ। जैसे अभी वृक्ष चुप खड़े हैं, हवा का कोई झोंका नहीं आ रहा। हम लाख कहें कि—आओ हवाओ, आओ; हमारे कहने से कुछ भी न होगा, जब हवा का झोंका आएगा तब आएगा। लेकिन जब हवा का झोंका आए, तब भी तुम हो सकता है द्वार-दरवाजे बंद किए, ताले मारे भीतर बैठे रहो। तो हवा का झोंका आए, फिर भी तुम वंचित हो सकते हो, हवा का झोंका न आए तो तुम ला नहीं सकते।

इस बात को खयाल में रखना, इस जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है उस संबंध में विधायक रूप से कुछ भी नहीं किया जा सकता, लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि नकारात्मक रूप से बहुत कुछ किया जा सकता है। आकाश के बादल बरसें, इसके लिए तो घड़ा क्या



कर सकता? घड़ा पुकारे तो भी क्या होगा? आकाश के बादल घड़े की बातें सुनेंगे नहीं। लेकिन बादल बरसते हों, घड़ा उलटा हो सकता है, घड़ा छिप कर छप्पर के नीचे जा सकता है, घड़ा छिद्रवाला हो सकता है—भर भी जाए और खाली हो जाए।

साधां सेती नेह लगे तो लाइये।... हो सके यह बात तो बन जाने देना। बनती हो तो बन जाने देना, बनती हो तो बाधा मत डालना और मन हजार बाधायें खड़ी करेगा, कहेगा—क्या पागलपन है! कैसा पागलपन है! यह क्या कर रहे हो?

वहां मेरे सामने एक मित्र दिखाई पड़ रहे हैं—स्वामी देवानंद भारती। पटियाला के एडवोकेट हैं। आए थे शिविर में भाग लेने; शायद सोचा भी न होगा कभी कि संन्यास घटेगा। घटा तो घट जाने दिया, बाधा न डाली। फिर यह तो उनकी कल्पना के बाहर ही रहा होगा कि संन्यास देते वक्त मैं उनसे कहूंगा—अब कहां जाते हो पटियाला! यह तो कल्पना में भी नहीं सोचा होगा! और जब मैंने उनसे कहा: अब कहां जाते हो पटियाला, तो उन्होंने कहा: अच्छा, तो यहीं रह जाऊंगा। अब कोई उनसे पूछेगा, क्या उत्तर दे पायेंगे, कैसा उत्तर दे पायेंगे?...हो जाने दिया।

फिर जाते थे कि सब व्यवस्था तो वहां कर आयें, फिर महीने-पन्द्रह दिन में लौट आयेंगे। मैंने कहा: ठीक है, जाकर व्यवस्था कर आओ। मुझसे ले भी गए विदा, लेकिन अभी तक गए नहीं। तो मैंने लक्ष्मी को पूछा, कि पूछना, हुआ क्या? तो लक्ष्मी ने पूछा तो उन्होंने कहा: जाने का मन ही नहीं होता, तो खबर कर दी है कि वहां जो करना हो कर लेना।

यह है हो जाने देना। यह तो बिलकुल पागलपन की बात है! लेकिन इतनी सामर्थ्य हो तो ही सत्य की उपलब्धि हो सकती है। यह कोई सस्ता सौदा नहीं है। खड्ग की धार कहा है, 'प्रेम पंथ ऐसो कठिन....' ऐसा कहा है। कबीर ने कहा है—जो घर बारै आपनो चले हमारे संग—जो सब जला सकता हो....! जब देवानंद ने कहा, कि अच्छा, रुक जाऊंगा, यहीं रह जाऊंगा, तो मुझे लगा कबीर ने कैसे लोगों की बात कही होगी—जो घर बारै आपनो....!

जे घर होवे हांण तहुं न छिटकाइये॥

अगर हानि भी होती हो, घर में जो है वह भी जाता हो—जे घर होवे हांण तहुं न छिटकाइये, तो भी भागना मत, छिटक मत जाना। सब डूबता हो तो डूब जाने देना। तो ही यह नेह लग सकता है। तो ही यह प्रीति लग सकती है। तो ही यह प्रीति का बिरवा ऊग सकता है। तो ही एक दिन इस प्रीति में फूल लग सकते हैं—स्वर्ण के फूल!

साधां सेती नेह लगे तो लाइये—साधु दिखाई पड़ जाए, तुम जरा आंखें यहां-वहां न बचाना, सीधे-सीधे देख लेना। तुम हृदय को छिपाना मत, सामने कर देना। फिर

कुछ हो जाता है, कुछ हो जाता है जो अत्यंत रहस्यपूर्ण है; जिसका कोई गणित न बिठाया जा सका है, न बिठाया जा सकता है, न बिठाया जा सकेगा। परमात्मा के मार्ग बड़े सूक्ष्म और बड़े अज्ञात हैं।

मैंने तुमसे कहा अभी देवानंद के संबंध में कि उन्होंने कभी सोचा भी न होगा कि पूना जाते हैं तो गए सदा को, कि पटियाला मिट ही गया!

मैंने भी संन्यास देने के पहले क्षण-भर को नहीं सोचा था कि उनसे मैं यह कहूंगा। ऐसा मैं किसी से कहा भी नहीं हूं कभी कि संन्यास देते से ही कह दूं। धीरे-धीरे पकड़ना होता है किसी को—पहुंचा पकड़ा...फिर धीरे-धीरे आगे बढ़ना होता है। ऐसा एकदम से माला गले में डालकर मैंने उनसे कहा, न मैं जानता हूं उन्हें न वे मुझे जानते हैं, कि अब कहां जाते हो? जो उनकी आंख में देखा...उस क्षण जैसे कोई मेरी बांसुरी से दे गया टेर उन्हें!

मैं भी थोड़ा चौंका, ऐसा तो किसी नियम के अनुकूल नहीं है। यह बात तो ठीक नहीं है कहनी, यह तो किसी को अड़चन में डालने वाली बात हो सकती है। नए-नए व्यक्ति को इस तरह का कहना...। हो सकता है वह 'हां' न कह पाए, तो अपराध-भाव अनुभव होगा उसे। और 'हां' कह दे और पूरा न कर पाए, तो भी अपराध-भाव अनुभव होगा उसे। 'हां' कह दे और पूरा भी कर ले, लेकिन कहीं कोई मन का हिस्सा 'न' कहता रह जाए, तो अड़चन बन जाएगी, दुविधा हो जाएगी, द्वंद्व हो जाएगा।

पर परमात्मा के रास्ते अति सूक्ष्म हैं! वही बोल गया देवानंद को...। उसने ही कहलवा लिया मुझसे, उसने ही कहलवा लिया उनसे। अब वही उन्हें जाने नहीं दे रहा है। वे कहते हैं, दरवाजे से बाहर निकलने का मन ही नहीं होता, पैर ही नहीं जाते पटियाला की तरफ। भेज दी है खबर अपने कारकून को, कि ले आ कुछ किताबें कानून की, यहां भगवान को वकीलों की जरूरत भी है, तो अब यहीं अदालत में उलझेंगे। हो गया पटियाला का काम समाप्त! जे घर होवे हांण तहुं न छिटकाइये।

वे आये बज्म में, इतना तो 'मीर' ने देखा
फिर इसके बाद चिरागों में रौशनी न रही।

प्रेमी आ जाए तो सब चिराग फीके पड़ जाते हैं। वे आये बज्म में, इतना तो 'मीर' ने देखा...। बस इतना ही दिखाई पड़ता है कि कोई आया, आया, आया...फिर इसके बाद चिरागों में रौशनी न रही। फिर सब चिराग फीके पड़ गए, बुझ गए! प्रेम की घड़ी जब आती है तो फिर एक ही दिखाई पड़ने लगता है, और सब बिदा हो जाते हैं। यहां जिनका मुझसे प्रेम है, उन्हें और कोई नहीं दिखाई पड़ता! मैं हूं यहां और वे हैं, बाकी इतनी भीड़ है, बाकी लोग बैठे हैं। ऐसा एहसास होता रहता है कि बाकी लोग



भी हैं, मगर कहीं दूर, बहुत दूर...हजारों कोसों की दूरी पर लोग मौजूद हैं—एक परिधि पर, लेकिन केन्द्र पर मैं हूं और वे हैं।

वे आये बज्म में, इतना तो 'मीर' ने देखा
फिर इसके बाद चिरागों में रौशनी न रही।

ऐसा ही हो जाता है। ऐसा ही प्रेम पागल है। प्रेम पंथ ऐसो कठिन...। कठिन है, क्योंकि अहंकार को जाना पड़ता है; अन्यथा तो बड़ा सरल है, बड़ा सुगम है, बड़ा सहज है। अहंकार छोड़ने का साहस हो, तो प्रेम से सरल फिर और क्या है? क्योंकि तुम्हें कुछ करना ही नहीं, सब होना शुरू होता है। सब प्रसाद है, प्रयास बिलकुल भी नहीं है।

जिन्दगी पर है गुमाने-सायए-गेसूए-दोस्त
सांस लेता हूं तो मिलता है, सुरागे-बूए-दोस्त
गर्दिशे-ऐय्याम मुंह तकती है मेरा और मैं
चूमता जाता हूं आंखों से गुबारे-कूए-दोस्त
जज्बे-दिल का है यही आलम तो इक दिन देखना
खिज्र दीवानों से पूछेंगे निशाने-कूए-दोस्त.
लगजिशे-पैहमने आखिर दस्तगीरी की रविश
वे तकल्लुफ बढ़ गये मेरी तरफ बाजूए-दोस्त

जिन्दगी पर है गुमाने-सायए-गेसूए-दोस्त। तुम जरा सरको निकट, तुम जरा प्रेम के पास आओ, तो प्रीतम के जुल्फों का साया, तुम्हें मिल जाए! जिन्दगी पर है गुमाने-सायए-गेसूए-दोस्त—जैसे प्यारी प्रियतमा के केश तुम्हारे चेहरे को घेर लें, छाया दे दें।

सांस लेता हूं तो मिलता है, सुरागे-बूए-दोस्त—और फिर तुम श्वास भी लो, तो भी प्यारे की ही गंध आए, या प्रियतमा की गंध आए।

गर्दिशे-ऐय्याम मुंह तकती है मेरा और मैं—संसार की मुसीबतें मुझे देख रही हैं और मैं उनको देख रहा हूं।

चूमता जाता हूं आंखों से गुबारे-कूए-दोस्त—और प्यारे की गली की जो धूल है, वह चूम रहा हूं। अब मुझे कोई मुसीबतें न रही, कोई समस्यायें न रहीं।

चूमता जाता हूं आंखों से गुबारे-कूए-दोस्त।

जज्बे-दिल का है यही आलम तो इक दिन देखना—अगर भावनाओं की यही बाढ़ आती रही, अगर भावनायें ऐसी ही उभरती रहीं, उठती रहीं, आकाश की यात्रा पर निकलती रहीं। अगर भावनाओं की ऐसी राशि पर राशि संग्रहीत होती चली गई।

जज्बे-दिल का है यही आलम तो इक दिन देखना
खिज्र दीवानों से पूछेंगे निशाने-कूए-दोस्त।

खिज्र, सूफियों की धारणा है कि एक देवता, खिज्र नाम का एक देवता, एक पैगम्बर अदृश्य लोक से जगत में घूमता रहता है, उन लोगों के लिए जो प्यासे हैं। राह दिखाता है, उन लोगों के लिए जिनके मन में परमात्मा की किरण जगी है। उनका हाथ पकड़ता है, उन्हें सम्यक मार्ग पर ले जाता है। सूचनायें देता है, इंगित करता है। एक अदृश्य पैगम्बर का नाम है खिज्र। खिज्र राह बताता है भटकों को। और ये प्यारे वचन देखना :

जज्बे-दिल का है यही आलम तो इक दिन देखना
खिज्र दीवानों से पूछेंगे निशाने-कूए-दोस्त।

अगर यही भावनायें उठती रहीं, यही दीवानगी उठती रही, प्रेम की यही बाढ़ आती रही, आती रही...तो तुम एक दिन देखना, एक मजे की बात देखना कि खिज्र को भी इस तरह के दीवानों से रास्ता पूछना पड़ेगा कि परमात्मा कहां है!

जज्बे दिल का है यही आलम तो इक दिन देखना
खिज्र दीवानों से पूछेंगे निशाने-कूए-दोस्त

पर नेह लगे, प्रेम लगे, भाव उठें, उठने देना...।

साधां सेती नेह लगे तो लाइये।
जे घर होवे हांण तहुं न छिटकाये॥

हानि तो होगी बहुत। हानि इसलिए होगी बहुत कि तुमने गलत से संबंध जोड़ रखा है। तुमने व्यर्थ से नाते जोड़ रखे हैं। जैसे ही तुम किसी साधु से नाता जोड़ोगे, व्यर्थ से नाते टूटने लगेंगे; अपने-आप टूटने लगेंगे। रोशनी से संबंध बनाओगे, अंधेरे से संबंध टूट जाएगा। दोनों संबंध साथ-साथ हो भी नहीं सकते। जीवन का हाथ पकड़ोगे, मौत से नाता टूट जाएगा। तो कुछ जो व्यर्थ है, वह तो छूटेगा। स्वास्थ्य से दोस्ती बनाओगे, बीमारी से दोस्ती छूट जाएगी, दोनों दोस्तियां साथ तो नहीं चल सकतीं?

जे घर होवे हांण तहुं न छिटकाइये। तो घबड़ाना मत, साधु की दोस्ती में कुछ तो गंवाना पड़ेगा। गंवाने वाले ही कुछ कमाते हैं। हां, जो जाता है, वह व्यर्थ है और जो आता है, बड़ा सार्थक है।

लेकिन जब जाता है, तब तो सार्थक का कुछ पता नहीं होता। जैसे मैं तुम्हें कहूं—चलो उस किनारे चलें। छोड़ो यह किनारा...! यह किनारा तुम्हें दिखाई पड़ता है। इस किनारे पर तुम रह चुके हो जन्मों-जन्मों। तुमने घर बना लिया, तुमने परिवार बसा लिया। मैं कहता हूं—बैठो मेरी नाव में, चलो उस तरफ...कहै वाजिद पुकार—आ जाओ, बैठो नाव में, उस तरफ ले चलते हैं। उस तरफ का किनारा न तो तुम्हें दिखाई पड़ता है, इतना दूर है....। न तुमने कभी किसी से दोस्ती बांधी है, जो उस किनारे का



रहा हो। वह किनारा है भी, इस पर भी कैसे भरोसा आए?

और अगर मेरी नाव में बैठे, तो यह किनारा तो छूटने लगेगा! मझधार में पहुंच कर एक ऐसी घड़ी भी आती है संक्रमण की, जब यह किनारा तो छूट गया और दूसरा अभी दिखाई भी नहीं पड़ा। तब घबड़ाहट होती है। तब छिटक जाने की इच्छा होती है—कि लौट जाओ, दूरी बढ़ती जा रही है किनारे से, अभी भी लौट जाओ। छलांग लगा जाओ नाव से, वापिस तैर जाओ अपने किनारे पर। तो बहुत से छलांग लगा जाते हैं, वापिस तैर जाते हैं!

फिर जब तुम वापिस तैर कर पहुंच जाओगे अपने किनारे पर, तो स्वभावतः लोग पूछेंगे क्या हुआ, कैसे लौट आए? तो अपनी आत्मरक्षा के लिए बहुत से तर्क दोगे—कि वह नाव गलत थी, कि वह मांझी गलत था, कि दूसरा किनारा है ही नहीं। तुम्हें अपनी आत्मरक्षा तो करनी होगी! तुम यह तो न कहोगे कि मैं कायर हूं, इसलिए लौट आया। तुम यह तो न कहोगे कि मैं भयभीत हो गया, इसलिए लौट आया। तुम यह तो न कहोगे कि वह किनारा दिखाई नहीं पड़ता था और 'यह किनारा हाथ से जाने लगा...।' 'मैंने सोचा, मैं भी किस पागलपन में पड़ गया!' तुम यह तो नहीं कहोगे? शायद तुम दूसरों से तो कहोगे नहीं, अपने से भी नहीं कहोगे। तुम अपने से भी यही कहोगे, कि अच्छा ही हुआ लौट आये, दूसरा कोई किनारा नहीं है। किस पागल के साथ दोस्ती बना ली थी, कहां चल पड़े थे! अच्छा-भला घर, अच्छा-भला किनारा.... सब सुख-सुविधायें छोड़कर कहां चल पड़े थे?

तो छिटकने के तो बहुत मौके आते हैं! इसलिए खयाल रखना, वाजिद ठीक कहे रहे हैं—छिटक मत जाना!

लेकिन जो बढ़ते चले जाते हैं, छिटकते नहीं, उनके जीवन में वह परम प्रकाश एक दिन घटता है।

समझता क्या है तू दीवानगाने-इश्क को जाहिद
ये हो जाएंगे जिस जानिब उसी जानिब खुदा होगा

ये जो प्रेमी हैं, ये जिस तरफ खड़े हो जाते हैं, उसी तरफ परमात्मा हो जाता है। जिनके जीवन में प्रेम की दीवानगी आ गई, उनके जीवन में सब आ गया। उनके हाथ में परमात्मा की कुंजी आ गई!

समझता क्या है तू दीवानगाने-इश्क को जाहिद...

त्यागी हैं, तपस्वी हैं, उनको प्रेम का रस नहीं है। वे प्रेम की नाव में नहीं बैठते। वे अपना इन्तजाम कर रहे हैं—स्वयं, अपने त्याग से, अपनी तपश्चर्या से। वे सोच रहे हैं—परमात्मा को पा कर रहेंगे!

परमात्मा पाया नहीं जा सकता। और जिस परमात्मा को हम पा लेंगे, वह हमसे छोटा होगा। और जिस परमात्मा को हम पा लेंगे, वह हमारे अहंकार का एक आभूषण बनकर रह जाएगा। वह हमारी प्राप्ति है। वह हमारे अहंकार को न मिटा पायेगा। परमात्मा पाया नहीं जाता, परमात्मा आता है, उतरता है, उसका अवतरण होता है।

समझता क्या है तू दीवानगाने-इश्क को जाहिद....और त्यागी, व्रती, प्रेमियों को पागल ही समझते रहते हैं—इनको क्या हो गया! स्वभावतः जो आदमी उपवास कर रहा है, शीर्षासन लगाए खड़ा है, कांटों पर सोया है, नंगा खड़ा है; वह मीरा को देखेगा वीणा बजाते, गीत गाते, नाचते—सोचेगा, पागल हो गई, ऐसे कहीं कुछ होता है! अरे उपवास करो, व्रत करो, नाचने-गाने से क्या होगा? कांटों पर लेटो, कांटों की सेज बनाओ, वीणा बजाने से क्या होगा?

उसे पता ही नहीं है कि प्रेमियों को कुछ और दर्शन हो गया है। कोई और झरोखा खुल गया है, कोई और द्वार मिल गया है।

समझता क्या है तू दीवानगाने-इश्क को जाहिद
ये हो जाएंगे जिस जानिब उसी जानिब खुदा होगा

प्रेम के पागलपन का ऐसा बल है कि प्रेमी जिस तरफ हो जाएगा, उस तरफ परमात्मा होगा।

लेकिन बीच से छिटक जाने के बहुत पड़ाव आते हैं। चलते-चलते लोग भाग जाते हैं। हिम्मत छोड़ देते हैं, साहस टूट जाता है।

जे नर मूरख जान सो तो मन में डरै—और उनको मूर्ख समझना, जो ऐसा डर कर छिटक जायें। उनको बिलकुल पागल समझना! एक तो वे हैं पागल, जो परमात्मा की तरफ चल पड़े हैं; वे धन्यभागी हैं। और एक वे हैं पागल, जो मूढ़ता के कारण व्यर्थ को और क्षुद्र को पकड़कर रुक जाते हैं। क्यों उनको मूरख कहते हैं? इसलिए कहते हैं, कि जो तुम्हारे पास है, उससे तुम्हें कुछ मिला भी नहीं और उसको छोड़ते भी नहीं!

जरा सोचो, तुम जैसी जिंदगी जिये हो, उसमें क्या मिला? क्या पाया....पचास वर्ष बीत गए, साठ वर्ष बीत गए? इतना अनुभव के लिए काफी नहीं है! क्या मिला, हाथ क्या लगा? हाथ खाली के खाली हैं। हां, नहीं मैं कहता हूं कि तुम्हारे पास बैंक-बैलेन्स न होगा, तिजोड़ी न होगी—होगा। धन होगा, दौलत होगी, प्रतिष्ठा होगी; मगर यह कुछ हाथ लगा?

एक बार पुनर्विचार करो, तो तुम हैरान होओगे कि इस संसार में विफलता के अतिरिक्त और कुछ हाथ लगता ही नहीं। सफलता के पीछे भी विफलता ही छिपी होती



है। सफलता भी विफलता का एक नाम है, एक परिधान है। लेकिन अन्ततः आती है मौत और सब पड़ा रह जाता है।

इसलिए वाजिद कहते हैं: जे नर मूरख जान सो तो मन में डरै—जो डर गए इस परम यात्रा से और सिकुड़ गए। और जल्दी से द्वार बंद कर लिए और न उतरने दी उसकी किरण, न आने दी उसकी हवा, न बहे उसकी तरंग में। बंद कर लिये अपने कान, न सुनी उसकी टेर। जल्दी-जल्दी डर जाने वाले लोग यह यात्रा नहीं कर पाते हैं। साहस चाहिए, दुस्साहस चाहिए, जोखम उठाने की हिम्मत चाहिए। हिसाब-किताब से यह मार्ग तय नहीं होता।

जो मैं करम न समझता तेरे तगाफ़ुल को
तो बार-बार यह दिल मुझसे बदगुमां होता
रविश! कफस ही को हम आशियां बना लेते
अगर खयाल में भी ख्वाबे-आशियां होता

बहुत बार लगेगा, कि परमात्मा दिखाई तो पड़ता नहीं। कुछ उसके मिलने के प्रमाण भी मिलते नहीं। जो मैं करम न समझता तेरे तगाफ़ुल को....लेकिन भक्त वही है, प्रेमी वही है, जो उसके उपेक्षा भाव को भी उसकी कृपा समझता है।

जो मैं करम न समझता तेरे तगाफ़ुल को
तो बार-बार यह दिल मुझसे बदगुमां होता

तो यह जो मेरा दिल है, बार-बार संशय पैदा करता, बदगुमां हो जाता है, संदेह खड़े करता है। लेकिन मैंने तेरी उपेक्षा को भी तेरी कृपा समझा। मैंने समझा कि तू पका रहा है। मैंने समझा कि तू जला रहा है। मैं समझा कि तू आग में डाल रहा है। क्योंकि यही तो निखारने के उपाय हैं।

जो मैं करम न समझता तेरे तगाफ़ुल को
तो बार-बार यह दिल मुझसे बदगुमां होता।

भक्त को विरह और उपेक्षा के क्षण भी आते हैं। जब पुराना किनारा छूट जाता है नए की झलक ही नहीं मिलती। पुराना घर गिर जाता है, नए की कोई खबर नहीं, भनक भी नहीं। पुराना जीवन सब अस्त-व्यस्त हो जाता है, और नए के सूत्र हाथ नहीं लगते। और लगता है कि संसार तो गया और परमात्मा है भी या नहीं? उसकी उपेक्षा मालूम होती है। भक्त पुकारता है और उत्तर में आकाश चुप रहता है। भक्त रोता है और परमात्मा के हाथ उसके आंसू पोंछने नहीं आते। भक्त तड़पता है, और कोई सांत्वना नहीं आती। कोई कान में आकर गीत नहीं गुनगुना जाता। सो नहीं सकता, विरह में जलता है, लेकिन कोई लोरी नहीं गाता। कितनी देर, कितनी देर तक बर्दाश्त

यह उपेक्षा भाव...? कहीं ऐसा तो नहीं परमात्मा मिलेगा ही नहीं—संशय उठने लगाते हैं मन में !

नहीं, लेकिन जो प्रेमी हैं, उनके मन में संशय उठते ही नहीं। संशय उठते हैं सिर्फ भयभीत लोगों को। अक्सर लोग सोचते हैं, कि नास्तिक बड़ा हिम्मतवर आदमी होता है। नहीं, नास्तिक सिर्फ डरा हुआ आदमी है। वह इतना डरा हुआ है कि अगर परमात्मा हुआ तो मुझे फिर यात्रा पर जाना होगा। इसलिए कहता है, परमात्मा है ही नहीं। न होगा बांस, न बजेगी बांसुरी! है ही नहीं परमात्मा, इसलिए अब किसी यात्रा पर अज्ञात की जाना नहीं है। न कुछ खोजना है, न कोई अभियान करना है। अभियान से बचने का यह उपाय है। नास्तिकता परमात्मा को इनकार इसलिए नहीं करती कि परमात्मा नहीं है; क्योंकि खोजा ही नहीं तो नहीं कैसे कहोगे? जाना ही नहीं, तलाशा ही नहीं, तो इनकार कैसे करोगे? नास्तिकता मान लेती है कि ईश्वर नहीं है। क्योंकि ईश्वर अगर है, तो फिर प्राणों में एक अड़चन शुरू होगी—कि जो है, उसे खोजो। जो है, उसे पाओ। जो है, उसे बुलाओ। फिर यह जीवन अस्त-व्यस्त होगा। और वह अभियान इतना बड़ा है, उस अभियान में सभी कुछ दांव पर लगा जाता है। तो नास्तिक इनकार कर देता है ईश्वर को।

मगर तुम यह मत सोचना कि तुम्हारे आस्तिक नास्तिक से कुछ बेहतर हैं। तुम्हारे आस्तिक भी भय के कारण ईश्वर को स्वीकार कर लेते हैं; वे कहते हैं कि : हां, आप हैं, आप हैं ही; खोजने का सवाल ही क्या, खोजने की जरूरत ही क्या है? क्यों करें सत्संग, आप तो हैं ही। मंदिर में चढ़ा आयेंगे दो फूल। मरते वक्त राम-राम जप लेंगे। कभी-कभार सत्यनारायण की कथा करवा लेंगे। कभी दो पैसे दान कर देंगे। कुछ ऐसा करते रहेंगे थोड़ा-थोड़ा...। आप हैं, हम तो मानते ही हैं, खोजना क्या है?

नास्तिक भय के कारण इनकार कर देता है, ताकि खोजना न पड़े; आस्तिक भय के कारण स्वीकार कर लेता है, ताकि खोजना न पड़े। प्रेमी न इनकार करता, न स्वीकार करता, प्रेमी खोज पर निकलता है। प्रेमी के भीतर प्यास है, तलाश है।

और निश्चित ही यह प्रेम सीधा-साधा परमात्मा से नहीं हो सकता है। किससे करोगे प्रेम? यह प्रेम तो किसी सद्गुरु से ही हो सकता है। फिर सद्गुरु से ही सरकते-सरकते, धीरे-धीरे ...। सद्गुरु है ही वही, जो तुम्हें धीरे-धीरे रूप से छुड़ा दे, अरूप से मिला दे। दृश्य से मुक्त करना दे, अदृश्य से जुड़ा दे। जो धीरे-धीरे स्थूल को छीन ले और सूक्ष्म की सीढ़ियां तुम्हें दे दे।

साधां सेती नेह लगे तो लाइये।
जे घर होवे हांण तहुं न छिटकाइये ॥



जे नर मूरख जान सो तो मन में डरै।
हरि हां, वाजिद, सब कारज सिध होय कृपा जे वह करै ॥

कर लेना प्रेम किसी सद्गुरु से; क्योंकि उसकी कृपा हो जाए तो सब पूरा हो जाता है, सब सध जाता है।

बेग करहु पुन दान बेर क्यूं बनत है—और जो भी कर सको शुभ, करो, देर न करो।

आदमी का मन उल्टा है, अशुभ तत्क्षण करता है, शुभ, कहता है—कल करेंगे। अगर किसी ने गाली दी, तो जवाब अभी देता है, उठा लेता है पत्थर राह के किनारे पड़ा हुआ। ऐसा नहीं कहता कि कल, कि आयेंगे भाई कल कि लायेंगे पत्थर देंगे जवाब कि चौबीस घंटे बाद आना अभी हम फुरसत में नहीं हैं। कोई गाली दे दे, तुम हजार काम छोड़कर वहीं जूझ जाते हो। गलत को करने में बड़ी तत्परता है!

लेकिन मन में भाव उठे—ध्यान....तो सोचते हो, करेंगे, जल्दी क्या है? जिन्दगी पड़ी है, कर लेंगे। कितने लोग हैं जिन्हें मैं जानता हूं, जो ध्यान करना चाहते हैं लेकिन टालते रहते हैं कल पर। व्यर्थ को आज कर लेते हैं, सार्थक को कल पर टाल देते हैं। कितने लोग हैं जिन्हें मैं जानता हूं, जो संन्यास में छलांग लेना चाहते हैं, लेकिन टालते रहते हैं कल पर।

ऐसा हुआ एक बार, एक वृद्ध महिला बंबई में संन्यास लेना चाहती थी। न मालूम दो-तीन वर्षों से निरन्तर बार-बार आती, कहती कि लेना तो है, मगर और थोड़े दिन...। इधर मेरे लड़के का विवाह हो रहा है, विवाह में जरा अच्छा न लगेगा कि मैं गैरिकवस्त्र और माला पहनकर खड़ी होऊंगी और मेहमान आयेंगे, सब प्रियजन इकट्ठे होंगे...यह जरा निपट जाए। फिर कुछ और काम आ जाता, फिर कुछ और काम आ जाता...। एक दिन मुझसे मिलने आई थी...कई बार आ चुकी, तो मैंने कहा : अब तू मेरा पीछा भी छोड़। तेरे जब सब काम निपट जायें, तभी तू आ जाना। मैं बचूं तो आ जाना, या तू बचे तो आ जाना। मुझे लगता नहीं तेरे काम निपटेंगे; तेरे काम निपटने के पहले तू निपट जायेगी।

और यही हुआ। संयोग की ही बात थी, वह मुझसे मिलकर लौटी और रास्ते में ही एक कार से टकरा गई। सांझ तो उसका लड़का भागा हुआ आया कि मां अस्पताल में बेहोश पड़ी हैं, बचने की उम्मीद नहीं। होश आया ही नहीं; फिर दूसरे दिन चौबीस घंटे बाद मृत्यु हो गई।

उनके लड़के ने मुझे आकर कहा, कि उनकी बड़ी इच्छा संन्यास लेने की थी। आप कृपा करके माला दे दें। और हम गैरिकवस्त्र उन्हें उढ़ा देंगे और माला पहना देंगे। मैंने कहा : तुम्हारी मर्जी, मगर मुर्दों के कहीं संन्यास होते हैं! जिंदा रहते तुम्हारी मां

संन्यास न ले पायी। तीन साल से तो बार-बार आती थी—काम निपट जायें सब...। अब काम तो सब पड़े रह गए, खुद निपट गई! अब तुम मुर्दा लाश के लिए संन्यास दिलवाना चाहते हो? मुझे कुछ हर्ज नहीं है, तुम्हारा मन तृप्त होता हो तो यह माला ले जाओ। गैरिकवस्त्र पहना देना, माला पहना देना। मैंने कहा: बजाय अब मां को संन्यास दिलवाने के, अब तुम अपने संन्यास की सोचो। कहा: कि अभी तो...अभी तो मेरी मां मर गयी...और अभी तो इस झंझट में हूं। अभी कैसे ले सकता हूं? लूंगा...। मैंने कहा: फिर वही भूल...यही तुम्हारी मां कहती रही।

बेटे के उस दिन से मुझे दर्शन ही नहीं हुए। क्योंकि वह अब डरा होगा, कि अब जाऊंगा, तो वह बात, सवाल उठेगा कि अब संन्यास का क्या है? अब तो उनका बेटा अगर मैं बचा रहा, तो शायद आए तो आए। जब वह चल बसे...कि पिताजी की बड़ी इच्छा थी संन्यास लेने की; वह चले गए इच्छा ही करते-करते, माला दे दें।

लोग शुभ को टालते चले जाते हैं। वाजिद कहते हैं: वेग करहु पुन दान—पुण्य करना हो, दान करना हो, शुभ करना हो, तो वेग करो, जल्दी करो, त्वरा से करो, अभी करो। बेर क्यूं बनत है...कहीं देर करने से बनती है? बात बिगड़ न जाए!

दिवस घड़ी पल जाय जुरा सो गिनत है—और प्रतिपल मौत करीब आरही है। मृत्यु खड़ी गिनती गिन रही है—एक, दो, तीन, चार, पांच, छह, सात, आठ, नौ, दस...और बस... मौत खड़ी गिनती गिन रही है, कब दस हो जायेंगे, कब 'बस' आ जाएगा, कहा नहीं जा सकता। एक-एक पल गिना जा रहा है और एक-एक पल कम हुआ जा रहा है।

वेग करहु पुन दान बेर क्यूं बनत है।
दिवस घड़ी पल जाय जुरा सो गिनत है॥
मुख पर देहैं थाप सूंज सब लूटिहै।

आएगी मौत और देगी तमाचा मुंह पर...भर देगी धूल से तुम्हारे मुख को!...सूंज सब लूटिहै...और सब साज-सामान जो तुमने इकट्ठा किया है, सब लुट जाएगा, सब पड़ा रह जाएगा। और इसी को इकट्ठा करने में जिंदगी गंवाई; और यह सब इकट्ठा मौत छीन लेगी। तो तुम जिन्दगी जिए कहां? मौत की सेवा करते रहे! तुम्हारी जिन्दगी मौत की सेवा में जा रही है, क्योंकि यह सब तो मौत के लिए इकट्ठा कर रहे हो, वही छीन लेगी। इसमें से तुम्हारे साथ कुछ भी जाने वाला नहीं है। और जो तुम्हारे साथ नहीं जाने वाला है, वही व्यर्थ है।

कुछ ऐसा कमा लो जो मौत छीन न सके। वही धन है, जो मौत न छीन सके। उसी धन का नाम ध्यान है। ध्यान ही एक मात्र धन है जो मौत नहीं छीन सकती, और शेष सब



छीन लेगी। लेकिन ध्यानी ध्यानपूर्वक मरता है, अपने ध्यान को सम्हाले-सम्हाले मरता है। वह ध्यान को सम्हाल कर ले जाता है मौत के पार। मौत भी उसके ध्यान को जला नहीं पाती। नैनं छिंदन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः—न तो शस्त्र छेद पाते, न आग जल पाती है, ऐसा भी कुछ है। वही तुम्हारी आत्मा है। उसी आत्मा को उघाड़ लेने का उपाय ध्यान है।

मुख पर देहैं थाप सूंज सब लूटिहै।
हरि हां, जम जालिम सूं वाजिद जीव नहिं छूटिहै॥

और एक बात पक्की है, लाख करो तुम उपाय, वह जो जल्लाद है मौत का, वह जो यमदूत है, उससे तुम छूट न सकोगे। वह तो आ ही रहा है। उसने जाल तो फेंक ही दिया है। तुम्हारी गर्दन में फांसी तो लग गई है, अब कस रहा है, कसता जा रहा है....किसी भी क्षण कस जाएगी फांसी पूरी!

कहै वाजिद पुकार सीख एक सुन्न रे—वाजिद कहते हैं पुकार कर, कि एक चीज सीख लो, शून्य सीख लो। शून्य यानी ध्यान। चित्त निर्विकार हो जाए, शून्य हो जाए। कुछ न बचे, सिर्फ बोध मात्र रह जाए—सिर्फ होश और साक्षी बचे...।

कहै वाजिद पुकार सीख एक सुन्न रे।

बस इसमें सारी बात आ गई। वाजिद ने सारे शास्त्रों का शास्त्र कह दिया। सब उपनिषद, सब कुरान, सब बाइबिल, सब वेद, सब धम्मपद, इस एक छोटे-से शब्द 'शून्य' में समा जाते हैं। जिसने शून्य जान लिया, उसने पूर्ण जान लिया। क्योंकि शून्य पूर्ण का द्वार है।

कहै वाजिद पुकार सीख एक सुन्न रे।
आड़ो बांकी बार आइ है पुन्न रे॥

बस शून्य को पाने का जो पुण्य है, वही बचाएगा मौत के क्षण में। वही आएगा आड़े और कोई चीज आड़े नहीं आ सकती—आड़ो बांकी बार आइ है पुन्न रे। बस एक ही पुण्य है करने जैसा—शून्य भाव, समाधि! वही आड़े आएगी, और सम्पदा कोई आड़े नहीं आ सकती। शक्ति कोई आड़े नहीं आ सकती, शांति ही आड़े आएगी।

हमें दैरो-हरम के तफरकों से काम ही क्या है
सिखाया है, किसी ने अजनबी बनकर गुजर जाना
कुछ यहां है, न वहां, जल्वए-जानां के सिवा
आखिर इस कश-म-कशे-दहरो-हरम का बाइस?
अब इससे क्या गरज यह हरम है कि दैर है

बैठे हैं हम तो सायए-दीवार देखकर
हमें दैरो-हरम के तफरकों से काम ही क्या है

मंदिर-मस्जिद के झगड़े छोड़ो। सच्चे धार्मिक को मंदिर और मस्जिद के झगड़ों से क्या लेना-देना ? शास्त्रों के विवाद से कोई प्रयोजन नहीं।

हमें दैरो-हरम के तफरकों से काम ही क्या है
सिखाया है, किसी ने अजनबी बनकर गुजर जाना।

कोई साधु से नेह बन जाए, तो वह तुम्हें सिखायेगा--इनसे अजनबी बनकर गुजर जाओ ! मंदिर-मस्जिद छोड़ो। इनमें मत उलझो। इनके झगड़ों में मत उलझो। ये सब राजनीति के ही प्रकारान्तर जाल हैं। इनसे बच कर निकल जाओ। तुम तो शून्य साध लो। हिन्दू हो तो, मुसलमान हो तो, ईसाई हो तो, जैन हो तो, बौद्ध हो तो, कोई फिक्र न करो, शून्य साध लो।

कुछ यहां है, न वहां, जल्वए-जानां के सिवा—मंदिर हो कि मस्जिद, यहां हो कि वहां, आकाश हो कि पृथ्वी, एक उस प्यारे के जलवे के सिवा और तो कहीं भी कुछ नहीं। उसी का काबा, उसी का कैलाश ! कुछ यहां है, न वहां, जल्वए-जानां के सिवा—

बस उस एक प्यारे का ही महोत्सव हो रहा है !

आखिर इस कश-म-कशे-दहरो-हरम का बाइस—और बड़ी हैरानी होती है धार्मिक व्यक्ति को कि मंदिर-मस्जिद के झगड़ों का कारण क्या है ? अगर मंदिर-मस्जिद झगड़ते हैं, तो पहचाना ही नहीं उन्होंने। झगड़ा और मस्जिद-मस्जिद के बीच अगर होता हो, तो आश्चर्य ! मगर होता है। मंदिर और मस्जिद के बीच तो होता ही है, मस्जिद और मस्जिद के बीच भी होता है, मंदिर और मंदिर के बीच भी होता है ! झगड़े की तो ऐसी अद्भुत कला है, कि एक ही मंदिर में पूजा करने वालों के बीच भी होता है !

मैं एक गांव से गुजरा, एक जैन मंदिर पर ताला पड़ा था। मैंने पूछा, कि मामला क्या है ? और पुलिस का सिपाही खड़ा है। तो उन्होंने कहा—आज बारह साल से मंदिर बंद है; पुलिस के कब्जे में है। 'तो झगड़े का कारण क्या आ गया ?' तो उन्होंने कहा—दिगम्बर और श्वेताम्बरों में झगड़ा हो गया। दोनों का मंदिर एक ही है। छोटा गांव है। थोड़े-से दिगम्बर थोड़े-से श्वेताम्बर ...अलग-अलग मंदिर बनाने की सामर्थ्य भी नहीं है, तो एक ही मंदिर है। उसी में उन्होंने तरकीब लगा ली, समय बांट लिया है—बारह बजे दिन के पहले दिगम्बरों का रहता है, बारह बजे के बाद श्वेताम्बरों का हो जाता है। मूर्ति वही है, बारह बजे के पहले दिगम्बर पूजा करते हैं, बारह बजे के बाद श्वेताम्बर पूजा करते हैं। उसी में झगड़ा हो गया। कोई दिगम्बर जरा ज्यादा भक्ति



भाव में आ गए और बारह बजे के बाद भी पूजा करते चले गए। लट्ठ चल गए। मारपीट हो गई। पुलिस का ताला पड़ गया। कैसा पागलपन है ! कुछ होश है आदमी को !

कुछ यहां है, न वहां, जल्वए-जानां के सिवा
आखिर इस कश-म-कशे-दहरो-हरमका बाइस ?

कारण क्या है इन झगड़ों का ? इन झगड़ों का कारण है—मनुष्य की मूढ़ता, मनुष्य का अहंकार, मनुष्य की सत्ता लोलुपता !

अब इससे क्या गरज यह हरम है कि दैर है... मेरे संन्यासी को मैं कहता हूं, तुम फिक्र मत करना—अब इससे क्या गरज यह हरम है कि दैर है—मंदिर है कि मस्जिद, किसी की दीवाल, जहां छाया हो, बैठ जाना।

अब इससे क्या गरज यह हरम है कि दैर है
बैठे हैं हम तो सायए-दीवार देखकर

हम तो दीवार की छाया में बैठ गए हैं। शांत होने में लगे हैं। शून्य होने में लगे हैं।

कहै वाजिद पुकार सीख एक सुन्न रे।
आड़ो बांकी बार आइ है पुन्न रे॥
अपनो पेट पसार बड़ौ क्यूं कीजिये।
हरि हां, सारी मैं-तैं कौर और कूं दीजिये॥

कितना बड़ा पेट करते चले जा रहे हो ! बढ़ाते जाते हो चीजें व्यर्थ की। जोड़ते जाते हो कूड़ा-कबाड़। कुछ भी बांध कर न ले जाओगे—सब ठाठ पड़ा रह जाएगा जब बांध चलेगा बंजारा...तो जब तक दो दिन हैं हाथ में, इसमें से कुछ किसी को दे सको तो दे दो...कुछ बांट सको तो बांट दो, क्योंकि मौत छीन ही लेगी। अपनो पेट पसार बड़ौ क्यूं कीजिये...।

अरसए-दहर भी तेरे लिए कम ऐ-वाइज।
और मेरे लिए इक गोशए-मैखना बहुत
सर्द इस दौर में है, सीनए-आदम वर्ना
जिन्दगी के लिए सोजे-दिले-परवाना बहुत
हम कहां जायें बयाबाने-मुहब्बत से रविश !
खाक उड़ाने के लिए है यही वीराना बहुत

कुछ हैं जिनके लिए हर चीज कम है, पूरा संसार मिल जाए, तो भी कम है। यह प्यारा वचन है.... अरसए-दहर भी तेरे लिए कम ऐ-वाइज—ऐ तपस्वी, ऐ त्यागी, ऐ परलोक के आकांक्षी, तुझे परमात्मा का इतना विराट संसार भी काफी नहीं है ! तू बहिश्त

की मांग करता है, स्वर्ग की मांग करता है। तू कहता है—परलोक चाहिए! यह इतना प्यारा लोक, ये चांद-तारे, ये वृक्ष, ये लोग—ये सब तुझे काफी नहीं!

असरए-दहर भी तेरे लिए कम ऐ-वाइज! यह सम्पूर्ण संसार भी तेरे लिए कम है!

और मेरे लिए इक गोशए-मैखाना बहुत—और मुझे तो मधुशाला के एक कोने में बैठने को मिल जाए, तो बस काफी...और मेरे लिए इक गोशए-मैखाना बहुत। मधुशाला यानी सत्संग। जहां मधु छाना जा रहा हो, जहां शराब ढाली जा रही हो। जहां पियक्कड़ जुड़े हों, जहां रिन्द बैठे हों, जहां मद्यपों की भीड़ हो।...और मेरे लिए इक गोशए-मैखाना बहुत।

सर्द इस दौर में है, सीनए-आदम वर्ना—इस जमाने में मनुष्य का हृदय बड़ा ठंढा है, उत्साहहीन है।

सर्द इस दौर में है, सीनए-आदम वर्ना

जिन्दगी के लिए सोजे-दिले-परवाना बहुत—नहीं तो एक परवाने का दिल हो भीतर, बस जिन्दगी जीने के लिए काफी है। जिन्दगी के लिए सोजे-दिले-परवाना बहुत। पतंगे का दिल हो पास में, बस पर्याप्त है। और चाहिए क्या? परमात्मा की शमा जल रही है और तुम्हारे पास परवाने का दिल है, पतंगे का दिल है—बस हो गई बात, बहुत हो गई बात!

साधां सेती नेह लगे तो लाइये...परवाने बनो, पतंगे बनो! और कहीं कोई ज्योति जल उठी हो परमात्मा की, उस ज्योति में जाओ जल मरो; क्योंकि उस जल मरने से ही अमृत का जन्म होगा।

> अरसए-दहर भी तेरे लिए कम ऐ-वाइज
> और मेरे लिए इक गोशए-मैखाना बहुत
> सर्द इस दौर में है, सीनए-आदम वर्ना
> जिन्दगी के लिए सोजे-दिले-परवाना बहुत

धन तो सोई जाण, धणी के अरथ है।

खूब मीठी परिभाषा की, खूब गहरी! धन तो वही है, जो उस मालिक की तरफ ले जाए—धन तो सोई जाण, धणी के अरथ है। धणी यानी मालिक। जो उस मालिक की तरफ ले जाए, धनी के तरफ ले जाए, वही धन है।

तो ध्यान ही धन है, और कोई धन नहीं है। बाकी कितना ही धन तुम्हारे पास हो, सब निर्धनता को ही छिपाने का उपाय है। निर्धनता मिटती नहीं ऐसे, छिपती भला हो। मगर मौत सब उघाड़ देगी, सब घाव उघाड़ देगी!

अभी तो हमने खूब इंतजाम कर लिये हैं! जहां-जहां घाव हैं, वहां-वहां गुलाब के



फूल रख दिये हैं। भीतर मवाद है, ऊपर से गुलाब का फूल रख दिया है! और भ्रांति खा रहे हैं कि सब ठीक है, फूल उग रहे हैं गुलाब के हमारी देह में! मौत आयेगी, सब फूल छीन लेगी—सब मवाद बिखर जायेगी!

> धन तो सोई जाण, धणी के अरथ है
> बाकी माया वीर पाप को गरथ है

बाकी तो सब पाप का ही ढेर लगा रहा है...।

> हमको शिकवा तो नहीं, शैखो-बरहमन से मगर
> बेगरज कुफ्र ही उनका है, न इस्लाम इनका

और तुम्हारे पंडित, पुरोहित, मंदिर और मस्जिद के पुजारी और मौलवी, इनमें कुछ बहुत भेद नहीं है। और इनका धर्म, धर्म भी नहीं है, बस स्वार्थ का ही नया नाम है।

> हमको शिकवा तो नहीं, शैखो-बरहमन से मगर
> बेगरज कुफ्र ही उनका है, न इस्लाम इनका।

दोनों में से किसी की भी बात निःस्वार्थ नहीं है। बस यहीं की धन-सम्पदा बटोर रहे हैं, और उस लोक में भी इसी तरह की धन-सम्पदा बटोरने की आकांक्षा कर रहे हैं।

भक्त तो कहते हैं—बस तेरे चरणों की धूल हो जाऊं तो पर्याप्त। मुझे कोई और बैकुण्ठ नहीं चाहिए, उस प्यारे की गली की धूल ही बैकुण्ठ है! तेरे प्रेम की एक किरण मिल जाए तो बहुत, मुझे कोई बहुत सूरज नहीं चाहिए। तेरे मधुशाला का एक कोना मिल जाए तो बहुत....और मेरे लिए इक गोशए-मैखाना बहुत।

जो अब लागी लाय बुझावै भौन रे।

और यह आग लगी है—जिसको तुम संसार कह रहे हो, और जिसको तुम धन-संपदा कह रहे हो—यह आग लगी है! जो अब लागी लाय बुझावै भौन रे—कौन इसे बुझा सकेगा? बड़ी मुश्किल में पड़ोगे। मगर तुम तो इसी आग में और ईंधन डालते जा रहे हो...वासना की आग, तृष्णा की आग—और ईंधन डालते चले जाते हो!

हरि हां, वाजिद, बैठ पथर की नाव पार गयो कौन रे—तुम ऐसी मूढ़ता की प्रक्रिया में लगे हो, जैसे कोई पत्थर की नाव बनाकर सागर को पार करने की योजना कर रहा हो! डूबोगे, बुरी तरह डूबोगे; डूबे ही हुए हो और भी डूब जाओगे! उबरने का तो एक ही उपाय है: साधां सेती नेह लगे तो लाइये।

> कहै वाजिद पुकार सीख एक सुन्न रे।
> आड़ो बांकी वार आई है पुन्न रे॥

बस एक शून्य का पुण्य ही मृत्यु और तुम्हारे बीच आड़ बन जाता है। एक शून्य ही है, जिसको मृत्यु नहीं छीन पाती। एक शून्य ही है, जिससे तुम निखरते हो, पवित्र

होते हो, निर्मल होते हो, निर्दोष होते हो। एक शून्य ही है, जो तुम्हारे अहंकार से तुम्हें पार ले जाता है, अतिक्रमण करता है। एक शून्य ही है जो द्वार है परमात्मा का।

जो भी होय कुछ गांठि खोलिकै दीजिये—कुछ हो, तो गांठ बांध-बांध कर मत बैठे रहो, ले दे लो। क्योंकि जीवन प्रेम बनना चाहिए। जीवन बांटने की एक प्रक्रिया होनी चाहिए। जो भी हो, जो भी कर सको, हो जाने दो तुम्हारे जीवन से। यह देह भी चली जाएगी, यह धन भी चला जाएगा—यह सब चला जाएगा....जो भी होय कुछ गांठि खोलिकै दीजिये। क्योंकि मौत तो फिर छीन ही लेगी। फिर तुम गांठ में बांधकर ले जा न सकोगे।

ऐ मेरे खुदा! जिस मिट्टी से जब्बारों के दिल बनते हैं
उस मिट्टी में मजबूरों के कुछ आंसू भी शामिल कर दे
ऐ मेरे खुदा! इन तिनकों को किश्ती की तरह बहने जो न दे
कश्कोल न भर उस दरिया का उस दरिया को साहिल कर दे
ऐ मेरे खुदा! इस जुल्मत को आंखों का जो काजल बन न सकी
या दिल पै किसी के दाग बना, या रुख पै किसी के तिल कर दे

ऐ मेरे खुदा! जिस मिट्टी से जब्बारों के दिल बनते हैं—जिस मिट्टी से जल्लादों के, अत्याचारियों के दिल बनते हैं, उस मिट्टी में थोड़ी-सी कुछ और चीज मिला दे; उस मिट्टी में मजबूरों के कुछ आंसू भी शामिल कर दे—कि उन्हें थोड़ी सहानुभूति आए, कि थोड़ा प्रेम उमगे।

ऐ मेरे खुदा! इन तिनकों को किश्ती तरह बहने जो न दे—ये छोटे-छोटे तिनके, ये असहाय लोग; इनके बहने में भी लोग बाधा डाल रहे हैं, इनको बहने भी नहीं देते।

ऐ मेरे खुदा! इन तिनकों को किश्ती की तरह बहने जो न दे।....

कश्कोल न भर उस दरिया का—उस सागर के भिक्षापात्र में पानी मत डाल!

कश्कोल न भर उस दरिया का उस दरिया को साहिल कर दे—उस सागर को किनारा बना दे, वहां सागर न बना। जहां छोटे-छोटे लोग, निरीह, असहाय लोग डूब जाते हों—उस दरिया को साहिल कर दे—उस सागर को किनारा बना दे; उससे पानी छीन ले।

ऐ मेरे खुदा! इस जुल्मत को आंखों का जो काजल बन न सकी
या दिल पै किसी के दाग बना, या रुख पै किसी के तिल कर दे

कुछ तो हो जाओ। अगर जिन्दगी कालिख ही कालिख है, तो भी कम-से-कम इतनी तो प्रार्थना कर ही सकते हो:



ऐ मेरे खुदा! इस जुल्मत को आंखों का जो काजल बन न सकी
या दिल पै किसी के दाग बना, या रुख पै किसी के तिल कर दे

कुछ तो जिन्दगी को सुन्दर कर जाओ। किसी के रुख पै एक तिल ही बन जाओ, अगर नहीं बन सके किसी की आंख का काजल!...बन सको तो किसी की आंख का काजल बन जाओ।

सद्गुरु यही तो करता है—किसी की आंख का काजल बनता है। जिन्हें दिखाई नहीं पड़ता, उन्हें दिखाई पड़ने का उपाय करता है। जिनके हृदय प्रेम से शून्य हो गए हैं, उन्हें फिर से प्रेम की उमंग से भरता है। कुछ तो करो!

जो भी होय कुछ गांठि खोलिकै दीजिये।
सांई सबही मांहि नाहिं क्यूं कीजिये॥

न कहना बंद करो। नकार से संबंध तोड़ो। 'हां' तुम्हारे जीवन की प्रक्रिया बन जाए, शैली बने। सांई सबही मांहि नाहिं क्यूं कीजिये—परमात्मा सभी में है, इनकार किसे कर रहे हो!

अभी आजादिए-इन्सां है, फरेबे-इन्सां
दिले-इन्सां है, निशाना अभी इन्सानों का
साफ कहने पै हूं मजबूर सुन ऐ वादे-सबा!
तेरे गुलशन पै है साया अभी जिन्दानों का
बार-हा इश्क की टूटी हुई किश्ती ने 'रविश'
सर झुकाया है उभरते हुए तूफानों का

छोटी-सी टूटी हुई प्रेम की किश्ती भी बड़े-बड़े तूफानों का सर तोड़ देती है!

बार-हा इश्क की टूटी हुई किश्ती ने 'रविश'
सर झुकाया है उभरते हुए तूफानों का

ऐसी प्रेम की किश्ती का बल है। तुम जरा प्रेम बनो। और प्रेम बनने का मतलब होता है—तुम्हारे जीवन की प्रक्रिया प्रेम की प्रक्रिया हो—बांटो!

अभी आजादिए-इन्सां है, फरेबे-इन्सां—अभी तो आदमी की आजादी एक झूठ है, आदमियों का एक धोखा है।

दिले-इन्सां है, निशाना अभी इनसानों का—अभी तो हर आदमी एक-दूसरे के दिल पर तीर के निशाने लगा रहा है।

साफ कहने पै हूं मजबूर सुन ऐ वादे-सबा—ऐ सुबह के समीर, सुन...तेरे गुलशन पै है साया अभी जिन्दानों का—हालांकि तूने बगिया बसाई है, लेकिन तेरी बगिया पर कारागृहों की छाया पड़ रही है।

बारहा इश्क की टूटी हुई किश्ती ने 'रविश'
सर झुकाया है उभरते हुए तूफानों का

लेकिन एक प्रेम की छोटी-सी टूटी किश्ती भी, बड़े-से-बड़े सागर को पार कर जाती है। एक प्रेम की छोटी-सी टूटी हुई किश्ती ही, सारे कारागृहों के पार ले जाती है, सारी जंजीरों के पार ले जाती है। सांईं सबही माहिं नाहिं क्यूं कीजिये...।

जाको ताकूं सौंप क्यूं न सुख सोवही

और जिसका है, उसको सौंप कर सुख से क्यों नहीं सोते! मेरी-तेरी करके क्यों चिन्ता कर रहे हो? सब उसका है, ऐसा जिसे दिखाई पड़ गया, उसकी चिन्ता समाप्त हो गई। फिर क्या चिन्ता है?

मेरा है तो चिन्ता है; मेरा है तो कोई छीन न ले, मेरा है तो कहीं खो न जाए, मेरा है तो बढ़े, घट न जाए—ये हजार चिन्तायें हैं। जब तक नहीं है तब तक चिन्ता है कि कैसे हो; और जब हो जाता है, तब चिन्ता होती है कि अब बचे कैसे? चिन्ता ही चिन्ता है...। अहंकार चिन्ता के अतिरिक्त जीवन में कुछ लाता नहीं।

जाको ताकूं सौंप...। उसका उसी को सौंप दो। न तुम कुछ लेकर आए थे, न तुम कुछ लेकर जाओगे। थोड़ी-देर का खेल है, खेल लो। थोड़ी-देर का अभिनय है मंच पर, कर लो। जो खेल खिलाए, खेल लो। जैसा रखे, वैसा रह लो।

जाको ताकूं सौंप क्यूं न सुख सोवही...फिर सोओ तान कर चादर सुख से। फिर तुम्हारा न कुछ है, न छिन सकता है। मौत भी तुमसे कुछ न छीन सकेगी। फिर मौत का भय भी विलीन हो जाता है। मौत का भय ही क्या है? यही भय है कि सब छीन लेगी। जिसने सब उसका ही है ऐसा मान लिया, उसको मौत का भय भी समाप्त हो जाता है। वह निर्भय हो जाता है।

हरि हां, अंत लुणै वाजिद खेत जो बोवही—ऐसा खेत बोओ जो लुटे न। लेकिन तुम खेत बो रहे हो, जो अंत में लुट ही जाने वाला है। थोड़ी समझदारी बरतो। प्रेम का पागलपन, पागलपन दिखाई पड़ता है संसार के लोगों को, लेकिन जो जानते हैं, उनकी आंखों में वही समझदारी है।

जोध मुये ते गये रहे ते जाहिंगे—बड़े-बड़े योद्धा जा चुके; जो रह गये हैं, वे भी जाने की तैयारी कर रहे हैं। मौत किसी को छोड़ती नहीं।

जोध मुये ते गये रहे ते जाहिंगे।
धन सांचता दिन रैण कहो कुण खाहिंगे॥

और जो दिन-रात धन ही जोड़ने में लगा है, वह जरा सोचे तो—तुम कल चले जाओगे, कौन इस धन को खायेगा? और कितना गंवाया इसके पीछे! कितने लड़े, कितने



झगड़े। कितनी बुराइयां मोल लीं। कितनों के दिल दुखाये। कितनों के जीवन संकट में डाले!

तन धन है मिजमान दुहाई राम की—यह वचन तो बड़ा अनूठा है! समझो, स्वाद लो इसका—बड़ी मिठास फैल जाए प्राणों पर।.... तन धन है मिजमान दुहाई राम की। बड़ी अजीब बात कही वाजिद ने, कि तन और धन दोनों मेहमान हैं, दोनों चले जायेंगे। दुहाई राम की—यह परमात्मा की बड़ी अनुकम्पा है!

तुम थोड़ा चौंकोगे, इसमें क्या अनुकम्पा हुई? तन भी चला जाएगा और धन भी चला जाएगा, और यह महाराज कहते हैं—दुहाई राम की! वे यह इसलिए कहते हैं कि तन न जाता और धन न जाता तो तुम सदा के लिए तन और धन में खो जाते। तुम आत्मा को कभी न जान पाते। तुम्हें परमात्मा की स्मृति ही न आती। जरा सोचो, अगर तन यह सदा रहता, मौत न आती; यह धन जो तुम्हारा है, सदा रहता, कभी छिनता नहीं—कितने लोग मंदिर जाते? कितने लोग मस्जिद जाते? कौन पूजा करता, कौन प्रार्थना में पुकारता, किसलिए? कौन परमात्मा को खोजता?

जरा कल्पना करो, तुम अपनी ही कल्पना करो कि तुम्हें मिल गया शाश्वत शरीर और शाश्वत धन। परमात्मा खुद भी द्वार पर आकर खड़ा हो जाये, तुम कहोगे: आगे बढ़ो! प्रयोजन क्या है? इसलिए कहते हैं—दुहाई राम की, कि तेरी बड़ी कृपा है कि तन तूने ऐसा दिया जो छिन जाए। धन भी ऐसा मिलता है, जो आज हाथ, कल हाथ से खो जाएगा। तेरी याद नहीं भूल पाती इसलिए। इसलिये तेरी याद करनी ही पड़ती है। सिर्फ मूढ़ ही हैं, जो तेरी याद नहीं करते हैं। जिनमें थोड़ी-भी बुद्धि है, वे तेरी याद करेंगे ही। तूने याद का बड़ा आयोजन कर रखा है। तूने मौत बिठा रखी है, जो गिनती बोल रही है—एक, दो, तीन....दस हुए कि बस...। तूने मौत बिठा रखी है। तूने जीवन क्षणभंगुर दिया है। धन हाथ में आता है और छिन जाता...कुछ टिकता नहीं। तूने अपूर्व कृपा की! दुहाई राम की!

हरि हां, दे ले खर्च खिलाय धरी किहि काम की—इसलिए जितनी देर हाथ में है, उसे लुटा लो। कबीर ने कहा है—दोनों हाथ उलीचिए यही सज्जन को काम।...बांट लो। दो घड़ी उत्सव मना लो। छिन तो जाएगा ही; देने का रस ले लो।

और देने में तुम्हारे भीतर कुछ घट जाएगा जो काम आएगा। बांटने में तुम्हारे भीतर कुछ बच जाएगा। यह उल्टा गणित है जीवन का। यहां जो बचाते हैं, उनका सब खो जाता है और यहां जो बांट देते हैं, उनका सब बच जाता है!

गहरी राखी गोय कहो किस काम कूं—और तुम खोद-खोद कर गड़ा रहे जमीन में। वाजिद तो राजस्थानी थे, तो वह राजस्थानियों की आदत बता रहे हैं, मारवाड़ियों

की ...। गहरी राखी गोय कहो किस काम कूं—और खूब गड़ा दिया है गहरे, मगर किस काम की है यह ?

या माया वाजिद समर्पो राम कूं—गहरे मत गड़ाओ, ऊपर उठाओ। राम को समर्पित करो। कहां जमीन में गड़ा रहे हो, आकाश को दो...या माया वाजिद समर्पो राम कूं।

कान अंगुली मेलि पुकारे दास रे—वाजिद कहते हैं, कि तुम्हारे कानों में अंगुली डाल-डाल कर पुकार रहा हूं; फिर मत कहना कि मैंने तुम्हें चेताया नहीं था। मौत जब द्वार पर आ जाए, तब मत कहना कि मैंने चेताया नहीं था। कान में अंगुली डाल-डाल कर चेताया है !

कान अंगुली मेलि पुकारे दास रे।
हरि हां, फूल धूल में झरै न फैलै बास रे ॥

तुम कैसे पागल हो ! जैसे कोई फूलों को जमीन में गड़ा दे, फिर क्या खाक बास फैलेगी ! ऐसे तुम धन को जमीन में गड़ा रहे हो। बांट लो तो बास फैले। ले-दे लो तो बास फैले !

मौत आए इसके पहले प्रेम का खूब विस्तार कर लो। मौत आए इसके पहले अपने भीतर शून्य की गहराई बढ़ा लो। अगर गड़ाना है कुछ, तो भीतर शून्य को गड़ाओ। अगर फैलाना है कुछ, तो बाहर प्रेम को बढ़ाओ। बस ये दो काम कोई आदमी कर ले, वही संन्यासी है—भीतर शून्य को गहरा करे, बाहर प्रेम को फैलाए।

और शून्य और प्रेम एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। प्रेम—बाहर, बहिर्मुख, शून्य—अन्तर्मुख। शून्य यानी ध्यान, प्रेम यानी भक्ति। बस ये दो को साध लो। ये दो पंख तुम्हें मिल जाएं, तुम पहुंच जाओगे उस प्रभु के द्वार तक। तुम्हें कोई रोक न सकेगा।

भूक को आपने गैरत बख्शी
प्यास को जब्त की ताकत बख्शी
नासबूरी को कनाअत बख्शी
और बन्दों पै अता क्या होगी।
चश्मे-वाइज को बसीरत की नजर
कल्बे-मुनअम को मुहब्बत का शरर
आहे-मुजलूम को थोड़ा-सा असर
और शाइर की दुआ क्या होगी ?



भूख को आपने गैरत बख्शी
प्यास को जब्त की ताकत बख्शी

परमात्मा ने खूब दान दिये हैं ! भूख को आपने गैरत बख्शी—भूख को एक गौरव दिया। प्यास को जब्त की ताकत बख्शी—और प्यास को हम संयमित कर सकें, रोक सकें, देर तक प्यासे रह सकें, ऐसा धीरज दिया।

नासबूरी को कनाअत बख्शी—और बेसब्री को संतोष दिया। बेसब्र को भी संतोष की संपदा दी है; अगर वह उसका उपयोग करे, तो बेसब्री चली जाए। और बन्दों पे अता क्या होगी ? इससे बड़ी और क्या अनुकंपा हो सकती थी हम पर।

चश्मे-वाइज को बसीरत की नजर—जरा ये तुम्हारे तथाकथित त्यागी-व्रतियों को थोड़ी बुद्धि और दे दो। चश्मे-वाइज को बसीरत की नजर...इनको थोड़ी बुद्धिमत्ता दे दो।

कल्बे-मुनअमको मुहब्बत का शरर। और धनिक के हृदय को प्रेम छू जाए इसकी थोड़ी-सी आशा की किरण दे दो।

कल्बे-मुनअम को मुहब्बत का शरर
आहे-मजलूम को थोड़ा-सा असर

और पीड़ित की आह में थोड़ी ताकत आ जाए इतना और कर दो। और शाइर की दुआ क्या होगी !... और कवि क्या मांग सकता है, ऐसे तुमने बहुत दिया है !

भूख को आपने गैरत बख्शी
प्यास को जब्त की ताकत बख्शी
नासबूरी को कनाअत बख्शी
और बन्दों पे अता क्या होगी ?
चश्मे-वाइज को बसीरत की नजर
कल्बे-मुनअम को मुहब्बत का शरर
आहे-मजलूम को थोड़ा-सा असर
और शाइर की दुआ क्या होगी ?

इतना और कर दो। परमात्मा यह भी कर रहा है; हम नहीं होने देते। हम अड़चन डाल रहे हैं। परमात्मा आतुर है हमसे मिलने को। उसके हाथ हमें टटोलते हैं अंधेरे में। मगर हम भागे-भागे हैं, हम छिटके-छिटके हैं। और यह दौड़ तुम्हारी कितने जन्मों से चल रही है...और कितने जन्मों तक इसी दौड़ में डूबे रहना है ? कुछ पाया नहीं...।

दीन और दरिद्र...। क्या ऐसे ही दीन और दरिद्र बने रहना है ? कब जागोगे !

कहै वाजिद पुकार सीख एक सुन्न रे—बस एक शून्य को सीख लो, फिर यह व्यर्थता का संसार समाप्त हुआ। फिर तुम सार्थक जगत में प्रविष्ट हुए।

धन तो सोई जाण धणी के अरथ है—फिर तुम्हें मालिक से जोड़ने वाला धन मिल गया, 'धणी' से जोड़ने वाला धन मिल गया। फिर सेतु बना तुम्हारे जीवन में—ध्यान का, समाधि का, भक्ति का, प्रेम का।

इस जगत में बुद्धिमान वे ही हैं, जो अपने हृदय में शून्य को बसा लेते हैं। और जो अपने जीवन में प्रेम को फैला देते हैं। शून्य में होनी चाहिए तुम्हारे जीवन की जड़ें और प्रेम के खिलने चाहिए तुम्हारी शाखाओं पर फूल ! भीतर शून्य, निर-अहंकार—निपट शून्य, और बाहर प्रेम की आभा ! बुद्ध ने कहा है : जिसको समाधि फलित होती है, उसके आसपास अपने-आप करुणा की आभा फैल जाती है। बुद्ध के शब्द हैं : समाधि, करुणा; वाजिद के शब्द हैं : सुन्न, शून्य, प्रेम।

इस शून्य की तरफ जाने में प्रेम पहला कदम होगा, नहीं तो तुम इस शून्य की तरफ न जा सकोगे। कोई शून्य हो गया हो, उससे जुड़ना होगा। और उससे जुड़ने की कला प्रेम है। इसलिए कहते हैं—साधां सेती नेह लगे तो लाइये—बन सके तो, साधु के प्रेम में पड़ सको तो पड़ जाओ। जे घर होवे हांण तहुं न छिटकाइये—फिर चाहे कुछ भी हो; सौदा कितना ही महंगा पड़े; कुछ भी चुकाना पड़े कीमत, फिर छिटक कर भागना मत। फिर कायर मत बन जाना, भगोड़े मत बन जाना। प्रेम जो मांगे, देना। प्रेम जहां ले जाए, जाना। प्रेम जलाये तो जलना। प्रेम मारे तो मरना—प्रेम पंथ ऐसो कठिन...!

पर उसी मृत्यु में से अमृत का झरना फूटता है। और उसी सूली पर, जिस पर प्रेम तुम्हें चढ़ायेगा, सिंहासन निर्मित होता है। जो प्रेम में मरने को तैयार है, वह परमात्मा में अपूर्व जीवन को पा लेता है, शाश्वत जीवन पा लेता है।

तो प्रेम में मरने की कला ही धर्म है। और जो धर्म में डूबा, वह अनंत में, शाश्वत में, अमृत में प्रविष्ट हो जाता है। एक विराट जीवन तुम्हारे चारों तरफ मौजूद है। मगर तुम अपने सिकुड़े बैठे हो। खुलो ! गांठें खोलो, ग्रंथियां तोड़ो !

ये वाजिद के आज के सूत्र बड़े बहुमूल्य हैं ! सीधे-साधे आदमी के सूत्र, पर परम की तरफ इशारा भरा है उनमें। बस इतना ही करलो। थोड़ा-सा ही करना है।

सर्द इस दौर में है, सीनए-आदम वर्ना  
जिन्दगी के लिए सोजे-दिले-परवाना बहुत

पतंगे हो जाओ, परवाने हो जाओ ! और कहीं मिल जाए कोई कोई जलती हुई शमा, तो देर मत करना, कल पर मत टालना। ले लेना छलांग !



अरसए-दहर भी तेरे लिए कम ऐ वाइज !  
और मेरे लिए इक गोशए-मैखाना बहुत

कहीं मिल जाए मधुशाला—आ गया घर ! बस एक छोटे कोने में पड़ रहना—जहां प्रभु-प्रेम की बात होती हो, और जहां प्रभु-प्रेम की शराब ढाली जाती हो, और जहां प्रभु-प्रेम के गीत गाए जाते हों, स्तुतियां उठती हों, जहां प्रभु-प्रेम का आनंद बरसता हो—फिर उस मधुशाला में एक छोटा-सा कोना भी मिल जाए...द्वार पर भी पड़े रहे, तो भी स्वर्ग में हो ! इतना-सा कर लो....बस इतना-सा कर लो :

अरसए-दहर भी तेरे लिए कम ऐ वाइज !  
और मेरे लिए इक गोशए-मैखाना बहुत  
सर्द इस दौर में है, सीनए-आदम वर्ना  
जिन्दगी के लिए सोजे-दिले-परवाना बहुत

आज इतना ही।
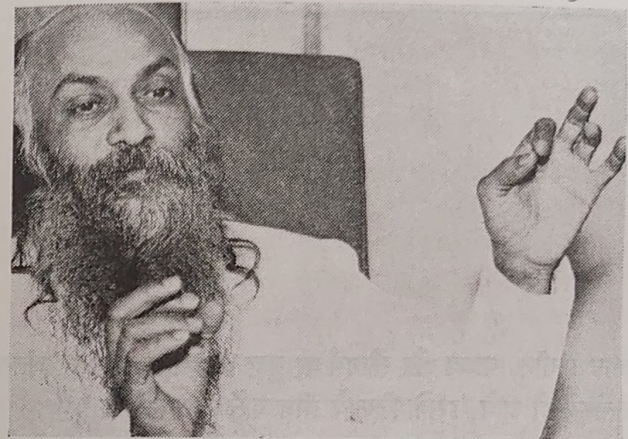
## उतर आये अग्निपंखी सत्संग-सर के तीर

छठवां प्रवचन; दिनांक २६ सितम्बर १९७८;

श्री रजनीश आश्रम; पूना.

क्या आप संगीत, काव्य और सौन्दर्य पर कुछ कहना चाहेंगे ? अंततः सब कुछ परमात्ममय हो जाये, इसके लिए ये तीन बातें साधना हैं न ?

मुझे लगता है, बेशक मैं आपसे दूर हूं, फिर भी आपके इतने करीब हूं, शायद ही कोई इतने करीब हो। न मैंने संन्यास लिया है, न ही आपके हस्त-कमलों का आशीर्वाद। फिर भी ऐसी प्रतीति का कारण क्या है ?

योग, ध्यान और अध्यात्म का वैज्ञानिक संबंध, इतनी प्यारी वाणी...और आपका दर्शन कर मैं स्वयं को धन्यभागी स्वीकार करता हूं। फिर भी इतने प्यारे प्रभु का कुछ धार्मिक और राजनैतिक लोग विरोध क्यों करते हैं ? मुझे यह विरोध अच्छा नहीं लगता; मैं क्या करूं ?

पहला प्रश्न :– भगवान, सोहनबाई के एक पत्र में आपने लिखा था, वह याद आया—'जीवन को संगीतपूर्ण बनाओ, ताकि काव्य का जन्म हो सके। और फिर सौन्दर्य ही सौन्दर्य है, और सौन्दर्य ही परमात्मा का स्वरूप है।'

क्या आप संगीत, काव्य और सौन्दर्य पर कुछ कहना चाहेंगे ? अंततः सब कुछ परमात्ममय हो जाये, इसके लिये ये तीन बातें साधना हैं न ?

* तरु ! साधना एक है, शेष दो अपने-आप चले आते हैं। शेष दो परिणाम हैं। बीज तो एक ही बोना है, फिर उस बीज में बहुत पत्ते लगते हैं, बहुत शाखायें-प्रशाखायें, फल और फूल... बीज एक ही बोना है।

एक ही साधना है—इक साधे सब सधे, सब साधे सब जाय। तीन को साधने में पड़ो, उलझ जाओगे। क्योंकि वे तीन भिन्न-भिन्न नहीं हैं, वे एक-दूसरे से संबंधित हैं, एक की ही श्रृंखला है।

संगीत साधना है। संगीत की साधना से अपने-आप काव्य का आविर्भाव होता है। काव्य है संगीत की अभिव्यक्ति। काव्य है संगीत की देह। और जैसे ही संगीत का जन्म होता है, वैसे ही सौन्दर्य का बोध पैदा होता है। संगीत की संवेदनशीलता में ही जो अनुभव होता है— अस्तित्व का, उस अनुभव का नाम सौंदर्य है।

काव्य है देह संगीत की, सौन्दर्य है आत्मा संगीत की। तुम साधो एक संगीत, फिर ये दोनों—देह और आत्मा अपने-आप प्रगट होने शुरू होते हैं।

और संगीत का अर्थ समझ लेना। संगीत से मेरा अर्थ स्थूल संगीत से नहीं है। क्योंकि स्थूल संगीत को साधनेवाले तो बहुत लोग हैं; न तो वहां काव्य है, न वहां सौन्दर्य है, न कोई परमात्मा की प्रतीति हुई है। होंगे वे वीणा बजाने में कुशल, लेकिन अंतर की वीणा नहीं बजी है। जगा लिये होंगे उन्होंने स्वर तारों को छेड़कर, लेकिन प्राणों के तार अभी नहीं छिड़े हैं। हो गये होंगे कुशल ध्वनि को जन्माने में, लेकिन वह

कुशलता बाहर की कुशलता है।

संगीत से मेरा प्रयोजन अंतःसंगीत से है—हृदय की वीणा पर जो बजता है; प्राणों की गुहा में जो गूंजता है; तुम्हारे अंतरतम में जो जागता है। उस संगीत को ही संतों ने अनाहत नाद कहा है। वीणा छेड़कर एक संगीत पैदा होता है, वह आहत, वह अनाहत नाद नहीं है, वह आहत नाद है; क्योंकि छेड़ना पड़ता है, चोट करनी पड़ती है; टंकार से पैदा होता है—इसलिये आहत। वाणी के तार पर चोट करनी पड़ती है। दो की टक्कर होती है। तुम्हारी अंगुली टकराती है वीणा के तार से। इन दो के द्वंद्व के बीच में एक संगीत होता है, उसका नाम है—आहत नाद। वह पैदा होगा और मरेगा। वह समय के भीतर घटने वाली घटना है; अभी है अभी नहीं हो जायेगा। उसका शुरू है और अंत है।

लेकिन संतों ने समाधि में एक ऐसा नाद सुना, जिसका न कुछ प्रारम्भ है और न कोई अंत है। समाधि में एक ऐसा नाद सुना, जिसको झेन फकीर कहते हैं—एक हाथ की बजाई गई ताली। एक हाथ से कोई ताली नहीं बजती। ताली बजने के लिये दो हाथ चाहिये, बाहर तो दो चाहिये ही, तभी ताली बजेगी। मगर भीतर एक अपूर्व घटना घटती है। वहां तो दो हैं ही नहीं, फिर भी नाद पैदा होता है। उसी को इस देश में हमने ओंकार कहा है। उसी का प्रतीक है ओहम्। यह ओहम् महत्त्वपूर्ण प्रतीक है। ओहम् शब्द का कुछ अर्थ नहीं है, यह सिर्फ प्रतीक है। प्रतीक है उस अंतर्ध्वनि का, जो बज ही रही है, जो तुम्हें बजानी नहीं है। तुम भीतर जाओ और सुनो। तुम थोड़ा ठहरो। तुम थोड़े शांत हो जाओ। तुम्हारे मस्तिष्क में चलता कोलाहल थोड़ा रुके। और अचानक चकित होकर पाया जाता है कि—यह स्वर तो सदा से गूंज रहा था, सिर्फ मैं इतना व्यस्त था बाहर कि भीतर का सुन पाया!

यह स्वर बारीक है, सूक्ष्म है। यह स्वर ही तुम्हारी आत्मा है। यह संगीत ही तुम हो जो बज रहा है। यह अनाहत है। न वीणा है वहां, न वीणावादक है। न वहां ज्ञाता है न ज्ञेय है। न द्रष्टा है न दृश्य है। वहां सब द्वैत खो जाता है। वहां एक ही बचता है। उसे एक भी कैसे कहें? जहां दो न हों, वहां एक का बहुत अर्थ नहीं होता। इसलिये ज्ञानियों ने उसे एक भी नहीं कहा, कहा—अद्वैत। इतना ही कहा कि दो नहीं हैं वहां, बस। एक कहेंगे तो शायद तुम्हारे मन में सवाल उठना शुरू हो जाये कि जहां एक है वहां दो भी होगा, तीन भी होगा....। एक तो संख्या का हिस्सा है। एक में कोई अर्थ नहीं होता। जहां दो न हों, वहां एक में क्या अर्थ होगा? वहां एक में कोई अर्थ न रह जायेगा। एक अर्थ-हीन हो जायेगा। इसलिये ज्ञानियों ने एक न कहा; कहा—अद्वैत। इतना ही कहा कि वहां दो नहीं हैं; निषेध से कहा, क्योंकि विधेय से कहेंगे तो कहीं तुम भाषा की उलझन में



न पड़ जाओ।

इसको ही मैं संगीत कह रहा हूं। इस संगीत को सुनते ही तुम्हारा जीवन काव्यमय हो जाता है। फिर काव्य से अर्थ नहीं है कि तुम कविता लिखो तो काव्य उठो, तो भी काव्य है। बुद्ध उठते हैं तो काव्य है, बैठते हैं तो काव्य है। उनके उठने-बैठने में एक प्रसाद है, एक लालित्य है, एक अपूर्व उपस्थिति है—पारलौकिक, दैविक! जो इस पृथ्वी की नहीं मालूम होती। जैसे मिट्टी में अमृत उतर आया है। बुद्ध के उठने-बैठने में छंद है।

तुमने खयाल भी किया होगा, जब भीतर एक छंदबद्धता होती है तो तुम्हारे बाहर भी छंदबद्धता होती है। जब भीतर तनाव और चिंता होती है, तब तुम्हारे बाहर भी बेढंगापन होता है। चिंतित आदमी चलता है तो उसके चलने में लय नहीं होता, स्वर नहीं होता, विसंगति होती है। उसके चलने में एक उबड़खाबड़पन होता है। उसके चलने में एक रसमयता नहीं होती। उसका चलना ऐसा ही होता है जैसे कच्चे रास्ते पर, ऊंचे-नीचे रास्ते पर...। उसका चलना ऐसा ही होता है, जैसे कोई सिक्खड़ वीणा बजा रहा हो, स्वरों के बीच तारतम्य नहीं होता; स्वरों के बीच संबंध नहीं होता, संगीत नहीं होती। और अगर तुम ठीक से परखो, तो तुम चलते हुए आदमी को देखकर कह सकते हो कि भीतर आदमी शांत है या अशांत है।

सिगमण्ड फ्रायड के संबंध में कहा जाता है, हजारों लोगों का मनोविश्लेषण करने के बाद वह ऐसी अवस्था में आ गया कि मरीज दरवाजे से भीतर प्रवेश करता था, और वह जान लेता था कि उसकी अड़चन क्या है; क्योंकि तुम्हारे भीतर की चिंता तुम्हारी देह पर लिखी होती है, तुम्हारी आंखों से झलकती होती है। तुम्हारे चेहरे पर छाप होती है उसकी। तुम्हारा शरीर बोलता है। तुम्हारा शरीर मौन नहीं है, मुखर है। जब भीतर शांति होती है तो चेहरे पर भी शांति होती है। जब भीतर शांति होती है तो आंखों में भी एक गहराई होती है। जब भीतर आनन्द भरा होता है, तुम्हारे चलने में एक उत्साह होता है, एक उमंग होती है। जैसे फूल खिले, जैसे दीया जले! जैसे तुम्हारे जीवन में चारों तरफ उत्सव ही उत्सव है। जब तुम्हारे भीतर उत्सव होता है तो तुम्हें बाहर भी उत्सव दिखाई पड़ता है। जब तुम भीतर रंगरेली कर रहे होते तो सारा अस्तित्व रंगों से भर जाता है अस्तित्व तो रंगों से भरा ही है, लेकिन चूंकि भीतर रंगरेली नहीं हो रही, भीतर की होली नहीं खेली जा रही है, इसलिये बाहर रंग तुम्हें दिखाई नहीं पड़ रहे हैं।

तुम बाहर वही देख पाओगे, जो तुम भीतर हो। बुद्ध देखते हैं तो काव्य है, उठते-बैठते हैं तो काव्य है, सोते हैं तो काव्य है। आनन्द बुद्ध के पास चालीस वर्षों तक रहा।

उसी कमरे में सोया जिसमें बुद्ध सोते थे। एक दिन उसने बुद्ध से पूछा : आप मुझे चकित करते हैं ! आप सोते भी ऐसे हैं जैसे सजग हों। आपके सोने में भी आपके चौबीस घंटे का लय-छंद टूटता नहीं। आप सोते भी हैं तो ऐसे जैसे सम्हले हों, जैसे भीतर एक सावधानी हो। नींद में भी आपको मैंने हाथ-पैर पटकते नहीं देखा। क्या होगा कारण ?

जिसके भीतर चित्त में चिन्तायें नहीं, वह नींद में भी हाथ-पैर क्यों पटकेगा ? नींद में भी तुम हाथ-पैर इसलिये पटकते हो, क्योंकि दिन-भर तुम हाथ-पैर पटक रहे हो। आपाधापी ! वही नींद में भी गूंजती चली जाती है। तुम्हारी नींद भी तुम्हारी नींद है न ! तुम अगर बेचैन हो, तुम्हारी नींद भी बेचैन होगी। तुम अगर उद्विग्न हो, तुम्हारी नींद भी उद्विग्न होगी। तुम परेशान हो, तुम्हारा नींद में भी परेशानी की छाया होगी। तुम सपने भी दुखद देखोगे—कोई पटक रहा है पहाड़ से... छाती पर पत्थर रखा है, और हो सकता है तुम्हारा हाथ ही रखा हो अपनी छाती पर, मगर तुम्हें लगेगा पत्थर रखा है। क्योंकि पत्थर तुम्हारी छाती पर रखा है, तुमने ही रख लिया है, कि भूत-प्रेत तुम्हारी छाती पर कूद रहे हैं। ये दुख-स्वप्न जो तुम देखते हो, ये दुख-स्वप्न आकस्मिक नहीं हैं। यह तुम्हारे दिन-भर की कमाई है। यह तुम्हारी पूंजी है। यही तुम्हारी जिन्दगी है। ऐसे तुम जीते हो। उसकी ही छाया गूंजती रह जाती है। दिन-भर जो किया है, उसकी अनुगूंज रात-भर सुनी जाती है।

आनन्द पूछने लगा बुद्ध से : क्या है राज इसका ? बुद्ध ने कहा : जब से चित्त शांत हुआ, सपने आते नहीं।

समाधिस्थ व्यक्ति को सपने नहीं आते। सपने विचार से ग्रस्त मन को आते हैं। और तुम भी जानते हो, क्योंकि जब तुम्हारा मन बहुत विचार-ग्रस्त होता है तो तुम्हारी नींद बहुत सपनों से भर जाती है। अगर अत्यधिक विचार-ग्रस्त हो जाये, तो नींद समाप्त ही हो जाती है, तुम सो ही नहीं पाते, तुम तो करवटें ही लेते रहते हो।

जब तुम्हारी जिंदगी में रस बहता है... समझो तुम्हारे जीवन में किसी से प्रेम हो गया है, तो तुम्हारे सपने तत्क्षण रूप बदल लेते हैं। उनमें एक माधुर्य आ जाता है, एक मिठास आ जाती है। कोई बांसुरी बजने लगती है... यह तो तुम्हारा भी अनुभव है। जब जीवन में सब ठीक चला रहा होता है, तुम्हारा सपना भी ठीक चलता होता है। जब जीवन में सब अस्तव्यस्त होता है, तुम्हारी रात भी अस्तव्यस्त हो जाती है। इससे तुम थोड़ा अनुमान लगा सकते हो बुद्धों की निद्रा का। उस निद्रा में तुम्हारा उपद्रव नहीं है। उस निद्रा में एक गहराई है, समाधि की ही गहराई है। उस सुषुप्ति में और समाधि में जरा भी भेद नहीं है।

तो बुद्ध की तो निद्रा भी जाग्रत है। तुम्हारा जागरण भी नींद से भरा है। तुम नाम-



मात्र को जागे हो, बुद्ध नाममात्र को सोये हैं। इसको मैं कहता हूं संगीतबद्धता। और जब भीतर संगीतबद्धता शुरू हो जाती है तो तुम्हारे व्यक्तित्व में काव्य छा जाता है। यह भी हो सकता है, तुम गीत गाओ; बहुत संतों ने गाये हैं। अकारण नहीं है। यह बात मीरा नाची....पद घुंघरु बांध मीरा नाची रे। चैतन्य मस्त होकर, मृदंग बजाकर नाचने लगे। आकस्मिक नहीं है यह बात। लेकिन जो नहीं भी नाचे, महावीर नहीं नाचे, लेकिन फिर भी अगर तुम महावीर के पास बैठोगे तो उनके आसपास की हवा का कण-कण नाचता हुआ पाओगे। बुद्ध नहीं नाचे, लेकिन नृत्य तो वहां है; वहां नहीं तो फिर कहां ? वहां नहीं तो फिर कहीं भी नहीं है। इसको मैंने काव्य कहा है—अभिव्यक्ति।

फिर कैसे होगी अभिव्यक्ति ? अलग-अलग ढंग से होगी—कोई गीत लिखेगा, कोई इकतारा ले लेगा। कोई मूर्ति गढ़ेगा, कोई चित्र बनायेगा। कोई जुलाहा होगा कबीर जैसा तो कपड़े ही बुनेगा; लेकिन यह अब कपड़ा नहीं बुन रहा है काव्य बुन रहा है। इसके कपड़े के बुनने में भी अब काव्य है। इसीलिये तो कहते हैं—झीनी-झीनी बीनी रे चदरिया.... रामरस भीनी ! जब कबीर चादर बुनते थे तो ऐसे मस्त हो जाते थे, जैसे मीरा मस्त होती है नाचते क्षण में ! जरा-भी भेद नहीं— वही मस्ती ! क्योंकि राम खरीदने आयेंगे इस चादर को। यह चादर राम के लिये ही बुनी जा रही है। क्योंकि कबीर के लिये अब राम के अतिरिक्त और कोई है ही नहीं— अब राम ही राम है।

कबीर जब बेचते थे काशी में जाकर अपनी चादरों को, तो जो भी ग्राहक आता तो उसी से कहते : 'राम, ले जाओ, तुम्हारे लिये ही बुनी है।' 'राम' ही शब्द का उपयोग ...करते। 'और बहुत जतन से बुनी है। और ऐसी बुनी है कि जिन्दगी-भर साथ देगी।'

गोरा कुम्हार मटकियां बनाता था सो बनाता ही रहा, पर भेद हो गया, जमीन-आसमान का भेद हो गया ! अब भी मिट्टी कूटता है, अब भी चाक पर घड़े बनाता है, मगर अब इसमें एक छंद है। इसके हाथ में एक जादू है। ये घड़े जादुई हो गये ! इन घड़ों में आकाश उतर आया है ! ये घड़े साधारण न रहे। जैसे पारस ने छू लिया लोहे को और सोना हो जाये, ऐसा गोरा कुम्हार ने छू दी जिस मिट्टी को, वही सोना हो गई !

मैं जब कहता हूं काव्य है, तो मेरा अर्थ ऐसा नहीं है कि तुम कविता ही रचना। लेकिन तुम्हारी जिंदगी काव्य हो जायेगी, तुम्हारा आचरण काव्य हो जायेगा। और जिस चीज से भी काव्य में बाधा पड़ेगी, वही तुम्हारे आचरण से गिर जायेगी। जैसे क्रोध गिर जायेगा, क्योंकि क्रोध का काव्य नहीं बन सकता है ! करुणा घनी हो जायेगी, क्योंकि करुणा का ही काव्य बन सकता है। जैसे कामवासना धीरे-धीरे तिरोहित हो जायेगी, क्योंकि कामवासना कितना ही चेष्टा करो, काव्य नहीं बन सकती। काम की जगह प्रेम का जन्म

होगा; प्रेम का काव्य बन सकता है। और फिर प्रेम में भक्ति की ऊंचाईयां उठेंगी! भक्ति महाकाव्य है!

ऐसा समझो, कामवासना गद्य, प्रेम पद्य। कामवासना का गणित है; क्योंकि कामवासना शोषण है, पारस्परिक शोषण एक-दूसरे का—अपने निमित्त दूसरे का उपयोग कर लेना, दूसरे को साधन बना लेना, । दूसरे का एक यंत्र की भांति उपयोग कर लेना। इसलिये कामवासना तो बिकती है बाजार में। वेश्या से खरीद ले सकते हो। और अब जो देश बहुत विकसित हो गये हैं, वहां वेश्यायें ही नहीं होतीं, वेश्य भी होते हैं। वहां पुरुष वेश्यायें भी होती हैं। क्योंकि स्त्री भी पीछे क्यों रहे! जब पुरुषों ने वेश्यायें खोज लीं, तो स्त्रियां क्यों पीछे रहें, इन्होंने भी वेश्य खोज लिये!

कामवासना खरीदी जा सकती है, बेची जा सकती है, लेकिन प्रेम नहीं खरीदा जा सकता, बेचा जा सकता। कामवासना गणित का अंग है। दुकान हो सकती है उसकी, लेकिन प्रेम की कोई दुकान नहीं हो सकती। प्रेम का तो सिर्फ मंदिर ही होता है। और भक्ति तो पूर्ण रूप से आकाश की बात है! उसका तो मंदिर भी नहीं होता। उसमें तो मिट्टी की छाप ही नहीं रह जाती।

भक्ति तो ऐसे है जैसे फूलों की सुवास! कामवासना ऐसे है जैसे बीज। प्रेम ऐसे है जैसे फूल। भक्ति ऐसे है जैसे सुवास; न दिखाई पड़ती न पकड़ में आ सकती, उड़ चली... पंख लग गये!

काव्य पैदा होता है तुम्हारे भीतर संगीत के अनुभव से। तुम्हारा समस्त आचरण काव्यपूर्ण हो जाता है। काव्यपूर्ण आचरण को मैं नैतिक आचरण कहता हूं। यह मेरी परिभाषा है। तुम मुझसे पूछो कि नीति क्या है, तो मैं कहूंगा काव्यपूर्ण आचरण। ऐसा आचरण, जिसमें कविता हो। मेरी नीति की परिभाषा सौंदर्यशास्त्र परक है। सौंदर्य कसौटी है। नीति मैं उसको नहीं कहता जो तुमने जबर्दस्ती थोप ली है। नीति मैं उसको कहता हूं, जो तुम्हारे भीतर के संगीत को सुनने से तुम्हारे जीवन में अवतरित होनी शुरू हुई है। आई है, लाई नहीं गई है। आरोपित नहीं है; स्वतःस्फूर्त है, स्फुरणा हुई है।

बाहर काव्य प्रगट होता है और भीतर एक बोध पैदा होना शुरू होता है—जिस बोध को मैं कहता हूं—सौंदर्य। सौंदर्य का बोध ही परमात्मा का बोध है। जिस दिन तुम्हें सारा जगत सौंदर्य से भरा हुआ दिखाई पड़ने लगता है, जिस क्षण तुम्हें सब सुन्दर हो जाता है, उस क्षण तुम जानना कि परमात्मा से पहचान हुई। परमात्मा का न कोई रूप है, न कोई रंग है, न आकार, न नाम। परमात्मा सौंदर्य की सघन प्रतीति है।

इसलिये तरु, सोहन के पत्र में मैंने जो लिखा है—'जीवन को संगीतपूर्ण बनाओ, ताकि काव्य का जन्म हो सके'। ...काव्य को तुम ला नहीं सकते—उसका जन्म होता



है, अपने से होता है। बस तुम इतना ही करो कि जीवन संगीतपूर्ण हो। और फिर सौंदर्य ही सौंदर्य है! उसको भी तुम सोच नहीं सकते, आरोपित नहीं कर सकते। ...और सौंदर्य ही परमात्मा का स्वरूप है।

तीन नहीं साधने, तुम एक साधो। बस एक साधो! एक ओंकार सत्नाम! बस उस स्वर को, एक नाद को सुनो। छोड़ो सब विचार। जैसा कल कहा न वाजिद ने—कहै वाजिद पुकार, सीख एक सुन्न रे ...एक-शून्य को सीख लो। शून्य अर्थात चित्त निर्विचार हो जाये। भीड़-भाड़ चित्त की शांत हो जाये, कोलाहल बंद हो जाये। बस कोलाहल बंद होते ही, अचानक जो भीतर बज ही रहा है सदा से, जो तुम्हारे जीवन का जीवन और प्राणों का प्राण है, वह संगीत सुनाई पड़ने लगता है। उस संगीत की फिर दो अभिव्यक्तियां हैं : उसकी आत्मा है सौंदर्य का बोध और उसकी देह है काव्य की अभिव्यक्ति। तब तुम्हारा जीवन एक छन्द है। एक सध जाये, दो अपने-से उसके पीछे चले आते हैं।

दूसरा प्रश्न :—मुझे लगता है, बेशक में आपसे दूर हूं, फिर भी आपके इतने करीब हूं, शायद ही कोई इतने करीब हो। न मैंने आपसे संन्यास लिया है, न ही आपके हस्त-कमलों का आशीर्वाद। फिर भी ऐसी प्रतीति का कारण क्या?

सलाहुद्दीन, संन्यास की तैयारी हो रही है। थोड़े डरे हो। मन को अपने समझा मत इतने से लेना। यह तो शुरुआत है। यह तो बूंदा-बांदी है, अब जल्दी ही बाढ़ आने को है। यह तो बसंत का पहला फूल खिला। यह तो बसंत के आगमन की खबर भर है, अभी तो करोड़ों-करोड़ों फूल खिलने को हैं। इतने से रुक मत जाना सलाहुद्दीन! तुम्हारे प्रश्न से मुझे ऐसा लगता है कि तुम सोचते हो—बस हो गया। होना शुरू हुआ है, और यह केवल शुरुआत ही है—क, ख, ग...। इस सूत्र को पकड़ो। लम्बी यात्रा करनी है। अभी जो हुआ है, शुभ है, सुन्दर है।

मेरे पास होने के लिये भौतिक रूप से मेरे पास होना जरूरी नहीं है, क्योंकि पास होना प्रेम का एक नाता है, देह का नहीं। पास होने से इतना ही अर्थ है कि तुम्हारा हृदय अब मेरे हृदय के साथ धड़क रहा है। तुम हजार कोस की दूरी पर रहो, अगर तुम्हारा हृदय मेरे साथ रसलीन है, तो तुम पास हो। और शरीर भी तुम्हारा मेरे पास बैठा रहे छूते हुए, हम एक दूसरे को बैठे रहें ...हाथ में हाथ लेकर बैठे रहें और फिर भी अगर दिल साथ-साथ न धड़कें, रोयें साथ-साथ न फड़कें, तो हजारों कोसों की दूरी है। पास और दूरी की बात देह की बात नहीं है। काश, देहें ही लोगों को पास लाती होतीं तो पति-पत्नी हैं, सब पास होते। मगर पति-पत्नियों से ज्यादा दूर आदमी न पाओगे!

तुम्हारे नाम ने मुझे मुल्ला नसरुद्दीन का नाम याद दिला दिया, सलाहुद्दीन। नसरुद्दीन एक नाटक देखने गया था। नाटक में जो हीरो था, बड़ा अद्भुत और बड़ा प्रेम-

पूर्ण अभिनय कर रहा था। नसरुद्दीन ने अपनी पत्नी से कहा, कि अद्‌भुत अभिनय... बहुत देखे अभिनेता, मगर जैसा प्रेम का अभिनय यह व्यक्ति कर रहा है—जितना वास्तविक प्रेम का अभिनय, ऐसा मैंने कभी नहीं देखा। नसरुद्दीन की पत्नी बोली: और तुम्हें पता है कि जिसके प्रति वह प्रेम प्रगट कर रहा है, वह वास्तविक जीवन में उसकी पत्नी है। नसरुद्दीन ने कहा: तब तो हद्द का अभिनेता है, तब तो इसका कोई मुकाबला ही नहीं! अपनी पत्नी के प्रति और ऐसा प्रेम प्रगट कर रहा है! यह असम्भव घटना है।

पति-पत्नी दूर हो जाते हैं, पास रहते-रहते। पास रहने से ही कोई पास नहीं होता। दूर होने से ही कोई दूर नहीं होता। पास होना और दूर होना आंतरिक घटनायें हैं। तुम मेरे पास अनुभव कर रहे हो, यह शुभ है। लेकिन अभी और पास आना है; उतना ही पास आना है जितना परवाना शमा के पास आता है। जरा भी दूरी नहीं बचनी चाहिये। उसी पास आने का ढंग है संन्यास। अब तुम यह मत सोच लेना कि बिना ही संन्यास के जब पास आना हो गया तो हम दूसरों से भिन्न हैं, विशिष्ट हैं। दूसरे संन्यास लेकर पास जाते हैं, हम तो वैसे ही चले गये। ऐसी चालबाजियां मत कर लेना। मन बहुत होशियार है। मन बहुत चालाक है। मन जो करना चाहता है जो करवाना चाहता है, उसके लिये तर्क खोज लेता है। मन कहेगा कि देखो सलाहुद्दीन, न संन्यास लिया, न आशिर्वाद लिया, फिर भी इतने पास आ गये। अब क्या जरूरत है संन्यास की?

और मैं जानता हूं, मुसलमान हो तुम, अड़चन आयेगी। संन्यास लोगे तो ज्यादा अड़चन आयेगी, जितनी किसी और को आ सकती है। मुश्किल में पड़ोगे। मेरे मुसलमान संन्यासी हैं, बड़ी मुश्किल में पड़े हैं!

लेकिन हर मुश्किल एक चुनौती बन जाती है। जितनी मुश्किल, उतनी ही विकास की सम्भावना का द्वार खुल जाता है। तुम संन्यासी हो जाओगे, होना पड़ेगा ही, अब लौटने का मैं नहीं देखता कि कोई उपाय है, या बचने की कोई जगह है। तो अड़चनें आयेंगी। और तुम्हारा मन सारी अड़चनों के जाल खड़े करेगा।...कितनी मुसीबतें होंगी! और पास तो तुम बिना ही इसके आ रहे हो।

बहुत लोग हैं, जो कहते हैं हम तो भीतर से पास हैं। बाहर से संन्यास लेने की क्या जरूरत, हम तो भीतर से संन्यासी हैं। और मैं जानता हूं, वे सब चालबाजी की बातें कर रहे हैं। चालबाजी की इसलिये बातें कर रहे हैं, क्योंकि भीतर के संन्यास की तो वे सोचते हैं कोई कसौटी है नहीं। भीतर के संन्यास को तो जांचने-परखने का कोई उपाय है नहीं। जो भीतर से संन्यासी है, वह बाहर से भी क्यों डरेगा? जैसे भीतर, वैसे ही बाहर; एक रस हो जाना चाहिये।



हां, अकेले बाहर से संन्यासी होने का कोई अर्थ नहीं। जो बाहर से संन्यासी है, उससे मैं कहता हूं—भीतर से संन्यासी हो जाओ। क्योंकि अकेले बाहर से संन्यासी रहे, तो व्यर्थ है। आवरण बदला तो क्या बदला, अंतस बदलना चाहिये। लेकिन जो कहता है—मैं भीतर से संन्यासी हूं, उससे मैं कहता हूं: बाहर से भी हो जाओ। क्योंकि बाहर और भीतर एक हो जाने चाहिये। जीसस का बहुत प्रसिद्ध वचन है कि—जब बाहर भीतर हो जायेगा, और जब भीतर बाहर हो जायेगा, और जब बाहर, भीतर एक हो जायेंगे, तभी जानना कि तुम परमात्मा के निकट आने शुरू हुए। लेकिन मन चालाक है। और मन जहां तक बने जोखम नहीं लेना चाहता। मन जहां तक बन सके वहां तक सुरक्षा के उपाय करता है।

मुल्ला नसरुद्दीन बहुत कंजूस है। एक दिन अपनी पत्नी के साथ चौपाटी पर घूमने गया। काफी देर घूमने के बाद अंत में नसरुद्दीन ने अपनी पत्नी से कहा: "क्या खयाल है, एक भेल और खाई जाये।" "एक और का क्या मतलब, मैंने तो अभी कोई भेल खाई नहीं?" नसरुद्दीन के हृदय को बड़ी ठेस लगी। वह बोला, "भूल गई, शादी के एक साल बाद जब हम यहां घूमने के लिये आये थे, तब हमने एक भेल खाई थी।" उस बात को हुए तो तीस साल हो गये। लेकिन कृपण आदमी का मन एक ढंग से काम करता है, अपनी सुरक्षा में लगा रहता है।

मुल्ला नसरुद्दीन के घर एक मेहमान आये। मुल्ला उन्हें भोजन कराने बैठा। मेहमान भोजन पूरा करने के करीब हैं, उठना चाहते हैं, कि नसरुद्दीन ने अपनी पत्नी को आवाज दी कि—अरे, भाई, डाक्टर साहब के लिये एक गरम-गरम पूड़ी और लाओ। मेहमान ने हाथ हिलाते हुये कहा: नहीं-नहीं, नसरुद्दीन, मैंने पहले ही चार खा ली हैं, अब बस करें। मुल्ला ने कहा: अरे भाई, गिन कौन रहा है, खा तो तुम सात चुके हो। एक और ले लो, एक में और क्या बिगड़ जायेगा।...गिन कौन रहा है, और बैठा-बैठा गिन रहा है।....मन की गिनतियां हैं।

तो सलाहुद्दीन, यह तो अच्छा हुआ कि तुम मेरे बिना पास आये पास हो! जब बिना पास आये इतने पास, हो तो खयाल रखना, पास आकर और कितने पास न आ जाओगे! मन की कंजूसी में मत पड़ना। मन की गिनती में मत उलझना। मन की सबसे बड़ी कंजूसी यही है कि वह तुम्हें प्रेम से वंचित रखता है।

यह जानकर तुम्हें हैरानी होगी कि कृपणता प्रेम के अभाव से पैदा होती है। इसलिये कंजूस प्रेम नहीं कर सकता और प्रेमी कंजूसी नहीं हो सकता। आदमी कंजूस इसलिये हो जाता है कि प्रेम की जोखम नहीं उठा पाया। व्यक्तियों से प्रेम नहीं कर पाया तो वस्तुओं से प्रेम करने लगता है। वस्तुओं से प्रेम करने में एक सुविधा है, खतरा नहीं है।

व्यक्तियों से प्रेम करने में बड़ा खतरा है। किसी स्त्री के प्रेम में पड़ोगे, खतरे में पड़े। किसी पुरुष के प्रेम में पड़ोगे, खतरे में पड़े। किसी मित्र से मैत्री बांधोगे, खतरा शुरू हुआ! क्योंकि कल मित्र बीमार होगा, तो सहायता भी करनी होगी। कल मित्र मुसीबत में पड़ेगा तो उसकी चिंता भी लेनी होगी। वस्तुओं से प्रेम करने में खतरा नहीं है। इस-लिये कृपण आदमी वस्तुओं से प्रेम करता है। और सबसे बड़ा खतरा तो मेरे जैसे आदमी के प्रेम में पड़ना है; क्योंकि मेरे साथ प्रेम में पड़ने का अर्थ है कि तुमने अपने ही हाथ अपनी मृत्यु का आयोजन किया। यह तो आत्मघात है! संन्यास यानी आत्मघात! इसका अर्थ है कि अब मैं अपने 'मैं' को छोड़ता हूं। यह तो बड़ी से बड़ी जोखम है। बदनामी होगी, समाज में अड़चनें आयेंगी। महंगा यह सौदा है। लेकिन ध्यान रखना कुछ चीजें हैं जो सस्ते में नहीं मिलतीं। और सस्ते में मिल जायें, तो किसी काम की नहीं होतीं।

मुल्ला नसरुद्दीन कंजूस थे,
यानी कि एकदम मक्खीचूस थे,
एक दिन बाजार में आकर,
फलों के दुकानदार के पास जाकर,
बोले,
'यह लो पांच पैसे का सिक्का लो,
और जल्दी से एक बढ़िया-सा केला दो'
दुकानदार चकराया,
पांच पैसे का सिक्का उठाया,
भरोसा न आया,
और मुल्ला को देखकर मुस्कराया,
'लीजिये हुजूर! यह केला लीजिये,
लेकिन मेहरबानी कर यह बता दीजिये
कि क्या हुजूर के यहां
किसी पार्टी की तैयारी हो रही है,
जो इतनी जोरदार खरीददारी हो रही है?'
एक केला पांच नगद पैसे, कि क्या हुजूर के यहां
किसी पार्टी की तैयारी हो रही है
जो इतनी जोरदार खरीददारी हो रही है!

मुल्ला को किसी ने कभी पांच पैसे का केला भी खरीदते नहीं देखा था।



अहंकार सिर्फ जोड़ना जानता है—सिर्फ जोड़ना जानता है। अहंकार महाकृपण है। संन्यास निर-अहंकार होने की प्रक्रिया है। संन्यास है वह—जो जोड़ने की पुरानी आदत है, उससे छुटकारा। संन्यास तो सिर्फ एक प्रतीक है। इसके भीतर बड़ी लम्बी प्रक्रिया है। यह जीवन का रूपान्तरण करने की कीमिया है। और सस्ते में जीवन का रूपान्तरण नहीं होता।

पत्नी पीड़ित पति ने 'तलाक' का खर्च पूछा,
तो वकील ने बताया, 'एक हजार'
पति ने कहा, "वाह सरकार,
शादी में तो पंडित जी ने खर्च कराये थे
सिर्फ चार।"
वकील ने कहा,
"ठीक कह रहे हो,
सस्ते काम का परिणाम ही तो—
सह रहे हो"

सलाहुद्दीन, दूर-दूर से पास होना सस्ता काम है। अब पास से पास हो जाओ। दूर से हो सके यह शुभ, यह सौभाग्य, लेकिन इतने पर रुक मत जाना, कंजूसी मत ले आना। मेरी तरफ आना शुरू हुए हो तो आते चले जाना, जब तक मिट ही न जाओ। मुझे मौका दो कि तुम्हें मिटा सकूं, मुझे मौका दो कि तुम्हें समाप्त कर सकूं। कि तुम्हारी रूप-रेखा न रह जाये, कि तुम्हारा चिह्न भी न छूटे। क्योंकि जहां तुम पूरे मिट जाओगे, वहीं परमात्मा पूरा तुममें प्रगट होता है।

कहै वाजिद पुकार, सीख एक सुन्न रे। एक शून्य मात्र सीख लो। उस शून्य को चाहो मृत्यु कहो, चाहे उस शून्य को संन्यास कहो—ये सिर्फ नाम हैं। ये जो गैरिकवस्त्र मैंने संन्यासियों को दे दिये हैं, ये तो केवल अग्नि के प्रतीक हैं। यह तो इस बात की सूचना है कि अब मैं जलाने को तैयार हूं, अपने को जलाने को तैयार हूं, कि मैं चढ़ा अपने हाथ अपनी चिता पर! संन्यास एक घोषणा है कि अब मैं अपने अतीत से अपने को विच्छिन्न करता हूं, कि जिस ढंग से अब तक जिया था, उस शैली को बदलता हूं। अब ऐसे जिऊंगा जैसे परमात्मा है, अब तक ऐसे जिया जैसे परमात्मा नहीं है। अब ऐसे जिऊंगा जैसे मैं आत्मा हूं, अब तक ऐसे जिया जैसे मैं शरीर हूं। अब ऐसे जिऊंगा जैसे मैं शून्य हूं, अब तक ऐसे जिया जैसे मैं अहंकार हूं। अब तक सिर्फ जीवन का हिसाब-किताब किया, अब मृत्यु के पार जो है और जन्म के पहले जो है, उसे भी सोचना, उसे भी विचारना, उसे भी ध्याना है। अब मैं जिऊंगा—समय में नहीं, क्षणभंगुर में नहीं,

जन्म और मृत्यु में नहीं, अमृत की तलाश में जिऊंगा। संन्यास तो सिर्फ एक बाह्य घोषणा है। लेकिन बाहरी घोषणा से भीतर की यात्रा शुरू होती है। और बाहर की घोषणा से ही शुरू हो सकती है, क्योंकि तुम अभी बाहर हो। इसलिये बाहर से ही काम शुरू करना पड़ेगा।

ओ पिया
आग लगाये बोगनबेलिया!
पूनम के आसमान में
बादल छाया,
मन का जैसे
सारा दर्द छितराया,
सिहर-सिहर उठता है
जिया मेरा,
ओ पिया!
लहरों के दीपों में
कांप रही यादें
मन करता है
कि
तुम्हें
सब कुछ
बतला दें—
आकुल
हर क्षण को
कैसे जिया,
ओ पिया!
पछुआ की सांसों में
गंध के झकोरे
वर्जित मन लौट गये
कोरे के कोरे।
आशा का
थरथरा उठा दीया!
ओ पिया!



तुम्हारे भीतर आशा का एक दीया थरथरा उठा है सलाहुद्दीन! बड़े झंझावात हैं, बचाना इसे। बड़े अंधड़, बड़े तूफान हैं इसे बुझा देने को, बचाना इसे।....आशा का थरथरा उठा दीया, ओ पिया! अभी यह छोटी-सी ज्योति है, यह विराट हो सकती है। पड़ी होगी सुप्त जन्मों-जन्मों से। शायद पहले भी सद्गुरुओं से सत्संग किया होगा—रह गई होंगी छापें अंतस्तल में, अचेतन में पड़े रह गये होंगे बीज। उठे होओगे किसी बुद्ध के पास, किसी मुहम्मद के पास, किसी नानक के पास। बैठे होओगे किसी कबीर के पास। देखा होगा मीरा को नाचते, कि चैतन्य को। कि रूमी को कि सुना होगा अनलहक का नाद मन्सूर से। कहीं-न-कहीं बीज पड़ा रहा होगा; मेरी बातें सुनकर उस बीज में अंकुरण शुरू हो गया है।...आशा का थरथरा उठा दीया, ओ पिया! अब इसे बुझ मत जाने देना। अंकुर छोटे होते हैं तो कोमल होते हैं, जल्दी मर सकते हैं। बाड़ लगा लो अंकुर के चारों तरफ, बागुड़ लगा लो—वही बागुड़ संन्यास है।

अभी बहुत होने को है। अभी बूंद गले के नीचे उतरी, अभी गागर दूंगा, अभी सागर दूंगा! आगे बढ़ो और हिम्मत करो! छोड़ो संकोच, छोड़ो मन के तर्कजाल। अड़चनें आयेंगी। अड़चनें आती ही हैं। बिना अड़चनों के कोई विकास नहीं, न कोई प्रौढ़ता है। संकट आते हैं; अगर उनका सम्यक उपयोग कर लो तो शुभ बन जाते हैं। हर संकट आशीर्वाद बन सकता है।

और मुझे तुम्हारी चिंता है, और तुम्हारी तकलीफों का मुझे खयाल है। मुसलमान होकर संन्यस्त होने में अड़चनें बहुत हैं। हिन्दू संन्यासी हो जाता है तो लोग सोचते हैं—ठीक है कोई खास अड़चन नहीं आ जाती। लेकिन मुसलमान....। पाकिस्तान से कुछ लोग चोरी छिपे यहां आते हैं, संन्यास लेना चाहते है। लेकिन कहते हैं : माला हम छिपा कर रखेंगे, क्योंकि पाकिस्तान में अगर किसी को पता चल गया कि हम माला रखे हुये हैं, कोई चित्र माला में है, तो जिन्दा रहना मुश्किल हो जायेगा। तो मैं उनसे कहता हूं—मर ही जाना! ऐसे तो मरना ही पड़ेगा न; मृत्यु सार्थक हो जायेगी। संन्यास के लिये मरे तो सत्य के लिये मरे। मर जाना! जी कर भी क्या करोगे? और दस-बीस साल किसी तरह जी लोगे, जी कर भी क्या करोगे! जीने से भी क्या होने वाला है?

एक सूत्र याद रखो—जिस व्यक्ति के जीवन में ऐसी कोई चीज है जिसके लिये वह मर सकता है, उसी व्यक्ति के पास जीवन है। जिसके पास जीवन से बड़ी कोई चीज है, उसी के पास जीवन है। जिसके पास ऐसी कोई सम्पदा है जिसके लिये वह मरने को भी राजी हो जाये, झिझके न, उसी ने जीवन को जाना है। उनके ऊपर ही परमात्मा की अनुकम्पा होती है, उन पर ही उसका प्रसाद बरसता है।

तीसरा प्रश्न : योग, ध्यान, और अध्यात्म का वैज्ञानिक संबंध, इतनी प्यारी वाणी और आपका दर्शन कर मैं स्वयं को धन्यभागी स्वीकार करता हूं।

फिर भी इतने प्यारे प्रभु का, कुछ धार्मिक और राजनैतिक लोग विरोध क्यों करते हैं ? मुझे यह विरोध अच्छा नहीं लगता; मैं क्या करूं ?

★ धर्मेश्वर ! यह विरोध बिलकुल स्वाभाविक है। तुम्हें अच्छा नहीं लगता यह भी स्वाभाविक है। लेकिन जो विरोध कर रहे हैं, वे भी मजबूर हैं। उनकी मजबूरी भी समझो। उन पर थोड़ी दया खाओ। उनके अंतस्तल में झांको। उनके भीतर सबल कारण हैं विरोध के। उनके न्यस्त स्वार्थों पर चोट पड़ रही है। वे कैसे एकदम मेरा विरोध बंद कर दें ! यह विरोध तो बढ़ेगा, यह घटने वाला नहीं है। यह तो घटेगा उसी दिन जब मैं चला जाऊंगा, उसके पहले तक तो नहीं घटने वाला है। हां, मेरे चले जाने पर यह विरोध बिलकुल समाप्त हो जायेगा। जो विरोध करते हैं, वे भी सहयोगी हो जायेंगे। ऐसा ही सदा हुआ है। लेकिन जब तक मैं हूं, तब तक यह विरोध बढ़ेगा। और जितना मैं बढ़ूंगा यानी मेरे संन्यासी बढ़ेंगे, मेरे लोग बढ़ेंगे, उतना यह विरोध बढ़ेगा। क्योंकि उतनी चोट पड़ने लगेगी न्यस्त स्वार्थ्यों पर। अब मंदिर का पुजारी कैसे न विरोध करे; थोड़ी दया करो उस पर। मस्जिद का मुल्ला कैसे विरोध न करे। गुरुद्वारे का ग्रंथी कैसे विरोध न करे। चर्च का पादरी कैसे विरोध न करे। मैं उसके ही व्यक्तियों को तो छीने ले रहा हूं। वह जो कल चर्च जाता था, यहां आने लगा। वह जो कल गुरुद्वारा जाता था, यहां आने लगा। वह जो कल मंदिर में से पूजा करता था, उसने मंदिर की तरफ पीठ कर ली। वह कैसे विरोध न करे, उसकी जड़ें हिल रही हैं !

फिर जो मैं कह रहा हूं, वह मौलिक रूप से भिन्न है उसकी धारणाओं से। उसकी धारणाओं से उतना ही भिन्न है, जितना कि जीसस के वचन उससे भिन्न थे और बुद्ध के। यह जानकर तुम्हें हैरानी होगी कि जीसस का विरोध यहूदी पुरोहितों ने किया था। ऐसा मत सोचना कि यहूदियों ने किया था। वह भ्रांति फैल गई है सारे जगत में नहीं, यहूदी पुरोहितों ने किया था। और उसमें भी तुम खयाल रखना, यहूदी पर जोर मत देना, पुरोहित पर जोर देना। अगर आज जीसस आयें तो ईसाई पुरोहित उतना ही विरोध करेगा, क्योंकि अब उसके न्यस्त स्वार्थों पर चोट पड़ेगी।

पुरोहित के न्यस्त स्वार्थ क्या हैं ? उसका न्यस्त स्वार्थ यह है कि परमात्मा और मनुष्य के बीच सीधा संबंध नहीं होना चाहिये। क्योंकि सीधा संबंध हो जाये तो दलाल की कोई जरूरत नहीं रह जाती। पुरोहित दलाल है, वह बीच में खड़ा है। वह कहता है— तुम्हें जो कुछ कहना है मुझसे कहो, मैं परमात्मा से कहूंगा। तुम सीधे मत कहो। अगर तुम सीधे ही कह देते हो, तो उसका सारा होने का अर्थ ही खो गया !— मैं यज्ञ



करवाऊंगा, मैं परमात्मा की आहुति चढ़ाऊंगा, मैं वेद के पाठ पढ़ूंगा, मैं उसे पुकारूंगा; तुम पुकारने का जो खर्च हो वह मुझे दे देना। प्रार्थना मैं करूंगा, प्रार्थना के दाम तुम चुका देना। परमात्मा से मैं बोलूंगा, तुम मुझसे बोलो। तुम्हें क्या करना है, तुम्हें क्या चाहिये, मुझे कह दो, तुम सीधे प्रत्यक्ष परमात्मा से प्रार्थना मत करना। पुरोहित का मतलब है—बिचवैया। मैं तुमसे कह रहा हूं, कोई जरूरत नहीं है बिचवये की। तुम सीधे ही पुकारो। प्रार्थनायें नौकरों से नहीं करवायी जातीं। यह तो ऐसे ही हुआ कि तुम एक नौकर रख लो और कहो कि जाओ मेरी पत्नी को मेरी तरफ से प्रेम निवेदन कर दो !

मुल्ला नसरुद्दीन एक स्त्री के प्रेम में था। उसने बहुत पत्र लिखे, कम-से-कम दिन में तीन लिखता था—सुबह, दोपहर, सांझ। महीने-दो-महीने के प्रेम ने ही उसका घर पत्रों से भर दिया। फिर जैसे प्रेम आते हैं जाते हैं, ऐसे ही यह प्रेम भी आया और गया। तो मुल्ला गया उस स्त्री के पास और कहा, कि मेरे पत्र कम-से-कम वापिस लौटा दो। उस स्त्री ने कहा : इन पत्रों का तुम क्या करोगे ? मुल्ला ने कहा : अब तुमसे क्या छिपाना, अब तो बात भी खत्म हो गई। एक पंडित जी से लिखवाता था। मुफ्त नहीं लिखवाये हैं, एक-एक पत्र के पैसे चुकाने पड़े हैं। और अभी मेरी जिन्दगी तो खत्म नहीं हो गई; यह प्रेम खत्म हो गया, कल किसी और से होगा, इन्हीं पत्रों का काम वहां उपयोग कर लूंगा। यह पत्र मुझे जिन्दगी-भर काम दे सकते हैं। पत्र मेरे वापिस लौटा दो।

पत्र, प्रेम-पत्र, भी लोग उधार लिखवा रहे हैं ! प्रेम-पत्र भी तुम खुद न लिखोगे ! प्रार्थना भी तुम खुद न करोगे ! और मैं तुमसे कहता हूं कि अगर तुम्हारी प्रार्थना तुतलाहट भी हो तो भी तुम्हारी ही होनी चाहिये, तो ही परमात्मा तक पहुंचेगी। और किसी ने चाहे उसे ठीक वेद के शब्दों मे बांध कर गाया हो, तो भी नहीं पहुंचेगी, क्योंकि उधार हो गई हो ! संस्कृत का सवाल नहीं है, हार्दिक सवाल है। अरबी का सवाल नहीं है, आत्मा का सवाल है। तुम अपने प्राणों से पुकारो; तुम रोओ, तुम्हारे आंसू गिरें। पुजारी रो रहा है... और पुजारी क्या खाक रोयेगा ! वह अभिनय कर रहा है रोने का। पुजारी नाच रहा है, तुम बैठे देख रहे हो। तुम दर्शक हो गए हो। परमात्मा चाहता है तुम भागीदार होओ, तुम जुड़ो। तो मैं जो यहां तुमसे कह रहा हूं, वह है सीधे परमात्मा से प्रत्यक्ष बात। पुजारी-पुरोहित को चोट लगेगी।

फिर मैं कुछ और बातें तुमसे कह रहा हूं, जो उसने तुमसे कभी नहीं कही हैं, बल्कि तुमसे विपरीत बातें हैं। उसने तुम्हें सदा डराया है। और मैं कहता हूं, डरना मत, नहीं तो परमात्मा से टूट जाओगे। तुलसीदास ने कहा है : भय बिन होय न प्रीति... और मैं तुमसे कहता हूं—भय जहां है, वहां प्रीति हो ही नहीं सकती। तो तुलसीदास का माननेवाला अगर मुझसे नाराज हो जाये तो आश्चर्य तो नहीं। क्योंकि मैं तो कहता हूं भय और

प्रेम विपरीत हैं। जिससे प्रेम होता है उससे भय नहीं होता, और जिससे भय होता है उससे प्रेम नहीं होता। मैं कह रहा हूं ईश्वरभीरु मत बनना, ईश्वर प्रेमी बनो। और पुराना सारा धर्म भय पर खड़ा है। भय पर खड़े करने का कारण है, आदमी का शोषण करना हो तो पहले उसे भयभीत करना जरूरी है। बिना भयभीत किये आदमी का शोषण नहीं हो सकता। पहले डरा दो उसे, घबड़ा दो उसे।

मैं एक डाक्टर को जानता हूं; उनके घर मैं मेहमान होता, बैठकर मैं देखता कि वह मरीजों को डरवाते हैं। जिसको सर्दी-जुकाम हुआ है, उसको वह एकदम इस तरह बात करते जैसे निमोनिया हो गया है कि डबल निमोनिया हो गया है। मैंने यह दो-चार बार देखा। मैंने उनसे पूछा कि बात क्या है, आप मरीज को बहुत घबड़ा देते हैं? उन्होंने कहा, कि मरीज को घबड़ाओ मत, तो मरीज फंदे में नहीं आता। मालूम है मुझे भी सर्दी-जुकाम है, लेकिन निमोनिया की बात करो तो मरीज घबड़ाता है। हालांकि सर्दी-जुकाम है, इसलिये ठीक भी कर लेंगे जल्दी, कोई अड़चन भी नहीं है। और मरीज को अगर यह खयाल रहे कि निमोनिया ठीक किया गया है, तो वह सदा के लिये अपना हो जाता है....। और इतनी जल्दी ठीक किया गया... तो दोहरे फायदे हैं!

पर, मैंने कहा, यह तो बात गलत है, यह तो बात अनुचित है। तुम तो धर्म-पुरोहितों जैसा काम कर रहे हो!

मगर बहुत डाक्टर हैं जो इस तरह जीते हैं, जो तुम्हारी छोटी-सी बीमारी को खूब बड़ा करके बता देते हैं। और मजा ऐसा है कि मरीज इन्हीं डाक्टरों से प्रसन्न होता है। जो उसकी बीमारी को खूब बड़ा करके बता देते हैं, वे ही उसको बड़े डाक्टर भी मालूम होते हैं। अगर तुम समझ रहे हो कि तुम्हें निमोनिया हुआ है, और तुम गये हो और कोई डाक्टर कह दे कि छोड़ो बकवास, सर्दी-जुकाम है, दो दिन में चला जायेगा। तुम प्रसन्न नहीं होते; तुम्हारा चित्त राजी नही होता; तुमको चोट लगती है—तुम इतनी बड़ी बीमारी लेकर आये... तुम कोई छोटे-मोटे आदमी हो! तुम्हें कोई छोटी-मोटी बीमारियां होती हैं! बड़े आदमियों को बड़ी बीमारियां होती हैं! तुम बड़े आदमी हो, तुम बड़ी बीमारी लेकर आये हो और यह बदतमीज कहता है कि सर्दी-जुकाम है, बस ठीक हो जायेगा, ऐसे ही ठीक हो जायेगा,। जो डाक्टर मरीज से कह देता है—ऐसे ही ठीक हो जायेगा, उससे मरीज प्रसन्न नहीं होता।

मेरे गांव में एक नये डाक्टर आये। सीधे-सादे आदमी थे। उनकी डाक्टरी न चले। किसी ने मेरी उनसे पहचान करा दी। उन्होंने मुझसे पूछा कि मामला क्या है? मेरी डाक्टरी क्यों नहीं चलती? मैंने कहा कि मैं जरा जाऊंगा, देखूंगा एक-दो दिन बैठकर कि बात क्या है। तो उनकी बैठ जाता था डिस्पेंसरी पर जाकर। जो मैंने देखा, तो



मामला साफ हो गया। वह मरीजों को डरवाते न। मरीज बता रहा है बड़ी बीमारी, वह कहते: यह कुछ नहीं है, यह मिक्श्चर ले लो, ठीक हो जायेगी। किसी-किसी मरीज को कह देते कि तुम्हें बीमारी ही नहीं है, दवाई की कोई जरूरत नहीं है। और मरीज अपनी बीमारी की कथा कह भी नहीं पाता और वह मिक्श्चर तैयार करने लगते। मैंने उनके मरीजों से पूछा। उन्होंने कहा कि हमें यह बात जंचती नहीं। हम अभी अपनी बीमारी की पूरी बात भी नहीं कह पाये और यह सज्जन जल्दी से दवाई बनाने लगते हैं। कुशल डाक्टर थे, मगर कुशल राजनीतिज्ञ नहीं थे!

मरीज को सिर्फ बीमारी ही थोड़े ही ठीक करवानी है, मरीज को कुछ और रस भी है—उसकी बात ध्यान से सुनी जाये, उस पर ध्यान दिया जाये; तड़प रहा है, कोई ध्यान नहीं देता। घर आता है, कहता है—सिर में दर्द....तो पत्नी कहती है कि लेट रहो ठीक हो जायेगा।...कोई ध्यान नहीं देता। कोई उसकी चारों तरफ खाट के बैठकर हाथ-पैर नहीं दबाता। कोई कहता नहीं कि, अहा! ऐसा सिर दर्द कभी किसी को नहीं हुआ, कितनी मुसीबत में पड़े हो, कैसा कष्ट झेल रहे हो! हम बच्चों के लिये, पत्नी के लिये, परिवार के लिये कैसा महान हिमालय सिर पर ढो रहे हो! उसी से सिर दर्द हो रहा है—कोई उसपर ध्यान नहीं देता। और यह डाक्टर के पास आया है; यह मिक्श्चर बनाने लगा, इसने मरीज की बात ही नहीं सुनी।

होम्योपैथी डाक्टरों के बड़े प्रभाव का एक कारण है—वे खूब लम्बी चर्चा सुनते हैं; तुम्हारी ही नहीं, तुम्हारे पिता को भी क्या बीमारी हुई थी, उसकी भी तुमसे पूछते हैं। पिता के पिता को भी क्या हुई थी, उसकी भी तुमसे पूछते हैं। बचपन से लेकर अब तक कितनी बीमारियां हुईं, वह सब पूछ लेते हैं। मरीज को बड़ी राहत मिलती है—यह कोई आदमी है जो इतना रस ले रहा है!

पश्चिम में मनोवैज्ञानिकों का बहुत प्रभाव है, क्योंकि वह घंटों तुम्हारी बकवास सुनते हैं; मगर इतने ध्यान से सुनते हैं जैसे तुम अमृत वचन बोल रहे हो।

एक ही मकान में दो मनोवैज्ञानिक काम करते थे—एक बूढ़ा एक जवान। दोनों सांझ को जब लौटते, लिफ्ट से एक ही साथ नीचे उतरते थे। जवान सदा टूटा-फूटा, हारा-थका... दिन-भर पगलों की बातचीत सुनना, मानसिक बीमारों की बातें सुनना; थक मरता। मगर बूढ़ा जैसा सुबह ताजा जाता था, वैसा सांझ ताजा जाता था। आखिर उस युवक ने कहा: हद हो गई! मैं जवान हूं, मुझे ये मरीज मिटा डालते हैं दिन-भर में! रौंद डालते हैं बुरी तरह से....ऐसी-ऐसी बकवास मुझे सुननी पड़ती हैं दिन-भर, ऐसी फिजूल की बातें, जिनका कोई सार नहीं है; मगर सुननी पड़ती हैं, क्योंकि फीस उसी की मिलती है। आप थकते नहीं? बूढ़ा मुस्कराया, उसने कहा: सुनता कौन है, मैं बैठा-

बैठा मुस्कराता रहता हूं, उनको लगता है कि सुन रहा हूं। सुनता कौन है, ऐसे भी मैं बहरा हूं।

सुनो चाहे न सुनो, मगर कम-से-कम दिखाओ तो कि सुन रहे हो। पहले भयभीत कर दो, पहले डरा दो, शंकित कर दो; जैसे ही आदमी शंकित हुआ, आत्मवान नहीं रह जाता, उसकी श्रद्धा अपने पर कम हो जाती है। और किसी आदमी की अपने पर श्रद्धा कम हो जाये, तभी दूसरे पर वह श्रद्धा कर सकता, नहीं तो नहीं कर सकता, यह खयाल रखना।

यह पुरोहित का बुनियादी व्यवसाय-सूत्र है—पहले आदमी को उसकी स्वयं की श्रद्धा से वंचित कर दो, उसे डरा दो—पापी हो, महापापी हो, जन्मों-जन्मों के कर्म तुम पर पड़े हैं, सड़ोगे नर्क में; नर्क की खूब वीभत्स तस्वीर खींचों कि कैसे सड़ाये जाओगे! कैसे गलाये जाओगे, कैसे आग में डाले जाओगे, कैसे जलते कड़ाहों में चुड़ाये जाओगे। पहले उसे खूब डरा दो, उसे ऐसा भयभीत कर दो कि वह कंपने लगे, कि उसका रोआं-रोआं खड़ा हो जाये, फिर कहो कि मैं तुम्हें बचा सकता हूं। आओ, जब तक मैं हूं, घबड़ाओ मत। डर की कोई वजह नहीं है, मैं तुम्हें बचा लूंगा, मैं बचावनहार हूं। बस यह तरकीब है।

मैं तुमसे कह रहा हूं, तुम पापी नहीं हो, तुम परमात्मा हो। मैं तुमसे कह रहा हूं, तुम्हारे ऊपर कोई कर्मों का बोझ नहीं है। क्योंकि तुमने जो कर्म किये वे होश में नहीं किये, उनका बोझ तुम पर हो नहीं सकता है। जैसे कोई शराब पीने में गाली बक दे, उसको हम क्षमा कर देते हैं—शराब पिये था; कौन उस पर ध्यान देता है? वही आदमी बिना शराब पिये गाली दे, तो तुम बर्दाश्त न कर सकोगे। एक आदमी गाली दे रहा हो, तुम गुस्से में आने-ही-आने को थे, गर्दन दबाने को ही थे, कि कोई कह दे: भई, वह शराबी है, शराब पिये है। बस तुम ढीले हो जाते हो, तुम कहते हो फिर जाने दो। शराब पिये है तब इससे क्या झंझट लेनी, यह होश में ही नहीं है तो इसका उत्तरदायित्व क्या है? तुम होश में ही नहीं हो, तुम्हारा उत्तरदायित्व क्या है? हां, बुद्ध अगर पाप करें तो उत्तरदायी होंगे। तुम पाप करोगे, तुम्हारा क्या खाक उत्तरदायित्व है! तुम हो ही नहीं अभी; तुम्हारे भीतर बोध की किरण नहीं पैदा हुई।

इसलिये तुमने जो भी किया है अब तक—पाप और पुण्य दोनों, सपने में किये गये हैं। तुम साधु बने तो सपना था, तुम चोर बने तो सपना था। मैं तुमसे कहता हूं, तुम पर कोई बोझ नहीं हैं अतीत का। मैं तुमसे कहता हूं, तुमने कोई पाप कभी नहीं किया है। तुम्हारा अंतरतम उज्ज्वल है, कुंआरा है, उस पर कोई कालिख की रेख नहीं लगी।

यह अड़चन की बात है पंडित को, पुरोहित को; उसका सारा व्यवसाय समाप्त हो



जायेगा। उसकी नाराजगी स्वाभाविक है।

राजनेता भी परेशान हैं, चूंकि मैं कहता हूं तुम्हें राजनेताओं की भी कोई आवश्यकता नहीं है। तुम्हें राजनेताओं की इसलिये आवश्यकता पड़ती है कि तुम्हें अपने-आप पर विश्वास नहीं है। तुमने आत्मविश्वास खो दिया है। इसलिये तुम्हें किसी के कंधे का सहारा चाहिये। तुम्हें किसी के पीछे चलने की वृत्ति पड़ गई है। कोई भी हो, लेकिन तुम्हें किसी के पीछे चलना है, आगे कोई चलना चाहिये। तुम बुध्दू से बुध्दू आदमियों के पीछे चल सकते हो, मगर पीछे चल सकते हो। तुम्हें सदा शंका है। तुम यह नहीं मान सकते कि मैं अपनी तरह से चलकर और ठीक जगह पर पहुंच जाऊंगा। राजनेता भी नहीं चाहता कि तुममें आत्मविश्वास जगे। तुममें जितना आत्मविश्वास कम है, उतना ही राजनेता का बल है।

जिस देश में जितना आत्मविश्वास बढ़ेगा उतना ही राजनेता का बल कम हो जायेगा। जिस देश में लोग आत्मविश्वासी हो जायेंगे, अपनी बुद्धि पर भी भरोसा करेंगे, अपनी चेतना से जियेंगे, उस देश में राजनेताओं की क्या जरूरत रह जायेगी? हां, सरकारी नौकर होंगे, राजनेता की कोई जरूरत नहीं रह जायेगी। सरकारी नौकर ठीक हैं। उनका काम है जनता की सेवा कर देना, उसकी वे तनख्वाह पा लेते हैं। लेकिन उनको सिर पर बिठाने की कोई जरूरत नहीं है। तो जो कीमत तुम्हारे घर में रसोइये की है, उससे ज्यादा कीमत खाद्यमंत्री की नहीं होनी चाहिये। वह रसोईया है, पूरे प्रदेश का समझ लो, याकि पूरे देश का समझ लो। ठीक है, अच्छा काम मिले, अच्छा काम करे, उसे आदर मिल जाना चाहिये, उसे पुरस्कार मिल जाना चाहिये। मगर राजनेता लोगों के सिर पर सवार रहे, इसकी कोई आवश्यकता नहीं है।

जैसे-जैसे मनुष्य ज्यादा प्रबुद्ध होगा वैसे-वैसे राजनीति कम होती जायेगी। राजनीति के दिन, गये लद गये! भविष्य नहीं है राजनीति का कोई। और अच्छा है कि राजनीति समाप्त हो जाये दुनिया से। क्योंकि राजनीति ने दिया क्या है सिवाय झगड़े, खून-खराबे, युद्धों के? लोगों को लड़ाया है; लोगों को लड़ाकर ही राजनेता जीता है। इसलिये हर लोकतंत्र में दो पार्टियां कम-से-कम चाहिये, ताकि वे पार्टियां लड़ें, लोगों को बांटे। और किसी भी हालत में लुटोगे तुम।

तुम्हें पता है न उन दो बिल्लियों का जो एक बंदर से बंटवारा करने पहुंच गई थीं। बंदर ने ली तराजू, तौलने लगा। कभी इसमें थोड़ा ज्यादा हो गया तो उसमें से थोड़ा एक कौर निकाल कर खा लिया, ताकि बराबर हो जाये। तब दूसरे में कम हो गया, तो उसमें थोड़ा डाला, फिर जोड़ा। धीरे-धीरे वह सारा भोजन पचा गया। बिल्लियां बैठी देखती रह गईं।

लड़ोगे कि कोई तुम्हारे सिर पर शोषण करेगा। बुद्धिमान समाज राजनीति से मुक्त होगा, पुरोहित से भी मुक्त होगा, राजनेता से भी मुक्त होगा। संगठनबद्ध धर्म के दिन गये; और दुर्दिन थे वे। तो मेरी बातें अगर राजनेताओं और धार्मिक गुरुओं को चोट करती हों, परेशानी में डालती हों, स्वाभाविक है।

फिर मैं तुमसे कहता हूं, तुम्हारी देह भी सुन्दर है उतनी ही जितनी तुम्हारी आत्मा। मैं देह और आत्मा के बीच कोई खंड, कोई भेद, कोई द्वैत खड़ा करना नहीं चाहता। तुम्हारे सभी तथाकथित धर्म शरीर विरोधी हैं, जीवन विरोधी हैं। उनका नियम यह रहा है कि तुम जीवन से जितनी दुश्मनी करोगे, उतने परमात्मा के निकट जाओगे। मेरी सलाह है कि तुम जीवन में जितने डूबोगे, जितना रस लोगे, जितने रसमग्न होओगे, उतने परमात्मा के निकट जाओगे। और मैं कहता हूं कि मैं ठीक हूं और वे गलत हैं। क्यों? क्योंकि यह जीवन परमात्मा का विस्तार है—उसकी ही लीला, उसका ही कृत्य ...।

अगर परमात्मा जीवन विरोधी है, तो जीवन हो ही क्यों? कभी सोचो इस छोटी-सी बात पर—अगर परमात्मा जीवन विरोधी है, तो जीवन हो ही क्यों? क्या परमात्मा की इतनी अभी सामर्थ्य नहीं है कि जीवन को रोक दे। फिर कैसा सर्वशक्तिमान है? क्या इतना भी उसे पता नहीं है कि वासनाओं को तोड़ दे। बच्चे ही ऐसे पैदा करे, जिनमें वासना का बीज ही न हो। जिनमें न रस की कोई आकांक्षा हो, न स्वर का जिन्हें कोई बोध हो, न रूप का कोई खयाल हो। ऐसे बच्चे पैदा करे, जो शरीर हों ही नहीं, सिर्फ आत्मा ही आत्मा हों।

मगर परमात्मा सुनता नहीं तुम्हारे महात्माओं की। परमात्मा बच्चे पैदा करता है देहधारी और उनके भीतर सारी जीवन की आकांक्षायें, अभीप्सायें पैदा करता है। यह सारा विस्तार परमात्मा का है। यह उसके विपरीत नहीं है। कोई कविता कवि के विपरीत होती है? और कोई चित्र चित्रकार के विपरीत होता है? और कोई संगीत किसी संगीतज्ञ के विपरीत होता है? तो फिर चलेगा ही क्यों? अगर मुझे वीणा से विरोध है, तो मैं वीणा बजाऊं ही क्यों? और अगर मनुष्य को संसार से मुक्त होने की ही आकांक्षा परमात्मा की हो, तो संसार बनाने की कोई जरूरत नहीं।

नहीं परमात्मा चाहता है संसार से गुजरो, संसार का अनुभव करो; क्योंकि अनुभव से ही बोध निखरेगा, आत्मा प्रगट होगी। यह अनुभव की पाठशाला है। इसलिये मैं कहता हूं संसार को छोड़ना नहीं है, भागना नहीं है। शरीर से दुश्मनी नहीं साधनी है। जीवन का निषेध नहीं करना है। जीवन का अंगीकार करो। बाहें भर लो जीवन को, गलबांहीं डालो जीवन को, आलिंगन करो जीवन का। जीवन उत्सव है।

इसलिये धर्मगुरु नाराज है, क्योंकि मैं जीवन का पक्षपाती हूं। धर्मगुरु नाराज है, कि



वह कहता फिरता है, कि मैं लोगों को भ्रष्ट कर रहा हूं, क्योंकि मैं उनको जीवन की शिक्षा दे रहा हूं, इसलिये भ्रष्ट कर रहा हूं। वह कहता फिरता है कि मैं नास्तिक हूं, कि चार्वाकवादी हूं, क्योंकि मैं लोगों को सुख की शिक्षा दे रहा हूं।

मैं तुमसे कहता हूं, अब तक तुम्हें दुखी रखने का आयोजन किया गया है। और तुम जितने ज्यादा दुखी हुए, दुख के कारण तुमने परमात्मा को याद किया। और खयाल रखना, जो दुख के कारण परमात्मा को याद करता है, परमात्मा को याद करता ही नहीं। क्योंकि दुख के कारण करता है, तो परमात्मा से कुछ हेतु है—मेरा दुख छीन लो, मेरा दुख हर लो... तो कुछ स्वार्थ है। यह प्रार्थना शुद्ध नहीं है। यह प्रार्थना कलुषित है।

अगर नहीं है यह दस्ते-हाविस की कमजोरी
तो फिर दराजिए-दस्ते-दुआ को क्या कहिये

अगर नहीं है यह दस्ते-हाविस की कमजोरी...

अगर यह तृष्णा की कमजोरी नहीं है, तो फिर प्रार्थना के बाद तुम जो हाथ फैलाते हो आकाश की तरफ, उनके लिये हम क्या कहें, किसलिये फैलाते हो?

अगर नहीं है दस्ते-हाविस की कमजोरी
तो फिर दराजिए-दस्ते-दुआ को क्या कहिये

...तो फिर हाथ क्यों फैलाते हो?

परमात्मा से भी कुछ मांगोगे, तो तुम्हारा परमात्मा से संबंध नहीं जुड़ेगा। कुछ मत मांगो। मांग वासना है। मांगना भिखमंगापन है। तो मैं कहता हूं, परमात्मा से मांगो मत, धन्यवाद दो। उसने इतना दिया है, इसके लिये धन्यवाद दो और मत मांगो। तो मैं कहता हूं, दुख के कारण परमात्मा को याद करोगे, तो गलत होगी याद, सुख के कारण याद करो।

तुम मेरा फर्क समझो। मैं एक क्रान्ति कर रहा हूं! दुख के कारण तुम्हारी प्रार्थना, में भिखमंगापन होता है। तो फिर दराजिए-दस्ते-दुआ को क्या कहिये...तो फिर वह प्रार्थना के बाद जो तुम हाथ फैलाते हो और झोली आकाश की तरफ, उनको क्या कहें हम? तृष्णा ही है, हेतु है; और प्रेम तो अहेतुक होना चाहिये। अहेतुक प्रेम तभी हो सकता है, जब तुम जीवन का आनन्द जियो, अनुभव करो। और ऐसे कृतज्ञ हो जाओ कि किन्हीं कृतज्ञता के क्षणों में झुको और धन्यवाद दो।

प्रार्थना धन्यवाद होनी चाहिये; तब तुमने सम्राट की तरह प्रार्थना की। मैं चाहता हूं तुम सम्राट की तरह प्रार्थना करो, भिखमंगों की तरह नहीं। भिखमंगों से परमात्मा भी परेशान आ गया! कम-से-कम तुम्हारी प्रार्थना में तो तुम्हारा सम्राट भाव प्रगट हो। कम-से-कम प्रार्थना में तो तुम कुछ न मांगो, धन्यवाद दो, क्योंकि बहुत उसने दिया है।

तो मैं तुम्हें सुख सिखाता हूं, ताकि सुख से तुम्हारी प्रार्थना उमगे। और सुख से जब प्रार्थना उठती है, तो उसमें बड़ी सुवास होती है, बड़ा सौन्दर्य होता है। और तुम्हारी मांगी गई प्रार्थनायें पूरी कहां होती हैं? फिर भी तुम मांगे चले जाते हो! तुम्हारी मांगी गई प्रार्थनायें पूरी नहीं होती।... मगर तुम्हारा भिखमंगापन गहरा होता जाता है।

> दुआ से कम नहीं होता है, जोर तूफां का
> खुदा का हाल यह है, नाखुदा को क्या कहिये

कौन सुनता है तुम्हारी प्रार्थनाओं को; भिखमंगों की प्रार्थनायें, न कभी सुनी गई हैं न कभी सुनी जायेंगी। दुआ से कम नहीं होता है, जोर तूफां का—तुम कितनी प्रार्थनायें करो, तूफान इनसे कम नहीं होते, न जोर कम होता है। खुदा का हाल यह है, ना खुदा को क्या कहिये—जब परमात्मा की ऐसी हालत है, तो मांझी को क्या दोष दे रहे हो! लेकिन तुम मांझियों को दोष देते रहते हो। तुम कहते हो मस्जिद में पूरी नहीं हुई, तो अब मंदिर में जायेंगे। मंदिर में पूरी नहीं हुई, गुरुद्वारा जायेंगे। गुरुद्वारा में पूरी नहीं हुई तो चलो किसी फकीर की कब्र पर जायेंगे। मगर तुम मांझी बदलते रहते हो और भिखमंगापन तुम्हारा जारी रहता है।

मैं तुम्हें कुछ और, कोई और ही पाठ सिखा रहा हूं। इसलिये नाराज है धर्मगुरु। उसने तुम्हें जीवन-विरोधी पाठ सिखाया, मैं जीवन-स्वीकार का पाठ सिखा रहा हूं। उसने तुम्हें शरीर की दुश्मनी सिखायी, मैं शरीर से प्रेम सिखा रहा हूं। उसने तुम्हें निंदा सिखायी—यह भी गलत, वह भी गलत...उसने तुम्हें चारों तरफ गलतियों के बोझ से भर दिया और दीन-हीन कर दिया। मैं कहता हूं, कुछ भी गलत नहीं; बोधपूर्वक जो भी करो, ठीक। बोध सही, अबोध गलत। बस सीधे से सूत्र हैं—जाग्रत होकर तुम जो भी करो, होशपूर्वक जो भी करो, ठीक है।

नागार्जुन से एक चोर ने पूछा था, आप कहते हैं—होशपूर्वक जो भी करो, वह ठीक है। अगर मैं होशपूर्वक चोरी करूं तो? नागार्जुन ने कहा : तो चोरी भी ठीक है; होश-पूर्वक भर करना, शर्त याद रखना! उस चोर ने कहा : तो ठीक है, तुमसे मेरी बात बनी। मैं बहुत गुरुओं के पास गया...। मैं जाहिर चोर हूं। जैसे गुरु प्रसिद्ध हैं, ऐसे मैं भी प्रसिद्ध हूं। सब गुरु मुझे जानते हैं। आज तक पकड़ा नहीं गया हूं। सम्राट भी जानता है; उसके महल से भी चोरियां मैंने की हैं, मगर पकड़ा नहीं गया हूं। अब तक मुझे कोई पकड़ नहीं पाया है। तो जब भी मैं किसी गुरु के पास गया, तो वह मुझसे यही कहते हैं—पहले चोरी छोड़ो, फिर कुछ हो सकता है। चोरी मैं छोड़ नहीं सकता। तुमसे मेरी बात बनी। तुम कहते हो चोरी छोड़ने की जरूरत ही नहीं है।



नागार्जुन ने बड़े अद्भुत शब्द कहे थे। नागार्जुन ने कहा था : तो जिन गुरुओं ने तुमसे कहा—चोरी छोड़ो, वे भी चोर ही होंगे; भूतपूर्व चोर होंगे, इससे ज्यादा नहीं, नहीं तो चोरी से उनको क्या लेना-देना? मुझे चोरी से क्या लेना-देना? मैं तुमसे कहता हूं—होश सम्हालो, फिर तुम्हें जो करना हो करो। मैं तुम्हें दीया देता हूं; फिर दीये के रहते भी तुम्हें दीवाल से निकलना हो, निकलो।

मगर मैं जानता हूं, जिसके हाथ में दीया है, वह द्वार से निकलता है। मैं नहीं कहता कि दीवाल से मत निकलो। अंधेरे में जो आदमी है, उससे क्या कहना कि दीवाल से मत निकलो। वह तो टकरायेगा ही, वह तो गिरेगा ही। उसे तो द्वार कैसे मिलेगा? दीवाल बड़ी हैं; चारों तरफ दीवालें ही दीवालें हैं। हमने ही खड़ी की हैं। निकल नहीं पाओगे। और जब निकलोगे नहीं, बार-बार गिरोगे।

और पुजारी-पंडित चिल्ला रहे हैं कि दीवाल से टकराये, पाप हो गया...फिर टकराये, फिर पाप हो गया! और जितने तुम घबड़ाने लगोगे, उतने ज्यादा टकराने लगोगे। उतने तुम्हारे पैर कंपने लगेंगे।

नागार्जुन ने ठीक कहा—मैं दीया देता हूं, अब तुझे दीवाल से निकलना हो, तेरी मर्जी; मगर दीया भर न बुझ पाये, दीये को सम्हाले रखना। वह चोर पन्द्रह दिन बाद आया, उसने कहा कि मैं हार गया, तुम जीत गये। तुम आदमी बड़े होशियार हो। तुमने खूब मुझे धोखा दिया! मैं जिन्दगी-भर लोगों को धोखा देता रहा, तुमने मुझे धोखा दे दिया! आज पन्द्रह दिन से कोशिश कर रहा हूं होशपूर्वक चोरी करने की, नहीं कर पाया; क्योंकि जब होश सम्हलता है, चोरी की वृत्ति ही चली जाती है। जब चोरी की वृत्ति आती है, तब होश नहीं होता।

तुम जरा करके देखना, तुम भी करके देखना, होशपूर्वक झूठ बोलकर देखना। होश सम्हलेगा, सच ओठों पर आ जायेगा। होश गया, झूठ बोल सकते हो। जरा होशपूर्वक कामवासना में उतरकर देखना। होश आया, और सारी वासना ठंडी पड़ जायेगी, जैसे तुषार पात हो गया! होश गया, उत्तप्त हुए। बेहोशी में ताप है, ज्वर है। होश शीतल है। होशपूर्वक कोई कामवासना में न कभी उतरा है, न उतर सकता है। इसलिये मैं तुमसे नहीं कहता, कामवासना छोड़ो, मैं तुमसे कहता हूं—होश सम्हालो। फिर जो छूट जाये, छूट जाये, जो न छूटे, वह ठीक है। होशपूर्वक जीवन जीने से जो बच जाये, वही पुण्य है और जो छूट जाये, छोड़ना ही पड़े होश के कारण, वही पाप है। मगर पाप-पुण्य का मैं तुम्हें ब्योरा नहीं देता, मैं तो सिर्फ दीया तुम्हारे हाथ में देता हूं।

और तुम्हारे पंडित-पुरोहित, तुम्हारे राजनेता, तुम्हारे नीतिशास्त्री, उनका काम यही है—फेहरिस्त बनाओ, नियम बनाओ, कानून बनाओ; इतने कानून दे दो, कि आदमी

दब जाये, मर जाये!

बौद्ध ग्रन्थों में तैंतीस हजार नियम हैं नीति के। याद भी न कर पाओगे, कैसे याद करोगे? तैंतीस हजार नियम! और आदमी तैंतीस हजार नियम याद करके जियेगा, वह जी पायेगा? उसकी हालत वही हो जायेगी, जो मैंने सुनी है, एक बार एक सेन्टीपीड, शतपदी की हो गई थी। यह शतपदी, सेंटीपीड जो जानवर होता है, इसके सौ पैर होते हैं। चला जा रहा था सेंटीपीड, एक चूहे ने देखा। चूहा बड़ा चौंका, उसने कहा: सुनिये जी, सौ पैर! कौन-सा पहले रखना, कौन-सा पीछे रखना, आप हिसाब कैसे रखते हो? सौ पैर मेरे हों, तो मैं तो डगमगा कर वहीं गिर ही जाऊं। सौ पैर आपस में उलझ जायें, गुत्थम-गुत्था हो जायें सौ पैर...हिसाब कैसे रखते हो कि कौन-सा पहले, फिर नम्बर दो, फिर नम्बर तीन, फिर नम्बर चार, फिर नम्बर पांच... सौ का हिसाब....गिनती में मुश्किल नहीं आती? सेंटीपीड ने कभी सोचा नहीं था; पैदा ही से सौ पैर थे, चलता ही रहा था। उसने कहा: भाई मेरे, तुमने एक सवाल खड़ा किया! मैंने कभी सोचा नहीं, मैंने कभी नीचे देखा भी नहीं कि कौन-सा पैर आगे कि कौन-सा पैर पहले। अब तुमने सवाल खड़ा कर दिया, तो मै सोचूंगा, विचारूंगा। सेंटीपीड सोचने लगा, विचारने लगा; वहीं लड़खड़ा कर गिर पड़ा। खुद भी घबड़ा गया, कि कौन-सा पहले, कौन-सा पीछे!

एक जीवन की सहजता है। तुम्हारे नियम, तुम्हारे कानून, सारी सहजता नष्ट कर देते हैं। तैंतीस हजार नियम....कौन-सा पहले, कौन-सा पीछे? तैंतीस हजार का हिसाब रखोगे, मर ही जाओगे, दब ही जाओगे, प्राणों पर पहाड़ बैठ जायेंगे! मैं तो तुम्हें सिर्फ एक नियम देता हूं—होश। बस बेहोशी छोड़ो, होश सम्हालो। और यह तैंतीस हजार नियम भी बेईमानों को नहीं रोक सकते। वे कोई-न-कोई तरकीब निकाल लेते हैं। अंग्रेजी में एक कहावत है—कि जहां भी संकल्प है, वहीं मार्ग है। उस कहावत में थोड़ा फर्क कर लेना चाहिये, मैं कहता हूं—जहां भी कानून है, वहीं मार्ग है। तुम बनाओ कितने कानून बनाते हो, मार्ग निकाल लेगा आदमी!

ऐसा हुआ, कि बुद्ध के पास एक भिक्षु आया। बुद्ध का नियम था, कि जो भी भिक्षापात्र में पड़ जाये, उसे स्वीकार कर लेना चाहिये। इसलिये नियम बनाया था, ताकि भिक्षु मांग न करने लगें सुस्वादु भोजनों की। जो भी पड़ जाये भिक्षापात्र में, रूखी-सूखी रोटी, या सुस्वादु भोजन, जो भी पड़ जाये भिक्षापात्र में, उसे चुपचाप स्वीकार कर लेना चाहिये। नानुच नहीं करना, यह नहीं लूंगा, ऐसे इशारे नहीं करना। अपनी तरफ से कोई वक्तव्य नहीं देना। भिक्षापात्र सामने कर देना, जो मिल जाये। ताकि गृहस्थों पर व्यर्थ बोझ न पड़े।



एक दिन ऐसा मुश्किल हो गया, एक भिक्षु मांग कर आ रहा था, कि एक चील ऊपर से एक मांस का टुकड़ा उसके भिक्षापात्र में गिरा गई। अब वह बड़ी मुश्किल में पड़ा। नियम—कि जो भी भिक्षापात्र में पड़ जाये...। अब करना क्या, इसको छोड़ना या ग्रहण करना? अगर छोड़े, तो नियम टूटता है। अगर ग्रहण करे, तो मांसाहार होता है; वह भी नियम टूटता है। अब करना क्या? तो उसने जाकर बुद्ध से कहा। भिक्षु-संघ में खड़ा हुआ, उसने कहा: कि ऐसी प्रार्थना है, बड़ी उलझन में पड़ गया हूं; दो नियमों में विरोध आ गया है। अगर इसका स्वीकार करूं, तो मांसाहार हो जायेगा, हिंसा हो जायेगी। अगर अस्वीकार करूं, तो आपने कहा है—भिक्षापात्र में जो पड़े, स्वीकार कर लेना।

बुद्ध थोड़ा सोच में पड़े; अगर कहें, कि स्वीकार करो, तो खतरा है, क्योंकि मांसाहार को स्वीकृति मिलती है। अगर कहें अस्वीकार करो, तो और भी बड़ा खतरा है; क्योंकि चीलें कोई रोज-रोज थोड़े ही मांस गिरायेंगी, यह तो दुर्घटना है एक। अगर यह कह दें, कि जो ठीक न हो छोड़ देना, तो बस अड़चन शुरू हो जायेगी। कल से ही भिक्षुओं को जो ठीक न लगेगा, वह छोड़ देंगे और जो ठीक लगेगा, वही ग्रहण करेंगे। फिर उनकी मांगे शुरू हो जायेंगी। फिर बहुत-सा भोजन व्यर्थ फेंकने लगेंगे। उन्होंने सोचा, और उन्होंने कहा: कोई फिक्र न करो, जो भी भिक्षापात्र में पड़ जाये, उसे स्वीकार कर लेना; क्योंकि चील कोई रोज-रोज मांस नहीं गिरायेगी। यह दुर्घटना है।

मगर बुद्ध को पता नहीं है, कि दुर्घटना...बस नियम बन गई! आज चीन में, जापान में, सारे बौद्ध मुल्कों में मांसाहार प्रचलित है। उसी घटना के कारण; क्योंकि मांसाहार में अगर पाप होता, तो भगवान ने मना किया होता। अब सवाल यह है, कि खुद मारकर नहीं खाना चाहिये, चील ने गिरा दिया तो कोई हर्जा नहीं है! इसलिये चीन और जापान में तुम्हें होटलें मिलेंगी, जिनमें तख्ती होती है कि—यहां अपने-आप मर गये जानवरों का मांस ही बेचा जाता है। अब इतने जानवर अपने-आप रोज कहीं नहीं मरते कि पूरा देश मांसाहार करे। इतने जानवर अपने-आप...सारे देश बूचड़खानों से भरे हैं। फिर बूचड़खानों में क्या हो रहा है? फिर बूचड़खाने क्यों चल रहे हैं? मगर होटल के मालिक को इसकी फिक्र नहीं है; वह इतना-भर तख्ती लगा देता है कि—यहां अपने-आप मर गये जानवरों का मांस बेचा जाता है। बस ग्राहक को फिक्र मिट गई! ग्राहक भी जानता है, दुकानदार भी जानता है। मगर वह एक छोटी-सी घटना....चील ने बड़ी क्रान्ति ला दी दुनिया में! पूरा एशिया मांसाहारी है, उस एक चील की वजह से!

कानून में से लोग रास्ते निकाल लेते हैं। जहां-जहां कानून हैं, वहां-वहां रास्ते हैं। मैं तुम्हें कानून नहीं देता, मैं तो तुम्हें सिर्फ बोध देता हूं कि तुम अपने बोध से जियो। तो जो तुम्हें ठीक लगे किसी क्षण में—समझपूर्वक, विचारपूर्वक, जाग्रतिपूर्वक, वही करना। फिर ऐसा भी है कि जो इस क्षण में ठीक है, हो सकता है दूसरे क्षण में ठीक न भी हो। इसलिये नियम जड़ हो जाते हैं।

तो पुरोहित और राजनेता चिल्लाते फिरते हैं कि मैं लोगों को स्वच्छंदवादी बना रहा हूं। मैं लोगों को स्वच्छंदवादी नहीं बना रहा। और या फिर स्वच्छंदता की नई परिभाषा करनी होगी जैसी मैं करता हूं। स्वच्छंद की मैं परिभाषा करता हूं—स्वयं के छन्द को उपलब्ध हो गया जो, भीतर के संगीत को उपलब्ध हो गया जो। स्वच्छन्दता का अर्थ मैं उच्छृंखलता नहीं करता। स्वच्छन्दता का अर्थ है—स्वयं के छन्द को उपलब्ध। वही जो मैंने संगीत की बात कही...। फिर उससे काव्य जन्मेगा और उससे सौंदर्य भी जन्मेगा।

इस छन्दोबद्धता का नाम धर्म है। यह जगत तो छन्दोबद्ध चल रहा है। इसका छन्द कहीं भी टूटा नहीं है, हम टूट गये हैं। इसके छन्द से हम दूर-दूर गिर गये हैं, हम छिटक गये हैं। हमें वापिस अपने छन्द को पा लेना है। और अपने छन्द को पाते ही, हम जगत के छन्द को पा लेंगे। आत्मा को पाते ही, परमात्मा मिल जाता है। भीतर का संगीत सुनाई पड़ते ही, बाहर के आकाशों में व्याप्त सारा संगीत सुनाई पड़ने लगता है। फिर बाहर-बाहर नहीं है, दोनों एक हो जाते हैं। जहां दोनों एक हो जाते हैं, वहीं जीवन आया अपने परम शिखर पर !

उनका विरोध स्वाभाविक है। यह विरोध जारी रहेगा धर्मेश्वर, इससे दुखी मत होओ। उनके विरोध को नहीं रोका जा सकता, रोकने की जरूरत भी नहीं है। फिर उनका विरोध मेरा काम भी करेगा। उनके विरोध के कारण बहुत लोग मुझमें उत्सुक हो जाते हैं। उनके विरोध के कारण ही लोग यहां चले आते हैं। अभी एक मित्र कलकत्ता से आये हैं, पति-पत्नी; सिर्फ इस कारण आये हैं, कि इतना विरोध सुना है कि सोचा कि अपनी आंख से ही चलकर देख लेना चाहिये। न उनकी धर्म में कोई उत्सुकता थी, न कोई ध्यान में उत्सुकता थी; मगर इतना विरोध सुना... सुनते-सुनते कान पक गये ! उन्होंने सोचा, कि एक बार अपनी तरफ से ही चलकर देख लेना चाहिये कि मामला क्या है। जिस आदमी के पीछे इतने लोग विरोध में पड़े हों, कुछ बात तो वहां होनी चाहिये, नहीं तो इतने लोग विरोध भी क्यों कर रहे हैं ?

यहां आकर चौंके ! यहां आये, तो धीरे-धीरे ध्यान में भी उत्सुक हो गये, नाचे-गाये, विपस्सना की। यहां आये तो ऐसे डूबे, कि फिर दस दिन रुक गये। और अब कह



कर गये हैं कि सदा के लिये आ जाना है। तो विरोधी से भी कुछ नुकसान थोड़े ही होता है; सत्य का कभी कोई नुकसान नहीं होता। गये हैं वापिस, सब निपटा आनेको वहां काम।

कौन किस कारण आ जायेगा, कहना कठिन है। परमात्मा के रास्ते बड़े अनूठे हैं। इसलिये धर्मेश्वर, दुखी होने की कोई जरूरत नहीं है। मैं तो जो बात कर रहा हूं, वह बगावती है। इसलिये विरोध स्वाभाविक है।

सूखे हुये कुछ दरिया होते, उजड़ा हुआ इक सहरा होता
जंजीर पहन लेते हम अगर, दुनिया में तुम्हारी, क्या होता ?

कुछ लोग अगर जंजीर पहन लें—बुद्ध, महावीर, कृष्ण, क्राइस्ट, जरथुस्त्र, लाओत्सु, तो क्या हो ? तुम्हारी दुनिया में—सूखे हुए कुछ दरिया होते, सूखे सागर होते, उजड़ा हुआ इक सहरा होता....एक उजड़ा हुआ मरुस्थल होता। जंजीर पहन लेते हम अगर, दुनिया में तुम्हारी क्या होता?... होता भी क्या तुम्हारी दुनिया में !

इस दुनिया में रौनक क्यूं है ? इस दुनिया में रौनक है, कुछ बगावती लोगों के कारण। विद्रोह की अग्नि कुछ लोग जलाते रहे हैं, बुझने नहीं दी। उनके कारण इस जगत में थोड़ी चमक है, दमक है, थोड़ी गरिमा है, थोड़ा गौरव है। नहीं तो बस यह मुर्दों की एक जमात है, जो किसी तरह जी लेती है धक्के खा-खाकर, और किसी तरह मर जाते हैं; न उनके जीने में कुछ सार है, न उनके मरने में कुछ सार है।

मैं तो हूं गुमकारदए-दिल ऐ 'रविश'
कौन मेरा हमसफर होने लगा ?

मैंने तो अपना दिल डूबाया है, मैंने तो अपने को गंवाया है। मैं तो हूं गुमकरदए-दिल ऐ 'रविश' !... मैं तो एक पागल हूं, एक दीवाना, एक मतवाला, एक मदमस्त, कौन मेरा हमसफर होने लगा ! मेरे साथ थोड़े-से दीवाने ही चलेंगे, थोड़े-से पागल ही चलेंगे, थोड़े से मस्तों की टोली ही चलेगी। यह बिलकुल स्वाभाविक है, जो मैं कह रहा हूं, यह थोड़े-से दुस्साहसी लोग ही झेल पायेंगे, शेष तो नाराज होंगे। क्योंकि शेष की दुकानों पर चोट पड़ती है !

यहां रहजनों-रहनुमा एक थे
तेरी राह में कौन हाइल न था

परमात्मा के रास्ते में लुटेरे बाधा डालते ही हैं, तुम जिनको पथप्रदर्शक मानते हो, वे भी बाधा डालते हैं। यह रहजनों-रहनुमा एक थे—यहां लुटेरे और पथप्रदर्शक सब एक थे।

यहां रहजनों-रहनुमा एक थे
तेरी राह में कौन हाइल न था

परमात्मा के रास्ते पर सब बाधा डालते ही हैं। क्योंकि लुटेरा भी नहीं चाहता, कि तुम उसके रास्ते पर जाओ; तुम उसके रास्ते पर चले गये, तो तुम लुटेरे की सीमा के बाहर चले गये। और तुम्हारे पथप्रदर्शक भी छिपे हुए लुटेरे हैं; वे भी नहीं चाहते कि तुम उसके रास्ते पर जाओ, नहीं तो मंदिरों में कौन जायेगा, तीर्थों में कौन जायेगा ? यज्ञ-हवन की मूढ़तायें कौन करेगा, करवायेगा ? यह इतना जो जाल है शोषण का फैला हुआ, यह एकदम अस्त-व्यस्त हो जायेगा। नहीं, वे कोई भी नहीं चाहते। उनकी नाराजगी स्वाभाविक है। उनकी नाराजगी से घबड़ाओ मत। उनकी नाराजगी से नाराज भी मत होना।

यह कैसी महफिल है जिसमें साक़ी ! लहू पियालों में बट रहा है
मुझे भी थोड़ी-सी तिश्नगी दे कि तोड़ दूं यह शराबखाना

ऐसी करो प्रार्थना अब परमात्मा से—यह कैसी महफिल है जिसमें साकी ! लहू पियालों में बट रहा है। यहां मंदिर-मस्जिद, सबकी बुनियाद में लहू है। यहां अमृत के नाम पर जहर बांटा जा रहा है। यहां धर्म के नाम पर आदमी काटे गये हैं, काटे जा रहे हैं, काटे जाते रहे हैं।

यह कैसी महफिल है जिसमें साकी ! लहू पियालों में बट रहा है
मुझे भी थोड़ी-सी तिश्नगी दे कि तोड़ दूं यह शराबखाना
सियाहियां बुन रही हैं रातें, तजल्लियां गढ़ रही हैं, सूरज
खुदा-औ-इबलीस की शराकत में चल रहा है यह कारखाना

ऐसा मालूम होता है कि शैतान और परमात्मा दोनों का षड्यंत्र हो गया है, दोनों मिल गये हैं। उनकी शराकत में, उनकी साझेदारी में, यह कारखाना चल रहा है, ऐसा मालूम होता है। क्योंकि यहां शैतान और पुरोहित में बड़ी दोस्ती है। यहां शैतान ही पुरोहितों का असली खुदा है !

कुलाहदारों से कोई कह दे, कि यह वो मंजिल है इरतिका की
जहां खुदा के सिफात पर भी नजर है बन्दों की नाकिदाना
कुलाहदरों से कोई कह दे, कि है यह तारीख की अदालत
खड़ी हुई है कतार बांधे यहां नबूवत भी मुजरिमाना
जो राख के ढेर रह गये हैं, वह उठें गर्दे-राह बनकर
हवा की रफ्तार कह रही है कि काफिला हो चुका रवाना

यह तो एक छोटा-सा काफिला है दीवानों का। जो राख के ढेर रह गये हैं वे अब



उठें गर्दे-राह बनकर...उठो, कब तक राख के ढेर बने रहोगे !

जो राख के ढेर रह गये हैं, वह अब उठें गर्दे-राह बनकर
हवा की रफ्तार कह रही है कि काफिला हो चुका रवाना

हम तो चल पड़े। कुछ दीवाने भी हमारे साथ चल पड़े ! चलो, फिक्र छोड़ो लोगों की; लोग तो कुछ-कुछ कहते रहे हैं, कहते रहेंगे। उनकी चिन्ता लेने वाला आदमी तो बड़ी मुश्किल में पड़ जाता है। वे तो हर चीज की निन्दा करते हैं। उनके पास निन्दा के सिवाय कुछ और बचा नहीं। देखने वाली आखें नहीं हैं। और अगर थोड़ी देखने की समझ भी है, तो देखने की हिम्मत नहीं है, क्योंकि अगर वे देखेंगे, तो फिर बदलाहट करनी होगी और बदलाहट करना कठिन सौदा है। सारी जिन्दगी एक ढंग से जमा ली है, उसमें फिर फर्क लाना होगा।

मैं अपने गांव जाता था, मेरे एक शिक्षक थे, जो अब बूढ़े हो गये थे, उनसे सदा मिलने जाता था। आखिरी बार जब मैं गांव गया, तो उनका लड़का मुझे मिलने आया और उसने कहा, कि पिता जी ने कहा है, कि राह तो मैं देखता हूं तुम्हारी कि कब तुम आओ। जब भी तुम आ जाते हो, तो मेरे हृदय में फिर से जीवन आ जाता है ! मगर मैं डरता हूं तुमसे। और अब मैं बूढ़ा हो गया हूं और तुम्हारी बातें झेलने की क्षमता मुझमें नहीं रही। मुझे पता चला कि तुम आये हो।...मेरे घर मत आना। और हालांकि मैं राह देखता हूं और रोता हूं कि तुम आते तो अच्छा होता।

मैंने उनके बेटे को कहा, कि एक बार और आऊंगा, बस एक बार, क्योंकि शायद फिर दुबारा मैं इस गांव में भी न आऊंगा। फिर तब से गया भी नहीं हू उस गांव। उनके पास गया, मैंने कहा : आप इतने बेचैन हैं ! क्या बेचैन है मेरे आने से ? क्या भय है ? उन्होंने कहा : भय यह है, कि अब मैं मरने के करीब हूं, और तुम्हारी बातें ठीक लगती हैं। तो मेरा पूरा जीवन व्यर्थ गया ! अब मुझे शांति से मर जाने दो। यह मानते हुए मर जाने दो कि मैंने जो पूजा-पाठ किया था, ठीक था। अब मैं नहीं सुनना चाहता कि मैंने जो पूजा-पाठ किया था, वह व्यर्थ गया, कि मेरी प्रार्थनायें व्यर्थ थीं, कि मेरी आकांक्षायें व्यर्थ थीं, कि मेरा धर्म थोथा था। डर लगता है सुनने में, क्योंकि अब मैं मौत के किनारे खड़ा हूं। अब बदलने की जिंदगी को समय भी कहां रहा ?

मैंने उनसे कहा : जिन्दगी समय में बदलनी भी नहीं होती, एक क्षण में बदलती है। अभी इतने तुम जिन्दा हो। और मैं तुमसे यह भी कह दूं, कि अगर मैं न भी आऊं, तो कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम्हें खुद भी पता है, बात हो ही चुकी है, इसलिये तो डर रहे हो। यह डर क्या कह रहा है,? यह यही कह रहा है कि तुम्हें खुद भी पता है कि तुमने जो भवन बनाया था, वह ताश के पत्तों का महल था। उसमें सचाई

नहीं है। मैं कहूं या न कहूं, मरते वक्त मौत ही तुम्हें दिखला देगी। अच्छा तो यही है कि मौत दिखलाये, उसके पहले तुम देख लो। अभी भी समय है। कभी भी देर नहीं हुई है। अभी भी समय है। एक क्षण में क्रांति हो सकती है।

परमात्मा से दूर जाने में हजारों जन्म लगते हैं, पास आना एक क्षण में हो जाता है। ऐसा ही समझो, कि एक आदमी पीठ कर के सूरज की तरफ चल रहा है, चलता जा रहा है, दूर जा रहा है, सूरज से दूर जा रहा है, सूरज से हजारों मील चल चुका है। अगर आज हम उससे कहें, कि लौट चलो सूरज की तरफ। तो वह कहेगा, अब तो बहुत मुश्किल, मैं बूढ़ा हो गया। मरने के करीब हूं। हजारों साल से चल रहा हूं। अब हजारों साल लगेंगे लौटने में। मैं उससे कहूंगा : नहीं, तुम सिर्फ दिशा मोड़कर खड़े हो जाओ। जिस तरफ पीठ है उस तरफ मुंह कर लो और सूरज सामने है। सूरज से कोई दूर नहीं जा सकता। न कोई परमात्मा से दूर जा सकता है। हां, पीठ कर सकते हो, बस। फिर हजार साल पीठ की कि दस हजार साल पीठ की, कोई फर्क नहीं पड़ता। मुड़ जाओ, जिस तरफ अभी पीठ किये हो उस तरफ मुंह कर लो, सन्मुख हो जाओ। सन्मुख होने का नाम सत्संग है। और जो तुम्हें सन्मुख कर दे, वही सद्गुरु है।

सद्गुरु की सदा निन्दा हुई है। उसके लिये हमने सदा सूली का आयोजन किया है। उसके लिये हमने जहर दिया है, गोली मारी है। यह हमारी पुरानी आदत है। इसलिये धर्मेश्वर, इससे परेशान मत होना।

मेरी बात पादरी-पुरोहितों को चोट करती है, नेताओं को चोट करती है, क्योंकि मैं दो-टूक कह देता हूं, जैसी है बात वैसी ही कह देता हूं।

मैं जो यह मूक हूं,
व्यवहारी दुनिया में बहुत बड़ी चूक हूं।
बचकानी दुनिया है,
रोओ तो दूध मिले,
अंतर की पूंजी का
फिर कैसे सूद मिले।
आज तो जमाना है हुक्म का, हुकूमत का,
कैसे हुंकार बनूं, मैं तो बस हूक हूं।
सोने के पिंजड़े में
ऊंघ रहा मिट्ठू है,
पीठ पड़ी थप्पी पर
झूम रहा पिट्ठू है।



जीना ही धर्म यहां, 'जी हां' ही मर्म यहां,
कैसे प्रिय पात्र बनूं, मैं जो दो टूक हूं।

दो-टूक कहने से कठिनाई है; और मुझे तो कहना होगा। मैं तो वही कह सकता हूं जैसा है, उसमें रत्ती-भर भेद नहीं कर सकता। मैं तो वही कहूंगा, जो है। और तुम भी वहीं सुनो, जो है। और चिन्ता छोड़ो।

जन्म और मृत्यु, सुख और दुख, आते हैं चले जाते हैं; सत्य टिकता है, सत्य शाश्वत है। जीसस को सूली दे दी, इससे सत्य को थोड़े ही सूली लग गई! जीसस को सूली दे दी इससे सत्य सिंहासन पर विराजमान हो गया! न दुखी होओ, न परेशान होओ, न नाराज होओ, न उनके साथ व्यर्थ की झंझट में पड़ो। उन्हें उनका काम करने दो, तुम अपना काम करो। अपनी शक्ति इसमें व्यय मत करना।

मेरे संन्यासियों से मेरा निरन्तर यही कहना है : व्यर्थ विवादों में मत पड़ो, व्यर्थ झगड़ो में मत पड़ो। तुम्हारी ऊर्जा झगड़े में उलझ जायेगी तो तुम्हारी हानि होगी। कहने दो लोगों को जो कहना है, तुम अपनी राह चले चलो, तुम अपना गीत गाये चलो। कोई होंगे हिम्मतवर, जो गीत को प्रेम करते हैं, वे तुम्हारे साथ हो लेंगे। कोई होंगे रस-पारखी, रसज्ञ, रसिक, वे तुम्हारे साथ हो लेंगे। बस उन थोड़े-से लोगों का साथ हो जाना काफी है।

जीवन संघर्षों से निखरता है, उजलता है। सत्य को बड़ी कसौटियां पार करनी होती हैं और सत्य कसौटियां पार करने में समर्थ है। झूठ कसौटियों से डरता है, सत्य तो कसौटियों को आमन्त्रित करता है। इसलिये जो मुझे कहना है, वह मैं जोर से कह रहा हूं— कहै वाजिद पुकार! तुम भी अपने जीवन की गूंज को गूंजने दो। छिपाना मत.... छिपना मत, उद्घोषणा होने दो। जीसस ने कहा है : चढ़ जाओ मुंडेरें पर मकानों की और चिल्लाकर कह दो जो तुमने जाना है। वही मैं तुमसे कहता हूं : चढ़ जाओ मुंडेरों पर मकानों की और चिल्लाकर कह दो जो तुमने जाना है। कोई होंगे रसज्ञ, कोई होंगे रसिक, कोई होंगे मस्त, जिन्हें तुम्हारी आवाज खींच लेगी, पुकार लेगी। वे तुम्हारे साथ हो लेंगे। काफिला तो चल पड़ा...। अब तुम यहां-वहां की बातों में मत उलझो, किनारे की बातों में मत उलझो। बस पुकार देते रहो, हांक देते रहो; शायद किनारों में उलझे हुए कुछ लोग तुम्हारे साथ हो लेंगे। मगर उन पर नाराज मत होना। जिनका विरोध है, उनका विरोध भी स्वाभाविक है। जराजीर्ण नये का विरोध करेगा ही। मुर्दा जीवन का विरोध करेगा ही। असत्य सत्य का विरोध करेगा ही। और जब भी सत्य की किरण उतरती है, तो सारे अंधेरे की ताकतें इकट्ठी हो जाती हैं, क्योंकि सारे अंधेरे की ताकतों का जीवन संकट में पड़ जाता है। इसलिये जो हो रहा है, ठीक हो रहा है। उसे स्वीकार

करो। और ध्यान रखो, परमात्मा के बड़े अनूठे रास्ते हैं काम करने के, वह विरोध से भी अपनी बात सधवा लेता है!

आज इतना ही।
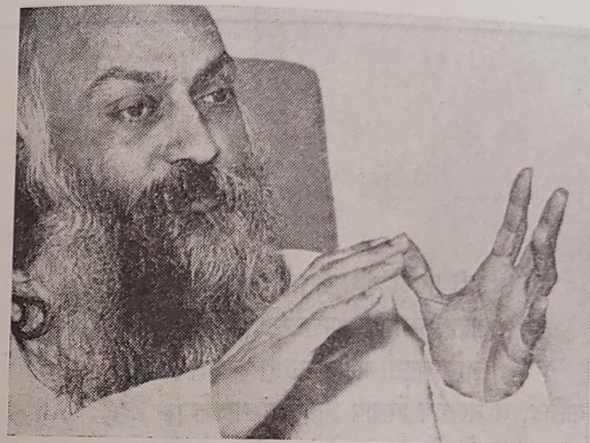
# हंसा जाय अकेला

सातवां प्रवचन; २७ सितम्बर १९७८;

श्री रजनीश आश्रम; पूना

टेढी पगड़ी बांध झरोखा झांकते।
ताता तुरग पिलाण चढूंटे डाकते॥
लारे चढ़ती फौज नगारा बाजते।
वाजिद, ये नर गये विलाय सिंह ज्यूं गाजते॥
दो दो दीपक जोय सु मंदिर पोढ़ते।
नारी सेतीं नेह पलक नहीं छोड़ते॥
तेल फुलेल लगाय क काया चाम की।
हरि हां, वाजिद, मर्द गर्द मिल गये दुहाई राम की॥
सिर पर लंबा केस चले गज चालसी।
हाथ गह्यां समसेर ढलकती ढाल सी॥
एता यह अभिमान कहां ठहराहिंगे।
हरि हां, वाजिद, ज्यूं तीतर कूं बाज झपट ले जाहिंगे॥
कारीगर कर्तार क हून्दर हद किया।
दस दरवाजा राख शहर पैदा किया॥

नखसिख महल बनायक दीपक जोड़िया।
हरि हां, भीतर भरी भंगार क ऊपर रंग दिया॥
काल फिरत है हाल रैणदिन लोइ रे।
हणै राव अरु रंक गिणै नाहिं कोइ रे॥
यह दुनिया वाजिद बाट की दूब है।
हरि हां, पाणी पहिले पाल बंधे तो खूब है॥
सुकरित लीनो साथ पड़ी रहि मातरा।
लांबा पांव पसार बिछाया सांथरा॥
लेय चल्या बनवास लगाई लाय रे।
हरि हां, वाजिद, देखै सब परिवार अकेलो जाय रे॥
भूखो दुर्बल देखि नाहिं मुहं मोड़िये।
जो हरि सारी देय तो आधी तोड़िये।
दे आधी की आध अरध की कौर रे।
हरि हां, अन्न सरीखा पुन्य नाहिं कोइ और रे॥

लो आ पहुंचा सूरज के चक्रों का उतार
रह गई अधूरी धूप उम्र के आंगन में
हो गया चढ़ावा मंद, वर्ष-आंगार थके
कुछ फूल शेष रह गये समय के दामन में
खंडित लक्ष्यों के बेकल साए ठहर गए
थक गए पराजित यत्नों के अनरुके चरण
मध्याह्न बिना आए पियराने लगी धूप
कुम्हलाने लगा उमर का सूरजमुखी बदन
वह बांझ अग्नि जो रोम-रोम में दीपित थी
व्यक्तित्व-देह को जला स्वयं ही राख हुई
साहस गुमान की दोज उगी थी जो पहिले
वह पीत चंद्रमा वाला अंधा पाख हुई
रंगीन डोरियां ऊर्ध्व कामनाओं वाली
थे खींचे जिनसे नये-नये आकाश दिये
हर चढ़े बरस ने तूफानी उंगलियां बढ़ा
अधजले दीप वे एक-एक कर बुझा दिये
तन की छाया-सी साथ रही है अडिग रात
पथ पर अपने ही चलते पांव चमकते हैं
रह जाती ज्यों सोने की रेख कसौटी पर
सोने के बदले सिर्फ निशान झलकते हैं
आ रहीं अंधिकाएं भरने को श्याम रंग
हर उजले क्षण का चमक-चंदोवा मिटता है



नक्षत्र भावनाओं के बुझते जाते हैं
हर चांद कामना का सियाह हो उगता है
हर काम अधूरे रहे, वर्ष रस के बीते
वय के वसंत की सूख रही आखिरी कली
तूफान भंवर में पड़कर भी मोती न मिले
हर सीपी में सूनी वंध्या चीत्कार मिली

मनुष्य का जीवन मृत्योन्मुख है। जन्म के बाद मृत्यु के अतिरिक्त और कुछ भी सुनिश्चित नहीं है। जैसे हुई सुबह, उगा सूरज, सांझ सुनिश्चित हो गई; ऐसे ही जन्म हुआ, मृत्यु निश्चित हो गई। जन्म का ही दूसरा पहलू है मृत्यु।

जन्म और मृत्यु के बीच जो जागा नहीं, वह व्यर्थ ही जिया। मृत्यु देखकर भी आती जो जागा नहीं, वह कैसे और जागेगा? मृत्यु अद्भुत उपाय है! इसलिए वाजिद कहते हैं: दुहाई राम की। प्रभु की बड़ी कृपा है कि उसने मृत्यु दी; तब भी ऐसे अभागे और मंदबुद्धि लोग हैं कि नहीं जागते हैं। अगर मृत्यु न होती, तब तो कोई जागता ही नहीं! मृत्यु है, फिर भी लोग सोये हुए हैं। मौत आ रही है, पक्का भरोसा है, बचने का कोई उपाय नहीं है, भागने की कोई सुविधा नहीं है; हम मृत्यु के हाथ में उसी क्षण पड़ गए जिस दिन जन्म हुआ।

निरपवाद रूप से प्रत्येक को मरना है, फिर भी जागते नहीं; फिर भी जीवन की आपाधापी में ऐसे व्यस्त हैं जैसे मौत कभी नहीं होगी। लोगों को देखो तो भरोसा नहीं आता कि मौत होती है। क्षुद्र-क्षुद्र बातों पर लड़े जा रहे हैं, मरे जा रहे हैं। छोटे-छोटे पद पर, छोटे-छोटे धन पर, छोटी प्रतिष्ठा पर, अहंकार की पताकायें उड़ा रहे हैं! गिर जायेंगे, इन्हीं झंडों के साथ धूल में गिर जायेंगे। पता है पास-पड़ोस में जो खड़े थे अभी, वे गिर गए हैं, अपनी भी घड़ी आती होगी...।

जब भी कोई अर्थी निकलती है, याद करना, तुम्हारी अर्थी निकलने का क्षण करीब आ रहा है। जब कोई चिता धू-धू कर जलती है, अपने को उस चिता पर कल्पना करना। देर नहीं है, वर्ष-दो-वर्ष कि दस वर्ष, फर्क क्या पड़ता है? मृत्यु को जो सोचने लगता, विचारने लगता है, उसके जीवन में क्रांति घटित होती है।

धर्म असम्भव था अगर मृत्यु न होती। पशुओं के पास कोई धर्म नहीं है, क्योंकि उन्हें मृत्यु का बोध नहीं है। पशु सोच नहीं पाता कि मरेगा; उतना विचार नहीं, उतना विवेक नहीं। जो मनुष्य भी बिना मृत्यु को सोचे-विचारे जीते हैं, पशु जैसे जीते हैं, फिर उनमें और पशु में बहुत भेद नहीं है। क्या भेद होगा? एक ही भेद है मनुष्य में और पशु में, कि पशु मृत्यु की धारणा नहीं कर पाता, मनुष्य कर पाता है। जो मनुष्य इस

धारणा को नहीं करता, इसको दबाता है, इससे आंख चुराता है, उसने मनुष्य होने से बचने की ठान रखी है। वह कभी मनुष्य न हो पायेगा। और जो मनुष्य ही न हो पाए, उसके परमात्मा तक पहुंचने का मार्ग अवरुद्ध हो गया।

मनुष्य मनुष्य होता है मृत्यु को स्वीकार करके, देखकर, जानकर, पहचान कर, मृत्यु को जगह देकर अपने हृदय में। जैसे ही तुमने अपनी मृत्यु को पहचाना, वैसे ही तुम और होने लगोगे।

मृत्यु की पहचान से ही संन्यास का जन्म हुआ, ध्यान का जन्म हुआ। यदि मृत्यु है तो बहुत आयोजन करने होंगे। अगर मिट ही जाना है; और यहां जो हमने कमाया है, सब छिन जाएगा, सब पड़ा रह जाएगा, तो कुछ ऐसा भी कमाना चाहिए जो मृत्यु में साथ जाए। यहां के तो संगी-संबंधी सब दूर खड़े रह जायेंगे; पहुंचा देंगे मरघट तक, फिर लौट जायेंगे। उन्हें अभी और जीना है। अभी तक उनके बहुत काम अधूरे पड़े हैं। एक दिन उनके काम ऐसे ही अधूरे पड़े रह जायेंगे जैसे तुम्हारे पड़े रह गए।

लेकिन अभी उन्हें बोध नहीं, अभी होश नहीं। लोग मरघट पर भी जाते हैं किसी की चिता जलाने तो वहां भी संसार की ही बातें करते हैं, वहां भी बैठकर बाजार की ही बातें करते हैं। वहां भी अफवाहें गांव की...उन्हीं अफवाहों में तल्लीन होते हैं। उधर किसी की लाश जल रही है, वे पीठ किए गपशप करते हैं। वे गपशप तरकीबें हैं, वे उस मृत्यु के तथ्य को झुठलाने के उपाय हैं। वे नहीं देखना चाहते कि जो कल तक जिन्दा था, आज जिंदा नहीं है। वे नहीं देखना चाहते हैं—जो कल तक हम जैसा चलता था, हम जैसा ही लड़ता था, हम जैसा ही जीवन की हजार-हजार कामनाओं से भरा था, आज राख हुआ जा रहा है। वे घबड़ाते हैं, उनके हाथ-पैर कंपे जाते हैं। यह तथ्य वे स्वीकार नहीं कर सकते कि ऐसे ही एक दिन हम भी गिरेंगे और मिट्टी में खो जायेंगे।

अगर इस तथ्य को तुम स्वीकार कर लो; करना ही पड़े, अगर थोड़ा भी विवेक हो तो करना ही पड़े, थोड़ा भी बोध हो तो करना ही पड़े। इस तथ्य की स्वीकृति के साथ ही तुम नए होने लगोगे; क्योंकि फिर तुम्हें जीवन और ही ढंग से जीना होगा। ऐसे जीना होगा कि मृत्यु आए उसके पहले तुम्हारे पास कुछ हो जो मृत्यु छीन न सके—ध्यान हो, प्रार्थना हो, प्रभु की थोड़ी अनुभूति हो, समाधि का थोड़ा अनुभव हो, थोड़ी आत्मा की सुवास उठे! क्योंकि देह ही मरती है, आत्मा नहीं मरती। दीया ही टूटता है, ज्योति तो उड़ जाती है फिर नए दीयों की तलाश में। पिंजड़ा ही जलता है, पक्षी तो उड़ जाता है।

मगर इस पक्षी की पहचान कहां? इस हंस की पहचान कहां? तुम तो देह से जुड़े जी रहे हो, ऐसे कि तुमने पूरा तादात्म्य कर लिया है, मानते हो—यही देह मैं हूं, और



इसी देह के आयोजन में संलग्न हो।

और मैं तुमसे यह भी नहीं कहता कि देह का तिरस्कार करो, यह भी नहीं कहता कि देह का अनादर करो। वह भी प्रभु की भेंट है; उसका सम्मान करो, उसका स्वागत करो।

देह मंदिर है उसका; लेकिन मंदिर में ही मत खो जाओ, मंदिर में छुपी मूर्ति को भी तलाशो। दुनिया में दो तरह के लोग हैं, एक जो मंदिर की दीवालों में ही खो गए हैं, मूर्ति तक नहीं पहुंच पाते; वे सांसारिक लोग कहे जाते हैं। और दूसरे हैं जिनको हम त्यागी कहते हैं—भोगियों से विपरीत; वे मंदिर के दुश्मन हो गए हैं। वे कहते हैं हम मंदिर की दीवालें तोड़ देंगे, क्योंकि इन्हीं दीवालों के कारण भटकते हैं। तो कुछ हैं जो दीवालें उठाने में लगे हैं, कुछ हैं जो दीवालें तोड़ने में लगे हैं; न तो उठाने वाले मूर्ति तक पहुंच पाते हैं, न तोड़ने वाले मूर्ति तक पहुंच पाते हैं, दोनों दीवालों में उलझ जाते हैं।

मैं तुम्हें यह बात कहना चाहता हूं कि तुम्हारे भोगी और तुम्हारे त्यागी में जरा-भी भेद नहीं है। तुम्हारा भोगी शरीर के प्रेम पीछे दीवाना है, शरीर के प्रेम में दीवाना है। तुम्हारा त्यागी शरीर की दुश्मनी में दीवाना है। मगर दोनों की आंखें शरीर पर अटकी हैं। एक भोजन जुटा रहा है सुस्वादु से सुस्वादु और एक भूखा मर रहा है, उपवास कर रहा है, शरीर को सड़ा रहा है, गला रहा है, तपा रहा है, सुखा रहा है...मगर दोनों की नजर शरीर पर अटकी है। मूर्ति को कैसे खोजोगे? दीवाल में ही उलझे रह जाओगे? जिससे मैत्री होती है, उससे भी हम उलझ जाते हैं, जिससे शत्रुता होती है उससे भी हम उलझ जाते हैं।

इसलिए मैं अपने संन्यासी को कहता हूं—देह सुन्दर है, देह प्यारी है, परमात्मा की भेंट है। उसकी सुरक्षा करो, उसकी उपेक्षा न करना। लेकिन उसमें ही खो भी मत जाना। और इस डर से कि कहीं खो न जायें, उससे लड़ने मत लगना, अन्यथा लड़ाई में खो जाओगे। देह को अंगीकार करो। देह को स्वीकार करो। और देह को ही सीढ़ी बना लो उसकी तलाश में, जो देह के भीतर छिपा है और देह नहीं है।

देह मरेगी...देह जन्मी है, देह ही मरेगी; तुम न तो जन्मे न तुम मरोगे। तुम शाश्वत हो। मगर उस शाश्वत की थोड़ी झलक मिले तो फिर मृत्यु आनंद हो जाए। फिर मृत्यु में विषाद नहीं है, फिर मृत्यु तो परमात्मा का द्वार हो जाती है।

लेकिन अभी तुम जैसे हो...अभी तुम जैसे जी रहे हो, पछताओगे एक दिन; मौत जब द्वार पर दस्तक देगी, बहुत रोओगे, बहुत तड़पोगे!

लो बीत चली वासन्ती बेला जीवन की
धूमिल हो चली ललित-स्मृति कल्पित फूलों की,
विहंसा होगा उद्यान कभी मन-आंगन में—
अब तो है स्मृति केवल जीवन की भूलों की।

है कुछ-कुछ स्मरण कि प्राची में था जीवन-रवि,
वह चमक रहा था पूर्व क्षितिज में तेजवान,
पर जो अब आकाशोन्मुख होकर के देखा—
तो देखा, प्रायः पूर्ण हुआ है दिवस-यान।

सुन उस प्रभात में मुक्त पंछियों का गायन,
सोचा था, जीवन होगा मंगल-गायनमय,
पर, अब जब आ पहुंची श्यामा संध्या बेला—
तो देखा, रुंधे कण्ठ से निकली एक न लय।

अनमिल असाधना युक्त, दिगभ्रमित जीवन-क्षण,
कट गए यम, नियम, आसन, प्राणायाम शून्य,
श्वासें न सधीं, आसन न जमा, चापल न गया
अस्तित्व रहा विश्वास-शून्य, उपराम-शून्य।

क्या मिला? नहीं कुछ भी तो मिला यहां मुझको,
जीवन यह एक मिला था वह भी खो बैठे।
क्या ही विचित्र लीला है किसी खिलाड़ी की
हम एक भले थे, किन्तु व्यर्थ दो हो बैठे!

क्या मिला? नहीं कुछ भी तो मिला यहां मुझको—किस दिन सोचोगे इस बात को; क्या आखिरी दिन सोचोगे? तब तो समय न बचेगा, कुछ करने का उपाय न रहेगा!

क्या मिला? नहीं कुछ भी तो मिला यहां मुझको,
जीवन यह एक मिला था वह भी खो बैठे।

यह जीवन एक अवसर है—चाहो गंवा दो, चाहे सम्हाल लो। यह जीवन एक मौका है—चाहो व्यर्थ में डुबा दो, चाहे सार्थक की तलाश में लगा दो। व्यर्थ



में डुबाया, तो मौत में बहुत तड़फोगे। मृत्यु बड़ी भयंकर अमावस की रात की तरह आयेगी। और अगर जीवन को सार्थक की खोज में लगाया, तो मृत्यु एक मित्र की तरह आती है, पूर्णिमा की रात की तरह आती है—प्रकाशोज्ज्वल, शीतल; प्रभु के निमंत्रण की तरह, नेह-निमंत्रण की तरह आती है।

जीवन को जो ठीक से जी लेता है, उसे मृत्यु में अमृत का स्वाद मिलता है। मृत्यु इस जगत का सबसे बड़ा रहस्य है। अगर ठीक से जिये, सम्यक रूपेण जिये, ध्यान-पूर्वक जिये, संन्यस्त भाव से जिये, जल में कमलवत जिये, तो मृत्यु से तुम्हें अमृत का स्वाद मिलेगा। बरस जायेंगे मेघ तुम पर आनंद के, सच्चिदानंद के! लेकिन अगर गलत जिये, ध्यान-शून्य जिये, चंचल मन के साथ जिये, कभी थिर न हुए, कभी ध्यान में न रमे, तो फिर मौत आयेगी और जो-जो तुमने कमाया था, सब झपटकर ले जाएगी। तब रोओगे; पर फिर कुछ हो नहीं सकता है। तब क्या करोगे पछताकर भी? फिर पछताये होत का जब चिड़ियां चुग गईं खेत!

लेकिन जो पहले जागरूक हो जाता है, समय के पहले जाग जाता है, मौत के आने के पहले सम्हल जाता है, उसके जीवन में बड़े रहस्यों के द्वार खुलते चले जाते हैं। वह व्यक्ति जो ठीक से जीना जान लेता है, ठीक से मरना भी जान लेता है।

मृत्यु अंधेरी है, केवल उनके लिए जिन्होंने जीवन की कला न जानी; अन्यथा मृत्यु बड़ी उज्ज्वल है; अन्यथा मृत्यु है ही नहीं, इसलिए उज्ज्वल है। मृत्यु जीवन का अंत है उनके लिए, जिन्होंने धन-पद में ही सब गंवा दिया। और मृत्यु एक नए जीवन का उद्घाटन है उनके लिए, जिन्होंने धन और पद के पार भी कुछ खोजा—ध्यान खोजा, प्रभु खोजा।

उनके लिए तो मृत्यु केवल एक गर्त है—अंधकार, खाई-खड्ड, जिसमें जीवन गिरेगा और विला जायेगा—जो अहंकार में जिये हैं। और उनके लिए जो निर-अहंकार भाव से जिये हैं, जिन्होंने अकड़ में अपनी जिन्दगी न गंवाई, जो व्यर्थ अकड़े नहीं—उनके लिए मृत्यु जीवन की सबसे ऊंची अनुभूति है, गौरीशंकर है—सबसे ऊंचा शिखर है! होना भी चाहिए। जीवन का अंत क्यों हो मृत्यु, जीवन की पूर्णाहुति क्यों न हो? जीवन की समाप्ति क्यों हो मृत्यु, जीवन के आनंद का अंतिम शिखर क्यों न हो? जीवन का फूल क्यों न खिले मृत्यु में!

इसलिए दो तरह के लोग हैं, एक जो मरते हैं, और एक जो मरते नहीं हैं बल्कि मृत्यु में भी अमृत का रस पान करते हैं। वही तुम बनना, दूसरे तुम बनना।

कौन थकान हरे जीवन की।
　　बीत गया संगीत प्यार का,
　　रूठ गई कविता भी मन की।
वंशी में अब नींद भरी है
स्वर पर पीत सांझ उतरी है।
बुझती जाती गूंज आखिरी—
इस उदास वन-पथ के ऊपर
पतझर की छाया गहरी है,
　　अब सपनों में शेष रह गई
　　सुधियां उस चन्दन के वन की।
रात हुई पंछी घर आए,
पथ के सारे स्वर सकुचाए
म्लान दिया-बत्ती की वेला—
थके प्रवासी की आंखों में
आंसू आ-आकर कुम्हलाए,
　　कहीं बहुत ही दूर उनींदी
　　झांझ बज रही है पूजन की।
　　कौन थकान हरे जीवन की।

नहीं, दूर मंदिरों में बजती हुई पूजन की घंटियां, तुम्हारे जीवन की थकान को न हर सकेंगी। वे घंटियां तुम्हारे प्राणों में बजनी चाहिए। दूर मंदिरों में होती पूजन तुम्हारे किस काम की? मस्जिदों में होती अजान तुम्हारे किस काम की? गिरजाघरों में होती हुई प्रार्थना का संगीत, तुम्हारे किसी काम न आएगा। ये तुम्हारे अन्तस्तल में बजनी चाहिए घंटियां, ये दीये वहां जलने चाहिए, यह आरती वहां उतरनी चाहिए।

मगर लोगों ने बड़ी तरकीबें खोज ली हैं, दुकान भी उनकी बाहर है, मंदिर भी उनका बाहर है; बाहर में ही खोए हैं। दुकान से मंदिर चले जाते हैं तो भी भेद नहीं पड़ता। धन भी उनका बाहर है, भगवान भी उनका बाहर है। धन से भगवान में भी लग जाते हैं तो भी अंतर नहीं पड़ता। भीतर कब जाओगे? मृत्यु तो तुम्हारे भीतर घटेगी।...वहां रुक जायेंगी श्वासें, वहां हृदय की धड़कन शांत हो जायेगी। वहां अगर तुम जागो, वहां की अगर तुम्हें थोड़ी पहचान हो जाए, तो श्वास के टूटने पर भी तुम नहीं टूटोगे; हृदय की धड़कन बंद हो जाने पर भी तुम धड़कते रहोगे—और भी महत्तर रूप में, और भी



दिव्यतर रूप में, और भी नई ऊंचाईयों पर, और नए अकाशों में!

आज के वाजिद के शब्द सीधे-साधे हैं, मृत्यु के संबंध में हैं, तुम्हें चेताने के लिए हैं—चेतावनी है!

टेढ़ी पगड़ी बांध झरोखा झांकते—अकड़े हुए हैं अहंकार से, पगड़ियां भी सीधी नहीं बांधीं... टेढ़ी पगड़ी बांध झरोखा झांकते—जब वाजिद ने यह कहा तो राजपूतों के दिन थे.... राजस्थान—राजपूत टेढ़ी पगड़ी बांधकर अपने झरोखों में बैठकर झांकते—अकड़ से, अहंकार से; जरा भी खयाल नहीं, सब धूल में मिल जाएगा ... यह पगड़ी यह अकड़, ये झरोखे, ये महल—सब धूल में मिल जायेंगे!

टेढ़ी पगड़ी बांध झरोखा झांकते।
ताता तुरग पिलाण चहूंटे डाकते॥

तेज-तर्रार घोड़ों पर बैठकर, जीन कसकर चारों दिशाओं में घूमते हैं।.... बड़ी अकड़ थी, बड़ी गति थी अहंकार की!

लारे चढ़ती फौज नगारा बाजते ...आगे चलते, पीछे फौज चलती, नगाड़े बजते।

वाजिद ये नर गये विलाय सिंह ज्यूं गाजते— जो सिंह की तरह दहाड़ते थे—ये नर वाजिद...कहां विला गए? ये किस मिट्टी में खो गये? कहां गई वे पगड़ियां, वे महलों के सुन्दर झरोखे, घोड़ों पर बंधी हुई मचानें, घोड़ों पर बैठे हुए, मूंछ पर ताव देते हुए नगाड़े बजाकर चलने वाले लोग? जिनके आगे-पीछे फौज-फांटा चलता; जो इतने बलशाली मालूम पड़ते थे कि जो दहाड़ देते तो लोगों के प्राण कंप जाते.... लेकिन वे भी विला गए! वे भी कहीं मिट्टी में खो गए, उनका भी अब कुछ पता नहीं चलता ...वाजिद ये नर गये विलाय सिंह ज्यूं गाजते। ये कहां विला गए? सोचो जरा, तुम भी सोचो। कहां है अब सिकन्दर महान? कहां है नेपोलियन? कहां खो जाते हैं सम्राट?

लेकिन इतना लम्बा इतिहास अतीत का, फिर भी मृत्यु का बोध नहीं होता। एक बड़ी गहन भ्रांति कि हर आदमी यही सोचे चला जाता है कि—दूसरे मरते हैं, मैं नहीं मरूंगा।

तुमने महाभारत की कथा तो सुनी है न, कि पाण्डव प्यासे हैं, जंगल में भटक गये हैं। और एक झील पर पांच भाइयों में से एक पानी भरने गया है। और जैसे ही झुका है पानी पीने को और पानी भरने को, एक यक्ष वृक्ष पर से आवाज दिया: रुक, या तो मेरे पांच प्रश्नों का उत्तर दे, या अगर पानी छुआ तो मौत घट जाएगी। मेरे पांच प्रश्नों का पहले उत्तर चाहिए। अगर ठीक उत्तर दिया तो ठीक, नहीं तो मृत्यु परिणाम होगा।

पहला भाई इस तरह गिर गया, उत्तर नहीं दे पाया और पानी पीने की कोशिश की; प्यास ऐसी थी।....दूसरा भाई और वही, तीसरा भाई और वही...और अन्त में युधिष्ठिर आए—चारों भाई कहां खो गए? देखा, चारों की लाशें पड़ी हैं झील के तट पर। चारों ने जिद् की, उत्तर नहीं दे पाए फिर भी पानी पीने की जिद् की।

युधिष्ठिर झुके, यक्ष फिर बोला...। उसमें एक प्रश्न आज के काम का है; सारे प्रश्न अर्थपूर्ण थे, मगर एक प्रश्न यह था कि संसार में सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है? युधिष्ठिर ने कहा: सबसे बड़ा आश्चर्य यही कि हम रोज लोगों को मरते देखते हैं, फिर भी यह भरोसा नहीं आता कि मैं मरूंगा!

यह ठीक उत्तर था; सबसे बड़ा आश्यर्य ताजमहल नहीं है, और सबसे बड़ा आश्चर्य इजिप्त के पिरामिड नहीं हैं और न बेबीलोन का उलटा लटका हुआ गार्डन और न अलेग्जेन्ड्रिया का लाइट हाऊस। ये चमत्कार नहीं हैं, ये बड़े आश्चर्य नहीं हैं। सबसे गहन आश्चर्य यह है कि रोज मरते देखकर भी, रोज लोगों को मरते देखकर, रोज मृत्यु के प्रमाण देखकर भी, यह भरोसा आता ही नहीं कि मैं मरूंगा! भरोसे की बात...यह प्रश्न ही नहीं उठता कि मैं मरूंगा। मन कहे चला जाता है, जैसे सदा कोई और मरता है, दूसरा मरता है।

टेढ़ी पगड़ी बांध झरोखा झांकते।....

अब पगड़िया तो नहीं बांधी जातीं, मगर टेढ़ापन तो वही-का-वही है! इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता कि तुमने गांधी टोपी लगा रखी है; गांधी टोपी भी तिरछी है, वहां भी अकड़ है! इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, आदमी वैसा-का-वैसा है। अब कोई घोड़ों पर चढ़के नहीं चलता, इससे क्या फर्क पड़ता है? अब तुम सिंहों जैसे नहीं दहाड़ते और न तुम्हारे आगे-पीछे फौज-फांटा चलता हैं। मगर इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता,। नए आदमी ने नए ढंग के फौज-फांटे खोज लिए हैं। नए आदमी ने नए ढंग की पगड़ियां खोज ली हैं। नए आदमी ने नए घोड़े खोज लिए हैं। मगर एक बात सुनिश्चित है—वही-की-वही, कि तुम इस भ्रांति में जीते हो कि मैं मिटूंगा नहीं। मिट्टी मेरा क्या बिगाड़ पायेगी, मैं मौत को जीतकर रहूंगा, मैं मौत को हरा कर रहूंगा।

मौत को कभी कोई नहीं हरा पाया। हां, दुनियां में एक काम मौत के साथ हो सकता है—मौत जानी जा सकती है; हरा कोई भी नहीं सकता। और जो जान लेता है, वह हैरान हो जाता है—हराने को वहां कुछ है ही नहीं, मौत है ही नहीं!

इसलिए न तो मौत को कोई जीत सकता है, न जीतने की कोई सम्भावना है; जो है ही नहीं, उसे कैसे जीतोगे? मौत तो अंधेरे जैसी है, अंधेरे को कोई जीत सकता है?... लड़ो, मारो, टकराओ—तुम्हीं टूट जाओगे, अंधेरा अपनी जगह रहेगा। हां, अंधेरे के साथ तो एक ही काम किया जा सकता है—ज्योति जलाओ, और अंधेरा नहीं पाया जाता। ध्यान की ज्योति के जलते ही, मृत्यु नहीं पायी जाती, तलाश-तलाश कर भी नहीं पायी जाती। और तब तुम जानते हो कि जो मरते हैं, वे भी मरते नहीं।



मगर यह पहले अन्तस्तल में उद्घाटन करना होगा! छोटी-छोटी चीजों पर अकड़ो मत, अकड़ को जाने दो। अकड़ में ही जीवन गंवा रहे हो! मरते-मरते तक भी लोग अकड़े हैं! उम्र हो जाती है, थक जाते हैं, फिर भी दौड़े चले जाते हैं।

टाल्सटाय की प्रसिद्ध कहानी है, कि एक आदमी के घर एक संन्यासी मेहमान हुआ—एक परिव्राजक। रात गपशप होने लगी, उस परिव्राजक ने कहा: कि तुम यहां क्या छोटी-मोटी खेती में लगे हो, साइबेरिया में मैं यात्रा पर था तो वहां जमीन इतनी सस्ती है...मुफ्त ही मिलती है। तुम यह जमीन छोड़-छाड़ कर, बेच-बाच कर साइबेरिया चले जाओ। वहां हजारों एकड़ जमीन मिल जायेगी इतनी जमीन में। वहां करो फसलें; और बड़ी उपयोगी जमीन है। लोग वहां के इतने सीधे-साधे हैं कि करीब-करीब मुफ्त ही जमीन दे देते हैं।

उस आदमी को वासना जगी। उसने दूसरे दिन ही सब बेच-बाच कर साइबेरिया की राह पकड़ी। जब पहुंचा तो उसे बात सच्ची मालूम पड़ी। उसने पूछा, कि मैं जमीन खरीदना चाहता हूं। तो उन्होंने कहा, जमीन खरीदने का तुम जितना पैसा लाए हो, रख दो; और जमीन का हमारे पास यही उपाय है बेचने का कि कल सुबह सूरज के ऊगते तुम निकल पड़ना और सांझ सूरज के डूबते तक तुम जितनी जमीन तुम घेर सको घेर लेना। बस चलते जाना...जितनी जमीन तुम घेर लो। सांझ सूरज के डूबते-डूबते...उसी जगह पर लौट आना जहां से चले—बस यह शर्त है। जितनी जमीन तुम चल लोग, उतनी जमीन तुम्हारी हो जाएगी।

रात-भर तो सो न सका वह आदमी। तुम भी होते तो सो न सकते; ऐसे क्षणों में कोई सोता है? रात-भर योजनाएं बनाता रहा कि कितनी जमीन घेर लूं। सुबह ही भागा...। गांव इकट्ठा हो गया था। सुबह का सूरज ऊगा, वह भागा...। उसने साथ अपनी रोटी भी ले ली थी, पानी का भी इन्तजाम कर लिया था—रास्ते में भूख लगे, प्यास लगे, तो सोचा था चलते-ही-चलते खाना भी खा लूंगा, पानी भी पी लूंगा। रुकना नहीं है; चलना क्या है, दौड़ना शुरू किया; क्योंकि चलने से तो आधी ही जमीन कर पाऊंगा, दौड़ने से दुगनी हो सकेगी—भागा... भागा...।

सोचा था—ठीक बारह बजे लौट पडूंगा, ताकि सूरज डूबते-डूबते पहुंच जाऊं। बारह बज गए, मिलों चल चुका है, मगर वासना का कोई अंत है? उसने सोचा कि बारह तो बज गए, लौटना चाहिए; लेकिन सामने और उपजाऊ जमीन...थोड़ी-सी और घेर

लूं। जरा तेजी से दौड़ना पड़ेगा लौटते समय---इतनी ही तो बात है, एक ही दिन की तो बात है, और जरा तेजी से दौड़ लूंगा। उसने पानी भी न पिया, क्योंकि रुकना पड़ेगा उतनी देर—एक दिन की ही तो बात है, फिर कल पी लेंगे पानी, फिर जीवन-भर पीते रहेंगे। उस दिन उसने खाना भी न खाया। रास्ते में उसने खाना भी फेंक दिया, पानी भी फेंक दिया, क्योंकि उनका वजन भी ढोना पड़ रहा है इसलिए दौड़ ठीक से नहीं हो पा रही है। उसने अपना कोट भी उतार दिया, अपनी टोपी भी उतार दी—जितना निर्भार हो सकता था हो गया।

एक बज गया, लेकिन लौटने का मन नहीं होता, क्योंकि आगे और-और सुन्दर भूमि आती चली जाती हैं। मगर फिर लौटना ही पड़ा; दो बजे तक तो लौटा। अब घबड़ाया। सारी ताकत लगाई; लेकिन ताकत तो चुकने के करीब आ गई थी। सुबह से दौड़ रहा था, हांफ रहा था, घबड़ा रहा था कि पहुंच पाऊंगा सूरज डूबते तक कि नहीं। सारी ताकत लगा दी। पागल होकर दौड़ा। सब दांव पर लगा दिया। और सूरज डूबने लगा...। ज्यादा दूरी भी नहीं रह गई है, लोग दिखाई पड़ने लगे। गांव के लोग खड़े हैं और आवाज दे रहे हैं कि—आ जाओ, उत्साह दे रहे हैं कि भागे आओ! अजीब सीधे-साधे लोग हैं—सोचने लगा मन में; इनको तो सोचना चाहिए कि मैं मर ही जाऊं, तो इनको धन भी मिल जाए और जमीन भी न जाए। मगर वे उत्साह दे रहे हैं, कि भागे आओ!

उसने आखिरी दम लगा दी—भागा, भागा, भागा....। सूरज डूबने लगा; इधर सूरज डूब रहा है उधर भाग रहा है.... । सूरज डूबते-डूबते बस जाकर गिर पड़ा। कुछ पांच-सात गज की दूरी रह गई है.... घिसटने लगा। अभी सूरज की आखिरी कोर क्षितिज पर रह गई....घिसिटने लगा। और जब उसका हाथ उस जमीन के टुकड़े पर पहुंचा जहां से भागा था—उस खूंटी पर, सूरज डूब गया। वहां सूरज डूबा, यहां यह आदमी भी मर गया। इतनी मेहनत कर ली! शायद हृदय का दौरा पड़ गया।

और सारे गांव के सीधे-साधे लोग जिनको वह समझता था, हंसने लगे और एक-दूसरे से बात करने लगे—ये पागल आदमी आते ही जाते हैं! इस तरह के पागल लोग आते रहते हैं। यह कोई नई घटना न थी, अक्सर लोग आ जाते थे खबरें सुन कर, और इसी तरह मरते थे। यह कोई अपवाद नहीं था, यही नियम था। अब तक ऐसा एक भी आदमी नहीं आया था, जो घेर कर जमीन का मालिक बन पाया है।

यह कहानी तुम्हारी कहानी है, तुम्हारी जिन्दगी की कहानी है, सबकी जिन्दगी की कहानी है। यही तो तुम कर रहे हो—दौड़ रहे हो कि कितनी जमीन घेर लें! बारह भी बज जाते हैं, दोपहर भी आ जाती है, लौटने का भी समय होने लगता है; मगर—थोड़ा और दौड़ लें। न भूख की फिक्र है, न प्यास की फिक्र है। जीने का समय कहां है? पहले



जमीन घेर लें, पहले तिजोड़ी भर लें; पहले बैंक में रुपया इकट्ठा हो जाए, फिर जी लेंगे, फिर बाद में जी लेंगे... एक ही दिन का तो मामला है।

और कभी कोई नहीं जी पाता। गरीब मर जाते हैं भूखे, अमीर मर जाते हैं भूखे, कभी कोई नहीं जी पाता। जीने के लिए थोड़ा विश्रांति चाहिए। जीने के लिए थोड़ी समझ चाहिए। जीवन मुफ्त नहीं मिलता—बोध चाहिए।

सिर्फ बुद्ध-पुरुष जी पाते हैं। उनके जीवन में एक प्रसाद होता है, एक लयबद्धता होती है, एक छंद होता है। वे जी पाते हैं, क्योंकि वे दौड़ते नहीं। वे जी पाते हैं, क्योंकि वे ठहर गए हैं। वे जी पाते हैं, क्योंकि उनका चित्त अब चंचल नहीं है। इस संसार में जमीन घेरकर करेंगे क्या? इस संसार का सब यहीं पड़ा रह जाएगा; न हम कुछ लेकर आते हैं, न हम कुछ लेकर जायेंगे। पगड़ी सीधी करो। घोड़ों से उतरो। फौज-फांटे को नमस्कार लो! समय है, अभी रुक जाओ; मत कहो कि कल, मत कहो कि परसों, क्योंकि कल कभी आता नहीं।

दो दो दीपक जोय सु मंदिर पोढ़ते—जहां एक दीये के जलाने से काम हो जाता है, वहां अपने महलों में दो-दो दीपक जलाते थे।

दो दो दीपक जोय सु मंदिर पोढ़ते।
नारी सेतीं नेह पलक नहीं छोड़ते॥

जिन्होंने पल-भर को अपनी प्रेयसी, अपनी पत्नी को नहीं छोड़ा था—पल-भर को नहीं छोड़ते थे, पलक नहीं झंपते थे।

तेल फुलेल लगाय क काया चाम की—कि चमड़े की देह पर भी खूब तेल-फुलेल लगाते थे।

हरि हां, वाजिद, मर्द गर्द मिल गये दुहाई राम की—कि राम तेरा भी खूब चमत्कार! कि तेरा भी खूब प्रसाद, कि ऐसे मर्द गर्द मिल गए, आज मिट्टी में पड़े हैं। जो चमड़ी पर तेल-फुलेल लगाते थे, जो चमड़ी पर सोने के श्रृंगार सजाते थे, जहां एक दीये से काम चल जाता वहां दो दीये जलाते थे, जिनके महलों में सदा दीवाली होती रहती थी! जो अपने प्रेमियों से क्षण-भर को न बिछड़ते थे—वे गए! कहां गये? हरि हां, वाजिद, मर्द गर्द मिल गए दुहाई राम की—वे बड़े मर्द, बड़े हिम्मतवर लोग, बड़े जानदार लोग, बड़े शानदार लोग, गौरव-गरिमा वाले लोग, सब मिट्टी में मिल गए। आखिर में तू सबको मिट्टी में मिला देता है!

च्वांगत्सु—चीन का एक बहुत बड़ा रहस्यवादी संत, गुजरता था एक मरघट से। एक खोपड़ी पड़ी थी, सांझ का वक्त था, अंधेरा होने लगा था। पैर टकरा गया खोपड़ी से। तो रुका, झुक कर खोपड़ी को नमस्कार किया, खोपड़ी को उठाकर सिर से लगाया

उसके शिष्यों ने कहा : आप विक्षिप्त तो नहीं हो गए हैं, आप यह क्या कर रहे हैं ? उसने कहा : पागलो, तुम्हें पता नहीं है, यह कोई छोटे लोगों का मरघट नहीं है। यहां, इस मरघट में सिर्फ बड़े-बड़े सम्राट, बड़े वजीर, बड़े धनपति... यह बड़े लोगों का मरघट है; यह खोपड़ी किसी बड़े आदमी की खोपड़ी है !

अगर यह जिन्दा होता और मेरा पैर इसके सिर में लग जाता, तो आज अपनी दुर्गति हो जाती; यह तो मौके की बात है यह मौजूद नहीं है। मगर खोपड़ी बड़े आदमी की है, इसलिए नमस्कार कर रहा हूं, इसलिए क्षमा मांग रहा हूं। वह मजाक कर रहा है।

वह उस खोपड़ी को अपने साथ ले आया। फिर जिन्दगी-भर वह खोपड़ी उसके पास ही रही। बैठता तो खोपड़ी पास रखकर बैठता, रात सोता तो खोपड़ी उसके बिस्तर के पास रखी रहती। लोग आते तो वे पूछते, यह खोपड़ी किसलिए रखी है ? तो वह कहता : ताकि मुझे याद रहे, ताकि मैं भूलूं न, बिसरूं न कि ऐसे ही एक दिन मेरी खोपड़ी भी मरघट में पड़ी होगी; राह चलते लोगों के पैर लगेंगे...।

इस खोपड़ी ने मुझे खूब ज्ञान दिया है ! एक दिन एक आदमी गुस्से में आकर मारने को तैयार हो गया था, जूता उतार लिया था। मैंने खोपड़ी की तरफ देखा, और मुझे हंसी आ गई ! मैंने कहा : भाई मार ले। यह मार तो पड़ती रहेगी सदियों तक, लोगों के पैरों में पड़ा रहूंगा—यह खोपड़ी देखो ! फिर बोल भी न सकूंगा, चीं भी न कर सकूंगा। तो तू आज ही मार ले, क्या फर्क पड़ता है ? जब लोगों के पैरों में पड़ा ही रहूंगा सदियों तक, तो एक दफा और सही, तू मार ही ले।

च्वांगत्सु कहता था : इस खोपड़ी से मुझे बड़ी याद बनी रहती है। कोई जरूरत नहीं है कि तुम खोपड़ी पास रखो, लेकिन याद तो रखो पास, स्मरण तो रहे ! हरि हां, वाजिद मर्द गर्द मिल गए दुहाई राम की...।

मगर वाजिद की खूबी यह है कि ऐसी संकटपूर्ण स्थिति को भी वे कहते हैं—दुहाई राम की—राम तेरी कृपा ! मर्दों को भी गर्द में मिला दिया ! क्यों इसे कहते हैं राम की कृपा ? इसलिए कहते हैं, कि यह तेरे चेताने का उपाय है, यह तेरा जगाने का ढंग है।

फिर भी मूढ़ों को कोई क्या कहे, फिर भी नहीं जागते लोग ! ऐसे सोये हैं कि मौत चारों तरफ नाचती रहती है, ताण्डव करती रहती है, फिर भी उन्हें होश नहीं आता !

जागो ! मौत पास आती जाती है; किसी भी घड़ी पकड़ लेगी और मर्द गर्द में मिल जायेंगे !

एक बार इस मौत को तुम जीवन का अनिवार्य अंग मानकर अंगीकार करो, और तुम्हारी जिन्दगी तत्क्षण बदलनी शुरू हो जायेगी; क्योंकि फिर तुम और ढंग से उठोगे,



और ढंग से बैठोगे। फिर तुम्हें कोई गाली दे जायेगा तो क्रोध न करोगे—क्या सार है ? फिर तुम हार जाओगे तो दुखी न होओगे। फिर तुम जीत के लिए दीवाने न होओगे। फिर सफलता आए कि विफलता, सब बराबर मालूम होगी। तुम एक तरह के सम्यत्व में प्रविष्ट हो जाओगे। तुम्हारे भीतर समता का फूल लगेगा। दुख आये तो, सुख आये तो—साक्षी बने देखते रहोगे।

जहां मौत ही आती है, वहां क्या फर्क पड़ता है कि दो-दिन इत्र-फुलेल लगाया कि नहीं लगाया, कि बहुमूल्य वस्त्र पहने कि नहीं पहने, कि महलों में विराजे कि नहीं विराजे। क्या फर्क पड़ता है ? विराजे तो ठीक, नहीं विराजे तो ठीक। महल में रहे तो और झोपड़े में रहे तो, तुम्हें अंतर न पड़ेगा।

और मैं तुमसे यह नहीं कह रहा हूं कि तुम महलों में रहते होओ तो भाग जाओ छोड़कर। मैं तुमसे यह भी नही कह रहा हूं कि तुम झोंपड़े बना लो और झोंपड़े में रहो। मैं तुमसे सिर्फ इतना ही कह रहा हूं कि झोंपड़े में रहो कि महल में, एक बात याद रखो, कि झोपड़े में भी मौत घटती है, महल में भी मौत घटती है; मौत के लिए कोई दरवाजा बंद नहीं है। मौत के लिए सब तरफ द्वार है।

इसलिए महल में भी ऐसे रहो जैसे धर्मशाला में रहते हो। और झोंपड़े में भी ऐसे रहो जैसे धर्मशाला में रहते हो। सराय में रहने की कला संसार में रहने की कला है।

सिर पर लंबा केस चले गज चालसी... अद्‌भुत लोग थे, मस्त लोग थे; मस्त हाथियों जैसे चलते थे।

सिर पर लंबा केस चले गज चालसी।
हाथ गह्यां समसेर ढलकती ढाल सी ॥

हाथों में नंगी तलवारें थीं और ढालें थीं। मगर मौत का हमला हुआ, तो न तलवारें काम आती हैं न ढालें काम आती हैं। और जब मौत का हमला होता है, तो हाथी भी ऐसे गिर जाते हैं जैसे चूहे गिर जाते हैं। क्या फर्क है ? अकड़ तो चूहों में भी होती है; कोई चूहे में कम अकड़ नहीं होती हाथी से !

मैंने सुना है, कि एक चूहा अपने बिल से निकला। सामने ही एक हाथी खड़ा था। हाथी ने चूहे की तरफ देखा और कहा कि तुम कौन हो ? इतने छोटे, इतने ओछे ! इस छोटे-से छेद में समा गए ! तुम्हारा होना न होने के बराबर है। चूहे ने कहा : माफ करिये, बात ऐसी नहीं है। कुछ दिनों से मेरी तबियत खराब है। मैं कोई छोटा नहीं हूं, जरा बीमार रहा हूं, बीमारी से उठा हूं।

चूहों की भी अकड़ है ! हाथियों की होगी...। मगर फर्क क्या है, मौत के सामने चूहे और हाथी सब बराबर हो जाते हैं। मौत के सामने सब समान हैं। मौत बड़ी समाज-

वादी है। मौत भेद नहीं करती।

और जब मौत भेद नहीं करती तो तुम भी भेद न करो। जब मौत भेद नहीं करती, तो जीवन में भी भेद न करो। अभी से अपने को 'न कुछ' मानो, तो मौत तुम्हें चोट न पहुंचा सकेगी। अभी से अपने को 'न कुछ' जानो, तो मौत तुम्हें क्या मिटा सकेगी? ...तुम खुद ही अपने को मिटा दो!

यही कला संन्यास है—स्वयं को मिटा देना, स्वयं को शून्य कर लेना। कहते हैं वाजिद... कहै वाजिद पुकार, सीख एक सुन्न रे—एक शून्य को सीख लो। मरने के पहले मर जाओ। मरने के पहले अहंकार को विदा कर दो; कह दो कि मैं नहीं हूं। फिर तुम चकित होओगे, मौत आयेगी और भीतर मिटाने को कुछ न पायेगी।

सिर पर लंबा केस चले गज चालसी।
हाथ गह्या समसेर ढलकती ढाल सी॥
एता यह अभिमान कहां ठहराहिंगे।

वाजिद कहता है, इतना अभिमान—कहां ठहरोगे, कहां रुकोगे! एता यह अभिमान ...ऐसा लगता है कि तुम रुकोगे ही नहीं, तुम तो बढ़ते ही चले जाओगे। तुम तो सारा जगत जीतकर रहोगे! ऐसा लगता है कि तुम तो मौत को भी पछाड़ दोगे! एता यह अभिमान कहां ठहराहिंगे।

...इतनी अकड़, तुम तो मौत को पानी पिला दोगे ऐसा लगता है!

लेकिन कौन कब मौत को पानी दिला पाता है? ढालें, तलवारें सबपड़ी रह जाती हैं। मौत आती है, सब सुरक्षा के उपाय पड़े रह जाते हैं, कुछ काम नहीं आता। मौत के सामने हम एकदम असुरक्षित हो जाते हैं। उसके सामने हम एकदम निरीह, असहाय हो जाते हैं। सिर्फ एक व्यक्ति उसके सामने असहाय नहीं होता—जिसने जाना कि मैं नहीं हूं। जिसने शून्य को जाना। वह तो मौत के सामने हंसता है। वह तो मौत से भी मजाक करता है।

एक झेन फकीर मर रहा था....ऐसे फकीर मौत से भी मजाक कर सकते हैं। मरने के वक्त उसके सारे शिष्य इकट्ठे हो गए हैं। उसने आंख खोली और कहा, कि एक बात पूछूं, कभी तुमने किसी की खबर सुनी है जो बैठे-बैठे मरा हो—पद्मासन में? एक शिष्य ने कहा: क्यों? उसने कहा, कि अगर कोई न मरा हो पद्मासन में बैठकर, तो मैं पद्मासन में बैठकर मरना चाहता हूं—एक बात रह जायेगी। किसी ने कहा कि नहीं, हमने सुना है कि कुछ फकीर पद्मासन में बैठकर मरे हैं। तो उसने कहा, कि तुमने सुना है कभी कोई खड़ा-खड़ा मरा हो? तो हम खड़े-खड़े मरते हैं। यह मजाक देखते हो, यह व्यंग—तो हम खड़े-खड़े मर जाते हैं, एक बात रह जायेगी! मगर किसी



ने कहा, कि हमने यह भी सुना है कि अतीत में एक दफा एक भिक्षु खड़े-खड़े मरा था। तो उसने कहा, कि अब एक ही उपाय रहा कि हम शीर्षासन करके मरते हैं।

और वह शीर्षासन लगाकर खड़ा हो गया। उसके शिष्य भी घबड़ा गए। कोई मौत से ऐसी मजाक करता है! अब वह मर गया कि जिंदा है यह भी कुछ समझ नहीं आता। —शीर्षासन लगाये खड़ा है; उसकी सांस भी खो गई...अब उसको शीर्षासन से उतारना चाहिए कि नहीं उतारना चाहिये?

तब उन्हें याद आई कि उस फकीर की बड़ी बहिन भी भिक्षुणी है पास के ही विहार में। वे भाग कर गए, कि उससे पूछो; वह भी पहुंची हुई सिद्ध महिला थी। वह आई और उसने कहा कि— सुन, जिन्दगी-भर हर बात में व्यंग और मजाक, कम-से-कम मौत के साथ शराफत और शिष्टाचार का व्यवहार करना चाहिये। तुम हमेशा अटपटी चाल चलते रहे, ढंग से मरो!

तो फकीर उछल कर बैठ गया, उसने कहा: तो फिर ठीक है, ढंग से मरे जाते हैं। बहिन यह कह कर चली गई, और फकीर ढंग से मर गया—लेट गया बिस्तर पर...जैसे मरना चाहिए मर गया।

यह बहिन भी अद्भुत रही होगी, जिसने कहा—ढंग से मरो, यह भी कोई बात है! जैसे मौत कोई बात ही नहीं; न फकीर को कोई बात है, न उसकी बहिन को कोई बात है—मौत कोई बात ही नहीं! एक शिष्टाचार तो रखो कम-से-कम।

मृत्यु के साथ भी व्यंग हो सकता है; मगर तभी, जब तुम मरने के पहले मर चुके होओ। मरने के पहले मर जाना संन्यास है। मरने के पहले जान लेना कि जो मरेगा वह मरा ही हुआ है। मरने के पहले पहचान लेना कि जो मरणधर्मा है, उसकी ही मृत्यु होगी और जो अमृत है उसकी कभी कोई मृत्यु नहीं होती।

और मेरे भीतर दोनों हैं। जो मरणधर्मा है, जो पृथ्वी से मिला है, वह पृथ्वी में वापिस चला जाएगा। और जो अमृत है, उसकी कहीं मृत्यु होती है! मैं वही हूं—अमृतस्य पुत्राः अमृत के पुत्र हो तुम!

ऐसी पहचान चाहिए। उपनिषद के वचन कंठस्थ कर लेने से नहीं अनुभव आ जायेगा। ऐसे बैठकर दोहराते रहे— अमृतस्य पुत्राः, अमृतस्य पुत्राः— कुछ भी नहीं होगा; मौत आयेगी और सब भूल जाओगे, चौकड़ी भूल जाओगे! याद ही न रहेगा उपनिषद। एकदम घबड़ा जाओगे। देह को पकड़ने लगोगे, कंपने लगोगे। शास्त्र पढ़ने से नहीं होगा, स्वयं का साक्षात्कार चाहिये।

एता यह अभिमान कहां ठहराहिंगे।
हरि हां, वाजिद, ज्यूं तीतर कूं बाज झपट ले जाहिंगे॥

सीधे-साधे आदमी हैं वाजिद, वे कहते हैं—एता यह अभिमान...कहां ठहरोगे? और पता है तुम्हें...ज्यूं तीतर कूं बाज झपट ले जाहिंगे—जैसे बाज पक्षी तीतर को कभी भी झटक कर ले जाए, कभी भी पकड़ कर ले जाए, ऐसे ही मौत आएगी बाज की तरह और तीतर की तरह हो जाओगे—झपट कर ले जाएगी, उसके पंजे में पड़ोगे। छोड़ो भी यह अभिमान!

मौत के रहते भी मनुष्य अभिमानी है, यह आश्चर्य है! अगर मौत न होती तो दुनिया का क्या हाल होता, कहना मुश्किल है। अगर मौत न होती तो कैसा भयंकर अभिमान होता दुनिया में, कहना मुश्किल है। मौत है, फिर भी अभिमान है, अकड़ है। मौत को झुठला कर, भुलाकर आदमी अकड़ा चला जाता है—जरा देखो, जरा पहचानो!

जिस जमीन पर तुम बैठे हो, वैज्ञानिक कहते हैं उस जमीन पर...जिस जमीन पर तुम बैठे हो, उस पर कम-से-कम आठ आदमियों की लाशें मिट्टी बन चुकी हैं। इतने आदमी इस जमीन पर रह चुके हैं। यहां ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहां मरघट न बन चुका हो। मरघट बस्तियां बन जाते हैं, बस्तियां मरघट बन जाती हैं, यह बदलाहट होती रहती है...यह होती रहती है। हड़प्पा-मोहनजोदड़ो की खोज हुई। हड़प्पा के नगरी की खुदाई में बड़ी हैरानी हुई—सात परतें मिलीं हड़प्पा की खुदाई में—मतलब हड़प्पा नगर सात बार बसा और उजड़ा, सात बार बस्ती बसी और मरघट बना। सात परतें...सदियां लगी होंगी, हजारों-हजारों साल लगे होंगे। किसी नगर को बसने और उजड़ने में सात बार...काफी समय लगेगा!

सारी जमीन बस चुकी, उजड़ चुकी। लोगों ने घर बनाए और वहीं कब्रें बनीं। जहां अकड़ कर खड़े हुए, वहीं धूल में गिर गए। एक बार जब कोई लौटकर पीछे देखता है—कितने-कितने लोग इस जमीन पर रह चुके और गए, और कितने लोग अभी हैं और चले जायेंगे, और कितने लोग आयेंगे और जाते रहेंगे!

इस विस्तार को तुम जरा गौर करो, तुम्हारी अकड़ एकदम छोटी हो जायेगी। आदमी बड़ा छोटा है, बहुत छोटा है। सत्तर साल जी लेना क्षण-भर जैसा है इस विराट के विस्तार में! जमीन की उम्र चार अरब वर्ष है, अब तक जमीन चार अरब वर्ष से जिन्दा है। सूरज जमीन से हजारों गुना पुराना है। और हमारा सूरज बहुत जवान है; बूढ़े सूरज हैं। हमारी जमीन तो बहुत नई है—नई-नवेली बहू समझो; इसलिए इतनी हरी-भरी है। बहुत-सी पृथ्वियां हैं दुनियां में जो उजड़ गई, जहां अब सिर्फ राख ही राख रह गयी है—न वृक्ष उगते, न मेघ घिरते, न कोयल कूकती, न मोर नाचते। अनंत पृथ्वियां हैं, वैज्ञानिक कहते हैं जो सूख गई हैं। कभी वहां भी जीवन था। कभी यह पृथ्वी भी सूख जायेगी।



हर चीज पैदा होती है, जवान होती है, बूढ़ी होती है, मरती है। यह सूरज भी चुक जायेगा; यह सूरज भी रोज चुक रहा है, क्योंकि इसकी उर्जा खत्म होती जा रही है। इससे किरणें रोज निकल रही हैं और समाप्त हो रही हैं...। वैज्ञानिक कहते हैं कि कुछ हजार वर्षों में यह सूरज ठंडा पड़ जाएगा। इस सूरज के ठंडे पड़ते ही पृथ्वी भी ठंडी हो जायेगी, क्योंकि उसी से तो इसको रोशनी मिलती है, प्राण मिलते, ताप मिलता, ऊर्जा मिलती, ऊष्मा मिलती; उसी से तो उत्तप्त होकर जीवन चलता है, फूल खिलते हैं, वृक्ष हरे होते हैं, हम चलते हैं, उठते हैं, बैठते हैं...।

हमारा तो सत्तर साल का जीवन है, इस पृथ्वी का समझो कि सत्तर अरब वर्ष का होगा। सूरज का और समझो सात सौ अरब वर्ष का होगा। और महासूर्य हैं, जिनका और आगे, आगे...होगा। आदमी की बिसात क्या है इस सत्तर साल के जीवन में? मगर हम कितने अकड़ लेते हैं! एता यह अभिमान कहां ठहराहिंगे...लड़ लेते हैं, झगड़ लेते हैं, गाली-गलौज कर लेते हैं, दोस्ती-दुश्मनी कर लेते हैं, अपना-पराया कर लेते हैं, मैं-तू की बड़ी झंझटें खड़ी कर देते हैं, अदालतों में मुकदमेबाजी हो जाती है, सिर खुल जाते हैं।

अगर हम मृत्यु को ठीक से पहचान लें, तो इस पृथ्वी पर वैर का कारण न रह जाए। जहां से चले जाना है, वहां वैर क्या करना? जहां से चले जाना है, वहां दो घड़ी का प्रेम ही कर लें। जहां से विदा ही हो जाना है, वहां गीत क्यों न गा लें, गाली क्यों बकें? जिनसे छूट ही जाना होगा सदा को, उनके और अपने बीच दुर्भाव क्यों पैदा करें? कांटे क्यों बोयें? थोड़े फूल उगा लें, थोड़ा उत्सव मना लें, थोड़े दीये जला लें! उसी को मैं धर्म कहता हूं।

जिस व्यक्ति के जीवन में यह स्मरण आ जाता है कि मृत्यु सब छीन ही लेगी; यह दो-घड़ी का जीवन, इसको उत्सव में क्यों न रूपान्तरित करें। इस दो-घड़ी के जीवन को प्रार्थना क्यों न बनाएं, पूजन क्यों न बनायें। झुक क्यों न जायें—कृतज्ञता में, धन्यवाद में, आभार में! नाचें क्यों न, एक दूसरे के गले में बांहें क्यों न डाल लें। मिट्टी मिट्टी में मिल जायेगी...यह जो क्षण-भर मिला है हमें, इस क्षण-भर को हम सुगंधित क्यों न करें; इसको हम धूप के धुयें की भांति क्यों पवित्र न करें, कि यह उठे आकाश की तरफ—प्रभु की गूंज बने!

एता यह अभिमान कहां ठहराहिंगे।
हरि हां, वाजिद, ज्यूं तीतर कूं बाज झपट ले जाहिंगे॥

आता ही होगा बाज, कभी भी झपट ले जाएगा; इसके पहले कि झपट ले, तुम स्वयं ही जागो!

कारीगर कर्तार क हून्दर हद किया—कि परमात्मा भी खूब कारीगर है, खूब कुशल है। दस दरवाजा राख शहर पैदा किया —कि यह तुम्हारी जो देह है, शरीर है, इसमें दस दरवाजे रखे हैं और एक पूरा शहर बसा दिया है। तुम्हारे भीतर एक बस्ती बसी है! वैज्ञानिक कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति के भीतर कम-से-कम सात करोड़ जीवाणु हैं—सात करोड़! बम्बई छोटी बस्ती है, कलकत्ता भी बहुत छोटी बस्ती है; कलकत्ता में एक करोड़ आदमी हैं, तुम्हारे शरीर में सात करोड़ जीवित अणु हैं—सात करोड़ जीवन हैं। बड़ी बस्ती तुम्हारे भीतर बसी है! एक अर्थ में तुम एकदम छोटे हो, एक अर्थ में तुम भी विस्तीर्ण हो।

कारीगर कर्तार क हून्दर हद किया—कि हद कर दी हुनर की!

दरवाजा दस राख शहर पैदा किया—और दस दरवाजे रखे हैं इंद्रियों के—पांच कर्मेन्द्रियां, पांच ज्ञानेन्द्रियां—ये दरवाजे रखे हैं। इन्हीं दरवाजों से तुम जीवन से संबंध बनाते हो, और इन्हीं दरवाजों से एक दिन मौत आएगी। इन्हीं दरवाजों से तुम बाहर जाते हो—इन्हीं आंखों से तुम बाहर जाते हो। इन्हीं हाथों से तुम बाहर टटोलते हो, स्पर्श करते हो। इन्हीं कानों से तुम बाहर सुनते हो। इन्हीं इन्द्रियों से मृत्यु भीतर प्रवेश करेगी।

यह जानकर तुम हैरान होओगे कि प्रत्येक व्यक्ति अलग इन्द्रिय से मरता है। किसी की मौत आंख से होती है, तो आंख खुली रह जाती है—हंस आंख से उड़ा। किसी की मृत्यु कान से होती है। किसी की मृत्यु मुंह से होती है, तो मुंह खुला रह जाता है। अधिक लोगों की मृत्यु जननेन्द्रिय से होती है, क्योंकि अधिक लोग जीवन में जननेन्द्रिय के आस-पास ही भटकते रहते हैं, उसके ऊपर नहीं जा पाते। तुम्हारी जिंदगी जिस इन्द्रिय के पास जियी गई है, उस इन्द्रिय से मौत होगी।

औपचारिक रूप से हम मरघट ले जाते हैं किसी को तो उसकी कपाल-क्रिया करते हैं, उसका सिर तोड़ते हैं; वह सिर्फ प्रतीक है। समाधिस्थ व्यक्ति की मृत्यु उस तरह होती है। समाधिस्थ व्यक्ति की मृत्यु सहस्रार से होती है। जननेन्द्रिय सबसे नीचा द्वार है। जैसे कोई अपने घर की नाली में से प्रवेश करके बाहर निकले। सहास्रर, जो तुम्हारे मस्तिष्क में है द्वार, वह श्रेष्ठतम द्वार है। जननेन्द्रिय पृथ्वी से जोड़ती है, सहस्रार आकाश से। जनेन्द्रिय देह से जोड़ती है, सहस्रार आत्मा से।

जो लोग समाधिस्थ हो गए हैं, जिन्होंने ध्यान को अनुभव किया है, जो बुद्धत्व को उपलब्ध हुए हैं, उनकी मृत्यु सहस्रार से होती है। उस प्रतीक में हम अभी भी कपाल-क्रिया करते हैं... मरघट ले जाते हैं, बाप मर जाता है, तो बेटा लकड़ी मारकर सिर तोड़ देता है। मरे-मराये का सिर तोड़ रहे हो! प्राण तो निकल ही चुके, अब किस लिए



दरवाजा खोल रहे हो? अब निकलने को वहां कोई है ही नहीं। मगर प्रतीक, औपचारिक... आशा कर रहा है बेटा कि बाप सहस्रार से मरे; मगर बाप तो मर ही चुका है।

यह दरवाजा मरने के बाद नहीं खोला जाता, यह दरवाजा जिन्दगी में खोलना पड़ता है। इसी दरवाजे की तलाश में सारे योग, तंत्र की विद्याओं का जन्म हुआ है। इसी दरवाजे को खोलने की कुंजियां हैं योग में, तंत्र में। इसी दरवाजे को जिसने खोल लिया, वह परमात्मा को जानकर मरता है। उसकी मृत्यु समाधि हो जाती है। इसलिये हम साधारण आदमी की कब्र को कब्र कहते हैं, फकीर की कब्र को समाधि कहते हैं—समाधिस्थ होकर जो मरा है।

प्रत्येक व्यक्ति उस इन्द्रिय से मरता है, जिस इन्द्रिय के पास जिया है। जो लोग रूप के दीवाने हैं, वे आंख से मरेंगे; इसलिये चित्रकार, मूर्तिकार आंख से मरते हैं। उनकी आंख खुली रह जाती है। जिन्दगी-भर उन्होंने रूप और रंग में ही अपने को तलाशा, अपनी खोज की। संगीतज्ञ कान से मरते हैं। उनका जीवन कान के पास ही था। उनकी सारी संवेदनशीलता वहीं संग्रहीत हो गई थी। मृत्यु देखकर कहा जा सकता है—आदमी का पूरा जीवन कैसा बीता। अगर तुम्हें मृत्यु को पढ़ने का ज्ञान हो, तो मृत्यु पूरी जिन्दगी के बाबत खबर दे जाती है कि आदमी कैसे जिया; क्योंकि मृत्यु सूचक है, सारी जिन्दगी का सार-निचोड़ है—आदमी कहां जिया।

हरि हां, वाजिद, ज्यूं तीतर कूं बाज झपट ले जाहिंगे—जल्दी ही बाज तो आयेगा, उसके पहले तैयारी कर लो। अगर तुम सहस्रार पर पहुंच जाओ, तो फिर मौत का बाज तुम्हें झपट कर नहीं ले जा सकता। फिर तो परमात्मा तुम्हें तलाशता आता है। अगर तुम किसी और इन्द्रिय से मरे, तो वापिस लौट आना पड़ेगा देह में; क्योंकि बाकी सब द्वार देह में हैं। सहस्रार देह का द्वार नहीं है, आत्मा का द्वार है। सहस्रार ग्यारहवां द्वार है, बाकी दस द्वार शरीर के हैं। ग्यारहवें द्वार को तलाशो—तुम्हारे भीतर है, बंद पड़ा है।

अब तो वैज्ञानिक भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि मस्तिष्क का आधा हिस्सा बिल्कुल निष्क्रिय पड़ा है। और बहुत चकित होते हैं कि क्या कारण होगा, क्यों मस्तिष्क का आधा हिस्सा बिल्कुल निष्क्रिय है, किसी काम में नहीं आ रहा है?

प्रकृति कोई चीज ऐसी पैदा नहीं करती जो बेकाम हो, पैदा करती है तो काम होना ही चाहिए। आधा मस्तिष्क काम कर रहा है, आधा मस्तिष्क बिल्कुल बंद पड़ा है; वही आधा मस्तिष्क सहस्रार के क्षण में सक्रिय होता है। उसी आधे मस्तिष्क से प्रार्थना जन्मती है। उसी आधे मस्तिष्क से ध्यान उपजता है। वह आधा मस्तिष्क तभी सक्रिय

होता है, जब कोई बुद्धत्व को उपलब्ध होता है, तब तक सक्रिय नहीं होता।

ऐसा ही समझो जैसे तुम्हारे घर में एक द्वार बंद है और तुम कई बार सोचते हो कि द्वार कहां खुलता होगा? और सब द्वार तो तुमने देखे हैं, मगर यह द्वार किस दिशा में ले जाता है, किस खजाने की तरफ, पता नहीं किस गुफा में, कहां ले जाता है? जो व्यक्ति अपने भीतर थोड़ा-सा खोजबीन करेगा, उसे जल्दी ही सहस्रार के द्वार पर जिज्ञासा उठनी शुरू हो जायेगी।

विज्ञान तो अब निष्कर्ष पर पहुंचा है कि मस्तिष्क का आधा हिस्सा निष्क्रिय है; योग तो आज पांच हजार साल से यह कह रहा है कि मस्तिष्क का आधा हिस्सा निष्क्रिय है। उसको सक्रिय करने के बहुत उपाय किये हैं योग ने। अनेक आसन खोजे हैं, उस आधे को सक्रिय करने के लिए। उस आधे को सक्रिय करने के लिए ही शीर्षासन का उपयोग किया गया है, ताकि खून की धारा उस आधे मस्तिष्क को जाकर चोट करने लगे, उसे सक्रिय करे। श्वास की प्रक्रियायें विकसित की गई हैं; क्योंकि मस्तिष्क का भोजन आक्सीजन है, मस्तिष्क जीता है आक्सीजन पर। जितनी ज्यादा प्राणवायु तुम लेते हो, उतना ही मस्तिष्क सक्रिय होता है। इसलिए रात अगर तुम सोने के पहले पन्द्रह मिनिट प्राणायाम कर लो, फिर रात-भर न सो सकोगे—मस्तिष्क सक्रिय हो जायेगा। इसलिए रात भूल कर भी प्राणायाम नहीं करना चाहिए, या विपस्सना जैसी ध्यान की विधि रात में नहीं करनी चाहिए, अन्यथा नींद खराब हो जायेगी। सुबह की विधियां हैं, सूरज के उगने के साथ करनी चाहिए। जितनी तुम श्वास लेते हो, उतना मस्तिष्क सक्रिय होता है।

जैसे ही आक्सीजन कम होती है, सबसे पहले मस्तिष्क मरने लगता है। इसलिए जिस व्यक्ति के भीतर आक्सीजन की कम होने की सम्भावना होती है, चिकित्सक तत्क्षण आक्सीजन देते हैं; क्योंकि एक दफा मस्तिष्क खराब हो जाए, तो फिर सुधरने का उपाय नहीं है। छह सेकन्ड में नष्ट होना शुरू हो जाता है...आक्सीजन न पहुंचे तो छह सकेन्ड के भीतर मस्तिष्क के तन्तु मरने शुरू हो जाते हैं; बड़े सूक्ष्म नाजुक तंतु हैं।

प्राणायाम का प्रयोग क्या है? प्राणायाम का इतना ही अर्थ है—सामान्य रूप से जितनी प्राणवायु हम अपने भीतर ले जाते हैं, उससे ज्यादा प्राणवायु को हम भीतर ले जायें, फेफड़ों को पूरा भरें। फेफड़े में छह हजार छिद्र हैं; आमतौर से जो हम श्वास लेते हैं, उसमें दो हजार छिद्रों तक ही श्वास जाती है। जब हम दौड़ते हैं, तैरते हैं तो तीन हजार से चार हजार छिद्रों तक श्वास जाती है। छह हजार छिद्रों तक श्वास तो केवल प्राणायाम में ही जाती है। और जब पूरे छह हजार छिद्रों तक श्वास पहुंचती है, तो तुम्हारे पूरे मस्तिष्क को प्राणवायु उपलब्ध होनी शुरू होती है। वह जो निष्क्रिय पड़ा



हिस्सा है, उसमें भी प्राणवायु का संचार होता है। वह भी सक्रिय होने लगता है। वहीं खिलता है जीवन का कमल। और एक बार वहां का द्वार खुल जाए, एक बार वहां का कमल खुल जाए, फिर कोई मृत्यु नहीं है, फिर अमृत है। तभी तुम जानोगे कि तुम अमृत के पुत्र हो।

कारीगर कर्तार क हून्दर हद किया।
दस दरवाजा राख शहर पैदा किया॥

नखसिख महल बनायक दीपक जोड़िया—मिट्टी से तो बना दिया है नखशिख, शरीर; बड़ी सुन्दर प्रतिमा बना दी, और भीतर फिर एक दीपक जोड़ दिया है, भीतर फिर एक ज्योति जोड़ दी है, जीवात्मा जोड़ दी है। बाइबिल कहती है: परमात्मा ने आदमी को मिट्टी से बनाया और फिर श्वास फूंकी। ये प्रतीक हैं। आदमी मिट्टी है, सांस के माध्यम से कुछ उसमें चल रहा है जो मिट्टी नहीं है। इसलिए सांस बंद हुई, कि आदमी गया।

नखसिख महल बनायक दीपक जोड़िया।

हरि हां, भीतर भरी भंगार क ऊपर रंग दिया—और इस देह में तो कचरा ही कचरा भरा है, और ऊपर से सुन्दर रंग भी दे दिया है; खूब तू भी कारीगर कुशल है! देह में तो भूसा-ही-भूसा भरा है, मिट्टी-ही-मिट्टी है, मगर ऊपर से खूब रंग दे दिया है—सुन्दर चमड़ी चढ़ा दी है, नखशिख दे दिया, सौन्दर्य दे दिया!

हर आदमी इसी सौन्दर्य में भटक जाता है। दर्पण के सामने खड़ा अपने ही सौन्दर्य में मोहित होता रहता है। और सब भंगार है, सब कूड़ा-करकट है, कचरा है, सब धोखा है, सब सौन्दर्य चमड़ी से ज्यादा गहरा नहीं है। कभी जाकर अस्पताल ऑपरेशन देख लेना चाहिए। कभी किसी का पोस्टमार्टम होता हो, तो जाकर जरूर देख लेना चाहिए। इससे तुम्हें बोध होगा कि तुम्हारे शरीर में क्या भरा है! भंगार! वाजिद ठीक कहते हैं, व्यर्थ का कूड़ा-करकट भरा है।

मगर खूब कारागीर है परमात्मा, कि भंगार को लीप-पोत कर ऊपर से ऐसा सुन्दर कर दिया है, कि आदमी धोखा खा जाता है, कि आदमी दर्पण के सामने खड़ा होकर सोचता है—यही मैं हूं। यही तुम नहीं हो। जो दर्पण में दिखाई पड़ता है, वह तो भंगार ही है! जो देख रहा है वह तुम हो, जो दिखाई पड़ रहा है वह तुम नहीं हो। दृश्य तुम नहीं हो, द्रष्टा तुम हो, साक्षी तुम हो। उस साक्षी के सूत्र को पकड़ो। उसी सूत्र को पकड़कर सहस्रार तक पहुंच जाओगे।

काल फिरत है हाल रैणदिन लोइ रे।

लोगो! ध्यान रखो, काल फिरत है हाल रैणदिन लोइ रे। मृत्यु दिन-रात घूम रही है

खोजती तुम्हें, तलाशती तुम्हें। भागो कहीं, बच न पाओगे।

मैंने सुना है, एक सम्राट ने रात सपना देखा कि किसी ने उसके कंधे पर हाथ रखा। लौट कर उसने देखा सपने में, एक काली छाया—भयंकर, वीभत्स, घबड़ाने वाली! पूछा: तू कौन है? उस छाया ने कहा: मैं मृत्यु हूं, और तुम्हें सूचना देने आई हूं। कल सूरज के डूबते तैयार रहना, लेने आती हूं। आधी रात ही नींद खुल गई; ऐसे सपने में किसकी नींद न खुल जाएगी? घबड़ाकर सम्राट उठ आया। आधी रात थी, सपना शायद सपना ही हो; मगर कौन जाने, कभी-कभी सपने भी सच हो जाते हैं।

इस दुनिया में बड़ा रहस्य है। यहां जो सच जैसा मालूम पड़ता है, अक्सर सपना सिद्ध होता है। और कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है कि जो सपना मालूम होता है, सत्य सिद्ध हो जाता है। सपने और सत्य में यहां बहुत फर्क नहीं है, शायद एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

सम्राट डरा। रात ही, आधी रात ही ज्योतिषी बुलावा लिए, कहा कि सपने की खोजबीन करो। उस समय के जो फ्रायड होंगे, जुंग, एडलर—मनोवैज्ञानिक, सब बुला लिये। राजधानी में थे बड़े-बड़े मनोवैज्ञानिक, ज्योतिषी और विचारक, वे सब आ गए अपने-अपने शास्त्र लेकर; और उनमें बड़ा विवाद छिड़ गया कि इसका अर्थ क्या है। कोई कुछ अर्थ करे, कोई कुछ अर्थ करे—अपने-अपने अर्थ ... । सम्राट तो घबड़ाने लगा। वैसे ही विबूचन में पड़ा था, इनके अर्थ सुनकर और इनका विवाद सुनकर और उलझ गया।

शास्त्रों से अक्सर लोग सुलझते नहीं और उलझ जाते हैं। पंडितों की बातों को सुनकर लोगों का समाधान नहीं होता, और समाधान पास हो तो वह भी चला जाता है। तर्क-जाल से समाधान हो भी नहीं सकता।

उनमें बड़ा विवाद छिड़ गया। उनमें बड़ा अहंकार का उपद्रव मच गया। उनको प्रयोजन ही नहीं सम्राट से। सम्राट ने कई बार कहा, कि भाई मेरे, नतीजे की कुछ बात करो, क्योंकि सूरज उगने लगा। और सूरज ऊगने लगा, तो सूरज के डूबने में देर कितनी लगेगी? मुझे कुछ कहो कि मैं करूं क्या? मगर वे तो विवाद में तल्लीन थे। वह तो अपने शास्त्रों से उद्धरण दे रहे थे। वह तो अपनी बात सिद्ध करने में लगे थे।

आखिर, सम्राट का बूढ़ा नौकर था, उसने सम्राट के पास जाकर कहा: यह विवाद कभी समाप्त नहीं होगा और सांझ जल्दी आ जायेगी। मैं जानता हूं कि पंडितों के विवाद कभी निष्कर्ष पर नहीं पहुंचते। सदियां बीत गईं, कोई निष्कर्ष नहीं है! जैन, बौद्ध अभी भी विवाद करते हैं; हिन्दू, जैन अभी भी विवाद करते हैं; ईसाई-हिन्दू अभी भी विवाद करते हैं—विवाद जारी है। आस्तिक, नास्तिक विवाद कर रहे हैं—विवाद जारी है।



हजारों साल बीत गए, एक भी तो नतीजा नहीं है। तो क्या आप सोचते हैं सांझ होते होते नतीजा ये निकाल पायेंगे? इनको करने दो विवाद। मेरी मानो, यह महल...इस महल में अब क्षण-भर भी रुकना ठीक नहीं है, यहां से भाग चलें... भाग जाओ। तुम्हारे पास तेज घोड़ा है ले लो, और जितनी दूर निकल सको इस महल से निकल जाओ। इस महल में जो सूचना मौत ने दी है, तो इस महल में अब रुकना ठीक नहीं है। इनको विवाद करने दो; बचोगे तो बाद में इनका निष्कर्ष समझ लेना।

बात सम्राट की समझ में आई, कुछ करना जरूरी है। और क्या किया जा सकता है? लिया उसने अपना तेज घोड़ा और भागा...। पंडित विवाद करते रहे, सम्राट भागा। सांझ होते-होते काफी दूर निकल आया, सैकड़ों मील दूर निकल आया; ऐसा तेज उसके पास घोड़ा था। खुश था बहुत। एक आमों के बगीचे में सांझ हुई, तो रुका। घोड़े को बांधा। न केवल महल छोड़ आया था, साम्राज्य भी अपना पीछे छोड़ आया था। यह दूसरे राज्य में प्रवेश कर गया था। घोड़े को बांधा, घोड़े को थपथपाया, धन्यवाद दिया, कहा कि—तू मुझे ले आया इतने दूर...दिन में तूने एक बार रुकके भी श्वास न ली। मैं तेरा अनुगृहीत हूं।

जब वह यह कह ही रहा था और सूरज ढल रहा था, अचानक चौंका, वही हाथ जो रात सपनेमें देखा था, कंधे पर है। लौट कर देखा—मौत खड़ी है, खिलखिलाकर हंस रही है। सम्राट ने पूछा, कि बात क्या है? मौत ने कहा, कि धन्यवाद मुझे देने दें आपके घोड़े को, आप न दें। क्योंकि मैं बेचैन थी इसलिए रात सपने में आई थी। मरना तो तुम्हें इस अमराई में था, और इतना फासला और कुल चौबीस घंटे बचे...तुम पहुंच पाओगे कि नहीं, चिन्ता मुझे थी। मौत तुम्हारी यहां घटनी थी। घोड़ा ले आया, ठीक वक्त पर ले आया, गजब का घोड़ा है!

तुम भागोगे कहां? कौन जाने तुम जहां भागकर जा रहे हो, वहीं मौत घटनी हो, उसी अमराई में! मौत तो घटनी है। भागकर जाने का कोई उपाय नहीं है। मौत तुम्हें चारों घड़ी खोज रही है, चारों आयाम खोज रही है।

> काल फिरत है हाल रैणदिन लोइ रे।
> हनै राव अरु रंक गिणै नहिं कोइ रे॥

और मौत किसी की चिन्ता नहीं करती, कि तुम धनी हो कि गरीब, पदवीधारी हो कि पदवी-हीन, राजा हो कि रंक—किसी की गिनती नहीं करती।

> यह दुनिया वाजिद बाट की दूब है।
> हरि हां, पाणी पहिले पाल बंधे तो खूब है॥

यह ऐसा ही समझो, यह दुनिया ऐसे ही है, जैसे हाट भरी हो, बाजार भरा हो और

डर हो...आकाश में बादल घिरे हों, तुम अपनी दुकान लगा रहे हो। पानी गिरने के पहले अगर पाल तन जाए, तो ठीक है...हरि हां, पाणी पहिले पाल बंधे तो खूब है।

खयाल रखना, ये बादल तो घिरे हैं आकाश में मृत्यु के, इनके पहले पाल तन जाए तो ठीक—इनके बरसने के पहले! मौत इसके पहले तुम्हें पकड़े, तुम जरा अमृत का स्वाद ले लो तो पाल तन जाए। मौत आए इसके पहले तुम परमात्मा को थोड़ा जान लो, तो बात बन जाए, तो बिगड़ी बन जाए। हरि हां, पाणी पहिले पाल बंधे तो खूब है।

पानी तो बरसेगा, बादल घिर रहे हैं, घुमड़ रहे हैं, बिजली कौंध रही है। और जल्दी करो, अपना तम्बू तान लो, कुछ सुरक्षा का उपाय कर लो। यहां का तो सब यहीं पड़ा रह जाएगा, इसलिए इससे कोई सुरक्षा नहीं हो सकती, कुछ परलोक की सुध लो।

डोला लिये चलो तुम झटपट छोड़ो अटपट चाल, रे
सजन भवन पहुंचा दो हमको, मन का हाल बिहाल, रे।
बरखा-रितु में सब सहेलियां मैके पहुंचीं आय, रे
बाबुल घर से आज चलीं हम पिय घर लाज बिहाय, रे
उनके बिन बरसती रातें कैसे कटें अचूक, रे
पिय की बांह उसीस न हो तो मिटे न मन की हूक, रे,
डोले वालो, बढ़े चलो तुम आया संध्या काल, रे।
ढली दुपहरी, किरनें तिरछी हुईं सांझ नजदीक, रे
अभी दूर तक दीख पड़े है पथ की लम्बी लीक, रे
आज सांझ के पहले ही तुम पहुंचा दो पिय-गेह, रे
हम कह आई हैं इन्दर से रात पड़ेगा मेह, रे;
घन गरजेंगे, रस बरसेगा, होगी सृष्टि निहाल, रे
डोला लिये चलो तुम जल्दी छोड़ो अटपट चाल, रे!
बाबुल के घर नेह भरा है पर है द्वैत विचार, रे
साजन के नव नेह सलिल में है अद्वैत विहार, रे
हृदय से हृदय, प्राण से प्राण आज मिलें भरपूर, रे
पिय-मय तिय-मय पिय जब हों तब हो संभ्रम दूर, रे
दूर करो पथ के अन्तर का अटपट जंजाल, रे
डोले वालो, बढ़े चलो तुम आया संध्या काल, रे!

जल्दी करो सांझ घिरने लगी...।



डोले वालो चले चलो तुम झटपट छोड़ो अटपट चाल, रे
साजन भवन पहुंचा दो हमको, मन का हाल बिहाल, रे।

उस प्रभु का थोड़ा अनुभव हो जाए...।

ढली दुपहरी, किरनें तिरछी हुईं सांझ नजदीक, रे
अभी दूर तक दीख पड़े हैं पथ की लम्बी लीक, रे
आज सांझ के पहले ही तुम पहुंचा दो पिय-गेह, रे

और भी बहुत-बहुत जन्मों में तुम चले हो और पिया के घर तक नहीं पहुंचे। सांझ बहुत बार पड़ गई है और तुम पिया के घर से दूर ही रह गए। और-और न मालूम कितने बाजारों में और कितने हाटों में, तुम्हारी दुकान उजड़ी है! वर्षा आ गई, मेघ बरसे, और तुम पाल नहीं तान पाये हो। इस बार न चूको। बार-बार चूके हो, इस बार न चूको। अब कुछ करो! ठीक कहते हैं वाजिद—

यह दुनिया वाजिद वाट की दूब है।
हरि हां, पाणी पहिले पाल बंधे तो खूब है॥

तो मजा आ जाए, पानी के पहले पाल बंध जाए, मौत के पहले अमृत का थोड़ा स्वाद आ जाए...। आ जाए अमृत का स्वाद, तो जिन्दगी कुछ और हो जाती। जिन्दगी ही कुछ और नहीं हो जाती, मौत भी कुछ और हो जाती है, सारा स्वाद बदल जाता है। दृष्टि बदल जाती है, तो सारी सृष्टि बदल जाती है।

क्यों बजाई बांसुरी? मैं तो, सजन, आ ही रही थी,
अयुत जन्मों की तृषा भर नयन में ला ही रही थी।

फिर तो मृत्यु उस प्यारे की पुकार बन जाती है, उसकी टेर बन जाती है। फिर तो उसकी बांसुरी बन जाती है। फिर तो झटपट आदमी तैयार हो जाता है, चलने को तत्पर हो जाता है। प्रिय मिलन....देह की बाधा है, वह भी छूटी जा रही है। आत्मा उन्मत्त हो जाती है।

क्यों बजाई बांसुरी? मैं तो, सजन, आ ही रही थी;
अयुत जन्मों की तृषा भर नयन में ला ही रही थी।
क्या बताऊं कब सुने थे तव सुरति-आह्वान के स्वन?
युग अनेकों हो चुके हैं जब सुना था वह निमन्त्रण!
किन्तु झंकृत है अभी तक उन स्वरों से प्राण, तन, मन;
नवल स्वर-शर क्यों पुरानी कसक अस्थायी नहीं थी!!
सजन, मैं आ ही रही थी।
क्या कहूं है पंथ कैसा, क्या दशा है चरण-तल की?

क्या कहानी मैं सुनाऊं आज निज मात्रा विकल की ?
स्वेद झलका भाल पर, पद तले शोणित-धार झलकी;
किन्तु मैं तव निठुरता पर, सतत मुसका ही रही थी;
सजन, मैं आ ही रही थी।
क्या कहूं, कब श्याम घन बन तुम घिरोगे मन गगन में ?
क्या बताऊं, मधु पवन बन कब लगोगे तप्त तन में ?
कुछ कहो तो, शरद-शशि बन कब खिलोगे शून्य मन में ?
क्यों बजाई वेणु ? मैं ये प्रश्न सुलझा ही रही थी,
सजन, मैं आ ही रही थी।
याद है : मैंने तुम्हारे हैं कभी पद-पद्म चूमे;
तव कमल-मुख पर कभी हैं मत्त मम दृग भृंग झूमे;
पूर्ण अंगीकार में था लुप्त द्विविधा-रूप-तू-मैं।
विगल होकर भी मिलन के गीत मैं गा ही रही थी;
सजन, मैं आ ही रही थी।
क्यों बजाई बांसुरी ? मैं तो, सजन, आ ही रही थी,
अयुत जन्मों की तृषा भर नयन में ला ही रही थी।

मृत्यु तो तब उस सजन की, उस प्यारे की पुकार मालूम होती है—उसकी बांसुरी की टेर...। जैसे यमुना तट पर, दूर वंशी-वट में कृष्ण ने बजाई हो बांसुरी, और राधा भाग चली हो और कहती हो—क्यों बजाई बांसुरी ? मैं तो आ ही रही थी...। ऐसी ही मृत्यु प्रतीत होती है उसे, जिसने पानी के पहले पाल बांध लिया।

प्यारा दूर नहीं है; देह से तादात्म्य है, इसलिए दूर है, देह से तादात्म्य छूटे, तो निकट है। प्यारा दूर नहीं है, देह की ही दीवाल है, इसलिए दिखाई नहीं पड़ता है। देह से थोड़े ऊपर उठो, तो दर्शन हो, तो दरस-परस हो।

विचरहु पिय की डगरिया, बसहु पिया के गांव
पिय की ड्यौढ़ी बैठिकै, रटहु पिया कौ नांव।
रात अंधेरे पाख की, दीपक हीन कुटीर
आय संजोवहु दीयरा, हियरा भयौ अधीर।
विहंसौ झूला-झूल प्रिये, मम रसाल की डाल
कूकौ कोकिल-सी तनिक गूंजे सब दिक्-काल।
हम विराग आकाश में बहुत उड़े दिन-रैन
पै मन पिय-पग-राग में लिपटि रह्यौ बेचैन।



व्यर्थ भये निष्फल गये जोग साधना यत्न
कौन समेटे धूरि जब मन में पिय-सो रत्न।
कहं धूनी की राख यह, कहं पिय चरण पराग
कहां बापुरी विरति यह, कहां स्नेह रस राग ?
अरुणा भई विभावरी ढूंढ़त पिय कौ गांव
कितै पिया की डगरिया, कितै पिया कौ ठांव ?

पूछो, खोजो—
अरुणा भई विभावरी ढूंढ़त पिय कौ गांव
कितै पिया की डगरिया, कितै पिया कौ ठांव ?

पूछो, खोजो; ठांव दूर नहीं, गांव दूर नहीं है। रुके पांव तो, तो आ गया गांव। ठहरें पांव, तो आ गया गांव। चित्त दौड़े न, चित्त भागे न, ठहरे, थिर हो, बस आ गया गांव। और उस प्यारे की थोड़ी-सी भी झलक मिल जाए, एक बिजली भी कौंध जाए, तो बस है...। फिर बोध हो जाएगा, कि नहीं कोई मृत्यु कभी हुई है, न हो सकती है।

सुकरित लीनो साथ पड़ी रहि मातरा।

दौलत तो सब पड़ी रह जाएगी, हां जो थोड़ा-सा कुछ शुभ किया हो, वह साथ जाएगा।

सुकरित लीनो साथ पड़ी रहि मातरा—और तो सब पड़ा रह जाएगा, कुछ शुभ किया हो, कुछ सेवा की हो, कुछ आनंद-भाव से बांटा हो, कुछ दिया हो ...। जो-जो छीना-झपटा है, वह सब तो पड़ा रह जाएगा, जो दिया है, वह साथ जाएगा।

यह बड़ा बेबूझ गणित है। जीसस का प्रसिद्ध वचन है : जो तुमने छीना है, झपटा है, वह तो छीन लिया जाएगा, झपट लिया जाएगा, जो तुमने दिया है, जो तुमने बांटा है, वही तुम्हें अंत में मिला जाएगा।...बांटो !

सुकरित लीनो साथ पड़ी रहि मातरा।
लांबा पांव पसार बिछाया सांथरा।।

चले अब, पड़ गए अर्थी पर, पसार दिए पांव। सब पड़ा रह गया, जो छीना था, झपटा था। औरों ने छीना था, झपटा था, उनका पड़ा रह गया; फिर तुमने छीना-झपटा, तुम्हारा पड़ा रह जाएगा। यह जमीन यहां रह जाएगी, यह धन यहां रह जाएगा—यह सब यहां रह जाएगा।

तुम साथ क्या ले जा सकोगे ? शुभ भाव, ध्यान की आनंद दशायें, ध्यान की आनंद दशा में तुम से बहा हुआ प्रेम; तुमने अपनी जीवन-ऊर्जा जो बांटी, वही तुम साथ ले जाओगे।

यह उलटा नियम है—जो तुम जोड़ते हो, वह पड़ा रह जाएगा, जो तुम बांटते हो, वही साथ जाएगा।

लेय चल्या बनवास लगाई लाय रे—अब चले, बंध गई अर्थी, जल्दी ही लोग आग लगा देंगे। पड़े रहोगे वन में।

हरि वाजिद, देखै सब परिवार अकेलो जाय रे—और चले अकेले, अब कोई साथी नही है....संगी नहीं है सारा परिवार खड़ा देखता है। जिनको अपना माना, जिनको सोचा था साथ देंगे—वे सब भी साथी-संगी जीवन के हैं, मृत्यु में तुम अकेले हो। मृत्यु में तो सिवाय परमात्मा के और कोई साथ नहीं हो सकता। इसलिए कुछ साथ उससे जोड़ो। कुछ रस उससे लगाओ। कुछ पिया का गांव खोजो, कुछ पिया की राह खोजो!

भूखो दुर्बल देख नाहिं मुंह मोड़िये।
जो हरि सारी देय तो आधी तोड़िये॥

अगर परमात्मा ने तुम्हें पूरी रोटी दी है, तो कम-से-कम आधी तो बांट दो।

जो हरि सारी देय तो आधी तोड़िये...।

दे आधी की आध ...। न दे सको आधी, तो आधी की आध सही। न दे सको आधी की आध, तो कम-से-कम 'अरध की कौर'....कुछ तो बांट लो!

दे आधी को आध अरध की कौर रे।
हरि हां, अन्न सरीखा पुन्य नाहिं कोइ और रे॥

तुम्हारे चारों तरफ लोग हैं, जिनके जीवन में बहुत तरह के दुख हैं—शरीर के दुख हैं, मन के दुख हैं, आत्मा के दुख हैं। कुछ भी बटा लो, कोई भी दुख बटा लो। किसी का दुख थोड़ा कम कर सको तो करो।

लेकिन हम तो उलटा करते हैं, हम लोगों के दुख बढ़ा देते हैं, घटाने की तो बात और। हम जिस चित्त की महत्त्वाकांक्षा की दौड़ में जीते हैं, वहां लोगों के दुख बढ़ जाते हैं, घटते नहीं। थोड़ा बांट लो दुख।

मगर कौन बांट सकेगा? वही बांट सकेगा दुख दूसरों के, जिसके भीतर सुख का आविर्भाव हुआ हो। तुम खुद ही दुखी हो, तो क्या खाक तुम दूसरों के दुख बांटोगे।

इसलिए मैं तुमसे यह नहीं कहता, कि तुम जाओ और लोगों की सेवा में लग जाओ। पहले तो मैं कहता हूं, पहले तुम जागो। पहले वह जो रोटी, जिसकी बात कर रहे हैं वाजिद, तुम्हारे भीतर तुम्हारे हाथ तो लग जाए, फिर तुम बांट लेना—आधी बांटना, पूरी बांटना!

और मैं तुमसे कहता हूं, जब हाथ लगती है वह रोटी, तो आधी कौन बांटने की फिक्र



करता है, पूरी ही बांटता है; क्योंकि उसके बांटने में वह और बढ़ती है। जितना बांटते हो, उतनी बढ़ती है भीतर की सम्पदा। जितना उलीचते हो, उतने ही नए-नए झरनों से रसधार तुम्हारे भीतर बही चली आती है।

जो बांटने से घट जाए, वह तो प्रेम नहीं। जो बांटने से घट जाए, वह तो सम्पदा नहीं। लेकिन पहले हो। हो सकती है, क्योंकि जिसकी हम तलाश कर रहे हैं, वह हम से बाहर नहीं है।

व्यर्थ भये निष्फल गये जोग साधना यत्न
कौन समेटे धूरि जब मन में पिय-सो रत्न।

तुम्हारे भीतर ही प्यारा है, रत्नों का रत्न है, सम्पदाओं की सम्पदा है। जीसस ने कहा है—साम्राज्य प्रभु का तुम्हारे भीतर है। लेकिन तुम भिखमंगे बने हो। तुम धूर बटोर रहे हो। तुम कूड़ा-करकट मांग रहे हो। तुम दूसरों के सामने हाथ फैलाय खड़े हो। जरा भीतर खोजो।

और....एक बार जिसने भीतर देखा, उसे पता चलता है कि मैं सम्राटों का सम्राट हूं। भगवत्ता मेरा स्वभाव है। भगवान मेरे भीतर विराजा है। फिर बांटने की यात्रा शुरू होती है। फिर बांटने का आनंद शुरू होता है।

मन के विश्वास का यह सोनचक्र रुके नहीं
जीवन की पियरी केसर कभी चुके नहीं
उम्र रहे झलमल
ज्यों सूरज की तश्तरी
डंठल पर विगत के
उगे भविष्य संदली
आंखों में धूप लाल
छाप उन ओठों की
जिसके तन रोओं में
चंदरिमा की कली
छांह में बरौनियों के चांद कभी थके नहीं
जीवन की पियरी केसर कभी चुके नहीं
मन में विश्वास
भूमि में ज्यों अंगार रहे
अगरुई नजरों में
ज्यों अलोप प्यार रहे

पानी में धरा गंध
रूख में बयार रहे
इस विचार-बीज की
फसल बार-बार रहे
मन में संघर्ष फांस गड़कर भी दुखे नहीं
जीवन की पियरी केसर कभी चुके नहीं
आगम के पंथ मिलें
रांगोली रंग भरे
संतिए-सी मंजिल पर
जन-भविष्य दीप धरे
आस्था-चमेली पर
न धूरी सांझ घिरे
उम्र महागीत बने
सदियों में गूंज भरे
पाप में अनीति के मनुष्य कभी झुके नहीं
जीवन की पियरी केसर कभी चुके नहीं

बांटो, और तुम चकित हो जाओगे—जीवन की पियरी केसर कभी चुके नहीं! जो जितना बांटता है इस जीवन की केसर को, उतनी बढ़ती चली जाती है। यह एक छोटा-सा बीज तुम्हारे भीतर पड़ जाए तुम्हारे हृदय में, कि बांटना, पाना है; पकड़ना, गंवाना है, तो तुम्हें आध्यात्म का गणित समझ में आ गया।

अर्थशास्त्र का एक गणित है—पकड़ो तो बचेगा, छोड़ा कि गया। अध्यात्म का गणित बिल्कुल उलटा है—पकड़ा, कि गंवाया। छोड़ा, कि पाया। उपनिषद कहते हैं—'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः' जिन्होंने छोड़ा, उन्होंने पाया। तेन त्यक्तेन भुंजीथाः यह पूरा आध्यात्म का गणित इसमें समाविष्ट है—इस छोटे-से सूत्र में!

लेकिन देने के पहले होना चाहिए। तुम बांटोगे क्या खाक। जब तुम्हारी आंखे अंधेरे से भरी हैं। और तुम्हारे हृदय में जब किसी सम्पदा का कोई बोध नहीं है, और तुम्हें अमृत का कोई स्वाद नहीं मिला—बांटोगे क्या खाक! जब मिले अमृत का स्वाद तो बंटना शुरू हो। जीवन की पियरी केसर कभी चुके नहीं ...और फिर जीवन में मस्ती ही मस्ती है। बांटने का मजा आ गया। रसधार बही....।

अलमस्त हुई मन झूम उठा, चिड़ियां बहकी डरियां डरियां
चुन ली सुकुमार कली बिखरी मृदु गूंथ उठी लरियां लरियां



किसकी प्रतिमा हिय में रखि के नव आर्ति करूं थारियां थारियां
किस ग्रीव में डार ये डालूं सखी, अंसुआन ढरूं झरियां झरियां
सुकुमार पधार खिलो तुक तो इस दीन गरीबिन के अंगना
हंस दो, कस दो रथ की रसरी, खनका दो अजी कर के कंगना
तुम भूल गये कल से हलकी चुनरी गहरे रंग में रंगना
कर में कर थाम लिये चल दो रंग में रंग के अपने संग—ना?
निज ग्रीव में माल-सी डाल तनिक कृतकृत्य करौ शिथिला बहियां
हिय में चमके मृदु लोचन वे, कुछ दूर हटे दुख की बहियां
इस सांस की फांस निकाल सखे, बरसा दो सरस रस की फुहियां
हरखे हिय रास रसे जियरा, खिल जायें मनोरथ की जुहियां।
अलमस्त हुई मन झूम उठा, चिड़ियां चहकी डरियां डरियां
चुन ली सुकुमार कली बिखरी मृदु गूंथ उठी लरियां लरियां
किसकी प्रतिमा हिय में रखिके नव आर्ति करूं थारियां थारियां
किस ग्रीव में डार ये डालूं सखी, अंसुआन ढरूं झरियां झरियां

एक आनंद, एक अहोभाग्य, एक सुप्रभात उतर आती है। सूरज ऊगता है। आरती होनी शुरू ही जाती है! लेकिन जब तक तुम कूड़ा-करकट बटोर रहे हो, रोते ही रहोगे! उस प्यारे के गले में हाथ न डाल पाओगे। उस प्यारे के गले में हाथ डालने का उपाय भी तुम्हारे भीतर है, मार्ग भी तुम्हारे भीतर है।

नृत्य हो सकता है जीवन, उत्सव हो सकता है जीवन—होना चाहिये। न हो पाये, तो तुमने अपने को स्वयं धोखा दिया—होना ही चाहिए। जैसे हर बीज को वृक्ष होना चाहिए और फूल बनना चाहिए, ऐसे हर मनुष्य को खिलना चाहिए, परमात्मामय होना चाहिए, और जब तक भक्त भगवान न हो जाए, तब तक रुकना नहीं चाहिए, बढ़ते ही चलना चाहिए। तब तक याद रहे कुछ अधूरा है, कुछ अभी भरा नहीं, कुछ खाली है, कुछ रिक्त है। और तब तक जीवन में असन्तोष है।

वर्षा हो जाती है संतोष की, जैसे ही मृत्यु के पार अमृत का आकाश दिखाई पड़ता है। यह आकश दूर भी नहीं है। और इस आकाश तक जोड़ने वाला द्वार भी-तुम्हारे भीतर है। उस द्वार को ही वाजिद ने कहा है—शून्य; विचार से मुक्त हो जाओ, निर्विचार हो जाओ। कहै वाजिद पुकार सीख एक सुन्न रे!

आज इतना ही।

## कुछ और ही मुकाम मेरी बंदगी का है

आठवां प्रवचन; दिनांक २८ सितम्बर १९७८;

श्री रजनीश आश्रम; पूना

आपने इतने ऊंचे, इतने अकल्पनीय शिखर दिखा दिये हैं कि उससे अपनी बौनी और लंगड़ी सामर्थ्य प्रगट हो गयी है। एक ओर उनके दिखने का आनंद है, तो दूसरी ओर तड़पने के अलावा और कोई रास्ता नहीं दिखता! आप ही सम्हालिएगा!

> आपकी आंखों का आकाश
> सजल, श्यामल, सुंदर-सा पाश
> खोया मेरा मन-खग नादान
> सुध-बुध भूल, भटक अनजान!

विरहावस्था में भक्त दुखी होता है या सुखी?

भक्त की चाह क्या है—पुण्य, या ज्ञान, या स्वर्ग?

पहला प्रश्न : आपने इतने ऊंचे, इतने अकल्पनीय शिखर दिखा दिये हैं कि उससे अपनी बौनी और लंगड़ी सामर्थ्य प्रगट हो गई है। एक ओर उनके दिखने का आनन्द है, तो दूसरी ओर तड़पने के अलावा और कोई रास्ता नहीं दिखता! आप ही सम्हालिएगा! घुटन और छटपटाहट के क्षणों में अनुभव में आइएगा! आपकी अमृत की वर्षा करने वाली आंखें, मेरे अंतस में सदा कौंधती रहें।

> आपकी आंखों का आकाश
> सजल, श्यामल, सुंदर-सा पाश।
> खोया मेरा मन-खग नादान
> सुध-बुध भूल, भटक, अनजान!

* मीरा! मैं जो कह रहा हूं, अत्यन्त सरल है, सीधा है। मैं जो कह रहा हूं वह सहज है, स्वाभाविक है। मैं किन्हीं ऊंचे शिखरों की बात नहीं कर रहा हूं। ऊंचे शिखर की भाषा भी अहंकार की भाषा है।

इसे समझो। अहंकार सदा ऊंचाई पाना चाहता है। अहंकार महत्वाकांक्षी है, संसार में भी ऊंचाई पाना चाहता है, परमात्मा में भी ऊंचाई पाना चाहता है। ऊंचाई का भाव अहंकार का विस्तार है। और अहंकार ऊंचाई से बहुत आकर्षित होता है, नहीं तो लोग गौरीशंकर पर न चढ़ें। गौरीशंकर पर चढ़ने में कुछ भी तो सार नहीं है, वहां पाने को कुछ भी नहीं है; लेकिन गौरीशंकर की ऊंचाई, बस पर्याप्त है, लोगों को चुनौती देती है, चढ़ने का आकर्षण पैदा होता है।

जितना कठिन काम हो, उतना अहंकार करने को आतुर हो जाता है। अहंकार सरल काम करने में जरा भी उत्सुक नहीं है। सरल काम अहंकार के लिए बिलकुल ही रुचिपूर्ण नहीं है। इसलिए अहंकार ऊंचाइयों की भाषा में सोचता है, विचार करता है।

और स्वभावतः जब तुम ऊंचाइयों की भाषा में सोचना शुरू करो, तो अपना बौना-

पन भी दिखाई पड़ेगा। तुम बौनी नहीं हो, कोई बौना नहीं है—अहंकार तुम्हें बौना बना देता है। पहले अहंकार एक शिखर खड़ा कर देता है सामने—बहुत ऊंचाई पाने के लिए एक महत्त्वाकांक्षा। फिर जब लौटकर अपनी तरफ देखते हो तो पाते हो—मैं इतना छोटा, मेरे हाथ इतने छोटे, इस बड़े आकाश को मैं कैसे पा सकूंगा ? तब तड़प पैदा होती है। यह अहंकार का रोग है।

न तो कोई ऊंचाई पानी है; परमात्मा ऊंचा नहीं है, परमात्मा तुम्हारी निजता है। परमात्मा तुम्हारे भीतर मौजूद है। पाने की भाषा ही छोड़ो, पाया हुआ है। यही मेरी उद्घोषणा है। परमात्मा को तुम छोड़ना भी चाहो, तो छोड़ न सकोगे, छोड़ने का कोई उपाय नहीं है, उसके बिना जिओगे कैसे ?

इसलिए तुमसे अब तक कहा गया है, परमात्मा को पाओ। मैं तुमसे कहता हूं, सिर्फ याद करो, पाने की बात ही नहीं करो। पाना कुछ है नहीं, पाया हुआ है। परमात्मा हमारी निजता का नाम है। परमात्मा तुम्हारे भीतर समाविष्ट है, तुम उसके भीतर समाविष्ट हो। जैसे बूंद में सागर है; एक बूंद का रहस्य समझ लो, तो सारे सागरों का रहस्य समझ में आ गया। जैसे एक-एक किरण में सूरज है; एक किरण पहचान ली, तो प्रकाशों के सारे राज खुल गए ! एक किरण का घूंघट उठ जाए, तो सारे सूरज का घूंघट उठ गया। ऐसे ही तुम किरण हो उस सूरज की। तुम बूंद हो उस सागर की। तुममें सब छिपा है। तुममें पूरा समाया है, पूरा-पूरा समाया है !

मैं यह नहीं कह रहा हूं कि परमात्मा दूर है, बहुत ऊंचाई पर है, चढ़ने हैं पहाड़ तब मिलेगा। मैं तुमसे यह कह रहा हूं, जरा आंख बंद करनी है, जरा चलना छोड़ना है, जरा दौड़ना बंद करना है; बैठ रहो और मिल जाए; चुप हो रहो और मिल जाए। मैं तो कठिन की बात ही नहीं कर रहा हूं।

लेकिन अहंकार का चाल यही है अहंकार कठिन में उत्सुक होता है, क्योंकि कठिन के सामने ही सिद्ध करने का मजा है। जितनी बड़ी कठिनाई को सिद्ध कर सकोगे, उतना ही अहंकार तृप्त होगा। इसलिए तो लोग उत्सुक होते हैं—प्रधानमंत्री हो जायें, राष्ट्रपति होएं। कठिनाई है, साठ करोड़ का देश है, एक ही आदमी राष्ट्रपति हो सकता है। बड़ी कठिनाई है, साठ करोड़ ही लोग राष्ट्रपति होना चाहते हैं और एक ही हो सकता है। बस इससे ज्यादा कोई मूल्य नहीं है राष्ट्रपति के पद का।

और जैसे गौरीशंकर पर पहुंच कर हिलेरी मूढ़ की तरह खड़ा हो गया था, ऐसे ही तुम्हारे राष्ट्रपति राष्ट्रपतियों के पद पर पहुंच कर मूढ़ की तरह खड़े हो जाते हैं। फिर कुछ सूझता नहीं है—अब करना क्या है ? वह तो भला हो उन लोगों का जो अभी राष्ट्रपति-पद पर नहीं पहुंच पाये हैं, कि राष्ट्रपतियों को काम में संलग्न रखते हैं—उनकी



खींचातानी, पकड़ में, उनकी टांग खींचने में, उनको गिराने की कोशिश में।

तो जो चढ़ गए शिखर, उनको फिर कुछ और नहीं सूझता सिवाय एक बात के, कि चढ़े रहें, किसी तरह बैठे रहें पदों पर।... अन्यथा कुछ भी नहीं है। अगर कोई और संघर्ष करने वाला न हो, तो तुम्हारे राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री जैसे मूढ़ मालूम पड़ेंगे दुनिया में, कोई इतना मूढ़ मालूम न पड़ेगा... अगर लोग उत्सुक न हों।

लेकिन सारे लोग उत्सुक हैं। अहंकार की दौड़ में सभी संलग्न हैं। हम प्रत्येक बच्चे को पैदा होते से ही, मां के दूध के साथ, अहंकार का जहर पिलाते हैं। अहंकार कहता है—जो कठिन हो वह करके दिखाओ, जो सर्वाधिक कठिन हो वह करके दिखाओ। ताकि नाम रह जाए... । ताकि शिलाखंडों पर तुम्हारे चिह्न छूट जायें। ताकि इतिहास बने... इतिहास बनाओ !

यही अहंकार कभी जब संसार से ऊब जाता है और परमात्मा में उत्सुक होता है, तो भी इसकी भाषा जारी रहती है। यह परमात्मा को बहुत दूर रखता है। और परमात्मा पास से भी पास है। परमात्मा को पास कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि पास में भी दूरी मालूम होती है। जो तुम्हारे पास बैठा होता है, उसमें और तुममें थोड़ी दूरी तो होती है। जो शरीर सटा कर बैठा है, उसमें भी थोड़ी दूरी होती है। पास भी दूरी का ही एक मापदंड है। नहीं, परमात्मा पास-से-पास है, ऐसा कहना भी ठीक नहीं है। तुम परमात्मा हो। तत्त्वमसि—तुम वही हो। तुम रत्ती-भर भिन्न नहीं हो। बुद्धों की यही देशना है; तुम्हें याद दिलानी है। तुम्हें परमात्मा पाने जाना नहीं है।

मैं किन्हीं ऊंचे शिखरों की बात नहीं कर रहा, मैं तो यही कह रहा हूं कि तुम अगर ऊंचे शिखरों की बात छोड़ दो तो स्वयं में प्रवेश हो जाए, तो परमात्मा से मिलन हो जाए। महत्वाकांक्षा छोड़ दो, तो परमात्मा से मिलन हो जाए। महत्वाकांक्षा भटका रही है। महत्वाकांक्षा का ज्वर तुम्हें दूर-दूर ले जा रहा है, घर नहीं आने देता, अपने पर नहीं लौटने देता; कभी धन में, कभी पद में, कभी प्रतिष्ठा में, कभी स्वर्ग में, कभी परमात्मा में, कभी मोक्ष में—लेकिन दूर-दूर भटकाता है।

अपने पर कब लौटोगे ? कभी घड़ी-भर को तो स्वयं रह जाओ—निपट अकेले—बस तुम्हीं और कुछ भी न हो—कोई चित्त में विचार नहीं, कोई वासना नहीं, कहीं जाने की कोई आकांक्षा नहीं... इस ठहरे हुए क्षण में, जब समय रुक जाता है और समय की धारा ठहर जाती है, अनुभव होता है।

मैं तो उस अनुभव की बात कर रहा हूं, जो तुम चाहो तो अभी हो जाए। जरा भी बाधा नहीं है—इसी क्षण। एक क्षण भी ठहरने का कोई कारण नहीं है।

अहंकार पहले बना लेता है दूर चीजों को, फिर जब अपनी सामर्थ्य देखता है, तो

घबड़ाहट शुरू होती है। तो अहंकार का यह द्वंद्व है। अहंकार की उत्सुकता है कठिन में; अगर कठिन न भी हो तो कठिन बना लेता है। अहंकार सीधे-सीधे कान पकड़ना पसंद नहीं करता, उल्टे, घूमकर—दूर के रास्ते से कान पकड़ना पसंद करता है। तो पहले दूरी खड़ी करो, परमात्मा को कठिन बनाओ, गौरीशंकर का शिखर! और फिर जब अपनी तरफ देखोगे, तो बौनापन पाओगे। इसलिए अहंकार कष्ट पाता है; क्योंकि हर शिखर जो तुमने बना लिया, अपने ही शिखर के सामने तुम छोटे हो जाते हो, दीन-हीन हो जाते हो, पंगु हो जाते हो।

मीरा, तेरी बात ठीक है। अगर तूने अकल्पनीय शिखर देखे हैं, तो अपनी बौनी और लंगड़ी सामर्थ्य प्रगट होगी।

लेकिन मैं किसी अकल्पनीय शिखर की बात ही नहीं कर रहा हूं। इसलिए मेरे पास जो आते हैं, उन्हें बौनेपन की बात ही नहीं उठानी चाहिए। तुम और बौने—असंभव! तुम और छोटे, क्षुद्र, लंगड़े, अंधे—असम्भव! क्योंकि तुम अंधे, लंगड़े और बौने, तो परमात्मा अंधा लंगड़ा और बौना हो जाएगा! यह तो परमात्मा का अपमान हो जाएगा।

जरा समझना मेरी बात को, जब मैं कह रहा हूं तुम बौने नहीं, तुम लंगड़े नहीं, तुम क्षुद्र नहीं, तो जल्दी से दूसरी यात्रा पर मत निकल जाना—कि मैं महान, कि मैं विराट, कि देखो, मैं बैठा गौरीशंकर के शिखर पर! मैं यह भी नहीं कह रहा हूं, कि तुम महान, कि तुम बड़े, कि तुम श्रेष्ठ।

मैं तो सिर्फ यही कह रहा हूं, कि यह तुलना की भाषा ही गलत है। न तुम छोटे, न तुम बड़े, तुम वही, जो हो। और वही है परमात्मा—'जो है'। परमात्मा 'जो है' उसका नाम है। अहंकार सदा द्वंद्व खड़ा करता है; जहां बिल्कुल निर्द्वंद्वता है, वहां द्वंद्व खड़ा करता है।

> प्रिय, कितना व्यापक अन्तरिक्ष,
> ये मेरे कितने शिथिल गान!

प्रिय, कितना व्यापक अन्तरिक्ष... पहले आकाश कितना बड़ा, फिर गान मेरे कितने छोटे, फिर पंख मेरे कितने छोटे, फिर कंठ मेरा कितना छोटा!

> प्रिय, कितना व्यापक अन्तरिक्ष,
> ये मेरे कितने शिथिल गान!
> युग-युग के अगणित झोंकों में
> इन दो सांसों का क्या प्रमान!
> कल इन दो नयनों में अपने
> भरकर असीमता के सपने



> मैंने गुरुता की एक नजर
> डाली थी दुनिया के ऊपर!
> फिर अपना मस्तक ऊंचा कर,
> अपनी गर्वान्ध खुदी में भर,
> मैं बोल उठा था गर्वोन्नत
> "मैं हूं समर्थ, मैं हूं महान।"
> पर आज थका-सा, हारा-सा,
> मैं फिरता हूं मारा-मारा।
> बैठा छोटे-से कमरे में
> वह भी न बन सकेगा अपना
> कहता उसका कोना-कोना!
> कितने ही आए, चले गए,
> है कितनों को आना जाना!
> होंठों पर ले विषाद-रेखा,
> गत जीवन की छायाओं से
> मैं घिरा हुआ हूं सोच रहा
> कितना नीचा मेरा मस्तक
> कितना ऊंचा है आसमान!

इस कविता को सुनते समय या पढ़ते समय तुम्हें लगेगा—पहली बात गलत थी, दूसरी बात सही है। तुम्हें लगेगा—जिस क्षण कवि ने कहा :

> फिर अपना मस्तक ऊंचा कर,
> अपनी गर्वान्ध खुदी में भर,
> मैं बोल उठा था गर्वोन्नत
> मैं हूं समर्थ, मैं हूं महान।

तुम्हें लगेगा यह अहंकार की बात है। दूसरी बात—हारा-थका, वृद्धावस्था में जीर्ण-शीर्ण मौत आने लगी, पत्ता पीला पड़ने लगा जीवन का, हाथ कंपने लगे, पैर डगमगाने लगे, अब खड़े होने की भी ठीक-ठीक सामर्थ्य न रही। अब इस हताशा में कवि कहता है।

> होंठों पर ले विषाद-रेखा,
> गत जीवन की छायाओं से
> मैं घिरा हुआ हूं सोच रहा

कितना नीचा मेरा मस्तक
कितना ऊंचा है आसमान !

तुम सोचोगे दूसरी बात सच है। मैं कहता हूं, दोनों बातें गलत हैं। दोनों बातें एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। पहले सोचोगे महान, तो फिर एक-न-एक दिन हीनता का पता चलेगा। मैं कहता हूं : न तुम महान, न तुम हीन, तुम बस वही हो—जो है, जैसा है।

यहां दो हैं ही नहीं, किससे तौलो ? किसको कहो बड़ा, किसको कहो छोटा ? दो होते तो तौल हो सकती थी। दो होते तो तराजू काम में आ जाता। यहां एक का ही वास है। वही बाहर, वही भीतर, वही मुझमें, वही तुझमें, वही वृक्षों में, वही चांद-तारों में, वही पहाड़ों में, वही छोटे-से-छोटे कण में, और वही विराट-से-विराट आकाश में—एक का ही वास है, एक का ही विस्तार है। तौलोगे कैसे ? तुलना किससे करोगे ?

मगर हमारी भाषा में यह तुलना भरी है, जगह-जगह भरी है। एक मित्र कल ही मुझे कहते थे, कि मैं बहुत परतंत्र हूं, मुझे स्वतंत्र होना है। सभी को लगती है परतंत्रता, तो स्वतंत्रता का भाव पैदा होता है। और मैं तुमसे कहता हूं, परतंत्रता भी परतंत्रता है और स्वतंत्रता भी परतंत्रता है। क्योंकि तुमने एक बात तो मान ही ली कि दूसरा है। परतंत्रता का मतलब होता है कि दूसरा है। अभी उससे बंधे हो, इच्छा हो रही है—कैसे छूट जायें। मगर दोनों ही बातों की बुनियाद में एक ही भ्रांति है कि दूसरा है।

यहां दूसरा है ही नहीं। इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, न तो कोई परतंत्र है और न कोई स्वतंत्र है। परतंत्रता, स्वतंत्रता दोनों ही एक सिक्के के दो पहलू हैं। एक आदमी आसक्त है और दूसरा आदमी कहता है, मैं विरक्त हूं—ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। कैसी आसक्ति, कैसी विरक्ति ? एक आदमी कहता है—मैं भोगी हूं, एक आदमी कहता है—मैं योगी हूं। कैसा भोग, कैसा योग ! भोगी और योगी में जरा भी फर्क नहीं है, रत्ती-भर का फर्क नहीं है।

हालांकि, भाषाकोश में फर्क लिखा है, और तुम्हारे चित्त में भी लिखा है। सदियों से तुम्हें समझाया गया है कि भोगी और योगी—विपरीत। होंगे विपरीत... ऐसे ही जैसे ठंडा और गरम में क्या भेद है ? ठंडक, गर्मी का ही एक माप है और गर्मी ठंडक का ही दूसरा माप है।

कभी एक छोटा-सा प्रयोग करके देखो, एक बाल्टी में पानी भरकर रख लो। एक हाथ को सिगड़ी पर तपाओ और दूसरे हाथ को बरफ पर रखो। एक हाथ को खूब ठंडा हो जाने दो, एक को खूब गरम हो जाने दो। फिर दोनों हाथों को बाल्टी के पानी में डाल दो। अब मैं अगर तुमसे पूछूं कि बाल्टी का पानी ठंडा है या गरम ? तुम बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे, एक हाथ कहेगा—गरम, एक हाथ कहेगा—ठंडा। पानी एक-सा ही है, पानी वही है, बाल्टी में एक ही तापमान का पानी है। लेकिन जो हाथ ठंडा हो गया है, वह कहेगा पानी गरम है और जो हाथ गरम हो गया है, वह कहेगा पानी ठंडा है।



जैसे ठंडक और गर्मी एक ही थर्मामीटर से नापे जाते हैं, वैसा ही तुम्हारा भोग और योग है, वैसी ही विरक्ति और आसक्ति है, वैसी ही परतंत्रता स्वतंत्रता है, वैसी ही अहंकार और विनम्रता है। जरा भी भेद नहीं है। यह एक ही द्वंद्व का विस्तार है।

मगर सदियों तक हमें समझाया गया है तो हमारा संस्कार गहरा हो गया है। हम कहते हैं कि देखो, फलां आदमी कितना विनम्र, कैसा विनम्र ! मगर तुम विनम्र आदमी के भीतर झांक कर देखो, तो पाओगे—वही अहंकार शीर्षासन कर रहा है अब। शीर्षासन करने से कुछ फर्क नहीं पड़ता। पहले अकड़ थी कि मैं बहुत कुछ हूं, सब कुछ हूं, अब अकड़ है कि मैं न कुछ हूं; मगर अकड़ कायम है, अकड़ जरा भी नहीं बदली। पहले धन के लिए दीवाना था, अब ऐसा डर गया है कि कहीं धन पड़ा हो, तो कंपने लगता है।

चीन में बड़ी प्रसिद्ध कथा है। एक फकीर की बड़ी ख्याति हो गई, ख्याति हो गई कि वह निर्भय हो गया है। और निर्भयता अंतिम लक्षण है। एक दूसरा फकीर उसके दर्शन को आया। वह फकीर जो निर्भय हो गया था, समस्त भयों से मुक्त हो गया था, बैठा था एक चट्टान पर। सांझ का वक्त, और पास ही सिंह दहाड़ रहे थे। मगर वह बैठा था शांत, जैसे कुछ भी नहीं हो रहा है। दूसरा फकीर आया, तो सिंहों की दहाड़ सुनकर कंपने लगा, दूसरा फकीर कंपने लगा। निर्भय हो गया फकीर बोला : तो अरे, तो तुम्हें अभी भी भय लगता है, तुम अभी भी भयभीत हो ! फिर क्या खाक साधना की, क्या ध्यान साधा, क्या समाधि पायी ! कंप रहे हो सिंह की आवाज से, तो अभी अमृत का तुम्हें दर्शन नहीं हुआ, अभी मृत्यु तुम्हें पकड़े हुए है !

उस कंपते फकीर ने कहा, कि मुझे बड़ी जोर की प्यास लगी है, पहले पानी, फिर बात हो सके। मेरा कंठ सूख रहा है, मैं बोल न सकूंगा। निर्भय हो गया फकीर अपनी गुफा में गया पानी लेने। जब तक वह भीतर गया, उस दूसरे फकीर ने, जहां बैठा था निर्भय फकीर, उस पत्थर पर लिख दिया बड़े-बड़े अक्षरों में—'नमो बुद्धाय'—बुद्ध को हो नमस्कार।

आया फकीर पानी लेकर। जैसे ही उसने पैर रखा चट्टान पर, देखा, 'नमो बुद्धाय' पर पैर पड़ गया, मंत्र पर पैर पड़ गया; झिझक गया एक क्षण।

आगन्तुक फकीर हंसने लगा और उसने कहा : डर तो अभी तुम्हारे भीतर भी है। सिंह से न डरते होओ, लेकिन पत्थर पर मैंने एक शब्द लिख दिया—'नमो बुद्धाय', उस पर पैर रखने से तुम कंप गए ! भय तो अभी तुम्हें भी है। भय ने सिर्फ रूप बदला

है, बाहर से भीतर जा छिपा है, चेतन से अचेतन हो गया है। भय कहीं गया नहीं है।

निर्भय आदमी में भय नहीं जाता, सिर्फ भय नए रूप ले लेता है, निर्भयता का आवरण ओढ़ लेता है। जो व्यक्ति समाधिस्थ होता है, न तो भयभीत होता है, न निर्भय होता है। निर्भय होने के लिए भी भय का होना जरूरी है, नहीं तो निर्भय कैसे होओगे? विरक्त होने के लिए आसक्ति का होना जरूरी है, नहीं तो विरक्त कैसे होओगे?

विनोबा भावे... अगर तुम सामने उनके रुपये ले जाओ, तो आंख बंद कर लेते हैं। आंख बंद करने की क्या जरूरत? मुंह फेर लेते हैं रुपये से; ऐसा क्या भय है? रुपये में ऐसा क्या है? ऐसे भी लोग तुम जानते हो जिंदगी में जिनको रुपया देखकर एकदम लार लपटने लगती है। जिसको रुपया देखकर लार टपकती है उसमें और जो रुपया देखकर आंख बंद करता है, इसमें कुछ भेद है? दोनों पर रुपया हावी है। दोनों को रुपया प्रभावित करता है। रुपये का बल दोनों के ऊपर है, दोनों से कुछ करवा लेता है। किसी की जीभ से, किसी की आंख से, मगर दोनों से कुछ करवा लेता है। इससे क्या फर्क पड़ता है? फिर आंख भी क्यों बंद कर रहे? शायद कहीं भय होगा कि ज्यादा कहीं देखा तो लार न टपकने लगे; नहीं तो आंख बंद करने की क्या जरूरत है?

एक सुन्दर स्त्री पास तुम्हारे गुजरती है, तुम झट से नीचा सिर कर लेते हो; क्या तुम सोचते हो यह ब्रह्मचर्य है? अगर यह ब्रह्मचर्य है, तो आंख नीची क्यों हो गई? चट्टान को देखकर तो तुम ऐसी आंख नीची नहीं करते, वृक्ष को देखकर तो आंख नीची नहीं करते, सुन्दर स्त्री को देखकर आंख नीची क्यों हो गई?

गांधी जिंदा थे, और विनोबा गांधी को रामायण पढ़कर सुनाते थे। कथा है रामायण की, कि जब सीता को रावण चोरी ले गया, तो सीता ने रावण के रथ से या विमान से अपने गहने, अपने आभूषण जंगल में फेंक दिये—रास्ता राम को मिल सके, कि सीता किस रास्ते से चुराई गई है, कहां से ले जाई गई है, किस दिशा में ले जाई गई... तो वह धीरे-धीरे अपने गहने फेंकती गई।

फिर कथा कहती है कि जब राम को गहने मिले, तो उन्होंने लक्ष्मण से पूछा कि तू पहचान सकता है कि ये गहने सीता के ही हैं? क्योंकि मैं उसके इतने प्रेम था कि मैंने उसे देखकर कभी उसको गहनों पर ध्यान ही नहीं दिया, मुझे समझ में नहीं आ रहा है। फिर मेरा अभी चित्त भी बहुत विह्वल है, मेरी आंखें आंसुओं से भरी हैं, मैं पहचान भी नहीं सकता कि ये गहने सीता के ही हैं या किसी और के। लक्ष्मण ने कहा, कि मैं सिर्फ पैर के गहने पहचान सकता हूं।

महात्मा गांधी ने पूछा विनोबा को: पैर के ही गहने क्यों लक्ष्मण पहचान सकता है? आश्रम में इस पर खूब चर्चा चली। अलग-अलग लोगों ने अलग-अलग उत्तर दिये।



अंततः विनोबा ने कहा, कि इसलिए कि लक्ष्मण सीता को मां की तरह मानता है, इसलिए कभी उसने चरणों से ऊपर आंख नहीं उठाई। सदाचारी है, सीता के प्रति उसके मन में कोई वासना नहीं है। इसलिए सिर्फ पैर के गहने पहचान सकता है। और महात्मा गांधी इस उत्तर से बड़े संतुष्ट हुए।

मैं बहुत हैरान हूं! महात्मा गांधी से भी और विनोबा से भी। क्योंकि अगर लक्ष्मण सीता को मां की तरह मानता है, तो चेहरा क्यों देखने में डर है? कोई मां का चेहरा देखने में डरता है? नहीं, कहीं कोई भीतर वासना दबी होगी।

जरा पन्ने उलटो, पीछे लौटो—जब पहली दफा राम और लक्ष्मण ने सीता को देखा, विवाह के पहले, बगिया में फूल चुनते, तो लक्ष्मण भी मोहित हो आया था। फिर और पन्ने पलटो—स्वयंवर रचा है, राम तो शांत बैठे हैं, अपने समय की प्रतीक्षा कर रहे हैं, मगर लक्ष्मण बीच-बीच में खड़ा हो जाता है कि मैं धनुष तोड़ दूं। लक्ष्मण बड़ा आतुर था धनुष तोड़ने को। उसको रोकना पड़ रहा है बार-बार कि तू ठहर, बड़े भाई के रहते तू कैसे धनुष तोड़ेगा? फिर यह पैर ही देखता है सीता के... जरूर भय होगा, जरूर डर होगा, जरूर वासना होगी।

अगर विनोबा की व्याख्या सही है, तो यह लक्ष्मण की निंदा हो जाएगी। विनोबा ने तो व्याख्या ऐसी की, जिसमें लक्ष्मण का ब्रह्मचर्य प्रगट हो। मगर विनोबा जो व्याख्या करेंगे, विनोबा का ही चित्त तो उस व्याख्या में होगा! और गांधी जो व्याख्या स्वीकार कर लिए, उसमें भी गांधी का चित्त है। दोनों राजी हो गए इस बात से।

और मैं मानता हूं, इसमें लक्ष्मण का अपमान है। मैं तो इतना ही कहना चाहता हूं, लक्ष्मण चेहरा भी देखता होगा सीता का, कोई कारण नहीं है कि न देखे चेहरा; लेकिन जब सीता जैसी सुन्दर स्त्री का कोई चेहरा देखता है तो गहने दिखाई नहीं पड़ते। गहने तो सिर्फ कुरूप स्त्रियों के दिखाई पड़ते हैं। सौन्दर्य की आभा ऐसी होती है कि कहां गहने! सौन्दर्य का प्रकाश ऐसा होता है, दीप्ति ऐसी होती है, कि कहां गहने!

हां, रोज पैर छूता होगा सीता के, जो कि उन दिनों का सामाजिक नियम था, चरणों में सिर रखता होगा, वे गहने परिचित हैं। और चरणों के गहने हैं, वहां कोई चेहरे की दीप्ति नहीं है, आंखों के जलते हुए तारे नहीं हैं, वहां सीता का वह सौन्दर्य नहीं है: अपूर्व सौंदर्य और प्रसाद नहीं है, पैर ही पैर हैं...। पैरों में क्या रखा है, न आंख है, न भाव है...। तो पैरों के गहने पहचान लिए होंगे। फिर पैरों पर रोज सिर रखता था, वे गहने रोज-रोज देखे होंगे, ख्याल में आए होंगे।

मैं यह नहीं मान सकता हूं कि लक्ष्मण सीता का चेहरा देखने में डरता रहा होगा। इतना कमजोर लक्ष्मण नहीं है। यह कमजोरी विनोबा और गांधी की है। यह व्याख्या

उनकी है।

तुम जब किसी सुन्दर स्त्री को देखकर सिर झुका लेते हो या दूसरी तरफ देखने लगते हो, यह तुम्हारा सिर झुकाना और दूसरी तरफ देखना, सिर्फ तुम्हारे भीतर जलती हुई वासना की खबर देता है और कुछ भी नहीं—सिर्फ प्रज्ज्वलित वासना की।

तो जो आदमी संसार छोड़कर भागता है, सिर्फ इतनी ही खबर देता है कि संसार में उसकी बड़ी आसक्ति है; उसको हम विरक्त कहते हैं। जो आदमी स्त्री-बच्चों को छोड़कर चला जाता है, उसको हम ब्रह्मचारी कहते हैं। छोड़कर जाने की जरूरत क्या थी? छोड़कर जाने का अर्थ है कि डर है, भय है।

मैं तुम्हें यह याद दिलाना चाहता हूं, कि स्वतंत्रता और परतंत्रता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, विरक्ति, आसक्ति एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। भोग, योग एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

जब बोध होता है तो पूरा सिक्का गिर जाता है। एक पहलू तो कोई गिरा भी नहीं सकता; या कि तुम सोचते हो गिरा सकोगे? सिक्के का एक पहलू नहीं गिराया जा सकता। या तो पूरा सिक्का रखना होगा हाथ में, या पूरा छोड़ देना होगा, तुम बचा नहीं सकते आधा। तुम यह नहीं कह सकते कि हम एक तरफ का बचा लेंगे। एक तरफ का बचाओगे, तो दूसरी तरफ का भी बच जाएगा। हां, यह हो सकता है, कि एक पहलू ऊपर रहे और दूसरा पहलू नीचे छिपा रहे, दिखाई न पड़े।

त्यागी में भोग छिपा रहता है, दिखाई नहीं पड़ता है। भोगी में त्याग छिपा रहता है, दिखाई नहीं पड़ता है। मैं तुम्हें एक बड़ी क्रांति की दृष्टि दे रहा हूं—यह पूरा सिक्का ही व्यर्थ है।

न तो परमात्मा ऊंचा है, न तुम नीचे हो। ऊंच-नीच की बात ही व्यर्थ है। मैं तुम्हें गौरीशंकर के शिखर नहीं दिखा रहा हूं। और तुम्हारे मन की चालबाजी है इसमें मीरा! ऐसा मानकर कि ये तो बहुत ऊंचाईयां हैं, अपने से कैसे पहुंची जा सकेंगी, हम अपने को बचा भी लेते हैं। यह बचाने की भी तरकीब हो सकती है। इतनी ऊंचाई हम से कैसे हो सकेगी पूर्ण? इतनी लंबी यात्रा हमसे कैसे होगी?

इसलिए नहीं हो पाती है तो पीड़ा लेने का भी कोई कारण नहीं मालूम होता। मामला ही कठिन है। जहां बड़े-बड़े डूब रहे हैं, हम तिनकों का क्या, हम तिनकों की क्या बिसात? और फिर स्वभावतः अपना बौनापन लगेगा, चोट भी पड़ेगी।

और दोनों का खेल तुमने ही पैदा कर लिया है। पहले शिखर बड़े खड़े कर लिए, फिर उसके अनुपात में अपना बौनापन खड़ा कर लिया। न शिखर सच्चे, न तुम्हारा बौनापन सच्चा है। पूरा सिक्का जाने दो। न परमात्मा बड़ा है, न तुम छोटे हो, क्योंकि



परमात्मा और तुम एक हो। द्वैत अज्ञान है, अद्वैत ज्ञान है। न यहां कुछ छोड़ना है न कुछ त्यागना है, न कुछ पकड़ना है न किसी से भागना है—बस जागना है। भागो नहीं, जागो!

पूछा मीरा ने—आपने इतने ऊंचे, इतने अकल्पनीय शिखर दिखा दिये हैं, कि उससे अपनी बौनी और लंगड़ी सामर्थ्य प्रगट हो गई है।

यह तो उलटा हो गया मीरा। मैं तो चाहता था कि तुम्हारा सम्यक रूप प्रगट हो; तुम्हारी बौनी सामर्थ्य प्रगट हो जाए, यह तो मैंने नहीं चाहा।

यद्यपि यही पंडित और पुरोहित सदियों से करते रहे हैं। वे यही करते रहे हैं, कि परमात्मा को बताओ बहुत बड़ा और तुमको करो बहुत छोटा। और जितना बड़ा परमात्मा हो, उतने ही तुम छोटे हो जाते हो अनुपात में।

तुम्हें कहानी तो मालूम है न, अकबर की। उसने दरबार में एक लकीर खींच दी आकर और दरबारियों को कहा, इसे बिना छुए छोटा कर दो। बहुत सिर मारा, कोई छोटा न कर सका। क्योंकि छोटा करोगे कैसे बिना छुए? और तब बीरबल उठा और उसने एक बड़ी लकीर उसके नीचे खींच दी। उस लकीर को छुआ नहीं, एक बड़ी लकीर नीचे खींच दी। बिना छुए लकीर छोटी हो गई!

अब थोड़ा सोचो, लकीर उतनी की उतनी है, जरा-भी न तो बड़ी हुई है न छोटी हुई है, जैसी है वैसी की वैसी, जस की तस; मगर एक दूसरी लकीर नीचे खड़ी कर दी, बड़ी लकीर खड़ी कर दी, वह छोटी हो गई।

पंडित और पुरोहित परमात्मा का खूब गुणगान करते रहे हैं, स्तुति करते रहे हैं, उसको बहुत ऊंचा बताते रहे हैं। स्वभावतः उसके अनुपात में तुम नीचे होते चले गए। जितना परमात्मा आकाश में दूर निकल गया, उतने ही तुम जमीन में गड़ गए। जितना परमात्मा आकाश में उड़ा, उतने ही तुम जमीन पर रेंगने लगे। तुम कीड़े-मकोड़े हो गए!

तुम्हारे कीड़े-मकोड़े हो जाने में पुरोहित को शोषण का मौका मिला। तुम कीड़े-मकोड़े हो! तुम्हारी सामर्थ्य क्या है? पुरोहित ने कहा, कि मैं मध्यस्थ होऊंगा। तुम तो उस शिखर तक नहीं पहुंच सकते, लेकिन मैं सहारा दूंगा और पहुंचाऊंगा। मैं तुम्हें अपने कंधे पर ले चलूंगा। मैं तुम्हें अपने पंखों पर उड़ाऊंगा। मैं तुम्हारा वाहन बनूंगा। मैं तुम्हारे लिए उपकरण बनूंगा। मैं साधन हूं तुम्हारा।

और निश्चित ही तुम इतने छोटे हो गए थे कि तुम्हें कोई भी सहारा मिल जाए, तो तुम तैयार थे। तुम्हें अपने पर बस खो गया। तुम्हारे भीतर कोई भी गौरव-गरिमा न रही। तुम ऐसे दीन-हीन, ऐसे अपराध भाव से भर गए... तुम पापी अनुभव करने लगे अपने को—कि अपने से क्या होगा, चाहिए कोई जो बीच में बिचवइया हो। पुरोहित

ने ऐसे तुम्हारा शोषण किया। पुरोहित ने दलाली की तुम्हारे और परमात्मा के बीच!

यह तुम्हारे सभी संगठित धर्म दलाली के धर्म हैं। मैं चाहता हूं दलालों को बीच से विदा कर दो। तुम छोटे नहीं हो। परमात्मा दूर नहीं है। परमात्मा कोई अकल्पनीय शिखर नहीं है। परमात्मा तुम्हारी हड्डी-मांस-मज्जा है।

...और इसी उपाय का प्रयोग किया गया है बहुत-बहुत अर्थों में। इसलिए जब कोई सद्‌गुरु जीवित होता है, तो तुम उसे सद्‌गुरु की तरह स्वीकार नहीं कर पाते। कारण? क्योंकि जीवित व्यक्ति, जैसे व्यक्ति होने चाहिए वैसा होता है। उसे भूख लगती है। वह तुम्हारे जैसा ही भूखा होता है। तुम्हारे जैसी ही प्यास लगती है। तुम्हारा जैसा ही बूढ़ा होगा। तुम्हारे जैसा ही एक दिन बीमार भी पड़ता है। उसे दवा की भी जरूरत होती है। सद्‌गुरु जीवित होगा तो ठीक तुम्हारे जैसा होगा न?

और तुम अपने ही जैसे व्यक्ति को कैसे सद्‌गुरु स्वीकार कर सकते हो? तुम इतने दीन-हीन हो, तुम इतने आत्मनिंदित हो, तुम इतने अपनी आंखों के सामने गिर गए हो, कि तुम अपने ही जैसे व्यक्ति को तो सद्‌गुरु स्वीकार नहीं कर सकते।

इसलिए मर जाने के बाद, जब पुरोहित सद्‌गुरु को नए-नए रंग देता है, झूठे ढंग देता है, व्यर्थ की और काल्पनिक बातों में सजा देता है, तब तुम स्वीकार करते हो।

महावीर जिंदा हों, तुम स्वीकार नहीं करते। अब करते हो, क्योंकि पुरोहित ने ढाई हजार सालों में महावीर को खूब सजा दिया। सांप काटता है तो खून नहीं निकलता अब, दूध निकलता है। मुझे सांप काटेगा तो खून निकलेगा। स्वभावतः खून ही निकलना चाहिए। महावीर को सांप काटता है तो खून नहीं निकलता, दूध निकलता है। मगर इसके लिए दो हजार साल, ढाई हजार साल पुरोहितों को उपाय करना पड़ा है।

मैं तो जानता हूं महावीर को भलीभांति, खून ही निकला था। कभी पैर में काटने से दूध निकलता है! पागल हो गए हो! पैर में से दूध तो सिर्फ दो कारणों से निकल सकता है—या तो भीतर मवाद हो, तो दूध जैसी मालूम पड़े—सड़ गए हों बिलकुल भीतर! और दूसरा उपाय यह है कि पैरों में कोई ग्रंथि हो, जैसा कि मां के स्तन में होती है, जिससे कि खून दूध बनता है। दोनों बातें बेहूदी हैं: महावीर के पैर में स्तन की ग्रंथि, या महावीर का पैर भीतर सड़ा हुआ।

और थोड़ा सोचो तो, अगर महावीर में दूध भरा होता, तो कब का दही न बन गया होता! दूर से गंधाते! कहीं भी निकल जाते, तो लगता कि कि कोई सड़ी, पुरानी दही की मटकी चली जा रही है! कोई उसी दिन अचानक दूध निकल आता, पहले से भरा होना चाहिए...कि सांप को देखकर एकदम दूध बन गया!

महावीर को पसीना नहीं निकलता। पागल हो गए हो!



शरीर में सात करोड़ छिद्र हैं। उन छिद्रों से शरीर श्वास लेता है। तुम नाक से ही श्वास नहीं लेते, इस भ्रांति में मत रहना कि तुम नाक की ही श्वास से जी रहे हो। अगर तुम्हारे पूरे शरीर पर डामल पोत दी जाए सिर्फ नाक को छोड़कर और तुमको नाक से श्वास लेने दी जाए, तो भी तुम तीन घंटे में मर जाओगे, तीन घंटे से ज्यादा जिंदा नहीं रह सकोगे। अकेले नाक के सहारे बस तीन घंटे जिंदा रह सकते हो, अगर तुम्हारे सारे छिद्र बंद कर दिए जाएं डामल पोत कर।

उन्हीं छिद्रों से पसीना बहता है। पसीना उन छिद्रों को साफ करने का उपाय है—उन पर धूल न जाम जाए। जैसे आंख के पीछे आंसुओं की ग्रंथि है; आंख में जरा सी धूल पहुंच जाए, आंख तत्क्षण गीली हो जाती है, आंसू उतर आता है। वह आंसू उपाय है धूल को बहा ले जाने का। ऐसे ही जब तुम्हारे छिद्रों पर धूल जम जाती है, जो कि प्रतिक्षण जमती है; और जितनी महावीर को जमती होगी, उतनी और किसको जमेगी! नंग-धड़ंग घूमोगे बिना जूते...और उस जमाने की भारत की सड़कें...अभी भी नहीं सुधरी हैं! उस जमाने की तुम सोचो, बिहार में...और धूल-ही-धूल उड़ती रही होगी। धूप-धाप में नग्न घूमते महावीर...धूल से लद जाते होंगे। और शास्त्र कहते हैं, पसीना नहीं बहता।...पत्थर के हैं! तो पसीना नहीं बहेगा।

महावीर को तो पसीना बहता है, लेकिन शास्त्रों के महावीर को नहीं बहता। महावीर तो बूढ़े भी होते हैं, रुग्ण भी होते हैं; मरे ही पेचिश की बीमारी से। अब तुम थोड़ा सोचो, महावीर को और पेचिश की बीमारी! जिसने जीवन-भर उपवास किए, उसके और पेट को पेचिश की बीमारी! छह महीने पेचिश की बीमारी से परेशान रहे और मरे।

लेकिन शास्त्रों के महावीर को हमने लीप-पोत कर खड़ा कर दिया है! न उन्हें भूख लगती है, न उन्हें प्यास लगती है, न पसीना बहता है, न मल-मूत्र का निष्कासन होता है! अब तुम्हें लगता है, कि यह व्यक्ति हमसे ऊपर उठ गया, दूर चला गया, बहुत दूर चला गया। अब इसकी काया साधारण काया न रही, देव-काया हो गई!

ऐसी ही कहानी तुम बुद्ध के बाबत कहते हो, ऐसी ही कहानी तुम जीसस के बाबत कहते हो। तुम झूठी कहानियां गढ़ने में कुशल हो। तुम झूठी कहानियों को मानने में कुशल हो। झूठी कहानियां पुरोहित की इसलिए मान ली जाती हैं, कि एक बात पक्की हो जाती है झूठी कहानियों से कि वे तुम्हारे जैसे नहीं थे। तुम तो निन्दित हो। तुम तो सड़े-गले, पापी! वे तुमसे भिन्न थे। तो जीसस को मानने वालों ने कहानी गढ़ रखी है, कि वे क्वांरी मरियम से पैदा हुए! पागल हो गए हो, क्वांरी लड़कियों से कोई पैदा होता है?

लेकिन ये कहानियों का एक राज है। ये कहानियां उन्हें विशिष्ट बना देती हैं; तुम्हारे जैसा नहीं रहने देती; इनकी यही खूबी है। और जैसे ही वे तुम्हारे जैसे नहीं रह जाते,

तुम्हारे दलित, पद-दलित चित्त आत्मनिंदित भाव अंगीकार कर लेते हैं—कि वे सद्गुरु होंगे, तीर्थंकर होंगे, अवतार होंगे!

जीवित सद्गुरु स्वीकार नहीं होते। जीवित जीसस को तो सूली लगाते हो। तुम जीवित महावीर के कानों में खीले ठोंकते हो, पत्थर मारते हो। जीवित बुद्ध का तो तुम जगह-जगह अपमान करते हो। हां, मर जाने पर, पंडित-पुरोहित ठीक से ढांचा खड़ा कर देते हैं। साज-संवार कर एक झूठी प्रतिमा निर्मित करते हैं। फिर उस झूठी प्रतिमा की पूजा है। और इसके पीछे राज इतना ही है कि तुम निंदित किए गए हो।

मैं तुम्हारा सम्मान करता हूं, क्योंकि मुझे लगता है—तुम्हारी निंदा, तुम्हारे भीतर बैठे परमात्मा की निंदा है।

मैं तुमसे यह नहीं कहता कि तुम्हें असाधारण हो जाना है। मैं तुमसे कहता हूं, कि तुम साधारण हो जाओ, तो सब मिल जाए। असाधारण होने की दौड़ अहंकार की दौड़ है। कौन नहीं असाधारण होना चाहता? मैं तो संन्यासी उसको कहता हूं जो साधारण होने में तृप्त है। झेन फकीर कहते हैं—जब भूख लगे तो खा लेना, जब प्यास लगे, तो पी लेना, और जब नींद आए तो सो जाना। इतना सरल हो जाओ, इतने सीधे हो जाओ।

मैं तुम्हें दूर के लक्ष्य नहीं दे रहा हूं मीरा, मैं तुम्हें वही स्मरण करा रहा हूं जो तुम हो। मैं साधारण मनुष्य की भगवत्ता घोषित कर रहा हूं। तुम्हारा चित्त मानने को राजी नहीं होता है, कि मैं और भगवान! साधारण मनुष्य, मेरे जैसा मनुष्य और भगवान! नहीं, नहीं! सदियों से पुरोहित चिल्ला रहे हैं, कि तुम और भगवान! तुम नरक में सड़ोगे। तुम कड़ाहों में जलाए जाओगे। कीड़े-मकोड़े पड़ेंगे तुम्हारी देह में। तुम और भगवान! सदियों के पुरोहितों के खिलाफ, सदियों की उनकी गूंज के खिलाफ, मैं तुम्हें एक नई बात कह रहा हूं।

लेकिन यह नई बात, नई भी है और नई नहीं भी है। क्योंकि यही सदा बुद्धों ने कहा है। उपनिषद यही कहते हैं। वेद यही कहते हैं। बाइबिल यही कहती है। सारे शास्त्रों का सार यही है, कि परमात्मा तुम्हारे भीतर उतरा है। वही तुम्हारा चैतन्य है। वही तुम्हारे भीतर छिपा बैठा है। जरा तलाशो! और तलाश का उपाय क्या है? पहाड़ मत चढ़ने लगना। तीर्थ-यात्राओं पर मत निकल जाना, अन्तर्यात्रा पर जाना। न काशी न काबा, अपने भीतर ...।

ऊंचे शिखर, कल्पना के शिखर, असाधारण धारणायें, निश्चित ही तुम्हें बौना कर जायेंगी, लंगड़ी सामर्थ्य प्रगट हो जायेगी। मगर यह तुमने अपने ही साथ घात कर लिया, यह तुमने आत्मघात कर लिया!

एक ओर मीरा कहती है: उनके दिखने का आनंद है, तो दूसरी ओर तड़फने के



अलावा कोई रास्ता नहीं दिखता। स्वभावतः ऊंचे शिखर देखकर आनंद मिल रहा है, कि इतनी ऊंचाईयों पर होना हो सकता है, असाधारण होना हो सकता है, अद्वितीय होना हो सकता है। और तड़फ भी हो रही है, कि हो कैसे पायेंगे, अपनी सामर्थ्य बहुत छोटी है। अपने पंख बहुत छोटे हैं, आकाश इतना बड़ा, कैसे तर पायेंगे, कैसे तैर पायेंगे? ...तो पीड़ा हो रही है।

मगर यह पीड़ा और यह आनंद दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यह पूरा सिक्का जाने दो। न तो यह आनंद लो सपने का, न यह पीड़ा भोगो। मैं कहता हूं अभी और यहीं तुम परमात्मा हो। जैसे हो बस ऐसे ही परमात्मा हो, इसमें रत्ती-भर कुछ करने की जरूरत नहीं है। परमात्मा होना तुम्हारा स्वभाव है। इससे अन्यथा तुम होना भी चाहो तो नहीं हो सकते हो। जब तुम्हारे भीतर भूख लगती, तो परमात्मा को ही भूख लगती है, और जब प्यास लगती है तब परमात्मा को ही प्यास लगती है। तुम्हारी सामान्यता में रचा है, पचा है परमात्मा। इसलिए मैं कहता हूं, यहां कुछ भी सामान्य नहीं है, क्योंकि सामान्य-से-सामान्य में परमात्मा की छाया पड़ रही है, उसका निवास है, उसकी उपस्थिति है।

मेरा संदेश बहुत सीधा-साफ है। शायद इसीलिए कठिन मालूम होता है। अगर मैं तुम्हें रास्ते बताऊं सिर के बल खड़े होने के, आसन-व्यायाम करने के, प्राणायाम करने के, उपवास करने के, तो बात कठिन न मालूम हो, क्योंकि तुम्हारी सुनी हुई बातों के अनुकूल हो। लेकिन मैं कहता हूं, तुम तो परमात्मा हो ही। यह बड़ी कठिन बात मालूम होती है। इतनी सीधी-साधी बात, अत्यन्त कठिन हो जाती है। सरल और सुगम बात, अत्यन्त कठिन मालूम होती है, क्योंकि तुम्हारे संस्कार के विपरीत पड़ती है।

मगर तुम्हारे संस्कार भ्रांत हैं। मेरे प्रेम में उन संस्कारों को मीरा पिघल जाने दो। अगर मेरा प्रेम इतना कर सके कि तुम्हारे संस्कारों को पिघला दे, तो पर्याप्त है। पुरानी धारणाओं को बह जाने दो इस बाढ़ में। आने दो मुझे एक बाढ़ की तरह, ले जाने दो तुम्हारा सारा कूड़ा-करकट!

वही मैं कर रहा हूं प्रति-दिन, सुबह-सांझ। आता हूं एक बाढ़ की तरह, तुम्हारे कूड़े-करकट को बहा ले जाना चाहता हूं। तुम सिर्फ पकड़ो मत उस कूड़ा-करकट को, बस इतना ही करो।

मैं तुम्हारे चित्त को साफ कर लूंगा, क्योंकि वे संस्कार असत्य हैं। उनको बहा ले जाना कठिन नहीं है। सिर्फ सत्य को नहीं बहाया जा सकता, असत्य को बहा ले जाना तो बहुत आसान है। असत्य की कोई जड़ें नहीं होतीं। असत्य तो कल्पना का जाल है। अब इतना कर, यह बाढ़ जब

तेरे मन में मेरी बातों के प्रति प्रेम जगा, यह शुभ है। अब इतना कर, यह बाढ़ जब

तेरे भीतर कचरे को बहा ले जाने लगे—संस्कारों का कचरा...।

और ध्यान रखना, उस कचरे को अब तक तूने सम्पत्ति समझा है; तेरे ऊंचे-ऊंचे ख्याल, ऊंचे-ऊंचे शिखर, अध्यात्म की बड़ी-बड़ी बातें, सब कचरा हैं। क्योंकि जब तक अनुभव नहीं हुआ है, तब तक सब व्यर्थ है, बकवास है। तेरा ज्ञान कूड़ा-कचरा है। इसलिए मन पकड़ने का होगा, जोर से पकड़ने का होगा।

मेरे साथ जो होने को राजी हुए हैं, उनको सिर्फ एक काम करना है—अपने मन की किसी धारणा को पकड़ना नहीं है; जब बाढ़ उसे ले जाने लगे, तो नमस्कार कर लेना है कि जाओ... चुपचाप बह जाने देना है। धीरे-धीरे चित्त निर्भार हो जाएगा। धीरे-धीरे चित्त निर्मल हो जाएगा। समाज ने जो छाप छोड़ी है चित्त पर, मिट जाएगी। चित्त कोरा हो जाएगा। उसी कोरे चित्त में परमात्मा का अनुभव होता है।

ज्ञान से नहीं होता परमात्मा का अनुभव, अज्ञान से होता है। इसलिए शास्त्रों के जानने वाले चूकते रहते हैं। मैं तुम्हारे शास्त्र छीन लेना चाहता हूं, तुम्हारा ज्ञान छीन लेना चाहता हूं।

तुम्हें निर्दोष छोटे बच्चे की भांति हो जाने की जरूरत है, कि फिर अवाक और आश्चर्य-चकित तुम तितलियों के पीछे दौड़ सको, कि फूल बटोर सको, कि सागर तट पर सीपियां इकट्ठी कर सको। छोटे बच्चों की भांति हो जाना है; कि घास की पत्ती पर सरकती हुई ओस की बूंद तुम्हें फिर मोती मालूम होने लगे! कि तुम्हारा मन यह न कहे, ज्ञानी मन यह न कहे, कि यह क्या है, पानी की बूंद है। कि उड़ती तितली तुम्हारे चित्त को ऐसा आकर्षित कर ले, जैसे कोहिनूर! और तुम्हारा तथाकथित ज्ञान यह न कहे, इसमें क्या रखा है, तितली है।

तुम्हें इस जीवन के रंगों में परमात्मा की पिचकारी का अनुभव होने लगे! यह होली खेली जा रही है! ये इतने रंग वृक्षों के, ये फूलों के; ये तितलियों के, ये इन्द्रधनुषों के, यह सुबह-सांझ की भिन्न-भिन्न भाव-भंगिमायें... यह एक उत्सव चल रहा है। इस उत्सव को तुम आश्चर्यचकित, विस्मय-विमुग्ध फिर से देख पाओ, तो सब हो जाए। ज्ञान जाने दो।

यह आग मेरी यूं कजला न जाती मेरे सीने में
अगर इस आग को भी तापनेवाले मिले होते।

तुम्हारे जीवन में बड़ी अद्‌भुत आग है; लेकिन कजला जाती है, क्योंकि सत्संग नहीं मिलता, प्रेम नहीं मिलता, किसी सद्‌गुरु का सान्निध्य नहीं मिलता। मैं मिल गया तुम्हारी आग को तापनेवाला,कजला जाने की जरूरत नहीं है—निखरो! इस आग को उजलने दो।

क्या यही दरमाने-गम था जिसने ऐ चश्मे-करम!
और भी कुछ दर्दे-महरूमी को रुसवा कर दिया



हुस्ने-खुदबीं को अजल से थी किसी की जुस्तजू
जिन्दगी ने क्यों मेरी जानिब इशारा कर दिया?
हुस्न के रुख पर तो ऐ मंसूर! पर्दा ही रहा
इश्क की मजबूरियों को तूने रुसवा कर दिया

परमात्मा खुद अपना जलवा दिखाने को उत्सुक है, अपना सौन्दर्य प्रगट करने को उत्सुक है।

हुस्ने-खुदबीं को अजल से थी किसी की जुस्तजू—तुम ही नहीं खोज रहे हो परमात्मा को, परमात्मा भी प्रारंभ से तुम्हें खोज रहा है, चाहता है—आओ, उसका घूंघट उठाओ।

हुस्ने-खुदबीं को अजल से थी किसी की जुस्तजू... किसी की तलाश है उसे भी, कि कोई प्रेमी मिले।

जिन्दगी ने क्यों मेरी जानिब इशारा कर दिया?

और मीरा, यह सौभाग्य है, कि जिन्दगी ने तेरी तरफ इशारा कर दिया है। मैं यही इशारा कर रहा हूं। जो मेरे हैं, उनसे मैं यही इशारा कर रहा हूं, कि परमात्मा तुम्हें खोज रहा है, तुम किसकी तलाश में जा रहे हो? रुक जाओ, उसे खोज लेने दो!

हुस्न के रुख पर तो ऐ मंसूर! पर्दा ही रहा
इश्क की मजबूरियों को तूने रुसवा कर दिया

जान-जान कर भी, परमात्मा जाना नहीं जा सकता। पा-पा कर भी, पाने को शेष रह जाता है।

हुस्न के रुख पर तो ऐ मंसूर पर्दा ही रहा। उठाते जाओ घूंघट पर घूंघट—और-और घूंघट, और-और घूंघट, हटाते जाओ पर्दों-पर-पर्दे—और-और पर्दे—रहस्यों पर रहस्य की पर्त है! परमात्मा का रहस्य अनंत है। इसलिए कभी कोई उसे चुकता नहीं कर पायेगा। लेकिन जो व्यक्ति पर्दे उठाने लगता है, उसकी जिन्दगी में महोत्सव घटने लगता है। उसकी जिन्दगी रोज-रोज रस से भरती जाती है।

वहशते-दिल ने हिजाबाते-जहां चाक किये
एक पर्दा रुखे-जाना से उठाया न गया

और ऐसे ऐसे लोग हुए हैं, जिन्होंने प्रकृति के सारे-के-सारे वस्त्र फाड़ डाले हैं। प्रकृति के सारे रहस्य उघाड़ दिए हैं।

वहशते-दिल ने हिजाबाते-जहां चाक किये

एक पर्दा रुखे-जानां से उठाया न गया—लेकिन उस प्यारे के मुंह पर जो एक पर्दा था, वह भी उठ न सका। कोई कभी उसे जान नहीं पाता। कोई उसके संबंध में ज्ञानी नहीं हो पाता। हां, इसे जी सकते हो, जान नहीं सकते। उसमें डूब सकते हो, उसे अपने

में डूब जाने दे सकते हो, लेकिन जानने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि जानने के लिए द्वैत चाहिए। जाननेवाला और जो जाना जाए, इनके बीच फासला चाहिए। परमात्मा और तुम्हारे बीच कोई फासला नहीं है। वही है जानने वाला। वही है जाना जानेवाला। वही एक खेल रहा है, नाच रहा है। सभी भाव-भंगिमायें उसी की हैं। सभी मुद्रायें उसी की हैं।

गुबार उठ-उठके सुस्त जरों को उनकी मंजिल दिखा रहा है
बहार आ-आके हर हकीकत को इक तबस्सुम बना रही है

जरा देखो !

गुबार उठ-उठ के सुस्त जरों को उनकी मंजिल दिखा रहा है
बहार आ-आके हर हकीकत को इक तबस्सुम बना रही है
चला न शमओं का जोर जिस पर, बनी सितारों की कब्र जिसमें
तपिश दिलों की उसी अंधेरे से एक सूरज उगा रही है

बस यह प्रेम का भाव जगे। यह तपिश, यह आग प्रज्वलित हो जाए।

चला न शमओं का जोर जिस पर, बनी सितारों की कब्र जिसमें
तपिश दिलों की उसी अंधेरे से एक सूरज उगा रही है

मीरा यह प्रेम का ताप, तेरे भीतर एक सूरज बन जाएगा। लेकिन कुछ गलत धारणायें छोड़ देनी पड़ेंगी।

परमात्मा कोई असाधारण चीज नहीं है, साधारण से भी साधारण। परमात्मा कोई दुर्गम और कठिन दूर का शिखर नहीं है। तेरे भीतर चेतना की उपस्थिति, तेरे भीतर जो साथी है, वही परमात्मा है।

परमात्मा को खोजने की फिक्र छोड़ो, परमात्मा को जीना शुरू करो। तुम परमात्मा हो, ऐसे जीना शुरू करो। पहले बहुत अड़चन होगी, क्योंकि अब तक मानकर जिये कि पापी हूं। एकदम से परमात्मा मानकर कैसे जिओगे? मगर मैं कहता हूं, पापी मानकर इतने दिन जी लिए, मेरी भी सुनो; परिवर्तन के लिए ही सही इस बात का भी रस लो, परमात्मा मानकर जीना शुरू करो। हालांकि, तुम्हारी धारणायें बाधा डालेंगी। तुम्हारी धारणायें तुम्हारी जान लिए ले रही हैं, फांसी बनी हैं।

छोटी-छोटी बातों में अड़चनें आयेंगी, क्योंकि धारणायें कहेंगी... । अगर मैं तुमसे कहता हूं, कि परमात्मा मानकर जीना शुरू करो, तुम कहोगे—ठीक। चले रास्ते पर, एक सुन्दर स्त्री दिख गई; मोह पैदा हुआ। अब तुम कहोगे : मैं कैसा परमात्मा! बात गड़बड़ हो गई। मैं तो चला था परमात्मा मानकर जीने और यह क्या हो गया? तुम्हारी धारणा बीच में आ गई।



और मैं तुमसे कहता हूं परमात्मा सौन्दर्य पर बहुत मोहित है, इसलिए तो सौन्दर्य पैदा करता है। यह तुमसे कहा किसने, कि परमात्मा सुन्दर के विरोध में है? नहीं तो ये सुन्दर फूल कौन रचता है? इनमें गंध कौन भरता है? कौन बैठा तूलिका से इनमें रंग भरता है? कौन बनाता है ये प्यारे इन्द्रधनुष? ये सारी मृगमरीचिकायें कौन निर्मित करता है? कौन तारों में ज्योति भरता है? कौन चमकती हुई आंखों को निर्माण करत है? यह इतना प्रसाद, इतना लालित्य जगत में, कौन भरता है? परमात्मा सौन्दर्य का प्रेमी है।

मगर तुम्हें छोटी-सी बात आ जायेगी, और अड़चन है। क्योंकि तुम्हारे पंडित-पुरोहित तुमसे कहते रहे हैं—परमात्मा तुम कब हो? जब तुम्हारे भीतर सारे सौन्दर्य का भाव मर जाए, तब तुम परमात्मा हो। जब तुम बिल्कुल रुखे-सूखे ठूंठ रह जाओ—न पत्ती ऊगे न फूल लगे, तब तुम परमात्मा हो। अभी तुममें पत्ती लगेगी, तुम कहोगे, यह क्या मामला है, यह पत्ती क्यों लग रही है?

स्वामी योग चिन्मय ने पूछा है, कि 'आप कहते हैं सद्‌गुरु के पास जब हीरे-जवाहरात मिल जाते हैं तो कंकड़-पत्थर छूट जाते हैं, तो फिर भी हमारी वासनायें क्यों नहीं छूट रही हैं?' वही धारणायें, वही पिटी-पिटाई धारणायें, वही कचरा तुम्हारे सिर में भरा हुआ है!

मैं तुमसे कुछ छोड़ने को कह कहां रहा हूं? मैं तुमसे यह कह रहा हूं, सब उसका है ऐसे जियो। वह सुन्दर स्त्री भी वही है, और तुम्हारी आंख में उस सुन्दर स्त्री के कारण जो ओज आ गया है, वह भी वही है। ऐसे जियो।

तुम यह भेद क्यों मानकर चल रहे हो? इस भेद को कब छोड़ोगे? मुझे रोज सुनते हो, चिन्मय सुनते हैं वर्षों से, मगर कहीं भीतर पुरानी धारणायें बचाये बैठे हैं, छाती से लगाए बैठे हैं। तो नाप-तौल करते रहते हैं उन्हीं से, कि अभी तक ऐसा नहीं हुआ। अभी तक वीतरागता पैदा नहीं हुई, अभी तो राग पैदा हो रहा है। मैं तुमसे कहता हूं, राग भी उसी का है। जिस दिन तुम सब उसी का है, ऐसा समर्पण कर दोगे, उसी को मैं वीतरागता कहता हूं। राग मरेगा नहीं वीतरागता में, सिर्फ अहंकार केन्द्र न रह जाएगा। सब उसका है।

स्वामी अरुण ने पूछा है, कि आप कहते हैं सब उसकी मर्जी पर छोड़ दें। मगर यह कैसे पता चले, कि कौन-सी हमारी मर्जी है और कौन-सी उसकी मर्जी है?

खूब मजे की बात कर रहे हो! अपनी मर्जी अभी भी बचाये हुए हो! पुराने संस्कार बाधा डालते हैं। पुराने संस्कार कहते हैं, यह तो ठीक बात है—सब उसी की मर्जी पर छोड़ दें; मगर यह कैसे पता चलेगा, कि यह मर्जी हमारी है कि उसकी? तुम हो ही

नहीं, वही है; तुम्हारी मर्जी हो कैसे सकती है ?

तुम मेरी बात समझ नहीं पाते, क्योंकि वे सारे जाल जो तुम्हारे चित्त में बैठे हैं, उनके बीच से ही मेरी बात को गुजरना पड़ता है। वह जाल मेरी बात को विकृत कर देता है। मैं कह रहा था—उसके सिवाय और कुछ है ही नहीं। उसकी ही मर्जी है। अब तुम्हारे सामने एक नया सवाल खड़ा हो गया, कि यह पक्का कैसे पता चलेगा, कि यह उसकी मर्जी है या मेरी मर्जी है ? तुम हो ही नहीं, इसलिए जो भी है उसी की मर्जी है।

नए-नए सवाल उठते जायेंगे तुम्हारे भीतर, क्योंकि धारणायें तैयार हैं, अभी गई नहीं हैं। तो सवाल उठेगा, फिर कोई बुरा काम करने का सवाल उठा, फिर मैं क्या करूंगा ? जैसे कि चोरी करने का सवाल उठा, फिर मैं क्या करूंगा ? जिसने सच में सब कुछ छोड़ दिया है; वह चोरी का ख्याल भी, उसी पर छोड़ेगा। वह कहेगा—तेरी मर्जी, चोरी करवाना है, चोरी करवा। इसका यह मतलब नहीं हैं, कि चोरी में पकड़े नहीं जाओगे। क्योंकि परमात्मा ने करवाई, तो पकड़े क्यों गए ? अब पकड़ाये जाना भी उसकी मर्जी है, तो पकड़े गए। इसका यह मतलब नहीं है कि मजिस्ट्रेट छोड़ देगा। कि हमने तो परमात्मा की मर्जी से किया था। परमात्मा में भी उसी की मर्जी है।

एक सद्‌गुरु के पास एक शिष्य वर्षों रहा, रहा होगा योग चिन्मय जैसा शिष्य! वह सुनता था, कि सब में परमात्मा है, कण-कण में उसी का वास है। एक दिन राह पर भीख मांगने गया था, एक पागल हाथी भागा उस गरीब शिष्य की तरफ। मगर उसने सोचा, कि गुरु कहते हैं, आज प्रयोग ही कर के देख ले कि सब में उसी का वास है, कण-कण में है। तो इतने बड़े हाथी में तो होगा ही, निश्चित होगा, बड़ी मात्रा में होगा। गणित ऐसा ही चलता है, जब कण-कण में है तो सोचो इस हाथी में तो कितना नहीं होगा। एकदम लबा लब भरा है !

खड़ा ही रहा ! डर तो लगा बहुत। भीतर से कई बार भाव उठा—भाग जाऊं। लेकिन उसने कहा आज अपनी नहीं सुनना है। भीतर बहुत बार चित्त हुआ कि भाग जाऊं, यह मार डालेगा। यह चला आ रहा है बिलकुल पागल; पता नहीं रुकेगा कि नहीं रुकेगा ? मगर उसने कहा, आज प्रयोग ही करके देख लें, जब वही है . . .। महावत भी चिल्ला रहा है हाथी का, कि भाई, रास्ता हट। भाग जा, पागल है हाथी। बच जा कहीं भी। दुकान में प्रवेश कर जा। आसपास के किसी भी मकान में छिप जा। मगर उसने कहा : चिल्लाते रहो महावत, कौन सुने, जब वही सब में है।

जो होना था वह हुआ, हाथी ने उसे बांधा अपनी सूंड़ में और फेंका। कोई तीस गज दूर जाकर गिरा। हड्डी-पसली चकनाचूर हो गई। बड़ा दुखी हुआ, कि यह क्या मामला है ? कण-कण में उसी उसी का वास, इतने बड़े हाथी में नहीं ! लंगड़ाता, टूटा-



फूटा वापिस गुरु के पास पहुंचा, बोला, कि सब वेदांत व्यर्थ, सब बकवास है ! कण-कण में क्या, हाथी में भी उसका वास नहीं है।

गुरु ने पूछा, लेकिन महावत ने कुछ कहा था ? कहा : हां, चिल्ला रहा था, कि पागल है। और तेरे हृदय में कुछ हुआ था ? कहा : हां, हृदय भी चिल्ला रहा था कि हाथी पागल है। अगर मैंने कहा, एक बार तो प्रयोग करके देख लें... उसकी मर्जी।

उस गुरु ने कहा : महावत में भी उसी की मर्जी थी, और तेरे भीतर भी वही चिल्ला रहा था। अगर तूने उसकी ही मर्जी सुनी होती, तो तू भाग गया होता। तू ने उसकी नहीं सुनी। और हाथी तुझसे कह नहीं रहा था, कि रास्ते पर खड़ा रह। महावत कह रहा था, भाग जा। तेरा हृदय कह रहा था, भाग जा। और हाथी कुछ कह नहीं रहा था। हाथी की तूने सुनी, जो कुछ कह ही नहीं रहा था। हाथी कह नहीं रहा था, कि भाई, खड़े रहो, कहां जा रहे हो ? जरा मुलाकात करनी है। कहां जाते हो, हाथ तो मिला लो, जयराम जी तो हो जाने दो। हाथी तो कुछ बोल ही नहीं रहा था। जो नहीं बोल रहा था उसकी तूने सुनी ! और तेरा हृदय जोर-जोर से चिल्ला रहा था। उसने कहा : हां, बहुत जोर-जोर से चिल्ला रहा था, कि हट जाओ, भाग जाओ। जान निकल लेगा। कहां के वेदांत में पड़े हो ! फिर कभी प्रयोग कर लेना, आज ही क्या जिद ठानी है ? और महावत भी चिल्ला रहा था। आसपास के लोग भी चिल्ला रहे थे सड़क के, कि भाई, बीच में क्यों खड़ा है रास्ते के, भाग जा। गुरु ने कहा—सारा संसार चिल्ला रहा था !

मजिस्ट्रेट सजा देगा; लेकिन तब जिसने सब उस पर छोड़ दिया है, वह सजा भी स्वीकार करेगा—उसी की सजा है। उसी ने चोरी करवाई। उसी ने चोरी की। उसी का धन था, जिसकी चोरी की गई। वही मजिस्ट्रेट में है। जिसने सब उस पर छोड़ा, उसका अर्थ ही होता है, अब मेरी मर्जी जैसी कोई चीज ही नहीं है। अब जो होगा, जैसा होगा...। यह बड़ी गहन अवस्था की बात है।

तुम हिसाब लगाते हो, कि इसमें मेरी मर्जी कहां है, उसकी मर्जी कहां है ? जैसे की दो मर्जी हो सकती हैं। लहर की कोई मर्जी होती है ? मर्जी तो सब सागर की होती है। क्षण-भर को लहर उठता है, नाचती है, गीत गा लेती है, शोरगुल मचा लेती है, फिर खो जाती है। मगर जब लहर नाचती है, उत्तुंग हवाओं से बात करती है, बादलों को छूने की आकांक्षा रखती है, तब भी सागर की ही मर्जी है।

ऐसा जान लेने वाला निर्विचार हो जाता है। तो फिर यह सवाल नहीं उठता, कि ऐसा क्यों नहीं हो रहा, है, वैसा क्यों नहीं हो रहा है ? फिर जैसा हो रहा है, यही उसकी मर्जी है। अगर उसके मन में यही है, कि मेरे हाथ में कंकड़-पत्थर ही रहें, हीरे-जवाह-

रात नहीं। तो कंकड़-पत्थर ही ठीक, तो कंकड़-पत्थर हीरे-जवाहरात हैं, क्योंकि उसकी मर्जी है। उसकी मर्जी से ज्यादा मूल्यवान थोड़े ही हीरे-जवाहरात होते हैं। उसकी मर्जी से हो, तो मौत भी जीवन है। उसकी मर्जी से हो, तो जहर भी अमृत है।

तुम्हारा कूड़ा-करकट जाने दो, आने दो मेरी बाढ़। और तुम्हारे भीतर जल्दी ही, जैसे ही समाज के द्वारा दिए गये संस्कार बह जायेंगे, ज्योति जलेगी।

सखि, वन-वन घन गरजे।
श्रवण निनाद-मगन
मन उन्मन
प्राण-पवन-कण
लरजे।
परम अगम प्रियतमा गगन की शंख-ध्वनि आई
मन्थर गति रति चरण चारू की चाप गगन में छाई
अम्बर कंपित पवन संचरित संसृति अति सरसाई
मन्द्र-मन्द्र आगमन सूचना हिय में आन समाई
क्षण में प्राण हुए उन्मादी
कौन इन्हें अब बरजे?
सखि, वन-वन घन गरजे!
मेरा गगन और मम आंगन आज सिहर कर कांपा
मेरी यह आह्लाद बिथा सखि, बना असीम अमाप।
आवेंगे वे चरण जिन्होंने इस त्रिलोक को नापा
सखि, मैंने ऐसा आमंत्रण-श्रुति स्वर कब आलापा?
लगता है मानो ये बादल कुछ यूंही हैं तरजे!
सखि, वन-वन घन गरजे!
श्रवण निनाद-मगन
मन उन्मन
प्राण-पवन-कण
लरजे!
सखि, वन-वन घन गरजे!

एक बार जाने दो व्यर्थ के कूड़ा-करकट को। और होगी वर्षा बहुत। उसके आनंद के घन घिरेंगे। आयेगा आषाढ़ जीवन का। नाचेंगे मोर। जीवन ऊर्जा होगी हरी।

मन्द्र-मन्द्र आगमन सूचना हिय में आन समाई



क्षण में प्राण हुए उन्मादी
कौन इन्हें अब बरजे?

होगा खूब उन्मत्त रूप! छायेगी खूब मादकता! बहेगा रस अपार! लेकिन एक बार चित्त के सारे जाल-जंजाल को जाने दो। न कुछ छोटा है, न कुछ बड़ा है, न कुछ भला है, न कुछ बुरा है। एक ही है।

इसलिये मैं कहता हूं, नीति बड़ी छोटी बात है, धर्म बड़ी और, भिन्न, बड़ी भिन्न। धार्मिक व्यक्ति नीति अनीति के पार होता है। धार्मिक व्यक्ति द्वंद्व के पार होता है।

दूसरा प्रश्न: विराहावस्था में भक्त दुखी होता है या सुखी?

★ विरह की अवस्था बड़ी विरोधाभासी अवस्था है, क्योंकि भक्त दुखी भी होता है और सुखी भी और दोनों साथ-साथ होता है। विरह की अवस्था में सुखी होता है, क्योंकि उसकी याद आने लगी। प्राणों में उसकी पीड़ा समाने लगी। सुखी होता है, क्योंकि उसकी पुकार, उसकी देर सुनाई पड़ने लगी। सुखी होता है, क्योंकि चरण उस मंजिल की तरफ पड़ने लगे हैं। और दुखी होता है, कि मिलन कब होगा; होगा कि नहीं होगा? सुखी होता है, कि सुबह का आभास मिलने लगा और दुखी होता है, कि रात अभी बड़ी अंधेरी है। न मालूम कितने कदम उठाने होंगे। न मालूम कितनी और प्रतीक्षा करनी होगी। और मैं तो हूं अपात्र; पा भी सकूंगा? मेरी योग्यता क्या है? मेरी योग्यता तो न कुछ है। मेरा प्रयास क्या है? मेरा प्रयास तो न कुछ है। उसका प्रसाद मुझ पर बरसेगा कि नहीं बरसेगा?

विरह की अवस्था बड़ी अद्भुत अवस्था है। भक्त रोता भी है, और हंसता भी है। इसलिए भक्त अक्सर पागल मालूम होता है। हंसता है, क्योंकि उसकी टेर सुनाई पड़ने लगी, उसकी बांसुरी की टेर कान में आने लगी। यमुना तट पर वह आ गया। वंशीवट में उसकी धुन सुनाई पड़ने लगी है। तड़प उठने लगी है जाने की। भाव जगने लगे हैं। पैर नृत्य को आतुर हो रहे हैं।

लेकिन हजार बाधायें खड़ी हैं। अपने-ही चित्त की, अपने-ही विचार की, अपनी-ही कल्पनाओं-कामनाओं की हजार बाधायें खड़ी हैं, हजार पहाड़ हैं। पहुंच पाऊंगा या नहीं? यह यात्रा पूरी हो पायेगी? इससे छाती बैठी जाती है।

तुम पास नहीं, कोई पास नहीं
अब मुझे जिन्दगी की आस नहीं

छाती बैठी जाती है।

लाज छुटी, गेहौ छुट्यो, सबसे छुट्यो सनेह

साखी कहियौ वा निठुर सों रही छुटिबें देह।

बस सब छूट गया है, अब देह के छूटने की ही बात रह गई है। साखी कहियौ वा निठुर सों रही छुटिबें देह... तड़पता है, बेचैन होता है भक्त।

दुनिया ये दुखी है फिर भी मगर, थक कर ही सही, सो जाती है
तेरी ही मुकद्दर में ऐ दिल, क्यों चैन नहीं आराम नहीं

विरह में तड़फता है भक्त; न सो पाता, न ठीक से बैठ पाता, न ठीक से खा पाता। उजड़ गया, यह दुनिया तो उसकी उजड़ गई। यहां से समायोजन टूट गया यहां अब उसका छंद नहीं बैठता। उसका छंद परमात्मा से बैठने लगा। और परमात्मा पता नहीं कहां है? है भी या नहीं, कौन जाने?

यूं दिल के तड़पने का कुछ तो है सबब आख़िर
या दर्द ने करवट ली या तुमने इधर देखा
क्या जानिए क्या गुजरी, हंगामे-जुनूं लेकिन
कुछ होश जो आया तो उजड़ा हुआ घर देखा

एक तरफ उसकी नजर...!

यूं दिल के तड़पने का कुछ तो हैं सबब आखिर
या दर्द ने करवट ली या तुमने इधर देखा

जरूर तुमने देखा होगा, नहीं तो दिल ऐसा न तड़प उठता। जरूर तुम पास से गुजर गए होओगे। तुम्हारी भीनी महक श्वासों में भर गई है। तुम कहीं पास ही हो। तुम्हारे पैरों की ध्वनि, पग ध्वनि सुनाई पड़ती है।

क्या जानिए क्या गुजरी, हंगामे-जुनूं लेकिन—लेकिन बड़ी पागलपन की अवस्था हो जाती है। उन्माद के समय में क्या गुजरती है हालत...। इधर तुमने देखा, बड़े सुख की खबर आ गई। तुम्हारी प्रेम पाती आ पहुंची।

कुछ होश जो आया तो उजड़ा हुआ घर देखा। और फिर जब लौट कर देखा जिंदगी को, जिसको अब तक बसाया था, तो पाया, कि वहां सब उजड़ गया है। क्यों कि वहां तो सपने ही सपने थे।

जब सुबह जागोगे, तो सपने तो टूटेंगे। जागरण के साथ ही सपने टूटेंगे। और हो सकता है उन सपनों में खूब-खूब श्रम उठाया हो। वे सपने के भवन न मालूम कितने जन्मों में खड़े किए हों। न मालूम कितनी चेष्टा, न मालूम कितना प्रयास, न मालूम कितना जीवन, कितनी आकांक्षायें, अभीप्सायें, उन सपनों में दबी पड़ी हैं। और वे सब सपने गए! जागने की एक किरण आई, और सब सपने टूटे। एक तरफ रोना...। लेकिन रोना भी प्रीतिकर लगता है, क्योंकि रोना भी उसके मार्गमें



है। और हर आंसू उसकी सीढ़ी बनता है।

दिल को क्योंकर न दावते गम दूं
लुत्फ आता है गम उठाने में।

और मजा भी आता है। रोने में और मजा आता है! रुदन पहली बार आनंद के विपरीत नहीं मालूम पड़ता। यह रहस्य की घटना है, जो विरह की अवस्था में घटती है। पहली दफा आंसू और मुस्कराहटों में एक तालमेल मालूम होता है। आंसू भी मुस्कराते मालूम पड़ते हैं। आंसू भी नाचते मालूम पड़ते हैं!

साधारणतः तो हमने आंसू दुख के ही जाने हैं, भक्त आनंद के आंसुओं से परिचित होता है। पीड़ा भी सालती है; लेकिन पीड़ा में एक माधुर्य भी होता है, एक मिठास भी। मीठी पीड़ा। कहें—मधुसिक्त, उन्मत्त करनेवाली! कलेजे में चुभता है तीर भी विरह का और रसधारा भी बहती है! यह साथ-साथ होता है।

मुझको वो लज्जत मिली, एहसास मुश्किल हो गया
रहते-रहते दिल में तेरा दर्द भी दिल हो गया
इब्तिदा वो थी कि था जीना मोहब्बत में मुहाल
इन्तिहा ये है कि अब मरना भी मुश्किल हो गया

बड़ी दुविधा है, पर बड़ी प्रीतिकर दुविधा! मुझको वो लज्जत मिली। वह आनंद मिला, एहसास मुश्किल हो गया। इतना आनंद मिला, कि आनंद का अनुभव करना भी मुश्किल हो गया। एक सीमा होती है, जब आनंद सीमा के पार बरसता है, तो अनुभव करना मुश्किल हो जाता है। हमारी सामर्थ्य, हमारे हृदय का पात्र छोटा है, जब सागर इसमें उतरता है, तो समाना मुश्किल हो जाता है।

मुझको वो लज्जत मिली, एहसास मुश्किल हो गया
रहते रहते दिल में तेरा दर्द भी दिल हो गया

और फिर पीड़ा बसते-बसते इतनी प्यारी हो जाती है, कि वही हमारा हृदय बन जाती है, वही हमारा आत्मा बन जाती है। फिर तो उस पीड़ा को विदा देने में भी कष्ट होता है। इब्तिदा वो थी कि था जीना मोहब्बत में मुहाल। वह थी शुरुआत प्रेम की, कि जीना मुश्किल था। इन्तिहा ये है कि अब मरना भी मुहाल, कि अब मरना भी मुश्किल हो गया और अब आखिरी घड़ी ऐसी है, कि न जीना संभव है, न मरना संभव है। कुछ भी संभव नहीं है। सब असम्भव हो गया।

ऐसी घड़ी में भक्त अवाक हो जाता है। सन्नाटा छा जाता है। शून्य उतर आता है। कुछ करने को नहीं सूझता। कुछ किया नहीं जा सकता। कर्म सारे व्यर्थ हो जाते हैं। कृत्य असम्भव हो जाता है। और जहां कृत्य असम्भव होता है, वहीं कर्ता समाप्त

हो जाता है। जहां कर्ता गया, वहीं अहंकार गया। विनम्रता भी गई, अहंकार भी गया। पूरा सिक्का गिर गया!

क्यों कलेजे की तड़प धीमी पड़ी... । फिर तो दुख को छोड़ने में भी कठिनाई होती है, क्योंकि दुख भी प्यारा हो जाता है! उसके मार्ग पर मिला दुख भी प्यारा हो जाता है। संसार के मार्ग पर मिले सुखों का कोई मूल्य नहीं हैं।

क्यों कलेजे की तड़प धीमी पड़ी
आज दिल सुनसान-सा क्यों हो गया
आंख के अव्यक्त भावों की लड़ी
तोड़ दी किसने, कहां धन खो गया?
इस विषमता की सरलता सूखकर
किस सरोवर में तिरोहित हो गई
इस विपिन की वह कुहुकनी कूककर
किस निनादित वेणु-वन में सो गई?
सिसकने में ही मजा मिलता रहा
कसक की उस वेदनामय आह से
हम विपन्नों का कमल खिलता रहा
दर्द को दिल से लगाया चाह से!
हाय, पर वह दर्द मेरा क्या हुआ
किस निठुर ने हाय पट्टी बांध दी
लोल लोचन-बिन्दु तुम अब हो कहां
सूखता है यह विटप लो, देख लो!
क्यों कलेजे की तड़प धीमी पड़ी
आज दिल सुनसान-सा क्यों हो गया
आंख के अव्यक्त भावों की लड़ी
तोड़ दी किसने, कहां धन खो गया?

फिर तो इस परमात्मा के मार्ग पर मिली पीड़ा में भी एक ऐसा रस हो जाता है, कि इसे भी छोड़ते नहीं बनता। न जीते बनता है, न मरते बनता है। लेकिन पीड़ा भी बड़ी प्रीतिकर...।

मेरे जवाब में झुकीं नजरें सवाल पर
क्या क्या न कह गई हैं निगाहे हिजाब में।
मिजराब ही से साज में है सारी नगमगी,



है जिन्दगी का लुत्फ निहां इजतिराब में॥

खयाल करना, मिजराब ही से साज में है सारी नगमगी, सितार को बजाते हैं न, जिस अंगूठी से सितार को छेड़ते हैं, तारों पर चोट पड़ती है; लेकिन उसी चोट पड़ने से तो नगमे पैदा होते हैं। उसी चोट से, उसी कचोट से, तो सितार गीत गाने लगता है, सितार गुनगुनाता है।

मिजराब ही से साज में है सारी नगमगी, सारा लय, सौन्दर्य उसी चोट से है, उसी आघात से है-— सितार बजाने की अंगूठी की चोट।

मिजराब ही से साज में है सारी नगमगी,
है जिन्दगी का लुत्फ निहां इजतिराब में।

और जिन्दगी का सारा मजा, उसके लिए बेचैन होने में है। धन्यभागी हैं वे, जो उसके लिए बेचैन हैं। अभागे हैं वे, जिनके भीतर कोई बेचैनी नहीं उसके लिए। जिनके भीतर परमात्मा की प्यास ही नहीं उठी, पुकार ही नहीं उठी—अंधे हैं, बहरे हैं! उन्हें कुछ भी पता नहीं, कि जीवन कितना बड़ा दान देने को तत्पर है। मगर उन्होंने अपनी झोली भी नहीं फैलाई है। उन्होंने अपने हाथ भी इबादत में नहीं उठाये हैं।

राहे वफा में तेरे कदम डगमगायें क्यूं,
देखा है मैंने तेरा करम भी इताब में।

डरने की तो कोई जरूरत ही नहीं है। परमात्मा की तरफ से मिला हुआ दुख भी इतना सुख है...। उसकी अगर क्रोध की नजर भी पड़ जाए, तो ऐसे आनंद की वर्षा हो जाती है, कि उसकी कृपा-दृष्टि का तो कहना ही क्या!

राहे वफा में तेरे कदम डगमगायें क्यूं,
देखा है मैंने तेरा करम भी इताब में।

उसके क्रोध में भी उसकी कृपा ही बरसती है। अगर उसकी क्रोध से भरी हुई आंख भी किसी ने देख ली, तो धन्यभागी है, क्योंकि वहीं से प्रसाद का सम्बन्ध जुड़ जाता है।

सदके निगाहे नाज के हूं बेनियाजे जाम,
यह आये कैफे हुस्न कहां से शराब में।

भक्त को जैसी शराब पीने को मिलती है—जैसे आनंद की मदिरा, वैसी तुम्हारी तथाकथित शराबखानों में बिकती हुई शराब में लुत्फ नहीं हो सकता।

सदके निगाहे नाज के हूं बेनियाजे-जाम, यह आये कैफे हुस्न... यह सौन्दर्य आये कहां से तुम्हारी शराब में? यह आये कैफे हुस्न कहां से शराब में।

जिन्होंने उसको पिया है, वे ही संसार की शराबों से बच सकते हैं। जिन्होंने उसको नहीं पिया, वे किसी-न-किसी तरह की संसार की शराब में उलझे ही रहेंगे। उलझे ही

रहना होगा। हो सकता है कोई जाकर शराबखानों में पीते हों शराब। और हो सकता है कोई राजनीति की और पदों की और प्रतिष्ठा की शराब पीते हों; इसलिए तो पद-मद कहा है। या कोई धन की शराब पीते हों; धन-मद कहा है।

लेकिन ये सब शराबें हैं, जो आदमी को भुलाये रखती हैं, उलझाये रखती हैं। सिर्फ एक उसकी शराब है, जो बेहोश करती है और साथ ही होश भी देती है। उसकी शराब बड़ी विरोधाभासी है। दुख भी देती है और सुख भी। आंसू भी ले आती है और मुस्कराहटें भी। अवाक भी कर देती है और नृत्य का जन्म भी उसी से होता है।

पर विरह की इस अवस्था को, तुम जानोगे तो-ही जानोगे। मेरे वर्णन करने से कुछ भी न होगा। यह बात वर्णन की है भी नहीं, व्याख्या की है भी नहीं, विचार-विमर्श की है भी नहीं। क्यों न अनुभव करो। थोड़े डगमगाओ। थोड़ा पुकारो। थोड़ा नाचो। थोड़ा पियो उसकी शराब। थोड़ा हंसो। थोड़े रोओ। चलो दो कदम, और तुम्हारी जिन्दगी सदा के लिए दूसरी हो जायेगी। फिर तुम वही न हो सकोगे, जो तुम अब तक रहे हो। पहली बार तुम्हारा ठीक-ठीक जन्म होगा। अभी तो जन्म हुआ कहां, अभी तो गर्भ में हो। अभी तो पैदा भी नहीं हुए। पैदा ही कोई तभी होता है, जब परमात्मा की पहली झलक मिलनी शुरू हो जाती है। खोलो झरोखा और झरोखा; तुम्हारे हृदय में है।

चौथा प्रश्न : भक्त की चाह क्या है—पुण्य, या ज्ञान, या स्वर्ग ?

* न तो पुण्य, न ज्ञान, न स्वर्ग—भक्त की चाह भगवान है। भगवान से कम कुछ भी नहीं! और इतना ही नहीं कि भक्त भगवान को देख ले। नहीं, भक्त की आत्यन्तिक चाह तो यह है कि भगवान में लीन हो जाए; भगवानमय हो जाय। जरा सा भी फासला भक्त नहीं चाहता, रत्ती-मात्रा का फासला भक्त नहीं चाहता। जैसे सरिता सागर में उतर जाती है और एक हो जाती है, ऐसा परमात्मा में उतर कर एक होना चाहता है, उसकी और कोई चाह नहीं है।

साकी, मन-घन-गन घिर आए उमड़ी श्याम मेघ माला
अब कैसा विलम्ब, तू भी भर-भर ला गहरी गुल्लाल।

भक्त तो चाहता है परमात्मा की शराब पिये, और ऐसा गिरे बेहोश होकर कि फिर न उठे।

साकी, मन-घन-गन घिर आए उमड़ी श्याम मेघ माला
अब कैसा विलम्ब, तू भी भर-भर ला गहरी गुल्लाला।
तन के रोम-रोम पुलकित हों, लोचन दोनों अरुण चकित हों



नस-नस नव झंकार कर उठे हृदय विकम्पित हो हुलसित हो
कब से तड़प रहे हैं, खाली पड़ा हमारा यह प्याला!
अब कैसा विलम्ब, साकी भर-भर ला तू अपनी हाला!
और और मत पूछ, दिए जा, मुंह मांगे वरदान लिए जा
तू बस इतना ही कह साकी, 'और पिए जा, और पिए जा!'
हम अलमस्त देखने आए हैं तेरी यह मधुशाला
अब कैसा विलम्ब साकी भर भर ला तन्मयता हाला!
बड़े विकट हम पीने वाले, तेरे गृह आए मतवाले
इसमें क्या संकोच, लाज क्या, भर-भर ला प्याले पर प्याले
हम-से बेढब प्यासों से पड़ गया आज तेरा पाला
अब कैसा विलम्ब, साकी भर-भर ला तू अपनी हाला।
हो जाने दे गर्क नशे में, मत आने दे फर्क नशे में
ज्ञान ध्यान पूजा पोथी के फट जाने दे वर्क नशे में
ऐसी पिला कि विश्व हो उठे एक बार तो मतवाला
साकी अब कैसा विलम्ब, भर-भर ला तन्मयता हाला!
तू फैला दे मादक परिमल, जग में उठे मदिर रस छल-छल
अतल-विरल, चल-अचल जग में मदिरा झलक उठे झल-झल-झल
कल-कल छल-छल करती हिय तल से उमड़े मदिरा बाला!
अब कैसा विलम्ब, साकी भर-भर ला तू अपनी हाला!
कूजे दो कूजे में बुझने वाली मेरी प्यास नहीं
बार-बार 'ला, ला' कहने का समय नहीं, अभ्यास नहीं
अरे बहा दे अविरत धारा, बूंद-बूंद का कौन सहारा
मन भर जाय, जिया उतरावे, डूबे जग सारा का सारा
ऐसी गहरी ऐसी लहराती ढलवा दे गुल्लाला,
साकी अब कैसा विलम्ब, ढरका दे तन्मयता हाला!

भक्त छोटी मोटी बातें नहीं मांगता—पुण्य, ज्ञान, स्वर्ग...।

कूजे दो कूजे में बुझने वाली मेरी प्यास नहीं
बार-बार 'ला, ला' कहने का समय नहीं, अभ्यास नहीं
अरे बहा दे अविरल धारा, बूंद-बूंद का कौन सहारा
मन भर जाए, जिया उतरावे, डूबे जग सारा का सारा
ऐसी गहरी ऐसी लहराती ढलवा दे गुल्लाला,

साकी अब कैसा विलम्ब, ढरका दे तन्मयता हाला !

भक्त की मांग भगवान के लिए है। वह पूरा डूब जाना चाहता है। रत्ती-भर बचना नहीं चाहता।

जो पुण्य मांगते हैं, वे तो अहंकार ही मांग रहे हैं—हमारे अहंकार को पुण्य का आभूषण दो। जो ज्ञान मांगते हैं, वे भी अहंकार ही मांग रहे हैं—हमारे अहंकार को ज्ञान के आभूषण दो। हम ज्ञानी हों, हम पुण्यात्मा हों, मगर हम हों। अज्ञान काटता है। अज्ञान से अहंकार को चोट लगती है—ज्ञान दो। पाप से भी अहंकार को चोट लगती है—पुण्य दो। साधु बनाओ हमें, संत बनाओ हमें, पाप से छुड़ाओ हमें। प्रतिष्ठा दो पुण्य की, प्रतिष्ठा दो साधुता की। या जो मांगते हैं स्वर्ग, वे क्या मांगते हैं? वे मांगते हैं—फिर यही संसार, परलोक में। उनकी आकांक्षायें वस्तुतः धर्म की आकांक्षायें नहीं हैं।

भक्त की मांग तो सिर्फ एक है—तू मिले। और मिलन भी ऐसा हो, कि 'मैं' न रहे, 'मैं-तू' न रहे। 'मैं-तू' के बीच फासला न रहे। ऐसी पीज़ा दे, कि मैं मिट जाए ऐसी पिला दे, कि जरा सा भी भेद न बचे। भक्त भगवान हो जाए, भगवान भक्त हो जाये—ऐसी आकांक्षा है। और ऐसा हो जाता है। मांगो, मिलेगा। खटखटाओ द्वार खुल जायेंगे।

मेह की झड़ी लगी नेह की घड़ी लगी।
हहर उठा विजन पवन,
सुन अश्रुत आमन्त्रण;
डोज़ा वह यों उन्मन,
ज्यों अधीर स्नेही मन;
पावस के गीत जगे, गीत की कड़ी जगी।
तड़-तड़-तड़ तड़ित चमक—
दिशि-दिशि भर रही दमक;
घन-गर्जन गूंज गमक—
जल-धारा-झूम-झमक,
भर रही विषाद हिये चकित कल्पना-खगी।
ध्यान-मग्न नीज़ाम्बर,
ओढ़े बादर-चादर;
अर्घ्य दे रहा सादर—
जल-सागर पर गागर,



भक्ति-नीर, सिक्त भूमि-स्नेह सर्जना पगी।
अम्बर से भूतल तक
तुमको खोजा अपलक;
क्यों न मिले अब तक?
ओ, मेरे अलख-झलक !
बुद्धि मलिन, प्राण चकित, व्यंजना ठगी-ठगी;
मेह की झड़ी लगी नेह की घड़ी लगी।

लग जाती है झड़ी, लग जाती है घड़ी, आ जाता है समय। पुकारो, मिलेगा। मांगो, मिलेगा। खटखटाओ द्वार, वह प्रतीक्षा ही कर रहा है। और द्वार तुम्हारे हृदय में है। और द्वार तुम्हारे प्रेम का है, और द्वार तुम्हारी प्रार्थना का है। मेह की झड़ी लगी, नेह की घड़ी लगी... देर नहीं, वर्षा हो सकती है। किसी भी क्षण हो सकती है। कल पर मत टालो, अभी होने दो, यहीं होने तो।

मेह की झड़ी लगी नेह की घड़ी लगी।
हहर उठा विजन पवन,
सुन अश्रुत आमन्त्रण;
डोला वह यों उन्मन,
ज्यों अधीर स्नेही मन;
पावस के गीत जगे, गीत की कड़ी जगी।

जगने दो, उमगने दो। आने दो कोंपल तुम्हारे प्रेम के बीज में। खिलने दो फूल हृदय का !

भक्त कुछ और मांगता नहीं। जो कुछ और मांगते हैं, भगवान से चूकते चले जाते हैं। भक्त कुछ और मांगता नहीं। भक्त सिर्फ भगवान को मांगता है। और जो सिर्फ भगवान को मांगता है, वही भगवान को पाने में समर्थ हो पाता है। जल्दी ही ऐसा समय आ जाता है, जब भरोसा भी नहीं आता, कि जो हो रहा है यह वस्तुतः हो रहा है। जो हो रहा है, यह हो सकता है।

वक्त आता है इक ऐसा भी मोहब्बत में कि जब
दिल पे एहसासे-मोहब्बत भी गरां होता है
कहीं ऐसा तो नहीं वो भी हो कोई आजार
तुझ को जिस चीज पे राहत का गुमां होता है

लगता है कि जो आनंद घट रहा है, सपना तो नहीं। कहीं मैं फिर धोखा तो नहीं खा रहा हूं, यह भी कोई मन का ही खेल तो नहीं।

वक्त आता है इक ऐसा भी मोहब्बत में कि जब
दिल पे एहसासे-मोहब्बत भी गरां होता है

इतना गहन प्रेम का क्षण आ जाता है, कि प्रेम को भी हृदय पर रखने में भार मालूम पड़ता है। प्रेम का भी बोझ मालूम पड़ता है। अब तो प्रेमी से बिलकुल एक हो जाने के सिवाय, कोई उपाय नहीं बचता।

कहीं ऐसा तो नहीं वो भी हो कोई आजार।
तुझको जिस चीज पे राहत का गुमां होता है।

और सवाल उठता है कि कहीं यह भी तो मन का कोई खेल नहीं। मुझ अपात्र को इतना अमृत मिल सकता है! मैंने कुछ कमाये नहीं पुण्य। मैंने कुछ साधना नहीं की—योग, जप-तप नहीं किया। यह घड़ी सिर्फ भक्त को आती है—विस्मय की घड़ी! क्योंकि भक्त कुछ और किया ही नहीं, सिर्फ मांगा है, सिर्फ पुकारा है, सिर्फ रोया है। मगर प्रेम से बड़ी कोई और चीज है भी नहीं जगत में। सब उपवास फीके हैं, प्रेम का एक आंसू काफी है।

जिसमें आबाद थी दुनिया-ए-मोहब्बत
हाय उस अश्क का आंखों से जुदा होना

एक छोटा-सा आंसू...। जिसमें आबाद थी दुनिया-ए-मोहब्बत। एक छोटे-से आंसू में प्रेम का पूरा संसार बसा होता है। हाय उस अश्क का आंखों से जुदा होना। उस आंसू का आंख से गिर जाना बड़ी पीड़ा दे जाता है, क्योंकि उसी आंसू में तो सारे प्रेम का सारा संसार बसा था।

भक्त जानता है आंसू का मूल्य—केवल भक्त ही जानता है! प्रेमियों को थोड़ी-थोड़ी खबर मिलती है, भक्त को पूरा-पूरा अनुभव होता है। नहीं, भक्त को कोई प्रयोजन नहीं है पुण्य से, न ज्ञान से, न स्वर्ग से। भक्त मांगता है मुझे रुदन दो। मुझे विरह दो। मैं रोऊं तुम्हारे लिए, मैं तड़पूं, मुझे तड़पन दो। मुझे प्यास दो। जलाओ मेरी प्यास को। मुझे उत्तप्त करो।

गुलशन परस्त क्यों हूं, मेरी बात तो सुनो
जलवा किसी का आके छुपा है गुलाब में।
कुल कायनात आई दिले अक्सयाब में,
जर्रे में क्या नहीं है जो है आफ़ताब में।
दुनियाये एतकादो यकी में थी रौशनी,
तारीकियां मिली हैं सवाली जवाब में।
कुछ और ही मुकाम मेरी बन्दगी का है,



क्यों खींचते हो मुझको गुनाहो सवाब में।

गुलशन परस्त क्यों हूं...। भक्त परमात्मा के प्रेम में पड़ते-पड़ते सारे अस्तित्व के प्रेम में पड़ जाता है।

गुलशन परस्त क्यों हूं मेरी बात तो सुनो
जलवा किसी का आके छुपा है गुलाब में। छोटे-से गुलाब के फूल में भी, उस एक परमात्मा की विराट ऊर्जा, सौन्दर्य, गरिमा का अनुभव होने लगता है। वह क्यों स्वर्ग मांगे, उसे तो फूल-फूल स्वर्ग हो जाता है! उसे तो पत्ते-पत्ते पर बैकुण्ठ हो जाता है! उसे तो बूंद-बूंद में, उसी के अमृत की छवि झलकने लगती है। कुल कायनात आई अक्सयाब में। सारी सृष्टि उसके हृदय में झलकने लगती है।

जर्रे में क्या नहीं है जो है आफ़ताब में। वह तो एक से कण में भी देखने लगता है वही, जो बड़े-बड़े से सूरज में है।

जर्रे में क्या नहीं है जो है आफताब में।
दुनिया ये एतकादो यकी में थी रौशनी। श्रद्धा और विश्वास में उसे रौशनी मिलती है।

तारीकियां मिली हैं सवालो जवाब में। ज्ञान वह क्यों मांगे, तर्क क्यों मांगे, पांडित्य क्यों मांगे? तारीकियां मिली हैं सवालो जवाब में। जितना ही सोचा-विचारा, जितना ही दर्शनशास्त्र में गया, उतने ही अंधेरे मिले। रोशनी तो मिली है श्रद्धा में।

दुनियाये एतकादो यकीं में थी रौशनी।
तारीकियां मिली हैं सवालो जवाब में।
इसलिए अब ज्ञान नहीं मांगता। ज्ञान अंध-कार है।

भक्त तो मांगता है—निर्दोष भाव, छोटे बच्चे जैसा भाव, प्रेम की निर्मलता। ज्ञान चालक है। ज्ञान सिर्फ अंधेरा बढ़ाता है।

इसलिए देखते हो, यह दुनिया यहुत ज्ञानी हो गई है! आज जितनी ज्ञानी बुद्ध के समय में न थी। इतनी ज्ञानी निश्चित ही कृष्ण के समय में न थी। जैसे-जैसे पीछे जाओ, लोग सरल थे, निर्दोष थे। आज दुनिया ज्ञानी हो गई है। सार्वभौम शिक्षा का प्रसार है। सभी के पास पदवियां हैं। सभी विश्वविद्यालय जा रहे हैं। बड़ी ज्ञानी हो गई है दुनिया!

साथ ही देखते हो, कितनी चालाक, कितनी बेईमान हो गई है। कितना अंधेरा हो गया है! श्रद्धा में दीया है। श्रद्धा में रोशनी है, तर्क में अंधेरा है।

दुनियायें एतकादो यकी में थी रौशनी,
तारीकियां मिली हैं सवालो जवाब में

कुछ और ही मुकाम मेरी बंदगी का है,

मेरी प्रार्थनाओं का मुकाम कुछ और है, मेरी प्रार्थनाओं की मंजिल कुछ और है —न पुण्य, न ज्ञान, न स्वर्ग।

कुछ और ही मुकाम मेरी बन्दगी का है,
क्यों खींचते हो मुझको गुनाहो सवाब में।

मुझे पाप-पुण्य के विचार में क्यों खींचते हो ? मुझे चिन्ता नहीं है पाप-पुण्य की। जो सब सम्हाल रहा है, वही यह भी सम्हाले।

कुछ और ही मुकाम मेरी बंदगी का है
क्यों खींचते हो मुझको गुनाहो सवाब में।

मैं न साधु होना चाहता, न मुझे असाधु होने की आकांक्षा है। ये साधु-असाधु, ये पाप और पुण्य, ये धार्मिक और अधार्मिक—भक्त को इनसे कुछ लेना-देना नहीं है। भक्त तो कहता है, सिर्फ परमात्मा से मेरा लगाव है। मैं जान लेना चाहता हूं, 'वह जो है'। परमात्मा यानी 'वह जो है'। भीतर और बाहर, ऊपर और नीचे प्रगट और अप्रगट, व्यक्त और अव्यक्त, यह जो सारा अस्तित्व तुम्हें घेरे हुए है, इस अस्तित्व के साथ लीनता हो जाए, छन्दोबद्धता हो जाए। बस भक्त छंदबद्ध हो जाना चाहता है अस्तित्व के साथ। अस्तित्व से भिन्न मेरे पैर न पड़ें....। अस्तित्व से पृथक मेरी कोई चाह न हो। मैं अस्तित्व के हाथ बन जाऊं। मैं अस्तित्व के हाथ एक कठपुतली हो जाऊं। मैं अस्तित्व के हाथ समग्र रूप से समर्पित हो जाऊं।

और जो समर्पित है, वह उपलब्ध हो जाता है। परमात्मा से कुछ और मत मांगना। कुछ और मांगा, तो तुम्हारी प्रार्थना उस तक पहुंचेगी ही नहीं। परमात्मा से बस परमात्मा मांगना। इससे कम की मांग भक्त करता ही नहीं। इससे कम की मांग दो कौड़ी की है। इसी को मांग लो।

मैंने सुना है एक सम्राट विश्वविजय की यात्रा पर गया। जब सारी दुनिया को जीतकर लौटता था, तो उसने अपनी रानियों को पत्र भेजे, सौ रानियां थीं उसकी, कि जिसकी जो चाह हो खबर कर दे, तो मैं ले आऊं। निन्यानबे रानियों ने अपनी-अपनी चाहें लिखीं। किसी को हीरे चाहिए, किसी को मोती चाहिए, किसी को आभूषण, किसी को साड़ियां, किसी को कुछ, किसी को कुछ...। सिर्फ एक रानी ने, सबसे छोटी रानी ने, सबसे कम-उम्र रानी ने, इतना लिखा—जब आप आ रहे हैं, तो और क्या चाहिए ?

निन्यानबे रानियों को उनके हीरे-जवाहरात, साड़ियां मिल गईं, सौवीं रानी को सम्राट मिल गया। और जिसे सम्राट मिल गया, उसे सब मिल गया। और जिन्हें सिर्फ हीरे-जवाहरात मिले और साड़ियां मिलीं और आभूषण मिले, उनको क्या खाक मिला!



चूक गईं। भूल हो गई उनसे।

मगर सबसे छोटी रानी, सबसे कम समझदार थी, सबसे कम चालाक थी। सबसे छोटी रानी अभी नादान थी। नादान हो जाओ, दाना बनने की कोशिश मत करना। नासमझ हो जाओ छोटे बच्चे की भांति, जीसस ने कहा : छोटे बच्चों की भांति जो होंगे, वे ही मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश कर पायेंगे।

निर्दोष हो जाओ, और मांगो सिर्फ उसको। तुम्हारी श्वास-श्वास में बस एक-ही मांग बस जाए। तुम्हारी धड़कन-धड़कन में बस एक-ही स्मरण बस जाए। जिओ तो उसे, जागो तो उसमें, सोओ तो उसमें, उठो तो उसमें, बैठो तो उसमें, चलो तो उसमें, और तब एक दिन घटना घटती है। घटना रुकेगी नहीं, सदा घटती रही है।

मेह की झड़ी लगी नेह की घड़ी लगी
ठहर उठा विजन पवन,
सुन अश्रुत आमन्त्रण,
डोला वह यों उन्मन,
ज्यों अधीर स्नेही मन;
पावस के गीत लगे, गीत की कड़ी जगी।
ध्यान-मग्न नीलाम्बर,
ओढ़ बादर-चादर,
अर्घ्य दे रहा सादर—
जल सागर पर गागर
भक्ति-नीर, सिक्त भूमि-स्नेह सर्जना पगी।
अम्बर से भूतल तक
तुमको खोजा अपलक;
क्यों न मिले अब तक ?
ओ, मेरे अलख-झलक !
बुद्धि मलिन, प्राण चकित, व्यंजना ठगी-ठगी;
मेह की झड़ी लगी नेह की घड़ी लगी।

आज इतना ही।
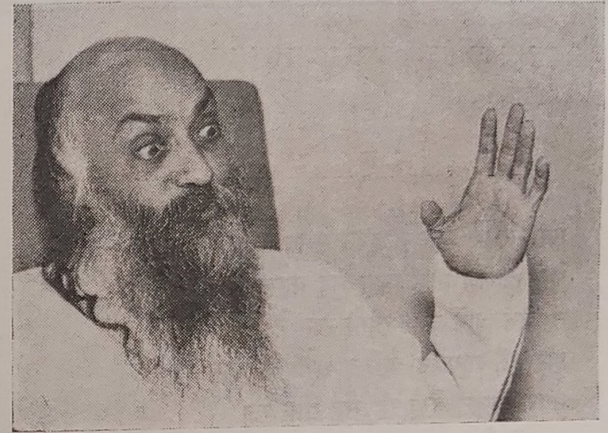
# सतगुरु शरणे आयकै तामस त्यागिये

नवां प्रवचन; दिनांक २९ सितम्बर, १९७८

श्री रजनीश आश्रम, पूना

खैर सरीखी और न दूजी वसत है ।
मेल्हे वासण मांहिं कहा मुंह कसत है ॥
तूं जिन जानें जाय रहेगो ठाम रे ।
हरि हां, माया दे वाजिद धणी के काम रे ।
मंगण आवत देख रहे मुहुं गोय रे ।
जद्यापि है बहु दाम काम नहिं लोय रे ॥
भूखे भोजन दियो न नागा कापरा ।
हरि हां, बिन दीया वाजिद पावे कहा वापरा ॥
जल में झीणा जीव थाह नहिं कोय रे ।
बिन छाण्या जल पियां पाप बहु होय रे ॥
काठै कपड़े छाण नीर कूं पीजिये ।
हरि हां, वाजिद, जीवाणी जल मांहि जुगत सूं कीजिये ॥
साहिब के दरबार पुकार्‌या बाकरा ।
काजी लीया जाय कमरसों पाकरा ॥
मेरा लीया सीस उसीका लीजिये ।
हरि हां, वाजिद, राव रंक का न्याव बराबर कीजिये ॥

पाहन पड़ गई रेख रात दिन धोवहीं ।
छाले पड़ गये हाथ मूंड़ गहि रोवहीं ॥
जाको जोइ सुभाव जाइहै जीव सूं ।
हरि हां, नीम न मीठी होइ सींच गुड़ घीव सूं ॥
सतगुरु शरणे आयक तामस त्यागिये ।
बुरी भली कह जाय ऊठ नहिं लागिये ॥
उठ लाग्या में राड़, राड़ में मीच है ।
हरि हां, जा घर प्रगटै क्रोध सोइ घर नीच है ॥
कहि-कहि वचन कठोर खरूंठ नहिं छोलिये ।
सीतल सांत स्वभाव सबन सूं बोलिये ॥
आपन सीतल होय और भी कीजिये ।
हरि हां, बलती में सुण मीत न पूला दीजिये ॥
बड़ा भया सो कहा बरस सौ साठ का ।
घणां पढ़्या तो कहा चतुर्विधि पाठ का ॥
छापा तिलक बनाय कमंडल काठ का ।
हरि हां, वाजिद, एक न आया हाथ पंसेरी आठ का ॥

मुहब्बत की जहांबानी के दिन हैं
जमीं पर खुल्दसामानी के दिन हैं
जो हैं अपनी जगह खुर्शीदे-बुनियाद
अब उन जरों की ताबानी के दिन हैं
इरादों की बुलन्दी ओज पर हैं
हवादस की पशेमानी के दिन हैं
मुहब्बत जल्वागर है, झोपड़ों में
अब इस दौलत की अरजानी के दिन हैं
हर-इक जंजीर है अब पा-शिकस्ता
हर-इक जिंदां की वीरानी के दिन हैं
जवाल अमादा है तामीरे औहाम
कमाले-फिक्रे-इनसानी के दिन हैं
कसीदे बादशाहों के हुए खत्म
मुहब्बत की गजल-ख्वानी के दिन हैं
बहुत मासूम है एक-एक लगजिश
गरूरे-पाकदामानी के दिन हैं

धर्म की घोषणा प्रेम की घोषणा है। धर्म का प्रयास-पृथ्वी पर प्रेम के प्रसाद को उतार लेने के लिए है। धर्म की प्रार्थना— प्रभु इस पृथ्वी पर उतरे, इस के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। और प्रभु के उतरने की सीढ़ी है प्रेम। प्रभु तक जाने की सीढ़ी भी है प्रेम। प्रभु के हम तक आने की सीढ़ी भी है प्रेम। स्वभावतः जिस सीढ़ी से हम ऊपर जाते हैं उसी सीढ़ी से हम नीचे भी आते हैं। प्रेम जोड़ता है— स्वर्ग को और पृथ्वी को। जिन्हें स्वर्ग तक जाना है, उन्हें प्रेम की सीढ़ी चढ़नी होती है। और अगर



स्वर्ग को लाना है पृथ्वी पर, तो उसे भी प्रेम की ही सीढ़ी से लाना होगा। धर्म का सारसूत्र प्रेम है।

मुहब्बत की जहांबानी के दिन हैं—प्रेम के शासन के दिन आ गए।

जमीं पर खुल्द सामानी के दिन हैं— जमीन को स्वर्ग जैसे बनाने का समय आ गया।

जो हैं अपनी जगह खुर्शीदे-बुनियाद
अब उन जरों की ताबानी के दिन हैं

सूर्यों के दिन तो सदा से थे, अब एक-एक अणु के सूरज के जैसे प्रकाशित हो जाने के दिन आ गए हैं। और विज्ञान ने पाया भी ऐसा ही है, कि एक-एक अणु अपने भीतर एक-एक सूर्य है। इतनी ऊर्जा का सागर जैसे सूरज... ऐसे ही एक-एक मनुष्य भी इतना ही विराट है, जितना परमात्मा।

पर प्रेम के बिना इस विराटता का पता नही चलता। प्रेम के बिना हम सिकुड़ जाते हैं, छोटे हो जाते हैं। प्रेम के साथ हम फैलते हैं। प्रेम विस्तीर्ण करता है। जितना बड़ा प्रेम होता है, उतनी बड़ी तुम्हारी आत्मा होती है। अगर तुम किसी एक व्यक्ति को प्रेम करते हो, तो भी तुम थोड़े विराट हो जाते हो; दो को करते हो तो और ज्यादा, तीन को करते तो और ज्यादा...! और जिस दिन यह सारा जगत तुम्हारा प्रेम-पात्र हो जाएगा, तुम्हारा प्रीतम, उस दिन तुम्हारी आत्मा इतनी ही बड़ी होगी, जितना बड़ा आकाश!

हर-इक जंजीर है अब पा-शिकस्ता... जंजीरें आदमी के पैरों पर बहुत जीर्णशीर्ण हो गई हैं; तोड़ देने का वक्त आ गया है; जरा से झटके में टूट जायेंगी।

हर-इक जंजीर है अब पा-शिकस्ता
हर-इक जिन्दां की वीरानी के दिन हैं

और कारागृह अब वीरान हो जाने चाहिए। कौन से कारागृह? लौहे के सींखचों से जो बने हैं, वे असली कारागृह नहीं हैं। असली कारागृह तो वे हैं जो तुम्हारी घृणा की ईंटों से चुने गए हैं। आदमी बंद है, तो घृणा, वैमनस्य, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष—इनके कारागृहों में बंद है। और आदमी मुक्त होगा, तो प्रेम के आकाश में मुक्त होगा। आ गए दिन, जब सारे कारागृह वीरान हो जायें, मनुष्य मुक्त हो!

लेकिन मनुष्य प्रेम के अतिरिक्त और किसी तरह मुक्त होता ही नहीं है।

जो लोग मुक्त होना चाहते हैं बिना प्रेम के, उनके लिए मुक्ति भी एक नया बंधन हो जाता है और कुछ भी नहीं। इसलिए तुम तुम्हारे साधु-संतों को भी नए बंधनों में बंधा हुआ पाओगे। उनका बंधन नया है। उनके बंधन पर मोक्ष का

नाम लिखा है ! मगर जिनके हृदय प्रेम से शून्य हैं, जिन्होंने प्रेम की रसधार तोड़ दी है, और जिन्होंने प्रेम के सेतु जला दिए हैं, वे लाख चिल्लाते रहें मोक्ष के लिए, उन्होंने मोक्ष का उपाय मिटा दिया। उनकी पुकार कहीं भी पहुंचेगी नहीं। उनकी पुकार का कोई परिणाम नहीं होगा। उन्होंने बीज ही दग्ध कर दिया, जो मोक्ष बनता है। प्रेम का बीज ही मोक्ष का फूल बनता है।

मनुष्य के हृदय में प्रेम से मूल्यवान और कुछ भी नही है। इसलिए मेरी सारी शिक्षा. . .तुम्हारा प्रेम जैसे-जैसे विकसित हो, जिस-जिस द्वार से विकसित हो, जिस-जिस माध्यम से, सब माध्यम उपयोग करना है। देह का प्रेम भी सुन्दर है, लेकिन उसी पर रुक मत जाना। मन का प्रेम भी सुन्दर है, लेकिन उसी पर ठहर मत जाना। आत्मा का प्रेम भी सुन्दर है, लेकिन वहां भी नहीं रुकना है। पहुंचना तो परमात्मा तक है। तभी तुम्हारी सारी जंजीरें टूटेंगी।

और जंजीरें बिल्कुल जीर्ण-शीर्ण हो गई हैं। जरा झटका दे दो कि टूट जायें। तुम्हारे ऊपर जंजीरों का प्रभाव बहुत नहीं रह गया हैं; सिर्फ पुराने आदतों के कारण तुम जंजीरों के प्रभाव में हो।

आज कौन हिन्दू हिन्दू है, कौन मुसलमान मुसलमान है, कौन ईसाई ईसाई है ? अगर लोग ईसाई हो जाते हैं, तो रविवार को हो जाते हैं—जब चर्च जाते हैं। और अगर कोई मुसलमान हो जाता है, तो तब जब हिन्दुओं के मंदिर जलाने होते हैं। और कोई हिन्दू हो जाता है, तो तब जब घृणा और वैमनस्य की लपटें जलती हैं। ये जंजीरें, ये कारागृह तुम काम में ही तब लाते हो, जब कुछ गलत करना होता है। जंजीरों का ठीक उपयोग हो भी नहीं सकता। और करागृहों की कोई सम्यक परिणति हो भी नहीं सकती।

ये दीवालें तुम्हें दूसरों से अलग करती हैं। मनुष्य और मनुष्य के बीच फासला खड़ा करती हैं, भेद खड़ा करती हैं। मनुष्य को मनुष्य का दुश्मन बनाती हैं। इनके तोड़ने के दिन आ गए ! और एक झटके में टूट जायेगी ये, क्योंकि ये बड़ी जीर्ण-शीर्ण हो गई हैं, बहुत पुरानी हैं। इनके प्राण तो निकल ही चुके, तुम इन्हें क्यों ढो रहे हो यही आश्चर्य की बात है ! तुम्हारी आत्मा का इनके साथ कोई संबंध भी नहीं रह गया है।

> हर-इक जंजीर है अब पा-शिकस्ता
> हर-इक जिन्दां की वीरानी के दिन हैं

हर कारागृह को बरबाद करने देने का समय आ गया है. . .।

धर्म मनुष्य को तैयार करता है इस घड़ी के लिए; वह घड़ी करीब आ गई है। महावीरों ने, बुद्धों ने, मोहम्मदों ने जिस घड़ी की प्रतीक्षा की थी, वह घड़ी करीब आ



रही है ! पृथ्वी अब एक हो सकती है। सब दीवारें गिराई जा सकती हैं। और सब जंजीरें तोड़ी जा सकती हैं। जो उनकी आकांक्षा थी, आज पूरी हो सकती है।

एक बहुत अपूर्व क्षण मनुष्य जाति के इतिहास में करीब आ रहा है। इस सदी के पूरे होते-होते, तुम या तो मनुष्य को मिटा हुआ पाओगे, या मनुष्य का एक नया जन्म देखोगे। वह जन्म प्रेम का जन्म होगा। अब प्रेम का मंदिर ही बचेगा पृथ्वी पर, और मंदिर नहीं बच सकते। और मंदिरों की जरूरत भी नहीं है। सारे मंदिर प्रेम के मंदिर बन जाने चाहिए। और सारे मंदिरों में प्रभु-उल्लास के गीत गाये जाने चाहिए।

हो चुकी उदासी बहुत। हो चुका विराग बहुत। हो चुकी त्याग-तपश्चर्या की बात बहुत. . .अब प्रेम का गीत और प्रेम का झरना फूटना चाहिए। विराग संसार से करने की चेष्टा असफल हो गई है, अब परमात्मा से राग करना चाहिए। और मैं तुमसे कहता हूं, जो परमात्मा से राग कर लेता है, उसका संसार से विराग अपने-आप हो जाता है। जो विराट के प्रेम में पड़ जाता है, क्षुद्र से उसके नाते अपने-आप टूट जाते हैं। क्षुद्र से नाते तोड़ने की चेष्टा ही छोड़ दो, विराट से संबंध जोड़ो।

यह मौलिक भेद है मेरी दृष्टि में और अन्य दृष्टियों में। अन्य दृष्टियां कहती हैं—अंधेरे से लड़ो। मैं कहता हूं—दीये को जलाओ, अंधेरे से लड़ो मत। अंधेरे की कोई औकात क्या ? अंधेरे का अस्तित्व क्या ? अंधेरे की शक्ति क्या ? दीया जलेगा, और अंधेरा नहीं हो जाएगा। संसार को छोड़ो मत, परमात्मा से प्रेम कर लो। और उसी प्रेम में संसार छूट जाएगा। संसार में रहते-रहते भी तुम सांसारिक नहीं रह जाओगे। इसी कीमिया को मैं संन्यास कह रहा हूं।

जवाल आमादा है तामीरे-औहम—अंधविश्वासों के दिन लद गए। कमाले-फिक्रे इनसानी के दिन हैं— अब तो मनुष्य के गौरव का दिन आया। मनुष्य की प्रतिभा के निखार का दिन आया।

कसीदे बादशाहों के हुए खत्म— हो चुकीं स्तुतियां राजनेताओं की बहुत. . . मुहब्बत की गजलख्वानी के दिन हैं।

राजनीत घृणा का शास्त्र है। यदि धर्म प्रेम का शास्त्र है तो राजनीति घृणा का शास्त्र है। अगर धर्म अद्वैत का शास्त्र है तो राजनीति द्वैत का, भेद का शास्त्र है। अगर धर्म जोड़ सकता है, तो राजनीति लड़ाती है।

इसलिए मैं कहता हूं, जिन धर्मों ने तुम्हें लड़ाया हो, वे छद्मवेश में राजनीतियां थीं, धर्म नहीं थे। तुम्हारे पंडित, तुम्हारे पुरोहित, तुम्हारे मौलवी, तुम्हारे पादरी—राजनीतिज्ञ के हाथ के प्यादों से ज्यादा नहीं हैं। मंदिरों और मस्जिदों के पीछे राजनीति के झंडे हैं !

अब तक प्रेम का झंडा उठ नहीं सका है। बहुत बार उठाने की कोशिश की गई है... जीसस ने उठाना चाहा और बुद्ध ने उठाना चाहा। और बुद्ध के विदा होते ही झंडा गिर गया; या झंडा अगर रहा भी, तो उस के पीछे दूसरे झंडे खड़े हो गए हैं। बहुत बार मनुष्य की प्रज्ञा को गौरव देने के आयोजन किए गए। तुम्हारे भीतर परमात्मा का आवास है, इसकी घोषणायें की गईं। लेकिन तुम बार-बार सो जाते हो और भूल जाते हो। तुम सपनों में खो जाते हो!

तुम बुद्धों की बात सुनते ही नहीं, तुम बुद्धू पुरोहितों के चक्र में पड़ जाते हो। और बुद्धू पुरोहित को तुम्हारी मुक्ति से कोई प्रयोजन नहीं है। उसका प्रयोजन है तुम्हारे शोषण से। तुम्हारे शोषण पर वह जीता है। हां, लफ्फाजी है, सुन्दर उसके शब्द हैं, वेद उसे कंठस्थ हैं, कुरान उसे याद है; पर उतनी ही जैसे तोतों को याद हो जाए! बस तोता-रटन्त से ज्यादा कुछ भी नहीं है! उसके प्राणों में कहीं भी उपनिषदों की गूंज नहीं है। उसके जीवन में कहीं धम्मपद का कोई अनुभव नहीं है। उसकी श्वासों में अभी कुरान की तरन्नुम नहीं बसी है। और न उसके हृदय ने अभी जाना है कि परमात्मा क्या है। उसने तो धर्म को भी मनुष्य के ऊपर हावी होने का एक कारगर उपाय समझा है!

लद गए वे दिन! अब चाहो तो तुम बाहर निकल आओ अपने काराग्रहों से। सिर्फ पुरानी आदत के कारण तुम रुके हो। दरवाजा खुला पड़ा है। दरवाजे टूट गए हैं। जंजीरें सड़ गई हैं। कोई कारण काराग्रहों में रहने का नहीं रह गया है। सिर्फ हिम्मत जुटाने की बात है। सिर्फ जरा सा साहस और सब लक्ष्मण-रेखायें जो तुम्हारे पास खींची गई थी...सब अंध विश्वास कचरे के ढेर में फेंक दिये जा सकते हैं! अब दिन आ गए प्रेम के गीत गाने के! मुहब्बत की गजल-ख्वानी के दिन हैं।

बहुत मासूम है एक-एक लगजिश—और प्रेम रास्ते पर भूल भी करो, तो प्यारी है और घृणा के रास्ते पर भूल न भी करो, तो भी भूल हैं। इसे समझना, प्रेम का जादू ऐसा है! उसके रास्ते पर भूल भी करो, तो भूल नहीं रह जाती। प्रेम के रास्ते पर भूल बड़ी भोली-भाली हो जाती है, बड़ी निर्दोष हो जाती है। घृणा के रास्ते पर बिलकुल ठीक-ठीक भी करो, तो भी ठीक-ठीक सिर्फ चालाकी होती है, चालबाजी होती है।
बहुत मासूम है, एक-एक लगजिश—एक-एक भूल बड़ी भोली-भाली है।
गरूरे पाकदामानी के दिन हैं। अब इस भोली-भाली पवित्रता के गौरव दिन आ गए।

मनुष्य को निर्दोष बनाना है। पांडित्य नहीं देना है मनुष्य को; पांडित्य मनुष्य के प्रेम की हत्या कर देता है। पंडित को तुम प्रेमी न पाओगे। पंडित का मस्तिष्क इतना कचरे से भर जाता है, कि उसके हृदय को गुनगुनाने का मौका ही नहीं रहता। पंडित



सिर में जीने लगता है, हृदय को भूल ही जाता है। हृदय की उसे याद ही नहीं रह जाती।

और पंडित हृदय की बात सुन भी नहीं सकता। क्योंकि हृदय की बात पागलपन की मालूम होती है। जिसने बुद्धि के गणित को सब कुछ समझ लिया, उसे हृदय की बात अंधी मालूम होती है। इसलिए पंडित प्रेम को अंधा कहते हैं। मैं तुमसे कहता हूं, प्रेम ही सिर्फ आंखवान है, प्रेम के पास ही सिर्फ आंख है। क्योंकि उसी आंख से परमात्मा देखा जाता है... और बाकी सब आंखें अंधी हैं।

लेकिन होशियार आदमी प्रेम को अंधा कहता है। जरूर उनकी होशियारी में कहीं चूक है। तार्किक व्यक्ति कहते हैं—बचना प्रेम से, क्योंकि प्रेम पागलपन है। तर्क की दृष्टि में प्रेम पागलपन है भी। क्योंकि तर्क कहता है छीनो, झपटो और प्रेम कहता है दो। छीन-झपट वाले तर्क के लिए, देने की बात पागलपन तो मालूम होगी ही।

ये आज के सूत्र दान के सूत्र हैं। दान का अर्थ है—दो; अशेष भाव से दो। अपने को चुका ही दो देने में। कुछ बचाना मत। जरा सी भी कृपणता मत करना। क्योंकि तुमने जितनी कृपणता की, उतने ही तुम परमात्मा से वंचित रह जाओगे। परमात्मा उसे मिलता है, जो अपने को समग्रीभूत रूप से दे देता है। समर्पित को मिलता है परमात्मा। और प्रेम की पाठशाला में ही समर्पण के पाठ सीखे जाते हैं।

बहुत मासूम है एक-एक लगजिश... घबड़ाना मत, प्रेम के रास्ते पर अगर पैर डगमगायें; डगमगायेंगे ही, क्योंकि तुम कभी चले नहीं। और प्रेम के रास्ते पर अगर तुम्हें नई-नई अनुभूतियां हों, तो डरना मत, घबड़ाना मत। अज्ञात का भय लगता है। अनजान, अपरिचित का भय लगता है। तुम अब तक होशियारी से जिये हो। सम्हल-सम्हल कर चले हो। तुम्हें लड़खड़ाने का पता ही नहीं है।

लड़खड़ाने की एक निर्दोषता है, एक सरलता है। शराबी को देखा है लड़खड़ाते... ऐसा ही प्रेमी भी लड़खड़ाता है। परमात्मा की शराब को पीकर लड़खड़ाता है। मदमस्त हो जाता है। डोलने लगता है। उसकी आंखें गीली हो जाती हैं। आंखें ही नहीं उसका हृदय भी गीला हो जाता है। उसके सारे प्राण एक नई लय से भर जाते हैं! अस्तित्व के छंद से उसका तालमेल होने लगता है। वृक्षों की हरियाली उसे अपनी हरियाली मालूम होने लगती है। फूलों की लाली उसे अपनी लाली मालूम होने लगती है। उधर सूरज ऊगता है, इधर उसे लगता है उसके भीतर भी कोई ऊगा! अस्तित्व के साथ उसका एक सामानांतर संबंध हो जाता है। उधर फूल खिलते हैं, तो उसे लगता है इधर भीतर भी कोई खिला!... तब कोई जान पाता है परमात्मा को!

मगर इसके लिए, इस अनुभूति के लिए दान की कला सीखनी होगी। और दान से

इतना ही मत समझ लेना कि चले गए और मंदिर में दो पैसे दान कर आए ! यह फिर उसी गणित की बात हो गई, होशियारी की बात हो गई। चलो कुछ दे लो, हो कहीं परमात्मा... किसी दिन तो कहने को रह जाएगा कि हमने दान भी किया था। यह दान दान नहीं है, जो प्रतिकार मांगता है। यह दान दान नहीं है, जो पुरस्कार मांगता है। यह दान दान नहीं है, जो हेतुपूर्वक दिया गया है। दान तो तभी दान है, जब आनंद से दिया गया है— अहेतुक, देने के ही मजे से दिया गया है; देने में ही जिसका पुरस्कार मिल गया है। जिसके पीछे लेने का कोई विचार ही नहीं है। जिसके पीछे न तो पुण्य की कोई धारणा है, न स्वर्ग और बैकुण्ठ में कुछ सुख पाने का कोई आयोजन है। जिसके पीछे कोई आयोजना ही नहीं है, वही दान है। और दान का यह मतलब नहीं है कि भिखारी को दो पैसा दे देना और सोच लेना निश्चिन्त हुए !

भिखारी को तुम्हारे दिए गए दो पैसे, भिखारी को कम दिये जाते हैं, तुम अपनी बेचैनी को छिपाने के लिए ही ज्यादा सांत्वना तलाश लेते हो। तुम कहते हो, हमने कुछ तो किया। न दो तो तुम्हारे भीतर चोट लगती है, पीड़ा होती है—तुम भी तो अपराधी हो ! तुम्हें लगता है मैं भी तो इस भिखमंगे के भिखमंगेपन का भागीदार हूं। इस समाज का मैं भी तो हिस्सा हूं। इस समाज ने इसे भीख मांगने पर मजबूर कर दिया है। तुम्हारे भीतर अपराध की वृत्ति पैदा होती है। तुम्हें लगता है कि मैं कुछ जुम्मेवार हूं। मैंने कोई अनजाने पाप किया। दो पैसे देकर तुम अपना मन हलका कर लेते हो। तुम भिखारी को नहीं देते दो पैसे, तुम अपने घाव पर थोड़ी मलहम-पट्टी रख लेते हो !

कि मंदिर में कुछ दान कर आते हो, कि तीर्थ चले जाते हो... यह सब धोखे हैं। यह देना नहीं है, यह देने की भ्रांति पैदा करनी है। फिर देना क्या है ?

देना बड़ी अनूठी प्रक्रिया है। जिस भांति तुम अपनी प्रेयसी को देते हो या अपने बेटे को, या अपने मित्र को—किसी और कारण से नहीं, किसी अपराध के भाव से नहीं, कुछ आगे पाने के हिसाब से नहीं—स्वान्तः सुखाय रघुनाथ गाथा... मस्ती में, आनंद में ! देने में ही रस है। देना ही अपने-आप में पूर्ण हो गया, इसके आगे कुछ और आकांक्षा नहीं है—ऐसे जब तुम दोगे; फिर तुम किसको देते हो यह सवाल नहीं है। ऐसे जब तुम दोगे...।

और धन ही देने की बात नहीं है... वह भी चालबाजी है आदमी की। जब भी दान की बात उठती है, तो आदमी सोचता है—धन। धन तुम लाये भी नहीं थे, दोगे क्या खाक ! जो तुम्हारा नहीं है, उसे देने की भ्रांति में मत पड़ना। जो तुम्हारा नहीं है, वह तुम्हारा है ही नहीं। खाली हाथ आये थे, खाली हाथ जाओगे !

देने की तो असली बात तो—उसे दो, जो तुम्हारा है, जो तुम हो। अपने को दो।



अपने से बचने के लिए आदमी धन दे लेता है। वह सोचता है—दिया तो, कुछ तो दिया। यह दान दान से बचने का उपाय है। अपने को दो। जरूरी नहीं है कि तुम भिखमंगे को दो पैसे दो ही, लेकिन कभी भिखमंगे का हाथ अपने हाथ में लेकर दो घड़ी उसके पास बैठ जाओ। उसकी दुख-सुख की सुन लो। उससे दो बातें कर लो। जैसे वह भी मनुष्य हो—तुम्हारे जैसा ही मनुष्य, तुमसे नीचा नहीं, तुम उससे ऊपर नहीं। तो शायद तुमने ज्यादा दिया। शायद तुमने उसे मनुष्य होने का गौरव दिया। शायद तुमने उसे खींच लिया उसके कूड़े-कचरे से ! तुमने उसे महिमा दी।

और मैं यह नहीं कह रहा हूं कि धन मत देना। लेकिन धन तुम्हारे विराट दान का एक हिस्सा होना चाहिए। धन और दान पर्यायवाची नहीं हो जाने चाहिए। ऐसे ही पर्यायवाची हो गए हैं इस देश में और अन्य देशों में भी ! लोग धन देकर सोच लेते हैं— दान किया !

अब यह भी खूब मजे की बात है, पहले इन्हीं से शोषण कर लेते हो... लाख का शोषण कर लेते हो और दस रुपये दान कर देते हो ! इससे तुम्हें सांत्वना हो जाती है। मगर किसको धोखा दे रहे हो !

धन का इतना मूल्य है कि हम त्याग को भी धन से ही नापते हैं ! जैन अपने शास्त्रों में महावीर के त्याग का वर्णन करते हैं—कि इतने हाथी, इतने घोड़े, इतने स्वर्णरथ, इतने महल, इतने हीरे-जवाहरात...। इतनी बड़ी संख्या गिनाते हैं, जो सच नहीं मालूम होती। क्योंकि महावीर एक बहुत छोटी-सी जागीर के मालिक थे। इतना धन हो नहीं सकता था। महावीर एक इतने छोटे राज्य के मालिक थे; एक तहसील या बहुत-से-बहुत दो तहसील, बस इतनी सीमा थी उस राज्य की। महावीर के जमाने में भारत में दो हजार राज्य थे। जरा-जरा से टुकड़ों में देश बंटा था। एक बड़े मालगुजार समझो, कि बड़े जागीरदार समझो; कोई सम्राट नहीं। लेकिन वर्णन शास्त्रों में ऐसा किया जाता है जैसे चक्रवर्ती सम्राट ! इतना धन इत्यादि था नहीं। ये शास्त्रोंने धन इतना बढ़ा कर बताया। ये क्यों बढ़ाकर बताया होगा ?... और यह बढ़ता गया है। जितना पुराना शास्त्र है, उतना कम वर्णन है हाथियों का, घोड़ों का। फिर जैसे-जैसे शास्त्र और बढ़े, और बढ़े, वर्णन भी बढ़ता गया। क्यों ? क्योंकि त्याग को बड़ा कैसे बतायें ! त्याग को मापने का भी हमारे पास एक ही उपाय है, वह धन है। अगर महावीर के पास कुछ भी नहीं था, तो उनको महात्यागी कैसे कहोगे ! अगर महावीर एक गरीब घर में पैदा हुए होते और त्याग कर देते, तो कोई भी त्याग की बात थी ही नहीं ! लोग कहते, था क्या तुम्हारे पास जो त्याग दिया !

यह तो बड़े मजे की बात हो गई, धनिक को भी धन से तौलते हो और त्यागी को

भी धन से ही तौलते हो; दोनों की कसौटी एक ! तब तो धन परम मूल्य हो गया ! इस संसार में भी उसी से प्रतिष्ठा है और उस संसार में भी उसी से प्रतिष्ठा है । तो धन का सिक्का तो आत्यन्तिक सिक्का हो गया ! यहां ही नहीं चलता परलोक में भी वही चलेगा !

फिर महावीर के मानने वालों को लगा होगा कि बुद्ध के शास्त्रों में इतने—इतने हाथी-घोड़ों का वर्णन है, उससे बढ़ा कर बताओ । फिर एक दौड़ मच गई होगी, प्रतियोगिता मच गई होगी । बौद्ध बढ़ा कर बताने लगे । बुद्ध भी कोई बहुत बड़े सम्राट नहीं थे । नेपाल की एक छोटी-सी जागीर के मालिक थे । कपिलवस्तु कहां खो गई, पता भी नहीं चलता । छोटा सा राज्य था... ।

लेकिन हमारे पास और कोई उपाय नहीं है । ऐसा नहीं है कि इस देश में और लोगों ने त्याग नहीं किया । लेकिन हिन्दुओं के सब अवतार राजपुत्र, जैनों के चौबीस तीर्थंकर राजपुत्र, बुद्ध राजपुत्र । ये तीन बड़े धर्म हैं । इन तीनों बड़े धर्मों के जो श्रेष्ठतम पुरुष हैं, सब राजपुत्र हैं । मामला क्या है ? मामला साफ है । गरीबों ने भी छोड़ा, लेकिन गरीबों के छोड़ने पर गिनती क्या करोगे, कैसे करोगे ? अमीरों ने छोड़ा, तो गिनती हो सकी । अमीरों ने छोड़ा, तो हमारे चित्त पर छाप पड़ी; हमें लगा कि हां, कुछ छोड़ा !

हमारे मन में धन का इतना मूल्य है, हम धन के ऐसे दीवाने हैं, कि हमारे सोचने की सारी प्रक्रिया धन से बंध गई है । तो त्याग हो तो भी धन...तो भी हम पूछते हैं—कितने का त्याग ? हमारा पूछना वही है । हमारा जानना वही है, हमारा मानना वही है । किसी ने दस रुपये छोड़ दिये । तुम कहोगे, क्या कोई बड़ी भारी बात कर दी ? लाखों छोड़नेवाले पड़े हैं... किसी ने करोड़ छोड़े तो कुछ बात हुई ।

इस मनुष्य की भ्रांत मनोदशा का परिणाम यह हुआ कि दान का अर्थ ही धन से बंध गया । जैसे ही तुम सुनते हो—दान दो, तुम्हें ख्याल अपनी जेब का आता है ।

दान का कोई अनिवार्य संबंध धन से नहीं है । दान का संबंध जीवन की एक शैली से है । दान का अर्थ है—जीवन को बांटो ! जीवन को सिकोड़ो मत, फैलाओ । जीवन की प्याली से दूसरों की प्याली में जितना रस बह सके बहने दो । कृपण न होओ जीवन में । अगर हंसी दे सकते हो किसी को, हंसी दो । अगर नाच दे सकते हो किसी को, नाच दो । आलिंगन दे सकते हो किसी को, आलिंगन दो । किसी का हाथ हाथ में लेकर बैठ सकते हो और उसे राहत मिलेगी, तो राहत दो । किसी के दुख में रोओ, दो आंसू गिराओ । किसी की खुशी में नाचो, मगन हो जाओ—यह सब दान है । दान की अनंत संभावनायें हैं । धन पर दान को मत बांधो । नहीं तो गरीब क्या दान करेगा ?



धन पर मत बांधो दान को, नहीं तो उल्टे परिणाम होते हैं । जिनको दान करना है, पहले धन इकट्ठा करना होता है । और धन इकट्ठा करने में तुम कितना कष्ट दे देते हो दूसरों को ! और फिर उसी को बांटते हो । जब बांटना ही है, तो इकट्ठा क्यों करना ? लेकिन लोग सोचते हैं, कि धन होगा तभी तो दान हो सकेगा । और दान के बिना तो मोक्ष नहीं है ।

गलत है यह पूरा चिन्तन, यह पूरी तर्क-सरणी । प्रत्येक व्यक्ति दान कर सकता है । जिसके पास कुछ भी नहीं है, वह भी खूब दान कर सकता है ! और अक्सर ऐसा होता है, जिसके पास कुछ भी नहीं है, वही दान कर पाता है । क्योंकि उसे छोड़ने का डर ही नहीं होता । कुछ है ही नहीं, तो खोयेगा क्या ? इसलिए तुम अमीर आदमी को कंजूस पाते हो, गरीब को कंजूस नहीं पाते । गरीब दे सकता है । ऐसे ही नहीं... ।

मैंने सुना है, एक गरीब आदमी की झोपड़ी पर... रात जोर की वर्षा हो रही थी । फकीर था; छोटी-सी झोपड़ी थी । स्वयं और उसकी पत्नी दोनों सोये थे । आधी रात किसी ने द्वार पर दस्तक दी । फकीर ने अपनी पत्नी से कहा, उठ, द्वार खोल दे । पत्नी द्वार के करीब सो रही थी । पत्नी ने कहा : इस आधी रात में जगह कहां है ? कोई अगर शरण मांगेगा तो तुम मना न कर सकोगे । वर्षा जोर की हो रही है । कोई शरण मांगने ही द्वार आया होगा । जगह कहां है ? उस फकीर ने कहा : जगह दो के सोने के लायक काफी है, तीन के बैठने के लायक काफी होगी । तू दरवाजा खोल । लेकिन द्वार आये आदमी को वापिस तो नहीं लौटाना है । दरवाजा खोला । कोई शरण ही मांग रहा था; भटक गया और वर्षा मूसलाधार थी । तीनों बैठकर गपशप करने लगे । सोने लायक तो जगह न थी । थोड़ी देर बाद किसी और आदमी ने दस्तक दी । फिर फकीर ने अपनी पत्नी से कहा, खोल । पत्नी ने कहा, अब करोगे क्या, जगह कहां है ? अगर किसी ने शरण मांगी ? उस फकीर ने कहा, अभी बैठने लायक जगह है, फिर खड़े रहेंगे; मगर दरवाजा खोल । फिर दरवाजा खोला । फिर कोई आ गया । अब वे खड़े होकर बातचीत करने लगे । इतना छोटा झोपड़ा ! और तब अंततः एक गधे ने आकर जोर से आवाज की । दरवाजे को हिलाया । फकीर ने कहा, दरवाजा खोलो । पत्नी ने कहा : अब तुम पागल हुए हो, यह गधा है, आदमी भी नहीं ! फकीर ने कहा : हमने आदमियों के कारण दरवाजा नहीं खोला था, अपने हृदय के कारण खोला था । हमें गधे और आदमी में क्या फर्क ? हमने मेहमानों के लिए दरवाजा खोला था । उसने भी आवाज दी है । उसने भी द्वार हिलाया है । उसने अपना काम पूरा कर दिया, अब हमें अपना काम पूरा करना है । दरवाजा खोलो । उसकी औरत ने कहा अब तो खड़े होने की भी जगह नहीं है ! उसने कहा, अभी हम जरा आराम से खड़े

हैं, फिर सट कर खड़े होंगे। और याद रख एक बात, यह कोई अमीर का महल नहीं है जिसमें जगह की कमी है ! यह गरीब का झोपड़ा है। इसमें खूब जगह है !

यह कहानी मैंने पढ़ी, तो मैं हैरान हुआ। उसने कहा, यह कोई अमीर का महल नहीं है जिसमें जगह न हो। यह गरीब का झोपड़ा है। इसमें खूब जगह है। जगह महलों में और झोपड़ों में नहीं होती, जगह हृदयों में होती है।

अक्सर तुम पाओगे, गरीब कंजूस नहीं होता। कंजूस होने योग्य उसके पास कुछ है ही नहीं। पकड़े तो पकड़े क्या ? जैसे-जैसे आदमी अमीर होता है, वैसे-वैसे कंजूस होने लगता है, क्योंकि जैसे जैसे पकड़ने को होता है, वैसे-वैसे पकड़ने का मोह बढ़ता है, लोभ बढ़ता है। निन्यानबे का चक्कर पैदा हो जाता है। जिसके पास निन्यानबे रुपये हैं, उसका मन होता है कि किसी तरह सौ हो जायें। तुम उससे एक रुपया मांगो वह न दे सकेगा, क्योंकि एक गया तो अन्ठानबे हो जायेंगे। अभी सौ की आशा बांध रहा था, अब हुए पूरे, अब हुए पूरे।...नहीं दे पायेगा। लेकिन जिसके पास एक ही रुपया है, वह दे सकता है। क्योंकि सौ तो कभी होंगे नहीं। यह चला ही जाएगा रुपया।

तुमने भी अपने मन में यह तर्क कई बार पाया होगा। लोगों के पास एक रुपये का फुटकर नोट होता है; जल्दी चला जाता है। सौ रुपये का नोट होता है, तो वह तोड़ता ही नहीं। वह कहता है तोड़ना ठीक नहीं, क्योंकि टूटा कि गया। सौ पर पकड़ ज्यादा हो जाती है। हजार का हो, तो और पकड़ ज्यादा हो जाती है, कहीं टूट न जाए। टूटा कि गया। जितना कम है उतनी पकड़ भी कम होती है। और चला तो जाएगा ही। अभी नहीं तो थोड़ी देर में चला जाएगा। पकड़ने का अर्थ भी क्या है ?

तो ऐसा नहीं कि गरीबों ने दान नहीं किया। सच तो यह है, गरीबों ने महत् दान किया है। मगर उनका दान लेखे-जोखे में नहीं आता। उनके दान को लेखे-जोखे में लाने का तराजू नहीं है। उन्होंने प्रेम दिया, धन नहीं दिया। धन तो था ही नहीं, देते क्या ? उन्होंने प्रेम दिया। महल तो थे नहीं, हाथी-घोड़े, हीरे-जवाहरात तो थे नहीं; लेकिन जो था, अपना जीवन था, वह दिया। अपना प्रेम दिया। अपनी सहानुभूति दी। अपनी करुणा दी। मगर उसको तो कैसे नापो, किस तराजू पर नापो ?

इसलिए धनियों का दान तो खूब चर्चा की जाती है ! धनी दानशाली हो जाते हैं, दाता हो जाते हैं। गरीब का कोई हिसाब नहीं लगाया जाता।

धन से दान को मत जोड़ना। दान को धन से मत जोड़ना। दान बहुत बड़ी बात है। दान की उस बहुत बड़ी घटना में, धन का दान भी एक हिस्सा मात्र है और बहुत छोटा, क्षुद्र हिस्सा ! कोई बहुत बड़ा हिस्सा नहीं है; साधारण, अतिसाधारण। उसमें असली हिस्से तो और हैं, आत्मा के, प्रेम के, ज्ञान के, बोध के हैं।



अब देखो मजा, महावीर ने महल छोड़ा, धन-दौलत छोड़ी; उसका शास्त्रों में खूब वर्णन है। और फिर जीवन भर उन्होंने प्रेम बांटा, ज्ञान बांटा, ध्यान बांटा; उसका कोई वर्णन नहीं है। उसको कोई दान मानता ही नहीं। मैं चौंकता हूं कभी यह देखकर, कि शास्त्र लिखने वाले भी कैसे अंधे लोग होते हैं ! फिर कोई यह नहीं कहता कि महावीर ने कितना ध्यान बांटा। कितने लोगों के ध्यान के दीये जलाये ! ऐसे ही थोड़ी जल जाते हैं ध्यान के दीये। महावीर की ज्योति छलांग लेगी, तब किसी बुझे दिये में ज्योति आती है। महावीर अपने प्राणों को डालते जाते हैं। कितने लोगों में उन्होंने अपने प्राण डाले हैं ! कितने लोगों की श्वासें सुगंधित हो गई हैं। कितने लोगों के जीवन में शांति आई !

नहीं, इसका कोई हिसाब नहीं है। वह जो कंकड़-पत्थर बांट कर निकल गये थे महल से....। वह महल भी उनका नहीं था। वह कंकड़-पत्थर भी उनके नहीं थे। वह छूट ही जाने थे। आज नहीं कल मौत आती और सब छीन लेती। उसका हिसाब लगाया गया है !

लेकिन महावीर ने कितने लोगों को ध्यान दिया ! कितने लोगों को प्रेम दिया ! लोगों को ही नहीं, फकीर के गधे को याद रखना, महावीर ने कीड़े-मकोड़ों को भी उतना ही प्रेम दिया जितना मनुष्यों को। इसलिए पैर भी फूंक-फूंक कर रखने लगे कि किसी को चोट न लग जाए ! रात महावीर करवट नहीं बदलते थे, क्योंकि करवट बदलें और कोई रात कीड़ा-मकोड़ा आ गया हो पीठ के पीछे; विश्राम कर रहा हो, दब जाए, मर जाए। तो एक ही करवट सोते थे। यह दान चल रहा है ! अब हीरे-जवाहरात तो नहीं हैं बांटने को, अब असली हीरे-जवाहरात बांटे जा रहे हैं।

मगर हमारे तथाकथित शास्त्र लिखने वाले को असली हीरे-जवाहरातों का तो कोई पता नहीं है। कबीर के पास महल तो नहीं था छोड़ने को, था ही नहीं। इसलिए कबीर तीर्थंकर बनने से वंचित रह गए। इसलिए कबीर अवतार न बन सके। इसलिए कबीर पैगम्बर न बन सके। इसलिए कबीर चूक गए। और कबीर ने जो बांटा, कबीर ने जीवन-भर जो बांटा—जो मस्ती बांटी, जो आनंद बांटा, जो रस बांटा ! कबीर ने न मालूम कितने लोगों के जीवन में फूल बरसाये। उस सबका हिसाब कौन करेगा ?

तो मैं तुम्हारे मन से यह भ्रांति तोड़ देना चाहता हूं कि धन और दान एकार्थी हैं। दान बहुत बड़ी घटना है। धन का दान उस बड़ी घटना में एक छोटा-सा पहलू है, बहुत छोटा-सा पहलू। असली बात है प्रेम। दान और प्रेम पर्यायवाची हैं, दान और धन पर्यायवाची नहीं हैं।

हम दीवानों की क्या हस्ती,  
हैं आज यहां कल वहां चले,

मस्ती का आलम साथ चला,
हम धूल उड़ाते जहां चले,
आए बनकर उल्लास अभी
आंसू बनकर बह चले अभी,
सब कहते ही रह गए, अरे,
तुम कैसे आए, कहां चले ?
किस ओर चले ? यह मत पूछो
चलना है; बस इसलिए चले,
जग से उसका कुछ लिए चले,
जग को अपना कुछ दिए चले,
दो बात कहीं, दो बात सुनीं।
कुछ हंसे और फिर कुछ रोए।
छककर सुख-दुख के घूंटों को
हम एकभाव से पिए चले।
हम भिखमंगों की दुनिया में
स्वच्छन्द लुटाकर प्यार चले,
हम एक निशानी-सी उर पर
ले असफलता का भार चले;
हम मान रहित, अपमान रहित
जी भरकर खुलकर खेल चुके,
हम हंसते-हंसते आज यहां
प्राणों की बाजी हार चले।
हम भला-बुरा सब भूल चुके,
नतमस्तक हो मुख मोड़ चले,
अभिशाप उठाकर होंठों पर
वरदान दृगों से छोड़ चले,
अब अपना और पराया क्या ?
आबाद रहे रुकने वाले !
हम स्वयम् बंधे थे, और स्वयम्
हम अपने बंधन तोड़ चले।
हम दीवानों की क्या हस्ती



हैं आज यहां कल वहां चले
मस्ती का आलम साथ चला,
हम धूल उड़ाते जहां चले,
आए बनकर उल्लास अभी
आंसू बनकर बह चले अभी

दान पर्यायवाची है प्रेम का। और केवल जो मस्त होते हैं, वे ही जानते हैं दान का असली अर्थ। वे अपने आंसू भी बांट देते हैं, अपनी मुस्कुराहटें भी बांट देते हैं। और एक महत्वपूर्ण बात खयाल रखना, वे बांटते इसलिए नहीं हैं कि उत्तर में कुछ मिले, कि कुछ प्रत्युत्तर हो। वे बांटते इसलिए हैं कि बांटने में ही आनंद है। स्वान्तः सुखाय...। यह शब्द स्वान्तः सुखाय बड़ा महत्वपूर्ण है। यह धर्म का आधार बिन्दु है। जो भी करना है स्वान्तः सुखाय...। तुम्हें अच्छा लग रहा है, इसलिए करना है। तुम्हें करने में ही मजा आ रहा है, इसलिए करना है। जिस कृत्य के करने में ही पुण्य हो जाए, बस वही कृत्य पुण्य है। पीछे मत देखना, कि कल पुण्य होगा, कि परसों पुण्य होगा; कि अच्छा स्वर्ग में स्थान मिलेगा, कि अच्छी योनि मिलेगी कि अगली बार राजा के घर पैदा होंगे, सोने की चम्मचें मुंह में लेकर पैदा होंगे; कि अगली बार ज्यादा उम्र मिलेगी, ज्यादा सुन्दर सुखी जीवन मिलेगा।

भविष्य की योजना जिस विचार में आ गई, वही विचार पाप हो जाता है। शुद्ध वर्तमान में जो सुखद है तुम्हारे लिए, बस वही दान है, वही पुण्य है।

और जो तुम्हारे लिए सुखद होता है, क्योंकि तुम और दूसरे अलग नहीं हैं। यहां एक का ही विस्तार है। इसलिए अगर मेरे लिए कुछ सुखद घट रहा है, तो उस सुख की सरसराहट दूसरों के प्राणों में समाविष्ट हो जायेगी।

और तुमने इसे कभी कभी थोड़ा-थोड़ा अनुभव भी किया है। शायद बहुत जागरूक होकर विचार न किया हो। किसी व्यक्ति के पास जाकर तुम उदास हो जाते हो; कारण समझ में नहीं आता। और किसी दूसरे व्यक्ति के पास जाकर तुम प्रफुल्लित हो जाते हो; कारण समझ नहीं आता। एक व्यक्ति तुम्हारे घर आता है मिलने और पीछे एक काली छाया छोड़ जाता है। और दूसरा व्यक्ति तुम्हारे घर आता है, पीछे एक उल्लासमय वातावरण छोड़ जाता है। तुम उदास बैठे थे, किसी के आने से हंसने लगते हो। तुम हंसते थे, किसी के आने से उदास हो जाते हो।

तुमने खयाल किया, हम अलग अलग नहीं हैं; हम जुड़े हैं। हम संयुक्त हैं। प्रतिपल आदान-प्रदान चल रहा है। हम एक दूसरे की ऊर्जा से आन्दोलित हो रहे हैं। इस-लिए तो कोई नाचता है, तुम्हारे हाथ थाप देने लगते हैं। कोई गीत गाता है तुम्हारा

कंठ उल्लसित हो जाता है। तुम्हारे पैर थाप देने लगते हैं। कोई गीत गा रहा है, तुम्हारे पैरों में कैसी उमंग आ जाती है!

यह ऊपर की बात हुई; ठीक ऐसे ही भीतर भी घटती है। यह स्थूल बात हुई, ऐसी ही सूक्ष्म बात भी घटती है। तुम आनंदित व्यक्ति के पास जाओगे; न तो वह गीत गा रहा है, न नाच रहा है, लेकिन उसके भीतर नाच चल रहा है उसके भीतर गीत चल रहा है। उसके हृदय में परम शांति है, शीतलता है। उसके भीतर स्वर्ग बसा है। जरूर तुम्हारा अंतस चेतन भी आंदोलित हो जाएगा, तुम्हारे अंतस चेतन में घूंघर बजने लगेंगे। तुम्हारा अंतस चेतन उसके अंतस चेतन के साथ ताल-मेल बिठाने लगेगा।

तो जो व्यक्ति सुख में जी रहा है, शांति में जी रहा है, ध्यान में जी रहा है, वह कुछ न भी करे, तो भी उसका जीवन दान है: और जो व्यक्ति दुख में जी रहा है, अशांति में जी रहा है, वह कितना ही दान करे, तो भी उसका जीवन दान नहीं है।

इसलिए मैं तुम्हें दान की इस पूरी पृष्ठभूमि को खयाल में दिलाना चाहता हूं; अन्यथा तुम वाजिद के शब्दों को चूक जाओगे। वाजिद के शब्द सीधे-सादे हैं। इतने विस्तार से उन्होंने यह बात कही नहीं हैं।

खैर सरीखी और न दूजी वसत है—सीधे-साधे आदमी हैं, गांव के ग्रामीण आदमी हैं; कहते हैं दान जैसी है, वैसी और दूसरी कोई वस्तु नहीं है। खैर सरीखी और न दूजी वसत है। खैरात, दान—उस जैसी कोई दूसरी वस्तु नहीं है। लेकिन खैर शब्द में दोहरे अर्थ हैं। एक अर्थ होता है खैरात—दान। और खैर का दूसरा अर्थ होता है—पूछते हैं लोगों से, सब ठीक-ठाक तो है? भीतर सब अच्छा है? खैर तो है?

खैर का दूसरा अर्थ है—भीतर सब स्वच्छ, शांत, आनंद; भीतर सच्चिदानंद... इसलिए खैर जैसे छोटे से शब्द में इस सीधे-साधे गांव के ग्रामीण आदमी ने बड़े राज की बात कह दी! खैर खैरात है!

जिस व्यक्ति के भीतर सुख का साम्राज्य है, उस व्यक्ति के जीवन में आनंद की अपने-आप वर्षा होती रहती है। उसके आसपास जो आते हैं, उन पर भी बूंदा-बांदी हो जाती है! तब खैरात का कुछ अर्थ है। तब दान अर्थपूर्ण है, सार्थक है।

तुम्हारी जिन्दगी में छीना-झपटी है। तुम्हारी जिंदगी में सिवाय छीना-झपटी के और कुछ भी नहीं; ईर्ष्या, वैमनस्य, महत्वाकांक्षा...। और थोड़ा दाग भी करते जाते हो, इस आशा में कि परलोक में भी थोड़ा बैंक-बैलेंस होना चाहिए! वहां भी थोड़ा जमा रखना चाहिए। कब जरूरत पड़ जाये, कौन जाने? ऐसा न हो कि वहां बिलकुल खाली हाथ पहुंच जायें! थोड़ा वहां भी जमा कर देना चाहिए। ... काम पड़ जाए।



कभी किसी क्षण में जरूरत आ जाए तो परमात्मा के सामने एकदम सिर झुकाकर खड़ा न होना पड़े। दे दो कुछ छोटा-मोटा।

अक्सर तो लोग वही देते हैं जो उनके काम का नहीं होता। इधर मेरे अनुभव में यह बात आई, कि लोग चीजें भेंट देते हैं एक-दूसरे को वही, जो उनके काम की नहीं होतीं। कुछ चीजें ऐसी हैं, जो भेंट में ही चलती रहती हैं! एक से दूसरे के पास, दूसरे से तीसरे के पास, तीसरे से चौथे के पास...। कुछ चीजें हैं जो भेंट में ही चलती रहती हैं। कुछ चीजों का लोग उपयोग ही नहीं करते। उपयोग उनका कुछ है नहीं। तुमको किसी ने दे दी, अब तुम क्या करो उसका? तुम किसी और को बांट देते हो।

जीवन असुरक्षा से जियो, घबड़ाहट में जियो, चिन्ता में जियो, बेचैनी में जियो तो तुम कितना ही दान दो, तुम्हारे दान का कोई मूल्य नहीं है। क्योंकि तुम अपने भीतर से प्रतिपल जहर के फव्वारे छोड़ रहे हो! वे फव्वारे लोगों को विषाक्त करेंगे। तुम कुछ भी न दो; तुम मंगल में जियो; तुम कुछ न दो, तो भी तुम दान कर रहे हो। अहर्निश दान चल रहा है। जो लेने वाले हैं, लेंगे। जो पीने वाले हैं, पी लेंगे।

जिन्होंने तय ही कर लिया है कि अपने को दुखी ही रखना है, उनकी वे जानें। किसी को जबर्दस्ती सुखी तो नहीं किया जा सकता? किसी पर सुख जबर्दस्ती थोपा नहीं जा सकता। कोई सुखी न होना चाहे, तो कोई उपाय नहीं है उसे सुखी करने का। लेकिन जो भी सुखी होना चाहते हैं, वे तुम्हारी तरंग को ले लेंगे। तुम्हारी तरंग उनके भीतर एक शुरुआत हो जायेगी। उनके भीतर भी गूंज पैदा होने लगेगी।

प्रार्थनापूर्ण व्यक्ति के पास जाते ही प्रार्थना पैदा होनी शुरू हो जाती है। जरूरी नहीं है सभी को पैदा हो। सिर्फ उन्हीं को पैदा हो जाती है, जो अपने हृदय के द्वार खोलकर पास जाते हैं। ऐसे पास जाने का नाम ही सत्संग है। सत्संग का अर्थ है—मेरे हृदय के द्वार खुले हैं। और मैं किसी ऐसे व्यक्ति के पास बैठा हूं, ऐसे व्यक्तियों के बीच बैठा हूं, जो प्रभु में लीन हैं और मगन हैं। जरूर उनकी ऊर्जा बहेगी। जरूर उनकी ऊर्जा तुम्हारे भीतर के तारों को छेड़ जायेगी। जरूर उनकी वीणा तुम्हारी वीणा को भी उत्तेजित कर देगी, उन्मत्त कर देगी। उनकी मस्ती तुम्हें भी डुला देगी। तुम भी आनंदमग्न होने लगोगे।

खैर शब्द बड़ा प्यारा है! भीतर खैर हो तो बाहर खैरात है। और तब धन हो, न हो; कोई फर्क नहीं पड़ता। धन गौण बात है। वाजिद के पास तो कुछ धन नहीं था। गरीब पठान थे। मगर खूब खैरात बांटी! धन तो नहीं था, कम-से-कम बाहर का धन तो नहीं था। भीतर का धन बांटा! और वही असली धन है। उसे ही बांटो तो बांटना है!

खैर सरीखी और न दूजी वसत है।
मेल्हे वासण मांहि कहा मुंह कसत है ।।

बांटते समय कंजूस की तरह मुंह मत रोक लेना। बांटते समय बर्तन का मुंह मत बांध देना। बांटते समय खुले हाथ बांटना। दोई हाथ उलीचिये...। उलीच देना! ले ले कोई ले ले, न ले उसका दुर्भाग्य! मगर यह दोष तुम पर न हो कि तुमने उलीचा नहीं था। तुमने उलीचा था!

फिर ऐसे नासमझ भी हैं, जो सरोवर के किनारे आकर भी प्यासे खड़े रहेंगे। लेकिन सरोवर का कसूर नहीं है। सरोवर तैयार था, कंठ में उतर जाने को तैयार था; लेकिन झुकना तो होगा। हाथ की अंजुली तो बनानी होगी। सरोवर छलांग लगाकर तुम्हारे कंठ में तो नहीं उतर जा सकता। और सरोवर ऐसी छलांग लगाएगा तो तुम भाग खड़े होओगे, घबड़ा जाओगे। सरोवर को प्रतीक्षा करनी होती है। मौजूद है। देने को राजी है। तुम लेने को जब भी राजी हो जाओगे, घटना घट जायेगी। तो कहते हैं: जब तेरे पास देने को कुछ हो तो अपने द्वार-दरवाजे बंद मत करना। अपनी संपदा खुली रखना। अपनी संपदा को बहने देना। कोई पीने वाला आ जाए, तो जितना पीना चाहे पी ले!

मेल्हे वासण मांहि कुहा मुंह कसत है ।।
तूं जिन जाने जाय रहेंगो ठाम रे।

और जो-जो चीजें तू पकड़ रहा है, ये सब चली जायेंगी। ये सब सपने की तरह हैं, आज नहीं कल खो जायेंगी। जैसे सुबह जागकर कोई पाता है कि सब सपना है; खो गया। ऐसे ही मरते वक्त तू पायेगा कि यह सब सपना भी खो गया!

कुछ आंसू बन गिर जायेंगे
कुछ दर्द चिता तक जायेंगे
उनमें ही कोई दर्द तुम्हारा भी होगा.
सड़कों पर मेरे पांव हुए कितने घायल
यह बात गांव की पगडंडी बतलायेगी
सम्मान-सहित हम सब कितने अपमानित हैं
यह चोट हमें जाने कब तक तड़पायेगी
कुछ टूट रहे सुनसानों में
कुछ टूट रहे तहखानों में
उनमें ही कोई चित्र तुम्हारा भी होगा
वे भी दिन थे जब मरने में आनंद मिला



ये भी दिन हैं जब जीने से घबराता हूं
वे भी दिन बीत गये हैं, ये भी बीतेंगे
यह सोच किसी सैलानी-सा मुसकाता हूं
कुछ अंधियारे में चमकेंगे
कुछ सूनेपन में खनकेंगे
उनमें ही कोई स्वप्न तुम्हारा भी होगा.
अपना ही चेहरा चुभता है कांटे जैसा
जब संबंधों की मालाएं मुरझाती हैं
कुछ लोग कभी जो छुटे पिछले मोड़ों पर
उनकी यादें नींदों में आग लगाती हैं
कुछ राहों में बेचैन खड़े
कुछ बांहों में बेचैन पड़े
उनमें ही कोई प्राण तुम्हारा भी होगा
साधू हो या हो सांप, नहीं अंतर कोई
जलता जंगल दोनों को साथ जलाता है
कुछ वैसी ही है आग हमारी बस्ती में
पर ऐसे में भी कोई-कोई गाता है
कुछ महफिल की जय बोलेंगे
कुछ दिल के दर्द टटोलेंगे
उनमें ही कोई गीत तुम्हारा भी होगा.

सब खो जाएगा। मौत आयेगी सब खो जाएगा। प्रेम जिनसे किया वे, घृणा जिनसे की वे; सब सपनों में टंगे चित्रों जैसे धीरे-धीरे, धीरे-धीरे विदा हो जायेंगे। सारी जिन्दगी ऐसी लगेगी जैसे कहानी में पढ़ी थी। अफसाना कोई... कि देखी थी कोई फिल्म, ऐसी हो जाएगी!

कुछ टूट रहे सुनसानों में
कुछ टूट रहे तहखानों में
उनमें ही कोई चित्र तुम्हारा भी होगा.

जिनसे बहुत राग बनाये थे, संबंध बनाए थे, आसक्तियां बनाई थीं, उनके चित्र भी किन्हीं तहखानों में पड़े रह जायेंगे, किन्हीं सुनसानों में पड़े रह जायेंगे।

वे भी दिन थे जब मरने में आनंद मिला

ये भी दिन हैं जब जीने से घबराता हूं
वे भी दिन बीत गये हैं, ये भी बीतेंगे
यह सोच किसी सैलानी-सा मुसकाता हूं
कुछ अंधियारे में चमकेंगे
कुछ सूने पन में खनकेंगे
उनमें ही कोई स्वप्न तुम्हारा भी होगा.

इस जगत के सारे अनुभव स्वप्नों जैसे खो जायेंगे। इस जगत में कुछ भी बचाने जैसा नहीं है; बांट दो। और मजा यह है कि जो बांट देता है, उसका बच जाता है। और जो बचा लेता है, उसका लुट जाता है। जीसस का प्रसिद्ध वचन है : जो बचायेंगे, खो देंगे। और जो खोने को राजी हैं, उनका बच जाता है। बड़ा उल्टा गणित है! साधारण गणित तो कहता है, बचाओ तो बचेगा। गंवाओगे तो खो जाएगा। बांटोगे तो खो जाएगा।

यह असाधारण गणित है धर्म का। इसकी प्रक्रिया उल्टी है। दे दो तो बचेगा। तुम्हारे पास वही बचेगा, जो तुमने दे दिया था। बेबूझ-सी बात है। वही बचेगा, जो तुमने दे दिया था। और जो तुमने रोक लिया था वही सड़ जाएगा, गल जायेगा और तुम्हारे साथ बचेगा नहीं।

इस जगत में जो सबसे समृद्ध आदमी है बिदा होते वक्त वह वही है, जिसने अपना प्रेम बांटा, अपना ध्यान बांटा, अपना ज्ञान बांटा, अपनी ज्योति बांटी, अपने को बांटा! जो उसके पास था, उसे बांटा।

तूं जिन जानें जाय रहेगो ठाम रे।
हरि हां, माया दे वाजिद धणी के काम रे ॥

इसलिए जो कुछ है, उस परमात्मा के काम में लगा दो।

जो कुछ है, सारी ऊर्जा समर्पित कर दो।
हरि हां, माया दे वाजिद धणी के काम रे ॥

वाजिद ने धन और धणी शब्द का प्रयोग भी खूब प्यारा किया है। वे कहते हैं, धन वही है जो धनी के काम आ जाए। धनी कौन? मालिक, वह जो सबका मालिक है, वही धनी है। धन भी उसका है। तुम व्यर्थ ही बीच में मालिक बन गए हो। तुम्हारी मालकियत झूठी है। तुम्हारा स्वामित्व झूठा है। सब उसके काम आ जाने दो। जो तुम्हारा उपयोग कर ले, उपयोग हो जाने दो। जैसा नचाये, नाचो। जैसा जिलाये, जियो। जो कराये, करो। सारा, सब उसकी मर्जी पर छोड़ दो। हरि हां, माया दे वाजिद धणी के काम रे ॥



मंगण आवत देख रहे मुहुं गोय रे। वाजिद राजस्थानी थे। मारवाड़ियों की आदत उन्हें पता है; उसका उल्लेख कर रहे हैं—मंगण आवत देख रहे मुहुं गोय रे। मारवाड़ी देखता है मंगने को आता। मुंह छिपाकर बैठ जाता है। इधर-उधर देखने लगता है, मंगने को नहीं देखता।

मैंने सुना है, एक भिखमंगे ने एक मारवाड़ी के द्वार पर दस्तक दी। भरी दुपहर। गर्मी के दिन। खस की टट्टियों के पीछे सेठ बैठा है। भिखमंगे ने कहा : कुछ मिल जाए मालिक। सेठ ने कहा : घर में कोई भी नहीं है। उसने कहा : मैं घरवाली को या घरवालों को मांग भी नहीं रहा हूं। कोई न हो, कुछ फिक्र नहीं, मगर कुछ मिल जाए। दो रोटीयां मिल जायें। सेठ ने कहा : आज घर में खाना ही नहीं पक रहा है। कहीं निमंत्रण है हमारा। तो उसने कहा : दो पैसे मिल जायें। मारवाड़ी सेठ था, तो मारवाड़ी ही भिखमंगा रहा होगा! दो पैसे मिल जायें। सेठ ने कहा : यहां पैसे-वैसे कुछ नहीं हैं। रास्ते लगो, आगे बढ़ो। भिखमंगा भी एक ही था। उसने कहा : तो तुम भीतर बैठे क्या कर रहे हो? तुम भी मेरे साथ आ जाओ। न रोटी है, न पैसा है, न घरवाली है, न घरवाले हैं, कुछ भी नहीं है। तो खाली भीतर बैठे क्या कर रहे हो? चलो साथ-साथ मांगेंगे। आधा-आधा बांट लेंगे।

मंगण आवत देख रहे मुहुं गोय रे।

मुंह छिपाकर बैठ जाते हो भिखमंगे को आता देखकर!—जद्यपि है बहु दाम-काम नहीं लोय रे॥ खूब तुम्हारे पास है, लेकिन इसका कोई उपयोग नहीं करते। इसका कुछ काम नहीं। लोग जमीन में गाड़-गाड़ कर रखते हैं।

इस देश की गरीबी के बड़े से बड़े कारणों में एक कारण है—धन को गड़ा कर रखना, धन को बचाकर रखना। धन का शास्त्र समझना चाहिए। धन जितना चले उतना बढ़ता है। चलन से बढ़ता है। समझो कि यहां हम सब लोग हैं। सबके पास सौ-सौ रुपये हैं। सब अपने सौ-सौ रुपये रखकर बैठे रहें! तो बस प्रत्येक के पास सौ-सौ रुपये रहे। लेकिन सब चलायें। चीजें खरीदें, बेचें। रुपये चलते रहें...। तो तो कभी तुम्हारे पास हजार होंगे, कभी दस हजार होंगे। कभी दूसरे के पास दस हजार होंगे, कभी तीसरे के पास दस हजार होंगे। रुपये चलते रहें, रुके न कहीं। रुके रहते, तो सबके पास सौ-सौ होते। चलते रहें तो अगर यहां सौ आदमी हैं, तो सौ गुने रुपये हो जायेंगे। इसलिए अंग्रेजी में रुपये के लिए जो शब्द है वह करेंसी है। करेंसी का अर्थ होता है जो चलती रहे, बहती रहे। धन बहे तो बढ़ता है।

अमेरिका अगर धनी है, तो, उसका कुल कारण इतना है कि अमेरिका अकेला मुल्क है जो धन के बहाव में भरोसा करता है। कोई रुपये को रोकता नहीं। तुम

चकित होओगे जानकर यह बात, कि उस रुपये को तो लोग रोकते ही नहीं जो उनके पास है, उस रुपये को भी नहीं रोकते जो कल उनके पास होगा, परसों उनके पास होगा ! उसको भी, इन्स्टालमेंट पर चीजें खरीद लेते हैं। है ही नहीं रुपये, उससे भी खरीद लेते हैं। इसका तुम अर्थ समझो। एक आदमी ने कार खरीद ली। पैसा उसके पास है ही नहीं। उसने लाख रुपये की कार खरीद ली। यह लाख रुपया वह चुकायेगा आने वाले दस सालों में। जो रुपया नहीं है वह रुपया भी उसने चलायमान कर दिया। वह भी उसने गतिमान कर दिया। लाख रुपये चल पड़े। ये लाख रुपये अभी हैं नहीं, लेकिन चल पड़े। इसने कार खरीद ली लाख की। इसने इन्स्टालमेंट पर रुपये चुकाने का वायदा कर दिया। जिसने कार बेची है, उसने लाख रुपये बैंक से उठा लिये। कागजात रख कर। लाख रुपये चल पड़े। लाख रुपयोंने यात्रा शुरू कर दी !

अमेरिका अगर धनी है, तो करेंसी का ठीक-ठीक अर्थ समझने के कारण धनी है। भारत अगर गरीब है, तो धन का ठीक अर्थ न समझने के कारण गरीब है। धन का यहां अर्थ है बचाओ !

धन का अर्थ होता है चला जो। जितना चलता रहे उतना धन स्वच्छ रहता है। और बहुत लोगों के पास पहुंचता है। इसलिए जो है, उसका उपयोग करो। खुद के उपयोग करो, दूसरे के भी उपयोग आयेगा। लेकिन यहां लोग हैं, न खुद उपयोग करते हैं, न दूसरों के उपयोग आने देते हैं ! और धीरे-धीरे हमने इस बात को बड़ा मूल्य दे दिया। हम इसको सादगी कहते हैं। यह सादगी बड़ी मूढ़ता पूर्ण है। यह सादगी दरिद्रता है। यह दरिद्रता का मूल आधार है। चलाओ। कुछ उपयोग करो। बांट सको बांटो। खरीद सको खरीदो। धन को बैठे मत रहो दबाकर ! यह तुम्हें करना है, तो मरने के बाद, जब सांप हो जाओ, तब बैठ जाना गड़री मारकर अपने धन के ऊपर ! अभी तो आदमी हो आदमी जैसा व्यवहार करो।

जद्यपि है बहु दाम-काम नहिं लोय रे ॥

कब इसका उपयोग करोगे ? कल सब पड़ा रह जाएगा। न अपने काम आया, न दूसरों के काम आया।

अभी तक ऐसे कई खजाने इस देश में गड़े हैं जो कभी काम नहीं आए। अभी कुछ दिन पहले तुम अखबारों में खबरें पढ़ते रहे होओगे, जयपुर में खजाना खोजा जा रहा था। जिसने गड़ाया होगा वह भी काम नहीं लाया। तीन सौ साल बीत गए खजाने को गड़े। तीन सौ साल से कोई काम में नहीं लाया। अब खजाना मिल नहीं रहा है। शायद सदियों तक किसी के काम नहीं आयेगा। इतना धन तुमने व्यर्थ कर दिया। इतने धन



का तुमने कोई उपयोग न होने दिया तीन सौ साल तक। जिस आदमी ने गड़ाया उसने जघन्य पाप किया ! इसने इतने दिन तक इस धन का उपयोग अवरुद्ध कर दिया। कौन इसका जुम्मेवार है ? चलने दो धन को।

मगर इस देश की गरीबी में अड़चन है। इस देश की ग़रीबी का जो मूल आधार है, उसी मूल आधार को हमने बड़ा दार्शनिक रूप दे दिया है ! हम कहते हैं लोग सीधे सादे हैं। सादगी से जीते हैं। फिर रहो सादगी से ! फिर क्यों रोते हो ? फिर गरीबी को परमात्मा का वरदान समझो। कि तुम्हें तुम्हारे अध्यात्म का फल दे रहा है परमात्मा ! कि तुम्हारे पुण्यों का फल मिल रहा है। फिर क्यों रोते हो, फिर क्यों चीखते चिल्लाते हो ?

मगर एक गहरी बात खयाल में लेने जैसी जरूरी है। जिन आधारों के कारण हम परेशान होते हैं, उन्हीं आधारों से हम जुड़ जाते हैं। क्योंकि लंबा हमारा संबंध हो जाता है। इतने दिनों से उन आधारों को हम पकड़े रहे हैं कि आज उनको छोड़ने की हिम्मत नहीं होती। और हमें यह भी समझ नहीं आता कि उन्हीं के कारण हम परेशान हैं।

लोगों को उपयोग करना सीखना चाहिए। लोगों को उपयोग के लिए तत्पर होना चाहिए। जितना उपयोग करोगे...। लेकिन अगर कोई आदमी धन का उपयोग करे, तो हमारे सबके मन में उसके प्रति निंदा है। अगर तुम्हारे गांव में कोई अपने धन का उपयोग करने लगे, तो उसका फिर सम्मान कम हो जाएगा। अगर वह धन को गड़ा कर रखे.... गांव में उसी अमीर आदमी को लोग सम्मान देते हैं, जो गरीब जैसा रहता हैं। यह बड़े मजे की बात है। लोग कहते हैं—देखो, कितना भोला-भाला, कितना सीधा-सादा आदमी है। इतना धन है, लेकिन रहता गरीब जैसा है। यह मूढ़ है। गरीब ही होता, फिर अमीर काहे के लिए है ? यह तो ऐसा हुआ कि घर में खाना, लेकिन देखो, कैसा भूखा मर रहा है। कैसा गरीब जैसा। रहता है। अच्छे ढंग के कपड़े पहन सकता है, लेकिन गंदे कपड़े पहने हुए है, फटे पुराने कपड़े पहने हुए है। वही कपड़े पहने रहता है।

मुल्ला नसरुद्दीन से किसी ने कहा, कि बड़े मियां, यह कोट, गांव भर में इसकी चर्चा होती है, इसको छोड़ो भी। एक तुम्हारे पिताजी थे; क्या शानदार आदमी थे ! कपड़े पहनते थे, लज्जत थी कपड़ों में एक। खाते थे, पीते थे, ढंग से रहते थे। एक गरिमा थी। एक तुम हो कि यह कोट पहने फिर रहे हो ! मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा : भाई, क्या बात कर रहे हो, यह वही तो कोट है जो मेरे पिताजी पहनते थे ! वही कपड़ा, वही कोट...। पिताजी पहनते थे तो इसकी प्रसंशा करते थे और मैं पहने

हूं तो प्रसंशा नहीं करते !

पिताजी को मरे भी तीस साल हो गए हैं; वही कोट पहने हुए हैं !

मगर गांव में ऐसे आदमी की प्रतिष्ठा है ! लोग कहते हैं— सीधा-सादा, सादगी से जीता है।

धन, वह जो अटका रहा है, वह धन बहुगुणित हो सकता था। लेकिन उसने बहुगुणित नहीं होने दिया। वह धन चले कैसे ? वह चल तभी सकता है, जब यह धन का उपयोग सीखे। जब यह धन को जीना सीखे।

और जरूरी नहीं है कि सभी लोग दानी हो जायेंगे। उस दिन की प्रतीक्षा मत करो कि सभी लोग दानी हो जायेंगे। क्योंकि सभी लोग दानी हो जायेंगे तो दान कौन लेगा ? बड़ी अड़चन आ जाएगी। उस दिन तो धन बिलकुल बेकार पड़ा रह जायेगा। सभी लोग दानी हो जायेंगे तो धन लेगा कौन ? सभी लोग कभी दानी नहीं होने वाले हैं।

लेकिन सभी लोग इस देश में कंजूस होकर बैठे हैं। इन दोनों के बीच भी एक उपाय है। अगर तुम दूसरे के काम नहीं दे सकते, तो कम-से-कम अपने काम में तो लो। वाजिद ठीक कहते हैं : नहीं दे सकते भिखमंगे को भिखमंगे देखकर मुंह छिपा लेते हो, तो कम-से-कम इतना तो करो, अपने काम में तो लो। तुम अपने काम में लोगे, तो भी रुपया चल जायेगा। रुपया दूसरों के पास पहुंच जाएगा। क्योंकि काम में लेने का मतलब होता है रुपया तुम्हारे हाथ से गया। तुम गए और बाजार में तुमने एक बेले की माला खरीद ली और गले में डाल ली। सादगी तो न रही। क्योंकि लोग कहेंगे : अरे यह क्या ? अब इस उम्र में बेले की माला गले में डालकर निकले हो ! सादगी तो न रही, मगर वह जो एक रुपया, तुमने बेले की माला खरीदा, वह चल पड़ा। वह एक गरीब माली के पास पहुंच गया।

चलने दो। अगर बांट सकते हो बांट दो, अगर न बांट सको, तो कम-से-कम अपने उपयोग में तो ले लो। अपने उपयोग में ले लोगे, इसी बहाने दूसरे के पास पहुंच जायेगा। मगर अटकाओ मत। रोको मत। जमीन में मत गड़ाओ।

जद्यपि है बहु दाम काम नहीं लोय रे॥

भूखे भोजन दियो न नागा कापरा। भूखा आदमी सामने खड़ा रहे, तो तुम उसे भोजन नहीं दे सकते। नंगा आदमी खड़ा रहे, तो तुम उसे कपड़ा नहीं दे सकते।

हरि हां, बिन दीया वाजिद, पावे कहा वापरा॥ और अगर तुम न दोगे, तो परमात्मा से तुम न पाओगे। क्योंकि जिसने दिया ही नहीं। जिसने देने में रस न लिया, उसे पाने का सौभाग्य भी न मिलेगा। जो यहां देगा, जो खुलकर देगा उतना ही परमात्मा से पा सकेगा। देकर हम पाने की क्षमता पैदा करते हैं।



हरि हां, बिन दिया वाजिद पावे कहा वापरा॥
बात इतनी-सी है, ऐ वाइजे-अफलाक नशीं।
क्या मिलेगा उसे यजदां जिसे इंसां न मिला।

जो आदमी भी न हो सका, उसे परमात्मा क्या खाक मिलेगा !

नजर के सामने दम तोड़ते रहे इंसां
यह जिंदगी हो तो इस जिंदगी से क्या हासिल।

मगर ऐसा हो रहा है। लोग व्यर्थ को पकड़े बैठे हैं। न उपयोग करते हैं, न उपयोग करने देते हैं। सदियों से इस देश में यह आदत हो गई है। और इसके ऊपर हमने बड़े दर्शनशास्त्र खड़े कर लिये हैं।

कल मुझसे कोई पूछता था कि मोरारजी देसाई खादी में पोलियस्टर मिलाकर पोलियस्टर खादी बनाना चाहते हैं। आपके इस संबंध में क्या खयाल हैं ? वे खादी पहनने वाले व्यक्ति हैं। और उनको इससे बड़ा दुख हो रहा कि खादी अशुद्ध हो जायेगी। मैंने कहा भाड़ में जाये तुम्हारी खादी। पोलियस्टर अशुद्ध हो जायेगी। मैं सौ प्रतिशत पोलियस्टर पहनता हूं। पोलियस्टर अशुद्ध तो न करो। खादी तुम्हारी जाए जहां जाना हो। खादी से मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। खादी की बकवास इस देश को गरीब रखेगी। मैं तो पोलियस्टर के पक्ष में हूं; मगर सौ प्रतिशत पोलिएस्टर; उसमें और खादी मिलाकर क्यों खराब करते हो ? हर चीज को अशुद्ध करने को क्यों मोरारजी भाई देसाई तुले हैं ?

अब मजा यह है, अस्सी प्रतिशत उसमें पोलियस्टर होगा, वह जो खादी बनने वाली है। उसका पोलिएस्टर-खादी नाम होगा। अस्सी प्रतिशत पोलियस्टर होगा, बीस प्रतिशत खादी होगी। क्यों धोखा देते हो दुनिया को ? क्या प्रयोजन है ? साफ-साफ क्यों नहीं कहते कि पोलियस्टर की जरूरत है, खादी की जरूरत नहीं है। यह बेइमानी क्यों कर रहे हो ? अस्सी प्रतिशत पोलियस्टर है तो सौ ही प्रतिशत क्यों नहीं ? कम-से-कम शुद्ध तो होगा। यह बीस प्रतिशत खादी डालकर किसको धोका दे रहे हो !

मगर हमारी पुरानी धारणायें हैं। उनको हम छोड़ना नहीं चाहते। इसको हम पोलियस्टर-खादी कहेंगे। मगर खादी बनी रहेगी, खादी नहीं जायेगी। अब चरखे बना लिये हैं उन्होंने जो बिजली से चलेंगे। मगर उसको कहेंगे—चरखा ? चरखा ही चलाना है बिजली से, तो मिलों का क्या कसूर है ?

मगर हम अपनी पुरानी लीकों को बड़ी मुश्किल से छोड़ते हैं। हम उनको पकड़े ही रखते हैं। जो चीज हमारी जिन्दगी को खराब किए है, उसको भी हम जोर से पकड़े रखते हैं। हम चिल्लाये चले जाते हैं कि यह तो हम छोड़ेंगे नहीं। मगर कभी

मजबूरी में छोड़ना भी पड़ता है, क्योंकि जीवन बदला जाता है, सारा जगत बदल जाता है। तो भी हम आवरण रखते हैं। बीस प्रतिशत खादी मिला देंगे, खादी का बहाना तो रहेगा। कहने को तो रहेगा कि हम खादी पहने हुए हैं।

गए दिन खादी के। और खादी के साथ कोई देश अमीर नहीं हो सकता। और मैं कोई कारण नहीं देखता कि देश अमीर क्यों न हो। मैं कोई कारण नहीं देखता कि लोग समृद्ध क्यों न हों ? मैं कोई कारण नहीं देखता कि समृद्धि सादगी के विपरीत है। समृद्धि की भी एक सादगी होती है। सादगी की भी एक समृद्धि होती है। दरिद्रता को ही सादगी के साथ क्यों जोड़ रखा है ? दीनता को सादगी के साथ क्यों जोड़ रखा है ? सौन्दर्य की भी एक सादगी होती है। आभिजात्य में भी एक सादगी होती है। अगर सादगी ही चुननी है, तो कुछ ऊंचाई की सादगी चुनो, जो ज्यादा रसपूर्ण होगी, ज्यादा रूचिकर होगी।

लेकिन एक गलत धारणा जब किसी देश को पकड़ लेती है, तो बड़ी मुश्किल से पीछा छोड़ती है। और इस देश के पीछे कई गलत धारणायें हैं—इसकी छाती पर सवार हैं !

भूखे भोजन दियो न नागा कापरा।
हरि हां, बिन दीया वाजीद पावे कहा वापरा॥

और कोई भूखा है, उसको भोजन नहीं दिया। कोई नंगा है, उसको कपड़ा नहीं दिया।

लेकिन उसके पीछे भी हमने दार्शनिक सिद्धान्त खोज लिए हैं। हम कहते हैं जो भूखा है, वह अपने जन्मों के, पिछले जन्मों के पापों के फल भोग रहा है। जो नंगा है, वह अपने पिछले जन्मों के पापों के फल भोग रहा है। हम क्या करें ? हमने एक बड़ा सुंदर सिद्धांत खोज लिया है, जिसकी आड़ में हम छिप गये हैं ! यह है मुंह छिपाना। यह है अपने को बचाना। अब करुणा करने की भी कोई जरूरत न रही।

और कैसे-कैसे अद्भुत सिद्धांत लोगों ने निकाले हैं ! आचार्य तुलसी जिस पंथ को मानते हैं—तेरा-पंथ; उसका सिद्धांत है कि अगर कोई प्यासा भी मर रहा हो, तो उसको पानी मत पिलाना। क्यों ? क्योंकि अगर तुमने उसे पानी पिलाया और समझ लो कि पानी पिलाने से वह मरता हुआ आदमी नहीं मरा। और जाकर उसने किसी की हत्या कर दी। फिर, उसकी हत्या में तुम्हारा भी भाग हो जाएगा। न तुम उसे पानी देते, न हत्या होती।

देखते हो तरकीब ! आदमी की करुणा को नष्ट करने के लिए और कोई तरकीब इससे ज्यादा कुशल और चालाकी की हो सकती है ! मतलब समझे तुम, मतलब यह



हुआ कि एक आदमी कुएं में गिर रहा है। तुम मत कुछ कहना, न रोकना, न बाधा डालना। क्योंकि तुम कौन हो बीच में उसके कर्म के बाधा डालनेवाले ? उसको करने दो जो कर रहा है। और कुएं में गिर जाए तो निकालना भी मत। क्योंकि उसने पिछले जन्मों में कुछ पाप किए होंगे उनके कारण कुएं में गिर रहा है। तुमने निकाल लिया बीच में, उसको फिर से कुएं में गिरना पड़ेगा। क्योंकि बिना कुएं में गिरे तो छुटकारा नहीं है, विस्तार नहीं है।

गणित देखते हो, गणित बिल्कुल साफ मालूम पड़ता है। तर्क युक्त मालूम पड़ता है, कि अगर उसको पाप का फल भोगना ही है तो बीच में आड़े मत आओ। नहीं तो तुमने नाहक उसकी अड़चन बढ़ा दी। फिर उसको भोगना पड़ेगा। फिर कहीं कुएं में गिरेगा—किसी दूसरे कुएं में। तो तुमने जो इतनी बाधा डाल दी इसका पाप तुम्हें लगेगा।

और तुमने एक कुएं में गिरे आदमी को निकाल लिया। और इसने जाकर कल किसी की हत्या कर दी। है तो पागल, तभी तो कुएं में गिरा था ! कुछ भी कर सकता है। तो फिर उस हत्या में तुम भी भागीदार हो गए परोक्षरूपेण। क्योंकि न तुम बचाते न यह हत्या होती। अब तुम फंसे ! अब तुम्हें इसका फल भोगना पड़ेगा। न मालूम किस नर्क में पड़ो। इसलिए चुपचाप अपने को बचाकर निकल जाना।

यही यह देश कर रहा है सदियों से। हरेक व्यक्ति अपने-अपने को बचाने में लगा है कि किसी तरह अपना आवागमन छूट जाए। किसी तरह अपने कर्मों का जाल छूट जाए। बाकी सब जहां जाना है जायें। उनका वह समझें।

हम यहां कहते बहुत हैं बातें प्रेम की, प्रार्थना, की परमात्मा की, लेकिन अगर हम गौर से देखें तो इस देश ने लोगों को जितना स्वार्थी बनाया है उतना किसी देश ने नहीं बनाया। और स्वार्थ का आधार क्या है ? मैं अपनी देखूं, तुम अपनी देखो। मुझे अपने कर्मों के जाल से छूटना है, तुम्हें अपने। न तुम मेरे संगी-साथी हो न मैं तुम्हारा संगी-साथी हूं।

यह शुद्ध स्वार्थ हो गया। इसमें सारी करुणा समाप्त हो गई। इसमें हृदय की सारी ऊष्मा खो गई। तुम हो गए पत्थर ठंडे, बरफ के पत्थर जैसे ठंडे ! तुम्हारे जीवन में कैसे धर्म का बीज अंकुरित होगा ? वाजिद कहते हैं थोड़ा करुणा लाओ। थोड़ा प्रेम जगाओ।

जल में झीणा जीव थाह नहिं कोय रे।
बिन छाण्या जल पियां पाप बहु होय रे॥
काठै कपड़े छाण नीर कू पीजिये।
हरि हां, वाजिद, जीवाणी जल मांहि जूगत सूं कीजिये॥

करुणापूर्वक जियो। न केवल मनुष्यों के प्रति, पशुओं के प्रति, पौधों के प्रति, छोटे छोटे जीवणुओं के प्रति। पानी भी छानकर पियो। उसमें भी बहुत जीवन हैं। उनको नष्ट मत करो। जितना बन सके उतना जीवन का सन्मान करो, सत्कार करो। जितना बन सके उतना जीवन को सहारा दो, सहयोग दो। क्योंकि यह सारा जीवन एक ही जीवन है। यहां किसी को चोट पहुंचानी अपने को ही चोट पहुंचानी है। जैसे कोई अपने ही हाथ से अपने ही गाल पर चांटा मारे।

साहिब के दरबार पुकार्‌या बाकरा। और बकरे ने परमात्मा को पुकारा।

काजी लीया जाय कमर सों पाकरा॥ और काजी लिए जा रहा था कमर से पकड़ कर बकरे को बलि देने!

मेरा लीया सीस उसी का लीजिये। और बकरा कह रहा है साहिब से, परमात्मा से कि मेरा क्यों लेते हो, इसी का ले लीजिये। पुण्य यह कर रहा है, शीश मेरा जा रहा है!

बुद्ध एक गांव से गुजरते थे। वहां एक बकरे की बली दी जा रही थी। यज्ञ हवन हो रहा था।

इस धार्मिक देश में ऐसे-ऐसे यज्ञ-हवन हुए हैं कि बड़ी हैरानी होती है कि इसको कैसे धार्मिक कहो। यहां अश्वमेध यज्ञ होते थे, जिनमें अश्व मारे जायें। यहां गऊमेध यज्ञ होते थे, जिनमें गऊ मारी जाये और यहां शास्त्रों में नरमेध यज्ञ का भी वर्णन है, जिनमें नर मारे जायें। फिर धीरे-धीरे यह मुश्किल होता चला गया। अब भी घटती है घटनायें। अखबारों में आए दिन खबर हो जाती है कि फलां जगह किसी ने देवी पर किसी बच्चे को मारकर चढ़ा दिया। ये बेचारे धार्मिक लोग हैं! ये शास्त्र के हिसाब से ही कर रहे हैं। अब जरा मुश्किल में पड़ गए हैं, क्यों कि इनका कोई सहयोग नहीं है। कानून खिलाफ है। सारी दुनिया खिलाफ है। मगर अगर गौर से देखो तो ये बड़े शास्त्रीय हैं। शास्त्रों में यह सब लिखा है।

बुद्ध ने देखा, एक बकरा काटा जा रहा है। ब्राह्मण बस छुरी लेकर तैयार हैं।

तुमको मालूम है ब्राह्मणों की एक खास जाति है—शर्मा! शर्मा का मतलब होता—गर्दन काटनेवाले, शरमन करनेवाले। अगर शर्मा यहां कोई हो छोड़ दे नाम वह। वह नाम अच्छा नहीं है। वह हत्यारा है। उसके भीतर हत्या छिपी है। शर्मा ब्राह्मणों का वह वर्ग जो यज्ञों में गर्दन काटे। अब आज तो हालत ऐसी है, कई लोग जो ब्राह्मण नहीं हैं वह भी शर्मा लिखते हैं। सोचते हैं कुछ शानदार शब्द मालूम होता है—शर्मा। एक वर्मा थे वह शर्मा लिखने लगे। मैंने कहा यह तुम क्या करते हो! वर्मा भले थे, शर्मा, नरक में पड़ोगे!



बुद्ध ने कहा, यह क्या कर रहे हो? उस ब्राह्मण ने कहा, जो काटने ही जा रहा था बकरे को; कि आप चिन्तित न हों; यह बकरा स्वर्ग जायेगा। क्योंकि यज्ञ में जिसकी बलि दी जाती है, वह स्वर्ग जाता है। तो बुद्ध ने कहा फिर अपने बाप की बलि क्यों नहीं देते? स्वर्ग जाने का इतना सरल उपाय! और यह बकरा जाना भी नहीं चाहता। यह बकरा चिल्ला रहा है। यह भाग रहा है। यह जाना भी नहीं चाहता। अपने पिता जी को भेज दो। या खुद ही चले जाओ। जब स्वर्ग जाने का ऐसा शौक चढ़ा है, तो बेचारा बकरा क्यों जाए! बकरे को क्यों भेज रहे हो? इसने कब कहा कि मुझे स्वर्ग जाना है? यह मजे से यहीं जी रहा है। यह बिलकुल मस्त है। यह स्वर्ग में है, तुम नर्क में हो!

साहिब के दरबार पुकारयां बाकरा।
काजी लीया जाय कमरसों पाकरा॥
मेरा लीया सीस उसीका लीजिये।
हरि हां वाजिद, राव रंक का न्याय बराबर कीजिये॥

वह बकरा कह रहा है प्रभु, कुछ तो न्याय करो। क्या अन्याय हो रहा है! मुझे जाना नहीं है, मैं भेजा जा रहा हूं। इनको जाना है, ये खुद जा नहीं रहे हैं। मुझको भेज रहे हैं।

पाहन पड़ गई रेख रातदिन धोवहीं।
छाले पड़ गये हाथ मूंड़ गहि रोवहीं॥
जाको जोइ सुभाव जाइ है जीव सूं।
हरि हां, नीम न मीठी होइ सींच गुड़ घीव सूं॥

महत्वपूर्ण वचन है। वे कहते हैं, प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वभाव से जी रहा है। जबर्दस्ती न करो। किसी के ऊपर जबर्दस्ती थोपो मत कुछ। प्रत्येक को उसके स्वभाव से जीने दो।

जाको जोई सुभाव जाई है जीव सूं।

अपने-अपने स्वभाव से प्रत्येक जीव जी रहा है। अपने-अपने स्वभाव से परमात्मा की यात्रा पर जा रहा है।

हरि हां नीम न मीठी होइ सींच गुड़ घीव सूं॥

तुम गुड़ डालो और घी डालो, तो भी नीम मीठी नहीं होगी। मीठी होने की जरूरत भी नहीं है। नीम का कड़वापन उसका स्वभाव है। कड़वेपन में कुछ बुराई भी नहीं है। सच तो यह है, औषधि शास्त्र के अनुसार नीम से ज्यादा बहुमूल्य कोई औषधि नहीं है।

तुमने कहानी तो पंचतंत्र की सुनी ही होगी। कि चार पंडित काशी से पढ़कर लौटते थे। सब अलग-अलग विद्याओं में निष्णात थे। जब एक जगह जंगल में ठहरे, तो उन्होंने सोचा, अब हम भोजन बनायें। तो उसमें जो व्यक्ति औषधिशास्त्र का ज्ञाता

था, वनस्पति शास्त्र का ज्ञाता था, उससे कहा, कि भई, तू जाकर या तो बाजार से सब्जी खरीदना, पास में कोई गांव हो या जंगल से, क्योंकि तू वनस्पतिशास्त्र का ज्ञाता है। तो वह बेचारा गया और नीम तोड़ लाया। क्योंकि वनस्पति शास्त्र का ज्ञाता था। नीम से ज्यादा तो श्रेष्ठ कोई वनस्पति है नहीं। क्योंकि इसमें इतने गुण हैं : खून शुद्ध करे, उम्र बढ़ाये, वृद्ध को जवान करे। उसने बहुत सोचा...। पंतित तो पंडित ! पंड़ित से ज्यादा मूढ़ कोई आदमी नहीं होता।

जो व्याकरण का ज्ञाता था, उसको छोड़ गए थे कि तू चूल्हा जला कर रख। तू शब्द-शास्त्र का ज्ञाता है। तो जब पानी तू चढ़ाएगा चूल्हे पर तो खद-बद, खद-बद... खद-बद, खद-बद होगी...। तो तू ठीक से संगीत उत्पन्न करना, ताकि भोजन भी सुन्दर बने। जब खद-बद, खद-बद...शुरू हुई, तो पंडित ने सोचा कि यह तो कोई शब्द है ही नहीं। और शास्त्र में कहा है कि अशब्द को न सुनना। क्योंकि अशब्द जो सुने, वह भी पाप का भागीदार है। और यह अशब्द मालूम होता है। यह कोई शब्द तो हमने देखा ही नहीं—खद-बद...खद-बद...खद-बद...तो उसने उठाकर डंडा एक जोर से मारा। उस बर्तन तो तोड़ ताड़कर फेंक दिया। उसने कहा कि अशब्द को सुनना...। और यही गति हुई...।

जो दर्शनशास्त्री था, उसको भेजा था कि तू घी खरीद ला। क्योंकि दर्शनशास्त्र की किताबों में यह उल्लेख बहुत आता है कि घी पात्र को सम्हालता है कि पात्र घी को सम्हालता है। कौन किसको सम्हालता है ? कौन मूल है ? तू घी का ज्ञाता है। इतने दिन से पढ़ते-पढ़ते दर्शनशास्त्र अब तो तुझे पता चल ही होगा कि कौन किसको सम्हालता है ? वह गया। उसने पढ़ा तो बहुत था, लेकिन कभी प्रयोग करके नहीं देखा था। रास्ते में सोचने लगा कि पढ़ा तो बहुत। पढ़ने से कुछ निष्कर्ष भी हाथ आया नहीं। पात्र सम्हालता घी को कि घी सम्हालता पात्र को ? आज करके ही देख लूं ! उसने उलटा दिया पात्र। सारा घी नीचे गिर गया। उसने कहा, कि सिद्ध हो गया, कि पात्र ही सम्हालता है। बड़ा प्रसन्न खाली पात्र लिए हुए लौटा। पांडित्य से जो जीना चाहेंगे उनकी जिंदगी में यही परिणाम होते हैं।

प्रत्येक का अपना स्वभाव है। प्रत्येक की उसके स्वभाव से जीने की स्वतंत्रता दो। जबर्दस्ती दूसरों के ऊपर आचरण न थोपो। उनके अंतस को आविर्भूत होने दो। क्योंकि जिस दिन वे अपने स्वभाव में परिपूर्ण थिर हो जायेंगे, उसी दिन परमात्मा को उपलब्ध हो जायेंगे।

सत्गुरु शरणे आयक तामस त्यागिये।
बुरी भली कह जाए ऊठ नहिं लागिये ॥



उठ लाग्या में राड़ राड़ में मीच है।
हरि हां, जा घर प्रगटै क्रोध सोइ घर नीच है।

प्रेम की चर्चा करने में स्वाभाविक है कि क्रोध की चर्चा की जाए, क्योंकि प्रेम का ठीक विपरीत है क्रोध।

सत्गुरु शरणे आयक तामस त्यागिये।

जब सत्गुरु की शरण में आओ तो आलस्य छोड़ देना, तंद्रा छोड़ देना। मूर्च्छा छोड़ देना। होशपूर्वक बैठना। सत्संग उसी को उपलब्ध होता है, जो होशपूर्वक बैठता हैं। जो सोया-सोया बैठा रहता है, उसे सत्संग उपलब्ध नहीं होता। जो बैठे-बैठे जम्हाई लेता रहता है, उसे सत्संग उपलब्ध नहीं होता। सत्संग उसी को उपलब्ध होता है, जो जाग्रत है, जो सचेत है, सावधान है। क्योंकि गुरु जो है वह सावधानी का परम रूप है। तुम भी थोड़े सावधान हो जाओ, तो संबंध जुड़े। तुम भी थोड़े उस जैसे हो जाओ, तो नाता बने, तो सेतु बने। तुम भी जागो, तो जागे से दोस्ती बने। सोये-सोये दोस्ती न बनेगी। इसलिए तामस त्यागिये...।

बुरी भली कह जाए ऊठ नहिं लागिये। और एक बात खयाल रख लेना, कि कोई बुरा-भला कह दे, तो उठकर जवाब देने की कोई जरूरत नहीं। उसका स्वभाव है। उसने बुरा-भला कहा है, इससे तुमसे कुछ भी नहीं कहा है। उसने सिर्फ अपना स्वभाव प्रगट किया है। उसकी वह जाने। तुम उत्तर देने मत पड़ जाना। उत्तर में पड़ गए कि तुम जाल में आ गए !

बुद्ध को किसी ने गालियां दीं। बुद्ध ने सुनीं, और कहा, कि तुम्हारी बात पूरी हो गई हो तो मैं जाऊं ? मुझे दूसरे गांव जल्दी पहुंचना है। पर उस आदमी ने कहा : हम गालियां दे रहे हैं, आपने कुछ उत्तर नहीं दिया ? बुद्ध ने कहा : अगर उत्तर चाहिए था तो दस साल पहले आना था। अब तो मैं गालियां लेता ही नहीं, तो उत्तर कैसे दूं ? तुमने दीं, तुम्हारी मर्जी। मैंने ली ही नहीं। इसलिए सवाल उत्तर देने का आता ही नहीं। जब तक मैं न लूं, तुम्हारी गाली व्यर्थ हैं। पिछले गांव में लोग मिठाइयां लेकर आए थे और मैंने कहा, मेरा पेट भरा है। मिठाइयों के थाल वापस ले गये। तुम गालियां लेकर आए हो। जो जिसके पास है। अब मैं कहता हूं, मेरा पेट भर चुका, मैं नहीं लेता। तुम क्या करोगे ? ले जाओ वापस। मुझे तुम पर बड़ी दया आती है। ये गालियों से भरे थाल ले जाओ वापस। अभी मैं जल्दी में हूं। दूसरे गाव पहुंचना है। अगर फिर भी तुम्हारा मन कुछ और रह गया हो देने का, भरा न हो, तो जब मैं लौटूं, तब फिर यह थाल ले आना। और तब मैं थोड़ा ज्यादा समय लेकर आऊंगा। बैठकर इस वृक्ष के नीचे तुम्हारी पूरी बात सुन लूंगा।

कैसी गति न हो गई होगी उस मनुष्य की! बुरी भली कह जाय ऊठ नहिं लागिये ॥ उठ लाग्या में राड़...। जबाब दोगे तो झगड़ा खड़ा होगा। ...राड़ में मीच है। और झगड़े में हिंसा है, मृत्यु है। और हिंसा यही तो अधार्मीक व्यक्ति के जीवन का ढंग है। जीता कम, मरता ज्यादा है। जीने कम देता है लोगों को, मारता ज्यादा है। न खुद जीता है, न किसी को जीने देता है।

हरि हां, जा घर प्रगटै क्रोध सोइ घर नीच है। और जिस घर में क्रोध प्रगटा, वही सबसे नीच हो गया। वही नर्क में गिर गया। और कोई नर्क नहीं है; प्रेम स्वर्ग है, क्रोध नर्क है।

कहि, कहि वचन कठोर खरुंठ नहिं छोलिये।
सीतल सांत स्वभाव सबन सूं बोलिये ॥
आपन सीतल होय और भी कीजिये।
हरि हां, बलती में सुण मीत न पूला दीजिये ॥

कहीं घास मत दो आग में! और वैसे ही कोई क्रोधित है। अब तुम कुछ और घास मत डालो उसके क्रोध में अन्यथा और लपट बढ़ जायेगी। हरि हां, बलती में सुण मीत न पूला दीजिये ॥ जहां आग लगी हो वहां घास का पूला और मत डालो। वैसे ही कोई क्रुद्ध अब है, अब तुम और क्रोध मत करो। अगर हो सके सीतल शांत स्वभाव...। जब कोई क्रोधित हो, तब तुम शांत हो जाओ, शीतल हो जाओ। गिरने दो उसके तीर तुम्हारी शीतलता पर; बुझ जायेंगे। और न केवल उसके अग्नि से भरे हुए तीर बुझ जायेंगे, तुम उसके जीवन को भी रूपांतरित करने का एक अवसर बन जाओगे! तुम्हारी शीतलता उसे छू लेगी। तुम्हारा प्रेम उसे छू लेगा।

वड़ा भया सो कहा बरस सौ साठ का।
व्रणां पढ्या तो कहा चुतर्विध पाठ का ॥
छापा तिलक बनाया कमंडल काठ का।
हरि हां, वाजिद, एक न आया हाथ पंसेरी आठ का ॥

उम्र से कोई बड़ा नहीं होता। वाजिद कहते हैं, कि तुम सौ साल के हो जाओ कि साठ साल के हो जाओ, उम्र से कोई बड़ा नहीं होता। बड़प्पन प्रेम से उपलब्ध होता है, शीतलता से उपलब्ध होता है, गंभीर शांति से उपलब्ध होता है, प्रशांति से उपलब्ध होता है। उम्र से कोई बड़े होने का संबंध नहीं है। और वृणा पढ्या तो कहा चतुर्विध पाठ का। तुम चारों वेद कंठस्थ कर लो, तो भी तुम ज्ञानी न हो जाओगे। ज्ञान तो तुम्हारे भीतर निर्विचार चित्त में जन्मता है। ध्यान में ज्ञान का जन्म होता है।

कहै वाजिद पुकार सीख एक सुन्न रे। बस एक शून्य तुम सीख लो, तो वाजिद कहते



हैं, तुमने सारे शास्त्र पा लिए। सब कुरान, सब पुराण, सब वेद तुम्हारे भीतर उमगने लगेंगे, जन्मने लगेंगे।

छापा तिलक बनाय कमंडल काठ का। ऊपर के आयोजनों में ही समय मत गंवा दो।

हरि हां, वाजिद, एक न आया हाथ पसेरी आठ का। आठ पसेरी का होता है मन। यह प्रतीक है। कि इस तरह के ऊपर के आयोजन से मन पकड़ में न आयेगा। वाजिद, एक न आया हाथ पसेरी आठ का। प्रतीक...आठ पसेरी का मन होता था। अब तो होता नहीं, वाजिद जब थे तब होता था। ऐसे ही तुम्हारे भीतर जो मन है, वह हाथ न आयेगा बाहर के आयोजनों से। आचरण से, चरित्र से। भीतर की अन्तर ज्योति से शांत बनो, शून्य बनो, प्रेम बनो, दान बनो। जीवन बनो और जीवन के लीए छाया बनो। जीवन बनो और जीवन का सम्मान बनो। क्योंकि जीवन ही परमात्मा है, और कोई परमात्मा नहीं है। जिसने जीवन को प्रेम करना सीख लिया, वह परमात्मा के करीब आने लगता है। जीवन की और प्रेम की सीढ़ियां चढ़ते-चढ़ते ही एक दिन परमात्मा का मंदिर मिल जाता है।

वाजिद का पाठ, वाजिद की सीख दो शब्दों की है; अंत में उन दो शब्दों को याद रखना। एक है शून्य और एक है प्रेम। भीतर शून्य हो जाओ, बाहर प्रेम हो जाओ, शेष सब अपने आप सध जायेगा।

और शून्य और प्रेम एक हो सिक्के के दो पहलू हैं। शून्य—जब तुम अकेले हो, प्रेम—जब तुम किसी के साथ हो। प्रेम संबंध और शून्य असंबंध। दोनों साध लो। दोनों साथ-साथ साधलो। और तुमने सब साध लिया...! परमात्मा तुम्हारा हो ही गया! परमात्मा तुम्हारा है ही।

शून्य हो जाओ, तो भीतर पहचान में आ जाएगा। और प्रेम हो जाओ, तो बाहर पहचान में आ जाएगा। शून्य की आंख उसे भीतर खोज लेती है और प्रेम की आंख उसे बाहर खोज लेती है। और जिसने बाहर भी जाना उसे भीतर भी जाना उसे, उसका बाहर भी मिट गया, भीतर भी मिट गया। और जो बाहर और भीतर के पार हो गया, वही द्वन्द्वातीत है। वही अद्वैत है।

आज इतना ही।
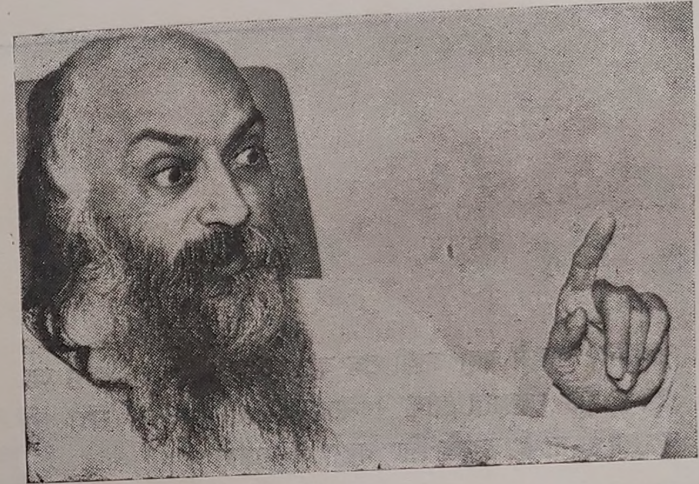
# चांदनी को छू लिया है

दसवां प्रवचन; दिनांक ३० सितम्बर १९७८

श्री रजनीश आश्रम; पूना

भगवान, जब मैं यहां आयी तब बहुत अस्वस्थ थी। अब मैं जा रही हूं पूरी स्वस्थता पाकर। आपका प्रेम मुझ पर सदा ही बरसता रहता है, इसके लिए बहुत अनुगृहीत हूं।

चूकि हम अपनी व्यक्तिगत समस्याएं स्वयं हल नहीं कर पाते, क्या इस कारण लिया गया संन्यास उचित है?

मनुष्य के हित आपकी अथक चेष्टा देखकर मैं चकित रह जाता हूं। लेकिन लोग सो रहे हैं और सत्य जीना तो दूर सत्य सुनने को भी तैयार नहीं हैं।

क्या भक्त अकेले विश्वास के सहारे जी सकता है?

पहला प्रश्न : भगवान, जब मैं यहां आयी, तब बहुत अस्वस्थ थी। अब मैं जा रही हूं पूरी स्वस्थता पाकर। आपका प्रेम मुझ पर हमेशा ही बरसता रहता है, इसके लिए बहुत अनुगृहीत हूं।

★ दुलारी, अस्वस्थ मनुष्य मात्र है। जिन्हें हम साधारणतः स्वस्थ मानते हैं, वे भी स्वस्थ नहीं हैं। शरीर का स्वस्थ होना तो आसान है, मनुष्य का स्वस्थ होना निश्चित ही कठिन है। और शरीर स्वस्थ हो भी जाए तो कुछ बनता नहीं, बिगड़ी बात नहीं बनती। बिगड़ी बात तो तभी बनती है जब मनुष्य स्वस्थ हो। मनुष्य की अस्वस्थता से मेरा अर्थ क्या है? जब तक मनुष्य परमात्मा से टूटा-टूटा है, तब तक अस्वस्थ है। जैसे वृक्ष उखड़ा-उखड़ा हो जमीन से, तो बीमार होगा। जड़ें चाहिए भूमि में, तो ही रस-धार वृक्ष में बहेगी जीवन की। मनुष्य भी एक वृक्ष है। और जब तक परमात्मा में उसकी जड़ें न हों, परमात्मा यानी यह विराट अस्तित्व। इससे अलग-अलग होना बीमार होना है। इससे अलग-अलग जीना अस्वस्थ जीना है। इसके साथ समग्र रूप से लीन होकर जीना, तल्लीन होकर जीना स्वस्थ जीना है।

स्वस्थ शब्द को भी खयाल करो, उसका अर्थ होता है — स्वयं में जो स्थित हो गया है। और स्वयं में वही स्थित है, जो परमात्मा में स्थित है। क्योंकि स्व और परमात्मा, आत्मा और परमात्मा भिन्न नहीं हैं।

मनुष्य अलग है, यही हमारी भ्रान्ति है और यही हमारे विषाद का मूल है। इसी भ्रान्ति को अहंकार कहते हैं। मैं अलग हूं, बस इस भ्रान्ति पर सारी भ्रान्तियां निर्मित होती हैं। मैं अलग हूं तो मुझे अपने को बचाना है। मैं अलग हूं मुझे लड़ना है, जीतना है, सिद्ध करना है स्वयं को। प्रमाण देना है जगत को कि मैं कुछ हूं, विशिष्ट हूं, अद्वि-तीय हूं। धन कमाना है, कि बड़े पद पर पहुंचना है, यश कमाना है, कि प्रसिद्धि, मगर मुझे कुछ साबित करना है कि मैं साधारण नहीं हूं असाधारण हूं, दूसरों से ऊपर हूं;

किसी भी कारण—ज्ञान के कारण, त्याग के कारण, धन के कारण, पद के कारण, लेकिन मैं दूसरों से ऊपर हूं।

महत्वाकांक्षा का जन्म होता है, इस बीमारी के कारण कि मैं अलग हूं। और जो महत्वाकांक्षा से ग्रस्त हो गया, ज्वर ग्रस्त है और उसकी आत्मा में ज्वर है। उसकी आत्मा सड़ने लगेगी। उसकी आत्मा में घुन लग गया। अब कभी शान्ति न होगी। अब अशान्ति ही जीवन होगा। अब सन्ताप और चिन्ता ही गहन होते जायेंगे। अब जीवन रोज-रोज नर्क की सीढ़ियां उतरेगा।

जिसने जाना कि मैं इस जगत के साथ एक हूं, भिन्नता छोड़ी। इस विराट के संगीत में एक अंग हो गया, एक स्वर हो गया। अपना छंद अलग न रखा। अपनी गति भिन्न न रखी। अपने को डुबा दिया सागर में! वही स्वस्थ हो जाता है। सागर में डूबने की यही कला मैं यहां सिखा रहा हूं दुलारी!

इसलिए मेरे पास बैठकर अगर स्वयं में स्थित होने की थोड़ी-सी प्रतीतियां तुम्हें हो जाएं, तो तुम धन्यभागी हो। फिर उन्हीं प्रतीतियों को गहरे करते जाना। फिर उन्हीं प्रतीतियों को संजोना, संवारना, फिर-फिर पुकारना। मेरे पास बैठकर जो स्वास्थ्य अनुभव हो, जो रस का स्वाद लगे, उसे यहीं मत छोड़ जाना, उसे साथ ले जाना। उसकी गूंज तुम्हारे भीतर गूंजती ही रहे। उठो तो उसमें उठना, बैठो तो उसमें बैठना। रात सोओ, तो उसमें ही डूबना, सुबह जागो तो उसी में जागना। तो फिर कितनी ही दूरी हो मेरे और तुम्हारे बीच, सत्संग जारी रहेगा। भौतिक दूरी सत्संग में बाधा नहीं बन सकती। और मैं दुलारी को जानता हूं, दूर रहकर भी सत्संग कर पाती है। हजार बाधायें हैं। उसे यहां पहुंचना भी कठिन होता है। फिर भी किसी तरह पहुंच जाती है। परिवार है, समाज है, उनकी हजार बाधायें हैं। लेकिन उन बाधाओं के पार भी, उसका सतत राग मेरे साथ जुड़ा है।

चांदनी को छू लिया है, हाय, मैंने क्या किया है।
अब विसुध मन प्राण मेरे, बीन सा झंकृत हिया है।

एक बार थोड़ा-सा स्वाद लगना शुरू हो जाए, तो हिया झंकृत हो उठता है! उसी झंकार को प्रार्थना कहते हैं, या पूजा, या अर्चना...।

चांदनी को छू लिया है, हाय, मैंने क्या किया है।
अब विसुध मन प्राण मेरे, बीन सा झंकृत हिया है।
छू लिया मैंने शरद के
मेघ का, उजला किनारा।
छू लिये नभ फूल जैसे



छू लिया संसार सारा।
मदिर मधुरस का कलश था या कि अमृत पी लिया है॥
चांदनी को छू लिया है, हाय, मैंने क्या किया है।
स्निग्ध सम्मोहन, नयन का
मौन आमंत्रण विवश था।
छू लिया अंगार मैंने
अब करूं क्या मन विवश था।
मैं नहीं अपना, किरण के स्वप्न ने क्या कर दिया है॥
चांदनी को छू लिया है, हाय, मैंने क्या किया है।
कांप कर चुप रह गई वह
शुभ्र बेले की कली-सी।
मुड़ गई हर बात मन की
एक अनजानी गली सी।
एक क्षण में आज मैंने एक जीवन जी लिया है।
चांदनी को छू लिया है, हाय, मैंने क्या किया है।

मन डरेगा भी बहुत....। इसलिए तो लोग स्वस्थ होने से घबड़ाते हैं। लोगों ने अस्वस्थ होने को पकड़ रखा है। कहते जरूर हैं लोग—कि हम शान्त होना चाहते हैं, लेकिन अशान्ति को छोड़ते नहीं! कहते जरूर हैं लोग, कि हम परमात्मा पाना चाहते हैं, लेकिन अहंकार को छोड़ते नहीं। कहते जरूर हैं लोग—हम प्रेम पाना चाहते हैं और देना और लेना चाहते हैं प्रेम, लेकिन वैमनस्य, ईर्ष्या और क्रोध और हिंसा जोर से गठरी में बांधकर बैठे हैं! लोग कहते कुछ हैं, करते ठीक उलटा हैं!

जिस दिन यह विरोधाभास तुम्हें दिखाई पड़ जाए, उस दिन जिस गठरी को तुमने अब तक सम्पत्ति मानकर सम्हाला है, उसे सागर में डुबा देना, तत्क्षण क्रांति होनी शुरू हो जाएगी। शान्ति को चाहने की जरूरत नहीं है, सिर्फ अशान्ति के बीज मत बोओ पर्याप्त है, स्वास्थ्य अपने-आप घट जाता है।

अस्वस्थ होने में हमारा बड़ा न्यस्त स्वार्थ है। हमने हजार कारणों से अस्वस्थ रहना चाहा है, इसलिए अस्वस्थ हैं। इस जगत में कोई भी मनुष्य किसी और के कारण अस्वस्थ नहीं है, अपने ही कारण अस्वस्थ है। बीमारी में हमारे स्वार्थ जुड़े हैं। बीमार आदमी को मिलती है—सहानुभूति, संवेदना, सत्कार, सम्मान। देखते हो घर में बच्चा बीमार हो जाए, तो सारे घर के ध्यान का केन्द्र हो जाता है। बचपन से ही हम गलत बात सिखा देते हैं। बच्चे को हमने बीमार रहने की कला सिखा दी। कौन नहीं

चाहता कि सब मुझ पर ध्यान दें। कौन नहीं चाहता कि मैं सबकी आंखों का तारा हो जाऊं। और बच्चा जानता है कि सबकी आंखों का तारा मैं तभी होता हूं, जब अस्वस्थ होता हूं, बीमार होता हूं, रुग्ण होता हूं। जब स्वस्थ होता हूं किसी की आंख का तारा नहीं होता। बल्कि उल्टी बात घटती है, बच्चा स्वस्थ होगा, ऊर्जा से भरा होगा नाचेगा, कूदेगा, चीजें तोड़ देगा, झाड़ पर चढ़ेगा, जो देखो वही डांटेगा। जो देखो वही कहेगा—मत करो ऐसा, चुप रहो, शांत बैठो। सम्मान पाना दूर रहा, सहानुभूति पानी दूर रही। उत्सव में आशीष पाना दूर रहा, उत्सव में मिलती है निंदा। नाचता है तो सारा घर विपरीत हो जाता है, सारा परिवार-पड़ोस विपरीत हो जाता है। बीमार होकर पड़ रहता है, सारा घर अनुकूल हो जाता है।

हम एक गलत भाषा सिखा रहे हैं। हम बीमारी की राजनीति सिखा रहे हैं! हम यह कह रहे हैं—जब तुम बीमार होओगे, हमारी सबकी सहानुभूति के पात्र होओगे। यह तो बड़ी रुग्ण प्रक्रिया हुई। जब बच्चा प्रसन्न हो, नाचता हो तब सहानुभूति देना, तो जीवन भर प्रसन्न रहेगा, नाचेगा। लेकिन नहीं, ऐसा नहीं होता।

इस कारण एक बहुत बेहूदी घटना मनुष्य जाति के इतिहास में घट गई। वह घटना क्या है, समझना; क्योंकि उसमें बहुत कुछ प्रत्येक के लिए कुंजियां छिपी हैं—बड़ी कुंजियां छिपी हैं! हर बच्चे को दुख में, पीड़ा में, बीमारी में, परेशानी में सहानुभूति मिलती है; उत्सव में, आनंद में, मंगल में, नाच में, गान में विरोध मिलता है। इससे बच्चे को धीरे धीरे यह भाव होना शुरू हो जाता है पैदा कि सुख में कुछ भूल है और दुख में कुछ शुभ है। दुख ठीक है, सुख गलत है। दुख स्वीकृत है सभी को, सुख किसी को स्वीकार नहीं है।

इसी तर्क की गहन प्रक्रिया का अंतिम निष्कर्ष यह है, कि परमात्मा को भी सुख स्वीकार नहीं हो सकता, दुख स्वीकार होगा। इसी के तुम्हारे साधु-संन्यासी स्वयं को दुख देने में लगे रहे हैं। उनकी धारणा यह है, कि जब इस जगत के माता-पिता दुख में सहानुभूति करते थे, तो वह जो सबका पिता है, वह भी दुख में सहानुभूति करेगा। जब इस जगत के माता-पिता सुख में नाराज हो जाते थे। उछलता था, कूदता था, नाचता था, प्रसन्न होता था, तो विपरीत हो जाते थे। तो वह परम पिता भी सुख में विपरीत हो जाएगा।

इस आधार पर सारे जगत के धर्म भ्रष्ट हो गए। इस आधार के कारण विषाद, उदासी, आत्महत्या, आत्मनिषेध—ये धर्म की सीढ़ियां बन गईं। अपने को सताओ!

तुम सोचते हो जो आदमी काशी में कांटों की सेज बिछाकर लेटा है, वह क्या कह रहा है? यह छोटा बच्चा है। यह मूढ़ है। यह कोई ज्ञानी नहीं है, यह निपट मूढ़ है!



यह उसी तर्क को फैला रहा है, कि देखो मैं कांटों पर लेटा हूं, अब तो हे परम पिता, अब तो मुझ पर ध्यान दो! अब तो आओ मेरे पास। अब और क्या चाहते हो? वह जो जैन मुनि उपवास कर रहा है, शरीर को गला रहा है, सता रहा है, वह क्या कह रहा है? वह कह रहा है, अब तो अस्तित्व मेरे साथ सहानुभूति करे! अब और क्या चाहिए? अब कितना और करूं!

ईसाइयों में फकीर हुए जो रोज सुबह उठकर अपने को कोड़े मारते थे। और जब तक उनका शरीर लहूलुहान न हो जाए। यही उनकी प्रार्थना थी। और जो जितना अपने शरीर को लहूलुहान कर लेता था, नीला-पीला कर लेता था, उतना ही बड़ा साधु समझा जाता था।

देखते हो इन पागलों को, विक्षिप्तों को! इनको पूजा गया है सदियों-सदियों में; तुम भी पूज रहे हो। इस देश में भी यही चल रहा है।

यह तर्क बड़ा बचकाना है और बड़ा भ्रान्त। परमात्मा उनसे प्रसन्न है जो प्रसन्न हैं। परमात्मा तुम्हारे माता-पिता की प्रतिकृति नहीं है। तुम्हारे माता-पिता तो उनके माता-पिता द्वारा निर्मित किए गए हैं, यही जाल जो तुमने सीख लिया है, उन्होंने भी सीखा है।

यह समाज पूरा-का-पूरा, सुखी आदमी को सत्कार नहीं देता। तुम्हारे घर में आग लग जाए, पूरा गांव सहानुभूति प्रकट करने आता है, आता है न? दुश्मन भी आते हैं। अपनों की तो बात ही क्या, पराये भी आते हैं। मित्रों की तो बात क्या, शत्रु भी आते हैं। सब सहानुभूति प्रकट करने आते हैं कि बहुत बुरा हुआ। चाहे दिल उनके भीतर प्रसन्न भी हो रहे हैं, तो भी सहानुभूति प्रगट करने आते हैं—बहुत बुरा हुआ। तुम अचानक सारे गांव की सहानुभूति के केन्द्र हो जाते हो।

तुम जरा एक बड़ा मकान बना कर गांव में देखो। सारा गांव तुम्हारे विपरीत हो जाएगा। सारा गांव तुम्हारा दुश्मन हो जाएगा। क्योंकि सारे गांव की ईर्ष्या को चोट पड़ जाएगी। तुम जरा सुन्दर गांव में मकान बनाओ, सुन्दर बगीचा लगाओ। तुम्हारे घर में बांसुरी बजे, वीणा की झंकार उठे। फिर देखें, कोई आए सहानुभूति प्रगट करने! मित्र भी पराये हो जायेंगे। शत्रु तो शत्रु रहेंगे ही, मित्र भी शत्रु हो जायेंगे। उनके भीतर भी ईर्ष्या की आग जलेगी, जलन पैदा होगी।

इसलिए हम सुखी आदमी को सम्मान नहीं दे पाते। इसलिए हम जीसस को सम्मान न दे पाए, सूली दे सके। हम महावीर को सम्मान न दे पाए, कानों में खीले ठोंक सके। हम सुकरात को सम्मान न दे पाए, जहर पिला सके।

तुम देखते हो, मेरे साथ इस देश में जो व्यवहार हो रहा है, उसका कुल कारण

इतना है कि मैं उनकी सहानुभूति नहीं मांग रहा। इसका कुल कारण इतना है कि मैं उनकी सहानुभूति का पात्र नहीं हूं। मैं उनकी सहानुभूति का पात्र हो जाऊं, वे सब सम्मान से भर जायेंगे। लेकिन मैं प्रसन्न हूं, आनंदित हूं, रस मग्न हूं। मैं ईश्वर के ऐश्वर्य से मंडित हूं। कठिनाई है! मैं फूलों की सेज पर सो रहा हूं और वे केवल कांटों की सेज पर सोने वाले आदमी को ही सम्मान देने के आदी हो गए हैं। इसलिए उनका विरोध स्वाभाविक है। वे खुद रुग्ण हैं। उनका पूरा चित्त हजारों साल की बीमारियों से ग्रस्त हैं।

इस जगत के आज तक आनंदित व्यक्ति को सम्मान नहीं दिया है। यह सिर्फ दुखी व्यक्तियों को सम्मान देता है। उनको त्यागी कहता है। उनको महात्मा कहता है। इस वृत्ति से सावधान होना। यह तुम्हारे भीतर समाज ने डाल दी है। तुम जब रूखे-सूखे वृक्ष हो जाओगे तुम्हारे जब पत्ते झड़ जायेंगे और तुममें फूल न लगेंगे, तब यह समाज तुम्हें सम्मान देगा।

और मैं तुमसे कहता हूं इस सम्मान को दो कौड़ी का समझ कर छोड़ देना। चाहे यह सारा समाज तुम्हारा अपमान करे, लेकिन तुम हरे-भरे होना, फूल खिलने देना। पक्षी तुम्हारा सम्मान करेंगे, चांद-तारे तुम्हारा सम्मान करेंगे, सूरज तुम्हारा सम्मान करेगा, आकाश तुम्हारे सामने नतमस्तक होगा। छोड़ो फिक्र आदमियों की, आदमी तो बीमार है। आदमियों का यह समूह तो बहुत रुग्ण हो गया है। और यह एक दिन की बीमारी नहीं है—लम्बी बीमारी है, हजारों-हजारों साल की बीमारी है। इसके बाहर कोई मुश्किल से छूट पाता है।

मनुष्य ने अपने दुख में बहुत स्वार्थ जोड़ लिए हैं। तुमने देखा, इसलिए लोग अपनी व्यथा की कहानियां खूब बढ़ा-चढ़ा कर कहते हैं, अपनी दुख की बात लोगों को खूब बढ़ा-चढ़ाकर कहते हैं, इसीलिए कि दुख की बात जितनी ज्यादा करेंगे, उतना ही दूसरा आदमी पीठ थपथपाएगा, सहानुभूति देगा। लोग सहानुभूति के लिए दीवाने हैं, पागल हैं। और सहानुभूति से कुछ मिलने वाला नहीं है। क्या होगा सार अगर सारे लोग भी तुम्हारी तरफ ध्यान दे दें? तुमने कहानी तो सुनी है न, कि एक गरीब औरत ने बामुश्किल आटा पीस-पीस कर सोने की चूड़ियां बनवाईं। चाहती थी कि कोई पूछे—कितने में ली? कहां बनवाई? कहां खरीदी? मगर कोई पूछे ही न; सुख को तो कोई पूछता ही नहीं! घबड़ा गई, परेशान हो गई; बहुत खनकाती फिरी गांव में, मगर किसी ने पूछा ही नहीं। जिसने भी चूड़ियां देखीं, नजर फेर ली। आखिर उसने अपने झोपड़े में आग लगा दी। सारा गांव इकट्ठा हो गया। और वह छाती पीट-पीटकर, हाथ जोर से ऊंचे उठा-उठा कर रोने लगी—लुट गई, लुट गई! उस भीड़ में से किसी ने पूछा



कि अरे, तू लुट गई यह तो ठीक, मगर सोने की चूड़ियां कब तूने बना लीं! तो उसने कहा: अगर पहले ही पूछा होता तो लुटती ही क्यों! यह आज झोपड़ा बच जाता, अगर पहले ही पूछा होता।

सहानुभूति की बड़ी आकांक्षा है कि कोई पूछे, कोई दो मीठी बातें करे। इससे सिर्फ तुम्हारे भीतर की दीनता प्रगट होती है और कुछ भी नहीं। इससे सिर्फ तुम्हारे भीतर के घाव प्रगट होते हैं और कुछ भी नहीं। सिर्फ दीन-हीन आदमी सहानुभूति चाहता है। सहानुभूति एक तरह की सांत्वना है, एक तरह की मलहम-पट्टी है। घाव इससे मिटता नहीं, सिर्फ छिप जाता है। मैं तुम्हें घाव मिटाना सिखा रहा हूं।

और दुलारी तक पाठ पहुंच रहे हैं। उसका प्रश्न अर्थपूर्ण है। प्रश्न कम है, उसका निवेदन है। कहा: जब मैं यहां आई थी, तब बहुत अस्वस्थ थी। हूं ही मैं यहां इसलिए कि जो अस्वस्थ हैं, आयें। जो अपने से टूट गए हैं, आयें, ताकि मैं उन्हें उनसे ही जोड़ दूं। 'अब मैं जा रही हूं पूरी स्वस्थता पाकर।'

लेकिन खयाल रखना, स्वास्थ का सम्मान नहीं होता। इसलिए स्वास्थ्य को सम्मान न मिले, तो तुम परेशान मत होना। स्वास्थ्य को अपमान मिलता है। स्वास्थ्य को सिंहासन नहीं मिलता, सूली मिलती है! स्वास्थ्य की यही कीमत है; जो चुकाने को राजी होते हैं, जो यह सौदा करने को राजी होते हैं, उन्हीं को स्वास्थ्य मिलता है।

मैं तुम्हें गीत दे रहा हूं। मैं तुम्हें नृत्य दे रहा हूं। मैं तुम्हें उत्सव दे रहा हूं। यह उत्सव कहीं भी समाप्त नहीं हो सकता। मैं तुम्हें एक नई जीवन-ज्योति दे रहा हूं। जब तुम वापिस लौटोगे बुझे दीयों के पास, तो बुझे दीये नाराज होंगे, प्रसन्न नहीं होंगे। इसे बर्दाश्त न कर सकेंगे, कि जो उन्हें नहीं हुआ है वह तुम्हें कैसे हो गया!

और जिसे स्वास्थ्य का थोड़ा-सा भी अनुभव हुआ है, उसके भीतर एक गहन आकाश पैदा होती है, अभीप्सा पैदा होती है और। और—दूर के किनारे की यात्रा करने की। जब जरा से संस्पर्श से इतना स्वास्थ्य और सुख अनुभव होता है, तो जब हम बिलकुल ही डूब जायेंगे, राई-रत्ती पीछे हम अपने को बचायेंगे नहीं, तब कितना होगा! अवर्णनीय, अनिर्वचनीय, अव्याख्य...!

> आज लहरों का निमंत्रण पार से।
> मूक नयनों का समर्पण प्यार से।
> आज पूनम की किरण चंदन लुटाती,
> भीगती रजनी मिलन के गीत गाती,
> रूप दूना हो गया श्रृंगार से।।
> आज लहरों का निमंत्रण पार से।

कौन यह मन में गहरता जा रहा है,  
स्वप्न सा बनकर बहरता जा रहा है,  
भावना डूबी हुई आभार से ॥  
आज लहरों का निमंत्रण पार से।  
रेशमी अलकें जरा सी झुक गई हैं,  
कांपती पलकें जरा सी रुक गई हैं,  
आज भावों का विसर्जन भार से ॥  
आज लहरों का निमंत्रण पार से।  
प्रीत के मधुमास गाता गीत है,  
हर तरफ ही प्यार का संगीत है,  
गंध बेसुध हो गई अभिसार से ॥  
आज लहरों का निमंत्रण पार से।

जैसे-जैसे रस उमगेगा, दूर का किनारा पुकारेगा—कहै वाजिद पुकार! वह दूर के किनारे की पुकार है। मैं पुकार रहा हूं तुम्हें दूसरे किनारे से, कि दुलारी बढ़ो, कि बढ़ती आओ। छोड़ना होगा यह किनारा। इस किनारे की बड़ी सुरक्षा है, वह भी छोड़नी होगी। इस किनारे के अपने स्वार्थ हैं, सुविधाएं हैं, वे छोड़नी होंगी।

और इस जगत में मेरे देखे, सबसे कठिन बात है—दुखों को छोड़ना, बीमारियों को छोड़ना, उदासियों को छोड़ना। सबसे कठिन बात है। आनंद को स्वीकार करना—कठिन बात है। क्योंकि दुख से तो हम बचपन से राजी हैं, दुख से तो हम बचपन से सहमत हैं। दुख को तो हमने स्वीकार कर लिया है कि यह जीवन का ढंग है।

और मैं तुमसे कहता हूं, दुख जीवन का ढंग नहीं है, जीवन की विकृति है। दुख जीवन की स्वाभाविकता नहीं है। जीवन को न जीने के कारण दुख है। दुख है जीवन के लंगड़ेपन के कारण, जीवन के कारण नहीं। लंगड़ेपन को तुमने सीख लिया है। हमें सब तरफ से बांध दिया गया है—छोटी-छोटी धारणाओं से बांध दिया गया है, व्यर्थ की धारणाओं से बांध दिया गया है।

एक व्यर्थ की धारणा हमें सिखा दी गई है कि तुम्हें दुखी होना ही पड़ेगा, क्योंकि पिछले जन्मों का कर्म तुम्हें भोगना है। यह धारणा अगर मन में बैठ गई कि मैं पिछले जन्मों के कर्मों को भोग रहा हूं, तो सुख का उपाय कहां है? इतने-इतने जन्म... कितने कितने जन्म! चौरासी कोटि योनियां हैं... इनमें कितने पाप किए होंगे—थोड़ा हिसाब तो लगाओ! इन सारे पापों का फल भोगना है। सुख हो कैसे सकता है! दुख स्वाभाविक मालूम होने लगेगा। ये आदमी को दुखी रखने की ईजादें हैं। मैं तुमसे कहता हूं, कोई



पाप नहीं किए हैं, कोई कर्म का फल नहीं भोगना है। तुम अभी जागे ही नहीं, तुम अभी हो ही नहीं, पाप क्या खाक करोगे? पाप बुद्ध कर सकते हैं, लेकिन बुद्ध पाप करते नहीं।

अकबर की सवारी निकलती थी और एक आदमी अपने मकान की मुंडेर पर चढ़ गया और गलियां बकने लगा। सम्राट को गालियां! तत्क्षण पकड़ लिया गया। दूसरे दिन दरबार में मौजूद किया गया। अकबर ने पूछा: तू पागल है, क्या कह रहा था? क्यों कह रहा था? उसने कहा: मुझे क्षमा करें, मैंने कुछ कहा ही नहीं; मैंने शराब पी ली थी, मैं बेहोश था। मैं था ही नहीं! अगर आप मुझे दंड देंगे, तो ठीक नहीं होगा, अन्याय हो जाएगा। मैं शराब पिए था। अकबर ने सोचा और उसने कहा, यह बात ठीक है; दोष शराब का था, दोष तेरा नहीं था। तू जा सकता है। मगर अब शराब मत पीना। शराब पीने का दोष तेरा था। शराब पीने के बाद जो कुछ तेरे मुंह से निकला, उसमें तेरा हाथ नहीं है, यह बात सच है।

आज भी अदालत पागल आदमी को छोड़ देती है, अगर वह पागल सिद्ध हो जाए। क्यों? क्योंकि पागल आदमी का क्या दायित्व? किसी पागल ने किसी को गोली मार दी। अदालत क्षमा कर देती है, अगर सिद्ध हो जाए कि पागल है। क्योंकि पागल आदमी को क्या दोष देना, उसे होश ही नहीं है!

तुम होश में रहे हो? यह जो चौरासी कोटि योनियां जिनके संबंध में तुम शास्त्रों में पढ़ते हो... तुम होश में थे? तुम्हें एकाध की भी याद है? अगर तुम होश में थे, तो याद कहां है? तुम्हें एक बार भी तो याद नहीं आती कि तुम कभी वृक्ष थे, कि तुम कभी एक पक्षी थे कि तुम कभी जंगल के सिंह थे। तुम्हें याद आती है कुछ? शास्त्र कहते हैं, तुम्हें याद नहीं। और तुम गुजरे हो चौरासी कोटि योनियों से। तुम बेहोश थे, तुम मूर्च्छित थे। मूर्च्छा में जो भी किया गया, उसका क्या मूल्य है? परमात्मा अन्याय नहीं कर सकता। इस दुनिया की अदालतें भी इतना अन्याय नहीं करतीं, तो परमात्मा तो परम कृपालु हैं, वे तो महा करुणावान हैं। सूफी कहते हैं—रहीम हैं, रहमान हैं, करुणा का स्रोत हैं। इस जगत की अदालतें, जिनको हम करुणा का स्रोत कह नहीं सकते, वे भी क्षमा कर देती हैं मूर्च्छित आदमी को।

मैं तुमसे कहता हूं बार-बार—तुम जागो, उसके बाद ही तुम्हारे कृत्यों का लेखा-जोखा हो सकता है। यह मैं एक अनूठी बात कह रहा हूं, जो तुमसे कभी नहीं कही गई है। मैं अपने अनुभव से कह रहा हूं। मुझे चौरासी कोटि योनियों के पाप नहीं काटने पड़े हैं और मैं उनके बाहर हो गया हूं। तुम भी हो सकते हो। तुम्हें भी काटने की झंझट में पड़ने की कोई जरूरत नहीं है। और काट तुम पाओगे नहीं, वह तो सिर्फ दुखी

रहने का ढंग है। वह तो दुख को एक व्याख्या देने का ढंग है। वह तो दुख में भी अपने को राजी कर लेने की व्यवस्था, आयोजन है। क्या करें, अगर दुख है तो जन्मों-जन्मों के पापों के कारण है। जब कटेंगे पाप, जब फल मिलेगा, तब कभी सुख होगा—होगा आगे कभी।

ऐसा ही तुम पहले भी सोचते रहे, ऐसा ही तुम आज भी सोच रहे हो, ऐसा ही तुम कल भी सोचोगे। अगले जन्मों में भी सोचोगे। जरा सोचो, फर्क क्या पड़ेगा? अगले जन्म में तुम कहोगे, कि पिछले जन्मों के पापों का फल भोग रहा हूं। और अगले जन्म में भी तुम यही कहोगे। तुम सदा यही कहते रहोगे, तुम सदा यही कहते रहे हो। तुम दुख से बाहर कब होओगे? और तुम्हें किसी एक जन्म की याद नहीं है। पिछले जन्मों की तो फिक्र छोड़ो, तुम्हें अभी याद नहीं है कि तुम क्या कर रहे हो। तुम अभी भी होश में कहां हो? तुम्हारे पास होश का दीया कहां है?

सिर्फ बुद्ध-पुरुष अगर पाप करें, तो उत्तरदायी हो सकते हैं, मगर वे पाप करते नहीं हैं, क्योंकि जाग्रत व्यक्ति कैसे पाप करे? अब तुम मेरी बात समझो, जाग्रत व्यक्ति कैसे पाप करे, और सोया व्यक्ति, मैं कहता हूं, कैसे पुण्य करे? जैसे अंधा आदमी तो टटोलेगा ही, ऐसा मूर्च्छित आदमी तो गलत करेगा ही। जैसे अंधा आदमी टेबल-कुर्सी से टकरायेगा ही। दरवाजे से निकलने से पहले हजार बार उसका सिर दीवारों से टकरायेगा; स्वाभाविक है। आंख वाला आदमी क्यों टकरायेगा? आंख वाला आदमी दरवाजे से निकल जाता है। आंख वाले आदमी को दीवालें बीच में आती ही नहीं, न कुर्सियां न न टेबलें, कुछ भी बीच में नहीं आता। न वह टटोलता है, न वह पूछता है कि दरवाजा कहां है। सिर्फ दरवाजे से निकल जाता है। हां, आंख वाला आदमी अगर दीवाल से टकराये, तो हम दोष दे सकते हैं, कि तुम क्या कर रहे हो? मगर आंख वाला टकराता नहीं है। और जिसको हम दोष देते हैं, वह अंधा है।

एक अंधा आदमी, एक रात, अपने मित्र के घर से विदा हुआ। जब चलने लगा... तो अमावस की अंधेरी रात थी। मित्र ने कहा, कि ऐसा करो, लालटेन लेते जाओ, रात बहुत अंधेरी है। अंधा हंसने लगा, उसने कहा: यह भी खूब मजाक रही। मुझे तो दिन और रात सब बराबर है, लालटेन लेकर मैं क्या करूंगा? लालटेन होने से भी मुझे दिखाई पड़ने वाला नहीं है। मुझे दिखाई ही पड़ता होता तो क्या कहना था। यह भी तुमने खूब मजाक किया! क्या मेरा व्यंग्य कर रहे हो—मुझ अंधे का? दया खाओ, व्यंग तो न करो। लेकिन मित्र व्यंग्य नहीं कर रहा था। मित्र ने कहा, कि नहीं, व्यंग और मैं करूं? मैं तो इसलिए कह रहा हूं कि लालटेन हाथ में ले जाओ...यह ती मैं भी जानता हूं तुम्हें दिखाई नहीं पड़ेगा, लेकिन लालटेन तुम्हारे हाथ में होगी तो कोई दूसरा तुमसे न टकरा-



येगा। कम-से कम इतना तो हो जाएगा, नहीं तो अंधेरे में कोई दूसरा टकरा जाये। तुम दूसरों को दिखाई पड़ते रहोगे, यह भी क्या कम है! लालटेन तो ले जाओ। यह तर्क जंचा, अंधे को भी जंचा, कि बात तो सच है, लालटेन हाथ में होगी कोई दूसरा मुझसे नहीं टकरायेगा। यह भी कुछ कम नहीं है। पचास प्रतिशत तो सुरक्षा हो गई! चला लेकर....।

मगर वहीं भूल हो गई, उसी तर्क में ही भूल हो गई। तर्क अक्सर ऐसी ही भ्रान्तियों में जाते हैं। तर्क से लिए गए निष्कर्ष अक्सर भ्रान्त होते हैं। दस कदम भी नहीं चल पाया था कि कोई आदमी आकर टकरा गया। अंधा तो बड़ा नाराज हुआ। चिल्लाया: क्या तुम भी अंधे हो! लालटेन नहीं दिखाई पड़ती? लालटेन ऊंची कर के दिखाई। उस आदमी ने कहा, कि सूरदास जी, क्षमा करें, आपकी लालटेन बुझ गई है।

अब अंधे की लालटेन बुझ जाये, तो उसे कैसा पता चले? और मैं कहता हूं, तर्क की बड़ी भ्रांति हो गई। अंधा अगर बिना लालटेन के चलता, तो अपनी लकड़ी ठोंककर चलता, आवाज करता चलता, पुकारकर चलता—कि भाई मैं आ रहा हूं, खयाल रखना! आज लालटेन के नशे में चल रहा था। उसने फिर लकड़ी भी नहीं पटकी, आवाज भी नहीं दी और उपाय भी छोड़ दिए। जब लालटेन हाथ में है, तो अब क्या लकड़ी पटकनी और क्या आवाज देनी? आज अकड़ से चला। इसके पहले तो लकड़ी ठोंककर चलता था, ताकि लोगों को पता रहे कि अंधा आ रहा है। आज लकड़ी ठोंककर नहीं चला। तर्क ने बड़ी भ्रांति पैदा कर दी।

मूर्च्छित आदमी तुम्हें जरा ... भी तो याद नहीं पिछले जन्मों की। पिछले जन्मों को तो छोड़ दो, पता नहीं हुए भी हों न हुए हों, कौन जाने? तुम्हें माँ के गर्भ की याद है, नौ महीने की तुम्हें याद है जो तुमने मां के गर्भ में गुजारे? यह तो पक्का है कि नौ महीने मां के गर्भ में गुजारे। इसमें तो शक नहीं करेगा, कोई नास्तिक भी शक नहीं करेगा। लेकिन तुम्हें याद है? तुम्हें कुछ एकाध भी याद है? कुछ सुरति आती है? छोड़ो मां के गर्भ की भी, क्योंकि मां के गर्भ में बंद पड़े थे एक कोठरी में। लेकिन गर्भ से पैदा हुए, कोठरी से बाहर आये थे...तुम्हें जन्म के क्षण की याद हैं? तब तो आंखें खुली थीं न! कान भी खुल गए थे। देखा भी था, सुना भी होगा। तुम्हें याद है? कुछ याद नहीं। अगर तुम पीछे याददाश्त में लौटोगे, तो ज्यादा-से-ज्यादा चार साल की उम्र तक जा पाओगे। फिर चार साल बिलकुल खाली पड़े हैं। जन्म के दिन से लेकर चार वर्ष की उम्र तक कुछ भी याद नहीं आता—कोरे पड़े हैं। जब इस जीवन की यह हालत है, तो तुम्हें पिछले जन्मों की क्या याद!

और तुमने कितनी बार तय किया है कि अब क्रोध नहीं करेंगे, अब चाहे कुछ भी

हो जाये, क्रोध नहीं करेंगे। और किसी ने गाली दे दी और क्रोध आ गया। तब तुम बिलकुल भूल गए हो—कितनी बार कसम खाई थी कि क्रोध न करेंगे। तुम्हारी याददाश्त का भरोसा क्या? क्रोध कर के फिर पछताये हो।

मैं ऐसे लोगों को जानता हूं, जो रोज कसम खाकर सोते हैं रात—कल सुबह तो ब्रह्म महूर्त में उठना है। अलार्म भी भर देते हैं और खुद ही अलार्म को जोर से पटक देते हैं, हाथ से बंद कर देते हैं। और फिर सुबह पछताते हैं। जब आठ बजे उठते हैं, फिर पछताते हैं, कि आज फिर भूल हो गई! कल फिर कोशिश करेंगे। यह वे जिंदगी भर से कर रहे हैं। यह भी उनकी आदत का हिस्सा हो गया है—अलार्म बजाना, बंद करना, फिर सुबह पछताना—यह सब उनकी शैली हो गई है। रोज रात तय करके सोना कि सुबह उठना है...।

...क्या तुम्हारी याददाश्त है? जो आदमी सांझ तय करके सोता है कि सुबह उठना है, वही आदमी सुबह बिस्तर पर कहता है—छोड़ो भी, इतनी जल्दी क्या है? आज क्या, कल उठेंगे। वही आदमी दो घंटे बाद पछताता है, कि कैसा... फिर मैंने वही भूल कर दी!

तुम्हारा होश कितना है? तुम बिलकुल बेहोश हो। तुम जरा चेष्टा करो, रास्ते पर चलो और ख्याल रखो कि चलने का होश रहे कि मैं चल रहा हूं। मिनिट भी न बीत पायेगा कि होश खो जाएगा, तुम हजार दूसरी बातों में खो जाओगे। तब अचानक याद आएगी एक बार—अरे, मैं कहां चला गया! मैं क्या सोचने लगा!

जरा घड़ी-भर बैठ जाओ आंख बंद करके और कहो कि शांत बैठेंगे, विचार न करेंगे। क्षण-भर भी तो निर्विचार नहीं हो पाते हो। इतनी तो तुम्हारी अपने पर स्वामित्व की दशा है! अपने विचार को भी नहीं रोक पाते, कर्म को तुम क्या बदल पाओगे? विचार जैसी निर्जीव चीज—थोथी, कूड़ा-करकट जैसी, उसको भी नहीं रोक पाते! अगर कोई विचार तुम्हारे सिर में घूमने ही लगे, तुम उसको लाख हटाने की कोशिश करो, नहीं हटता। तुम्हारा वश कितना है! ऐसी अवश दशा में, तुम्हारे पिछले जन्मों के पाप तुम्हें दुख दे रहे हैं, तो फिर दुख से कोई छुटकारे का उपाय होनेवाला नहीं है।

मैं तुमसे कहता हूं, पिछले जन्मों से दुखों का कोई लेना-देना नहीं है। दुख अगर किसी कारण हो रहा है, तुम मूर्च्छित हो अभी इस कारण दुख हो रहा है। मूर्च्छा दुख है। जागो! और जागने में कोई बाधा नहीं डाल रहा है सिवाय तुम्हारी अपनी मूर्च्छा की आदत के और मूर्च्छा के साथ तुम्हारे पुराने संबंधों के, कोई बाधा नहीं है।

लकीरें पड़ गई हैं, लीक पर चल रहे हो! दुखी होने की आदत हो गई है। भूल ही



गए हो—मुस्कराना कैसे? भूल ही गए हो—नाचना कैसे? बस उतनी ही याद दिलाना चाहता हूं।

मत लाओ बीच में ये सिद्धांत, अन्यथा तुम कभी आनंद को उपलब्ध न हो सकोगे। लेकिन खूब सिद्धांत हमने बनाये हैं। हम कहते हैं: पहले पुण्य करेंगे, फिर आनंद मिलेगा। और मैं तुमसे कहता हूं, आनंदित हो जाओ, तो तुम्हारे जीवन में पुण्य के कृत्य शुरू हो जायें। आनंद से पुण्य पैदा होता है। आनंद पुण्य का परिणाम नहीं है, पुण्य आनंद का परिणाम है।

तो दुलारी, स्वाथ्य की थोड़ी सी भनक तेरे कान में पड़ी है, इसको गहरा दुख का जाल पकड़ना चाहेगा। दुख की पुरानी आदतें हमला बोलेंगी। सम्हालना अपने को। जगाये रखना अपने को। जागते रहो, तो सत्संग जारी है। सो जाओ, सत्संग खो जाता है।

दूसरा प्रश्न: चूंकि हम अपनी व्यक्तिगत समस्यायें स्वयं हल नहीं कर पाते, क्या इस कारण लिया गया संन्यास उचित है?

मूल प्रश्न अंग्रेजी में है—

इज इट फेअर टु टेक संन्यास, बिकॉज यू कैन नॉट सॉल्व योर पर्सनल प्रॉब्लम्स?

पूछा है डॉ. राजेंद्र आई. देसाई ने। डॉ. देसाई, संन्यास का संबंध समस्यायों को हल करने से है ही नहीं। मैं समस्यायें हल नहीं करता। मैं व्यक्तिगत समस्यायें हल नहीं करता, मैं तो व्यक्ति को मिटाने का उपाय बताता हूं, जिससे सारी समस्यायें पैदा होती हैं।

* तुम कहते हो—चूंकि हम अपनी व्यक्तिगत समस्यायें स्वयं हल नहीं कर पाते। तुम तो पैदा करते हो, हल कैसे करोगे? तुम्हीं तो पैदा करनेवाले हो, हल कैसे करोगे? तुम ही तो समस्या हो, हल कौन करेगा? स्व जाए, तो स्वय से पैदा होनेवाली समस्यायें जाएं। इसलिए तुम यह मत सोचना कि संन्यास कोई समस्यायों को हल करने की विधि है।

हम तो जड़ काटते हैं, शाखायें नहीं। पत्ते-पत्ते क्या काटना, और एक पत्ता काटो तो तीन निकल आते हैं। एक समस्या हल करो, तीन पैदा हो जायेंगी। यही रिवाज है। तुमने देखा न, वृक्ष को घना करना हो तो पत्ते काट देता है माली। क्योंकि जानता है, वृक्ष क्रोध में आ जाएगा; एक पत्ता काटा, उत्तर में वृक्ष तीन पत्ता पैदा करता है। माली को हराने की चेष्टा शुरू हो जाती है, कि समझा क्या है तूने अपने को! एक शाखा काटो, तीन शाखायें निकल आती हैं। वृक्ष घना होने लगता है। वृक्ष भी जवाब देता है, चुनौती अंगीकार कर लेता है।

अहंकार में समस्यायें लगती हैं, अहंकार के वृक्ष पर समस्यायों के पत्ते लगते हैं, शाखायें-प्रशाखायें ऊगती हैं। तुम एक समस्या हल करो और तीन समस्यायें उसकी जगह खड़ी हो जायेंगी। तुम एक प्रश्न का उत्तर खोजो, और उसी उत्तर में तीन नए प्रश्न खड़े हो जायेंगे। यही तो पूरे मनुष्य का इतिहास है। जाल छूटता नहीं, बढ़ता चला जाता है।

हम तो जड़ काटते हैं, हम तो मूल काटते हैं। हम कहते हैं, पत्ते-पत्ते से क्या उलझना? और मजा यह है, कि जड़ दिखाई नहीं पड़ती; वह भी वृक्ष की तरकीब है, क्योंकि दिखाई पड़े तो कोई काट दे। तो वृक्ष जड़ को छिपाकर रखता है। उसको जमीन में छिपाकर रखता है—अंधेरे में दबी रहती है जड़। पत्ते ऊपर भेज देता है; कोई डर नहीं कट भी जायेंगे लुट भी जायेंगे, पक्षी ले जायेंगे, जानवर चर लेंगे, आदमी छांट देंगे, कोई फिक्र नहीं। अगर जड़ें शेष हैं, तो फिर पत्ते निकल आयेंगे। पत्ते मूल्यवान नहीं हैं। पत्तों का आना-जाना होता रहता है। पतझड़ में अपने आप गिर जायेंगे, अगर किसी ने न भी छीने तो। वसंत में फिर पुनः अंकुरित हो जायेंगे। बस जड़ें बची रहनी चाहिए। देखते हो, वृक्ष जड़ों को कैसे छिपा कर रखता है, किसी कोन पता ही हीं होने देता। अगर तुम पूरा वृक्ष भी काट दो तो भी कोई फिक्र नहीं है वृक्ष को। जड़ें शेष हैं, तो नए अंकुर निकल आयेंगे। ऐसी ही अवस्था तुम्हारी है। समस्यायें ऊपर हैं, समस्यायों की जड़ भीतर है। जड़ है—अहंकार।

संन्यास का अर्थ होता है—अहंकार का समर्पण। संन्यास का और क्या अर्थ है? संन्यास का इतना अर्थ है—मैं थक गया, अब मैं अपने 'मैं' को छोड़ता हूं।

और डाक्टर देसाई को वही अड़चन हो रही है, संन्यास लेना चाहते होंगे, नहीं तो प्रश्न ही न उठता। डॉक्टर हैं, पढ़े लिखे हैं, सम्मानित हैं। सूरत के डॉक्टर हैं, प्रसिद्ध हैं वहां, डरते होंगे, लोग देखेंगे गैरिक वस्त्रों में, कहेंगे, कि एक अच्छा-भला आदमी और पागल हुआ! मरीज भी संदिग्ध हो जायेंगे। अब इनसे ऑपरेशन करवाना? क्या भरोसा संन्यासियों का, ऑपरेशन करते-करते कुंडलिनी ध्यान करने लगें! इनसे दवा लेनी? क्या भरोसा पागलों का! डर लगता होगा।

मैं डॉक्टर देसाई की तकलीफ समझता हूं, डर लगता होगा। संन्यास का मन में भाव तो उठा है, नहीं तो प्रश्न ही नहीं उठता। लेकिन अब बचना भी चाहते हैं और बचना इस ढंग से चाहते हैं, जिसमें सम्मान भी शेष रहे। तो वे पूछ रहे हैं: चूंकि हम अपनी व्यक्तिगत समस्यायें स्वयं हल नहीं कर पाते, क्या इस कारण लिया गया संन्यास उचित है?

फिर संन्यास कब लोगे? जब सारी व्यक्तिगत समस्यायें हल कर लोगे तब! फिर



संन्यास की जरूरत क्या होगी? यह तो ऐसे ही हुआ कि कोई मरीज डॉक्टर के पास तब जाए, जब स्वस्थ हो जाए। डॉक्टर देसाई डॉक्टर हैं, इसलिये यह उदाहरण ठीक होगा। कोई मरीज कहे, कि क्या हम अपनी बीमारी खुद ठीक नहीं कर सकते, इसलिए डॉक्टर के पास जाना उचित होगा? जायेंगे, जब बीमारी चली जायेगी। मगर तब जाने का अर्थ क्या होगा? क्या प्रयोजन होगा?

बुद्ध ने कहा है, मैं वैद्य हूं। नानक ने भी कहा है, मैं चिकित्सक हूं। दुनिया के बड़े ज्ञानी वस्तुतः दार्शनिक नहीं हैं, चिकित्सक हैं। बुद्ध ने कहा है। मुझसे व्यर्थ के प्रश्न मत पूछो, अपनी मूल बीमारी कहो और इलाज लो। अपनी जड़ उघाड़ो और मुझे काट देने दो।

मैं भी चिकित्सक हूं। आखिर डॉक्टरों को भी तो चिकित्सक की जरूरत पड़ती है न। समस्यायें हल कर के आओगे, फिर तो कोई जरूरत न रह जाएगी।

भय क्या है? अहंकार बाधा डालता है। अहंकार कहता है, किसी के सामने जाकर अपनी समस्यायें प्रगट करना...। छिपाये रहो भीतर, मत कहो किसी से। ऊपर एक मुखौटा लगाए रहो कि अपनी कोई समस्यायें नहीं हैं। ऊपर चाहे दूसरों को धोखा दे लो, भीतर तो समस्यायें हैं और तुम तो जलोगे उनकी आग में, तुम तो तड़पोगे उनकी आग में।

और अक्सर कुछ व्यवसाय ऐसे हैं—जैसे डॉक्टर का व्यवसाय, मनोवैज्ञानिक का व्यवसाय, कि ये अपनी समस्यायें प्रगट नहीं कर सकते, क्योंकि ये दूसरों की समस्यायें हल करते हैं। इनको डर लगता है कि अगर हम अपनी समस्यायें प्रगट करें, तो लोगों को पता न चल जाए कि ये तो खुद ही अभी परेशान हैं। अगर डॉक्टर बीमार हो जाता है, तो खबर नहीं करना चाहता है कि किसी को पता चले कि मैं बीमार हो गया हूं। क्योंकि बीमारों को अगर पता चल जाए कि डॉक्टर खुद ही बीमार होता है, तो कहीं बीमार छिटक न जाएं। तो डॉक्टर को छिपाना पड़ता है। अगर मनोवैज्ञानिक मानसिक रोग से ग्रस्त होता है, किसी को बता नहीं पाता, छिपाता है। यह तुम्हें मालूम है, मनोवैज्ञानिक, किसी भी दूसरे व्यवसाय की बजाय दुगनी मात्रा में पागल होते हैं। और किसी भी व्यवसाय के मुकाबले दुगनी मात्रा में आत्महत्या करते हैं।

यह तो होना नहीं चाहिए। मनोवैज्ञानिक तो दूसरों को सुलझाने का उपाय करता है, जिनके मन गुत्थियां बन गए हैं। ये खुद ही दुगनी संख्या में आत्महत्या करें, यह बात तो शोभादायक नहीं मालूम होती! यह खुद ही दुगनी मात्रा में पागल हों, यह बात तो ठीक नहीं मालूम होती।

लेकिन इसके पीछे कारण है और कारण यही है, कि मनोवैज्ञानिक बेचारा अपने दुख

किससे कहे ? और सब तो अपने दुख मनोवैज्ञानिक के पास ले आते हैं और उसके सिर में डाल आते हैं। वह सारे लोगों की चिन्तायें सुन लेता है;उसकी कौन ले ? और डरता भी है कि अगर मैं अपनी चिन्तायें प्रगट करूं, तो इसका परिणाम व्यवसाय पर बुरा होगा। इसलिए ऊपर से एक मुखौटा लगाये रखता है, मुस्कराता रहता है। समस्यायें भीतर इकट्ठी होती जाती हैं, वह ऊपर मुस्कराता रहता है। ऊपर से सलाहें देता रहता है उन्हीं समस्याओं के हल करने की, यह जो अपनी भी अभी हल नहीं कर पाया है।

यही भेद है एक मनोवैज्ञानिक में और एक सद्गुरु में। सद्गुरु वही है, जिसकी समस्यायें हल हो गईं। जिसकी अब कोई समस्या नहीं है। मनोवैज्ञानिक वह है, जिसकी अभी उतनी ही समस्यायें है जितनी मरीजों की। लेकिन उसने उधार ज्ञान इकट्ठा कर लिया हैं, उधार उत्तर इकट्ठे कर लिए हैं। उन उत्तरों के सहारे वह दूसरों को सहयोग देता है। और कभी-कभी अंधेरे में चलाए गए तीर भी लग जाते हैं, यह दूसरी बात। लग गया तो तीर, नहीं लगा तो तुक्का! कभी-कभी अंधेरे में चलाए तीर भी लग जाते हैं।

एक प्रदर्शनी भरी थी, उसमें मुल्ला नसरुद्दीन अपने शागिर्दों को लेकर प्रदर्शनी दिखाने ले गया। वहां कई स्टाल थे। एक स्टाल पर तीरन्दाजी चल रही थी, लोग तीर चला रहे थे, दांव लगा रहे थे। रुपये लगाने पड़ते थे और अगर तीर लग जाए, तो उससे पांच गुने रुपये दुकानदार देता था। तीर न लगे, तो तुमारे रुपये डूब गए। मुल्ला ने जाकर रुपये रखे, टोपी सम्हाली, प्रत्यंचा खींची, अपने शागिर्दों को कहा—गौर से देखो! सारे शिष्य खड़े हो गए। दुकानदार भी उत्सुक हुआ कि मामला क्या है ? और मुल्ला शानदार आदमी मालूम पड़ता है—बुजुर्ग, और शिष्य भी हैं कोई दस-बीस साथ में। कोई पहुंचा हुआ पुरुष है।

उसने बड़ी शान-बान से तीर चलाया। और जो होना था वह हुआ, तीर पहुंचा ही नहीं वहां तक, लगने की तो बात दूर, बीच में ही गिर गया। भीड़ जो खड़ी थी, हंसने लगी। भीड़ इकट्ठी हो कई थी देखने। खूब लोग खिलखिला कर हंसने लगे कि यह भी खूब रहा मामला। इतनी शान से आये—बड़ी टोपी वगैरह लगा कर और चूड़ीदार पाजामा, अचकन, गांधी टोपी... । इतनी शान से आये, इतने शिष्यों को लेकर आए और तीर वहां तक पहुंचा ही नहीं! लोग हंसे। मुल्ला ने कहा : चुप ना समझो; अपने शिष्यों से कहा : सुनो, देखा, यह उस तीरन्दाज का तीर है, जिसे अपने पर भरोसा नहीं है।

सन्नाटा छा गया, कि मामला क्या है ? यहां तो कोई शिक्षण चल रहा है। यह उस तीरन्दाज का तीर है, जिसको अपने पर भरोसा नहीं है, चलाता जरूर है, लेकिन पहुंच



ही नहीं पाता। दूसरा तीर उठाया, फिर टोपी सम्हाली, तीर चलाया; इस बार पूरी ताकत लगा दी। तीर पार निकल गया, निशान के ऊपर से पार निकल गया, लगा ही नहीं। फिर लोग हंसे। उसने कहा : तुम ना समझो, चुप रहोगे कि नहीं; शिष्यों से कहा : सुनो, यह उस तीरन्दाज का तीर है, जो जरूरत से ज्यादा आत्मविश्वास से भरा है।

अब तो लोग फिर सन्नाटे में आ गए; कि बात कुछ गहरी हो रही है, यह कोई तीर ही चलाने की बात नहीं हो रही। तीसरा तीर मुल्ला ने उठाया, संयोग की बात कि लग गया। दुकानदार के पास पहुंचा और कहा : पांच गुने पैसे। दुकानदार ने पैसे तो दिये पांच गुने और पूछा, कि लेकिन अब इस तीसरे तीर के संबंध में कुछ कहो! उसने कहा : यह मुल्ला नसरुद्दीन का तीर है।

जो लग जाये वह तीर, जो नहीं लगे वह तुक्का! यह मुल्ला नसरुद्दीन का तीर है! अगर यह भी न लगता, तो वह कोई और बहाना खोजता। जब तक न लगता तब तक वह बहाने खोजता जाता।

यही मनोवैज्ञानिक कर रहा है, जब तक नहीं लगता, वह बहाने खोजता जाता है। इसलिए मनोविज्ञान की प्रक्रिया बड़ी लम्बी चलती है। मनोविश्लेषण—तीन साल, पांच साल, सात साल...और सच तो यह है कि मनोविश्लेषण कभी भी अंत पर नहीं आता। यह मुल्ला का तीर तो लग गया, मनोवैज्ञानिक का तीर कभी नहीं लगता। लेकिन मरीज थक जाता है, एक मनोवैज्ञानिक से दूसरे मनोवैज्ञानिक के पास चला जाता है। वहां थक जाता है, तो तीसरे के पास चला जाता है। ऐसे जिन्दगी चुक जाती है।

लेकिन अब तक पूरी पृथ्वी पर लाखों मनोवैज्ञानिक हैं, लेकिन एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं है, जो यह कह सके कि उसके मनोविज्ञान की सारी समस्यायें उन्होंने हल कर दी हैं। उनकी ही हल नहीं हुई हैं!

लेकिन मनोवैज्ञानिक कहां जाए ? पश्चिम में तो सद्गुरु जैसी घटना घटती नहीं। इसलिये मनोवैज्ञानिक को पूरब आना पड़ रहा है। तुम जानकर यह हैरान होओगे, कि मेरे संन्यासियों में हजारों मनोवैज्ञानिक हैं, मनोचिकित्सक हैं! और उनके आने का कुल कारण इतना है, कि वे थक गए हैं; दूसरों की समस्यायें कब तक हल करते रहें, अपनी अभी हल नहीं हुई हैं। अब उनको बात खलने लगी—हम खुद ही भ्रान्त हैं, हम किसको समझा रहे हैं ?

डॉक्टर देसाई, तुम अपने को बचाना चाहते हो—अच्छे शब्दों के जाल में—कि क्या ये संन्यास लेना उचित होगा ? फिर कब उचित होगा ? अभी औषधि की जरूरत है!

और तुम्हें अभी यह भी पक्का पता नहीं है, कि तुम्हारी समस्या क्या है। समस्यायें

समस्या नहीं हैं। समस्यायें तो पत्ते हैं, समस्या तो भीतर छिपी है, वह अहंकार है। और संन्यास उसी जड़ को काटने की प्रक्रिया है।

संन्यास का अर्थ होता है—समर्पण, किसी के चरणों में जाकर अपने को समर्पित कर देना। जिससे प्रेम हो जाए। जिसके भीतर थोड़ी-सी उसकी बांसुरी बजती सुनाई पड़ जाए। जिसके भीतर थोड़ी-सी उसकी हवा की झलक मिलने लगे। जिसके पास उसके सौन्दर्य का थोड़ा-सा आभास हो। बस, उसके चरणों में सब छोड़ देना। उस छोड़ने में क्रांति घट जाती है। क्योंकि उस छोड़ने में तुम्हारा अहंकार पहली दफा झुकता है। वही झुकना जड़ का कट जाना है।

हां, अगर न झुके, तो संन्यास से भी कुछ न होगा। संन्यास फिर ऊपर-ऊपर रह गया। वर्षा भी हो गई, मगर तुम भीगे नहीं। कुछ सार न हुआ। भीतर झुकना, तो समस्याओं की समस्या, सारी समस्याओं का मूल आधार विसर्जित हो जाता है।

डरो मत, संन्यास की आकांक्षा उठी हो, तो आने दो प्रभु को भीतर। उसने पुकारा है, इसलिए उठी होगी डॉक्टर देसाई! उसकी पुकार को समझो। उसकी पुकार में अपनी पुकार भी जोड़ दो।

सलिल-गीत उतरो हे! भू पर।
पावन रे! तुम ज्योति-किरण दो
कुहर-म्लान, मानव-उर-अम्बर।
प्रेम-अमिय से प्लावित तन-मन,
सजग तृप्ति-चेतन जग-जीवन,
करो भाव के मधुर रूप-मय,
चरण-शब्द से निज तुम सुन्दर।
अखिल सृजन को विमल दृष्टि दो,
सरस! तृप्त को समय-वृष्टि दो,
कण कण के जीवन में, कल का
कंचन वन जागो हे! भास्वर!
मधु के मधु तुम आतप के बल,
पावस के स्वर हिम-हासोज्ज्वल,
युग युग के अनुभव से भव का,
सुभग करो मम, मम के श्रम-हर।
समगुण, समरस, पूर्ण, कर्म-सम,
एक प्रगति अनुराग, अगम गम,



जन-जिह्वा-जगती पर विचरो—
यश के अग्र, व्यथा के अनुचर।
सलिल-गीत उतरो हे! भू पर।
पावन रे! तुम ज्योति-किरण दो
कुहर-म्लान, मानव-उर-अम्बर।

आदमी का हृदय बहुत अंधेरे से भरा है। पुकारो ज्योति को; वही पुकार है संन्यास।

सीधे तुम परमात्मा को न पुकार सकोगे, क्योंकि उसका तुम्हें कोई अनुभव नहीं है। इसलिए किसी ऐसे आदमी से जुड़ जाओ, जिसे उसका अनुभव हो। उसके झरोखे से झांको। गुरु तो एक झरोखा है। गुरु यानी गुरुद्वारा। वह तो द्वार है। उस द्वार से तुम झांको खुले आकाश को; तुम्हारा द्वार बंद है। गुरु के सान्निध्य में सरको, पास आओ, निकट आओ। इस निकट आने का प्राथमिक चरण संन्यास है। संन्यास है दीक्षा इस बात की कि अब मैं पास आना चाहता हूं, कि मुझे और पास ले लो, कि मुझे निकट से निकट ले लो।

सलिल-गीत उतरो हे! भू पर।
पावन रे तुम ज्योति-किरण दो
कुहर-म्लान, मानव-उर-अम्बर।

मेरा हृदय बहुत अंधेरे से भरा है, बहुत कुहर-म्लान हैं, बहुत बदलियां भरी हैं—आओ, उतरो। मेरे भीतर शोरगुल ही शोरगुल है, भीड़-भाड़ है—उतरो गीत बनकर। सलिल-गीत उतरो हे। इस पुकार को सुनो, अनसुना न करो। संन्यास अगर समर्पण बन सके, तो महाक्रांति है।

समस्यायें मैं नहीं सुलझाता, जड़ काट देता हूं, समस्यायें अपने आप तिरोहित हो जाती हैं। किसी वृक्ष की जड़ काट दी, हां, कुछ दिन तक वृक्ष के पत्ते फिर भी हरे रहेंगे—बस कुछ दिन तक, फिर अपने-आप कुम्हला जायेंगे, गिर जायेंगे। नये अंकुर फिर न आयेंगे। जल्दी ही ठूंठ खड़ा रह जाएगा। ऐसे ही मैं जड़ काटता हूं। समस्याओं को सुलझाने की कौन झंझट करे, एक-एक समस्यायें सुलझाओ। तो कब सुलझ पायेंगी? और तुम एक सुलझाओगे, तब तक तुम्हारा पुराना मन दस नई उलझा लेगा। यही तो तुम्हारी जिंदगी की कथा और व्यथा है—एक सुलझ नहीं पाती, दूसरी उलझ जाती है।

अक्सर तो ऐसा हो जाता है, कि एक को सुलझाने से बचने के लिए आदमी और बड़ी समस्या उलझा लेता है। क्योंकि जब बड़े दुख आ जाते हैं, छोटे दुख भूल

जाते हैं।

एक मित्र हैं, अकेले हैं। उनको अकेले की समस्या है, एकाकीपन खलता है। दूसरे मित्र हैं, पत्नी है। उनकी यह समस्या है, कि दो बर्तन खटकते हैं, झंझट होती है। तीसरे मित्र हैं, उन्होंने बच्चे पैदा कर लिए हैं।

पहले अकेले थे, समस्या थी। लोगों ने कहा, दो हो जाओ, समस्या हल हो जायेगी। तो दो हो गए; समस्यायें दुगनी हो गईं! फिर लोगों ने कहा : बाल-बच्चे होने चाहिए तब समस्या हल होगी। अब बाल-बच्चे हो गए। समस्या तो हल नहीं हो रही, समस्यायें बढ़ रही हैं, अब बाल-बच्चों की समस्यायें हैं।

मगर इसमें एक लाभ है : जैसे-जैसे समस्या बड़ी होती जाती है, जैसे-जैसे समस्या का जाल उलझता जाता है, तुम अपने को भूलते चले जाते हो। तुम इतने व्यस्त हो जाते हो, फुरसत कहां? लोगों पर इतनी चिन्तायें हो जाती हैं, कि फिर चिन्तित होने की भी फुरसत नहीं बचती!

मुल्ला नसरुद्दीन मुझसे एक दिन कह रहा था, कि अगर आज कोई दुर्घटना घट जाए, तो मेरे पास तीन सप्ताह तो फुरसत ही नहीं है; पहले की ही समस्यायें इतनी खड़ी हैं। अगर आज कोई दुर्घटना घट जाए, तो मैं तीन सप्ताह तो ध्यान भी नहीं दे पाऊंगा उस पर। तीन सप्ताह के बाद... क्योंकि तीन सप्ताह तक के लिए तो पहले से ही क्यू लगा है, फुरसत किसे है?

छोटी समस्या को भुलाने के लिए लोग बड़ी समस्या खड़ी कर लेते हैं; जरा इस मन की चाल को देखना, पहचानना। इससे व्यस्तता बनी रहती है।

तुम जरा सोचो, अगर तुम्हारी सारी समस्यायें हल कर दी जायें—अभी, इसी वक्त; एक जादू का डंडा फिराया जाए, और तुम्हारी सारी समस्यायें हल कर दी जायें, तुम एकदम किंकर्तव्यविमूढ़ खड़े रह जाओगे, तुम कहोगे—अब क्या करें? अब कहां जायें? तुम कहोगे, कि लौटा दो मेरी समस्यायें, वापिस कर दो मेरी समस्यायें। अब मैं क्या करूंगा? मेरा सारा कृत्य छीन लिया। मेरे सारे जीवन का अर्थ छीन लिया! अब मेरे होने में सार क्या है? तुम एकदम पाओगे—निस्सार हो गए! इसलिए लोग उलझाये चले जाते हैं। नई समस्यायें गढ़ते चले जाते हैं। रोते भी रहते हैं, कि समस्यायें बहुत हैं और जड़ भी नहीं काटते।

डॉक्टर देसाई अगर आकांक्षा उठी है संन्यास की और जड़ काटने की, तो चूको मत। मन तो हजार तरकीबें बतायेगा। यह तरकीब बड़ी सुन्दर मन ने बताई, मन ने कहा—कि अभी क्या संन्यास लेना, पहले समस्यायें तो हल कर लो। मन जानता है भलीभांति कि न होंगी समस्यायें हल, न होगा संन्यास!



'पहले समस्यायें हल कर लो' कितना सम्यक विचार मन ने दिया, कितना साफ-सुथरा! फिर आना गौरवपूर्वक संन्यास लेने। मगर फिर किसलिए? गौरवपूर्वक अस्पताल जाकर ऑपरेशन करवाओगे, जब बीमारी कोई भी नहीं! किसलिए, क्यों?

मगर ऐसा दिन कभी आयेगा भी नहीं। जो मन यह सवाल उठा रहा है, यह मन नए-नए सवाल उठाये जाएगा। मन का सवाल उठाना स्वभाव है। मन नई उलझनें खड़ी कर लेता है, बड़ी उलझनें खड़ी कर लेता है। उन्हीं उलझनों में व्यस्त रहता है। व्यस्त रहने से ऐसा लगता है, हम कुछ कर रहे हैं।

अपनी समस्यायें अगर छोटी पड़ जाती हैं, तो लोग दूसरों की समस्यायें भी ले लेते हैं। पास-पड़ोसियों की सुलझाने लगते हैं। अपनी सुलझी नहीं है, सारे देश की सुलझाते लगते हैं, मनुष्य जाति की सुलझाने लगते हैं। राजनीति ऐसा ही उपाय है। जिनकी अपनी समस्यायें नहीं सुलझीं हैं, वे दूसरों की समस्यायें सुलझा रहे हैं!

इन उपद्रवियों के कारण समस्यायें और उलझ जाती हैं, सुलझना तो मुश्किल ही हो जाता है। अगर राजनितिज्ञ एक सौ वर्ष के लिए शान्त हो जाएं, तो निन्यानबे प्रतिशत समस्यायें तो एकदम सुलझ जायें, क्योंकि उनको खड़ा करने वाला ही कोई न हो। जरा तुम सोचो, सारे दुनिया के राजनीतिज्ञ सौ साल के लिए तय कर लें कि चुप रहेंगे, नहीं चुनाव लड़ेंगे, समस्यायें अपने-आप विदा हो जायेंगी। क्योंकि ये ही खड़ी कर रहे हैं समस्यायें। हिन्दुस्तानी राजनीतिज्ञ पाकिस्तानी राजनीतिज्ञ के लिए समस्या खड़ी कर रहा है। दक्षिण का राजनीतिज्ञ उत्तर के राजनीतिज्ञ के लिए समस्या खड़ी कर रहा है। उत्तर का राजनीतिज्ञ दक्षिण के लिए समस्या खड़ी कर रहा है। बस समस्यायें खड़ी कर रहे हैं, एक-दूसरे के लिए समस्यायें खड़ी कर रहे हैं! यह जाल तुम जरा गौर से देखो।

अगर राजनीतिज्ञ सौ साल के लिए विदा ले लें, तो निन्यानबे प्रतिशत समस्यायें तो अपने आप गिर जायें, और जो एक प्रतिशत बचे वह हल की जा सकती है। इन सौ की वजह से, वह एक भी हल नहीं हो पा रही है।

मनुष्य जाति खूब उलझ गई है। और उलझाव का बड़े-से-बड़ा कारण तो यही है, कि बहुत से सुलझाव करनेवाले लोग मौजूद हैं, जो खुद भी सुलझे नहीं हैं। मगर उनको एक रस है, रस यही है, कि वे दूसरों का बड़ी समस्याओं में उलझ जाते हैं, तो अपनी भूल जाते हैं। घर की छोटी-मोटी समस्याओं की कौन फिक्र करे? जब तुम प्रधानमंत्री हो जाओ, तो कौन फिक्र करे घर की छोटी-मोटी समस्याओं की, बड़ी समस्यायें सामने हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन राह से चला जा रहा था—बड़ा खिसटता, बड़ा खीझता, बड़ी गलियां बकता। मैने पूछा : नसरुद्दीन, बात क्या है? तो उसने कहा : देखते नहीं,

यह मेरे पैर सूजे जा रहे है, ये जूते छोटे हैं। मगर मैंने कहा : यह बात मैं पहले भी बहुत बार सुन चुका हूं। यह रोज का ही गोरख-धंधा है, तुम दूसरे जूते क्यों नहीं खरीद लेते? ये दो नम्बर छोटे जूते क्यों खरीदे? उसने कहा : यह मैं कभी नहीं करूंगा। आप समझे नहीं, यही जूते तो मेरे जीवन का सुख हैं। दिन-भर इनको गाली देता हूं, इससे चित्त लगा रहता है। एक काम बना रहता है। और फिर एक बड़ा मजा है, जब घर लौटता हूं शाम को—थका-मांदा, इन जूतों से परेशान। जब इनको खोलकर मैं फेंकता हूं और बिस्तर पर लेटता हूं, तो मैं कहता हूं : हे प्रभु, ऐसा आनन्द आता है जूते निकालने से! अब यह जूते मैं छोड़ दूं तो वह आनंद भी गया। उतना ही आनंद है मेरे जीवन में और मेरे जीवन में कोई आनद भी नहीं है।

तुम्हारी जिन्दगी में आनंद क्या है? तुम्हारे दुख की फांसी थोड़ी देर के लिए हल्की हो जाती है, बस वही आनंद है। तुम दुख छोड़ोगे कैसे, क्योंकि उस दुख के साथ ही तुम्हारा आनंद भी चला जाएगा। एक दिन पत्नी नहीं झगड़ती, बड़ा सुख मिलता है। मगर वह इसलिए मिल रहा है, क्योंकि वह रोज झगड़ती है, ख्याल रखना। अगर झगड़ना ही छोड़ दे, तो सुख भी गया। फिर कैसा सुख? तुम्हारा सुख भी तुम्हारे दुख के बीच में से आता है, तुम्हारे दुख की ही उप-उत्पत्ति है।

आओ मेरे पास, मैं तुम्हारी जड़ काट दूं। यही काम चल रहा है। और एक बार तुम्हारी जड़ कट जाए। एक बार तुम्हें होश आ जाए, कि तुम नहीं हो, परमात्मा है। बस, हल आ गया। इसलिए हम उस दशा को समाधि कहते हैं, क्योंकि उस दशा में समाधान है।

तीसरा प्रश्न : मनुष्य के हित आपकी अथक चेष्टा देखकर मैं चकित रह जाता हूं। लेकिन लोग सो रहे हैं और सत्य जीना तो दूर सत्य सुनने को भी तैयार नहीं हैं।

* अच्युत बोधिसत्व! मैं कोई ऐसा काम नहीं कर रहा हूं, जो मुझे थका रहा हो। अथक चेष्टा मत कहो। मैं थक ही नहीं रहा हूं। यह श्रम है ही नहीं, यह प्रेम है। मैं इसे करने में तुम्हारे ऊपर कोई कृपा नहीं कर रहा हूं। स्वान्तः सुखाय रघुनाथ गाथा...। मैं अपने मजे में रघुनाथ का गीत गा रहा हूं। तुम सुन लेते हो, यह गौण है। तुम न आओगे, तो वृक्षों को सुनाऊंगा। पक्षियों से बात कर लूंगा। तुम्हारा होना निमित्त मात्र है। मैं तुम पर कोई कृपा नहीं कर रहा हूं। तुम मुझे भूलकर भी धन्यवाद न देना। तुम भूलकर मेरा अनुग्रह कभी मानना मत। क्योंक उसकी कोई जरूरत ही नहीं है। मैं अपनी मस्ती में गीत गा रहा हूं। तुमने सुन लिया, यह तुम्हारी कृपा है। तुमने स्वीकार कर लिया, तो मैं तुम्हारा अनुग्रहीत हूं। चेष्टा जैसी कोई चीज ही नहीं है यहां। मैं कोई प्रयत्न नहीं कर रहा हूं। यह कोई प्रयास नहीं है। मैं किसी की सेवा नहीं



कर रहा हूं।

सेवा शब्द ही मेरी दृष्टि में गंदा है। मैं तो अपने आनंद में मस्त हूं। मैं अपना गीत गा रहा हूं। तुम्हें प्रीतिकर लगता है, तुम आ जाते हो, सुन लेते हो। तुम सुन लेते हो, तुम पास बैठ जाते हो, मुझे गाने की सुविधा जुटा देते हो, मैं तुम्हारा अनुग्रहीत हूं। न तो कोई अथक चेष्टा चल रही है, क्योंकि यह कोई चेष्टा ही नहीं है और थकने का कोई प्रश्न ही नहीं है। अथक चेष्टा तो वहां होती है अच्युत, जहां लोग दूसरों की सेवा करते हैं कर्तव्य भाव से—करना है, सेवा करनी है। मैं क्यों तुम्हारी सेवा करूं? कोई क्यों तुम्हारी सेवा करे? सब अपने सुख में जियें।

एक ईसाई मां अपने बच्चे को समझा रही थी, कि बेटा, दूसरों की सेवा करना चाहिए। भगवान ने तुम्हें इसीलिए बनाया है, कि तुम दूसरों की सेवा करो। बेटा बुद्धिमान था, छोटे से बच्चे ने...और छोटे बच्चे अक्सर ऐसी बातें पूछ लेते हैं कि बूढ़े जवाब न दे सकें। उस छोटे बच्चे ने कहा : यह तो मैं समझ गया, कि मुझे इसलिये बनाया है कि दूसरों की सेवा करूं, दूसरों को किसलिए बनाया है? इसका भी उत्तर चाहिए।

मां जरा मुश्किल में पड़ी होगी, अब क्या कहे? अगर कहे, कि दूसरों को इसलिए बनाया है कि तुम सेवा करो, तो यह तो बड़ा अन्याय है, कि मुझको सेवा करने के लिए बनाया और उनको सेवा करवाने के लिए; यह तो मूल से अन्याय हो गया! अगर मां यह कहे, कि दूसरों को इसलिए बनाया है कि वे तुम्हारी सेवा करें और तुम्हें इसलिए बनाया है कि तुम उनकी सेवा करो, तो बेटा कहेगा, अपनी-अपनी सब कर लें, क्यों फिजूल की झंझट खड़ी करनी!

मैं यही कह रहा हूं। इस दुनिया में बहुत हो चुकी दूसरों की सेवा, कुछ सार हाथ नहीं आया। दूसरों की सेवा के नाम पर बहुत थोथे धंधे चल चुके हैं। सेवा के नाम पर सत्ताधिकारियों ने लोगों का शोषण किया है। जो भी सेवक बनकर आता है, आज नहीं कल सत्ताधिकारी हो जाता है। जो तुम्हारे पैर दबाने से शुरू करता है, एक दिन तुम्हारी गर्दन दबायेगा! जब तुम्हारे पैर दबाये तभी चेत जाना, अन्यथा पीछे बहुत देर हो जाती है। फिर चेतने से कुछ सार नहीं। क्यों करेगा कोई सेवा तुम्हारी? और सेवा करेगा, तो बदला मांगेगा; पुरस्कार चाहेगा।

मेरी दीक्षा यही है तुम्हें—अपने आनंद से जियो। इतना ही पर्याप्त होगा। कि तुम किसी दूसरे के आनंद में बाधा न बनो। इतना ही पर्याप्त होगा कि तुम अपने आनंद का नृत्य नाचो और गीत गाओ। शायद तुम्हारे आनंद की तरंग दूसरों को भी लग जाए और वे भी आनंदित हो जायें। शायद थोड़ी गुलाल तुमसे उड़ें और वे भी लाल हो जायें! थोड़ा रंग तुमसे छिटके और वे भी रंग जायें। यह दूसरी बात है।

तुमने सेवा की, ऐसा सोचना मत। कोयल गाती है, तुम क्या सोचते हो कवियों की सेवा कर रही है, कि लिखो कवितायें, देखो मैं गा रही हूं! जागो कवियो! उठाओ अपनी कलमें, लिखो कवितायें। मैं आ गई सेवा करने को फिर। कि पपीहा पुकारता है, कि संतो जागो! कि देखो मैं पिय को पुकार रहा हूं, तुम भी पुकारो। मैं तुम्हारी सेवा करने आ गया। तुम इस जगत में देखते हो, कौन किसकी सेवा कर रहा है? कोयल गीत गा रही है अपने आनंद से; पपीहा पुकार रहा है—अपने रस में विमुग्ध हो। फूल खिले हैं—अपने रस से। चांद-तारे चलते—अपनी ऊर्जा से। तुम भी अपने में जियो।

मैं तुम्हें सेवक नहीं बनाना चाहता। मेरे पास लोग आ जाते हैं, वे कहते हैं कि आप अपने संन्यासियों को क्यों नहीं कहते कि वे जनता की सेवा करें? क्यों करें? क्यों किसी की कोई सेवा करें? और कितने दिन से सेवा चल रही है, हजारों साल हो गए, लाभ क्या है? मैं नहीं सिखाता सेवा करना।

और इसका यह अर्थ नहीं है, कि तुमसे सेवा नहीं होगी, खयाल समझ लेना, भेद समझ लेना। सेवा तुमसे तभी होगी, जब तुम करोगे नहीं। जब तुम अपने आनंद में मग्न हो जाओगे। जब तुम जागोगे और तुम्हारा दीया जलेगा—तब तुमसे सेवा होगी। तुम्हारे बिना किए होगी। तुम्हारी चेष्टा से मुक्त होगी। तुम्हारा प्रयास नहीं होगा। तुम्हारे भीतर से परमात्मा बहेगा और कुछ घटनायें घटेंगी, लेकिन तुम उनके कर्ता नहीं रहोगे—साक्षी मात्र।

तो मैं कोई सेवा नहीं कर रहा, कोई अथक चेष्टा नहीं कर रहा।

और तुम कहते हो, अच्युत, लोग सो रहे हैं; सत्य जीना तो दूर सत्य सुनने को भी तैयार नहीं। उनकी मर्जी...। उन पर नाराज भी मत होना। इतनी स्वतंत्रता तो होनी चाहिए, कि कोई सत्य को सुनना चाहे तो सुने और सत्य को कोई जीना चाहे तो जिये। इतनी स्वतंत्रता परमात्मा ने दी है। ये स्वतंत्रता के दो पहलू हैं। अगर सत्य भी जबर्दस्ती थोप जाता, तो सत्य न रह जाता। मनुष्य की गरिमा यही है कि स्वतंत्र है। चाहो तो मूर्च्छित रहो, सोये रहो—ओढ़ लो चादर और। तुम मालिक हो अपने।

जब मेरी कोई नहीं सुनता तो तुम यह मत सोचना कि मैं खिन्न होता हूं या उदास होता हूं। मैं देखता हूं उसकी गरिमा, उसका गौरव, उसकी महिमा। परमात्मा ने उसे स्वतंत्रता दी है, सुनना चाहे सुने, न सुनना चाहे न सुने। अगर मुझे गाने की स्वतंत्रता दी है, तो कम-से-कम उसे सुनने या न सुनने की स्वतंत्रता तो दी ही है न! मैं कौन हूं, जो मेरी बात सुने ही। ऐसी सुनने की कोई मजबूरी नहीं है, और फिर मेरी बात माने भी...। मगर तुम्हारे महात्मा यह करते रहे हैं। इसलिए तुम्हें यह ख्याल मेरे संबंध में



भी आ जाते हैं।

तुम्हारे महात्मा यह करते रहे हैं—हमारी सुनो, नहीं तो हम अनशन कर देंगे। बड़े मजे की बात है, महात्मा गांधी छोटी-छोटी चीजों पर आश्रम में अनशन कर देते थे, ये अनशन हिंसात्मक हैं। इनमें कहां की अहिंसा है। कोई भी आदमी चाय पीले आश्रम में, इतनी भी स्वतंत्रता नहीं। और तरकीब देखते हो, उसके सिर पर डंडा लेकर गांधी खड़े नहीं हो जाते, इसलिए हिंसा किसी को दिखाई भी नहीं पड़ेगी। मगर एक सूक्ष्म डंडा लेकर खड़े हो गए, जो कि ज्यादा घातक है, ज्यादा संघातक है, ज्यादा अमानवीय है। उन्होंने तीन दिन का उपवास कर दिया, अब कहते हैं कि मैं अपने को मार डालूंगा, अगर मेरी नहीं सुनोगे। इसको वे कहते हैं—सत्याग्रह।

सब आग्रह असत्य के होते हैं, सत्य का कोई आग्रह होता ही नहीं। जहां आग्रह है। वहां असत्य है। आग्रह क्यों? मैंने अपनी बात कही। तुम्हें सुननी थी सुन ली, नहीं सुननी थी नहीं सुनी; माननी थी मान ली, नहीं माननी थी नहीं मानी। तुम तुम्हारे मालिक, मैं मेरा मालिक। इतना ही क्या कम है कि तुम मौजूद थे, कि तुम आये थे। फिर सुना नहीं सुना, गुना नहीं गुना, जिये नहीं जिये, तुम्हारी मर्जी। मैं कोई अनशन नहीं करूंगा। अनशन तो हिंसा है। मैं तुम्हें दबाऊंगा नहीं। यह तो तुम्हें सताने का उपाय है।

अब तुम थोड़ा सोचो, कि अगर मैं अनशन कर दूं और कहूं, कि तुम्हें ऐसा करना पड़ेगा, यह खाना पड़ेगा, वह पीना पड़ेगा, नहीं तो मैं उपवास करता हूं, तो तुम्हारे ऊपर मैं तुम्हारी छाती पर पत्थर रख रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं, कि देखो तुम सिगरेट पीना नहीं छोड़ते और मैं मरने को तैयार हूं तुम्हारे लिए—जरा मेरी सेवा देखो! मैं अपनी जान दे रहा हूं तुम्हारे लिए और तुम सिगरेट पीना नहीं छोड़ सकते!

अब तुम में अगर थोड़ी भी ममता होगी, थोड़ा भी प्रेम होगा, थोड़ी भी दया होगी तुम कहोगे कि यह भी क्या... सिगरेट पीने के लिए किसी की जान जाए। तुम दबाव करोगे अपने पर। तुम कहोगे कि नहीं; मैं कसम खाता हूं अब कभी सिगरेट न पिऊंगा। मगर यह दबाब में ली गई कसम है; यह जबर्दस्ती है। यह तो बंधन हुआ। यह तो तुम्हारे ऊपर जंजीर डाल दी गई! यह मुक्ति नहीं है, यह मुक्ति का मार्ग नहीं है।

मैं तो कह देता अपनी बात... और मैं कहता रहूंगा। सुनने वाले सुन लेंगे, पीने वाले पी लेंगे, जीने वाले जी लेंगे—तुम्हारी मौज...।

रवि-किरन के
शर-निकर शत,
यह हरिद्रा पीत,
नील अम्बर में

सुशब्दायित हुआ
जिनका अमर संगीत,
जब बिखरने
फूट पड़ने
के लिए आतुर;
खिल रही
अरविन्द सी
प्राची दिशा की
जब अरुण पांखुर;
तब कुहासे की चदरिया तान
तन, मन, प्राण पर इस ओर,
सो रहे हो ?
सोते रहो।
किन्तु क्या रुक जायेगा
उगता हुआ नव भोर ?
निश्चित नहीं;
भोर तो आकर रहेगा
इस धरा के
मौज भरते,
मुक्त अम्बर में
विचरते,
पांखियों का
शोर भी छा कर रहेगा।

सुबह होती है, सूरज उगता, तुम सोये रहो चादर ओढ़कर इससे कोई सूरज थोड़े ही रुक जायेगा। तुम पड़े रहो दबे अपने बिस्तर में; इससे पक्षियों के गीत थोड़े ही रुक जायेंगे। इससे पक्षी नाराज थोड़े ही हो जायेंगे। इससे सूरज उदास थोड़े ही हो जाएगा, सूरज कहेगा कि अब मैं सत्याग्रह करूंगा, कि मैं अनशन करता हूं; कि मैं आया इतनी देर से आया, कितनी अनंत की यात्रा करके आया, रात के अंधेरे को पार करके आया, पूरी पृथ्वी का चक्कर लगाकर आया और तुम सो रहे हो। पापी कहीं के! जागो, अन्यथा मैं लौट जाऊंगा कि सिकोड़ लूंगा अपनी किरणें। सूरज ऐसा कुछ भी नहीं कहता।



सो रहे हो ?
सोते रहो।
किन्तु क्या रुक जायेगा
उगता हुआ नव भोर ?
निश्चित नहीं
भोर तो आकर रहेगा
इस धरा के
मौज भरते,
मुक्त अंबर में
विचरते,
पांखियों का
शोर भी छा कर रहेगा।

बस, ऐसा ही मेरा गीत है—पक्षियों का गीत जो सुबह होता है। ऐसी ही मेरी जीवन दशा है। जैसे सूरज उगता है, कोई देखे, कोई न देखे, इससे कुछ अंतर नहीं पड़ता है।

मैं कोई अथक चेटा नहीं कर रहा अच्युत, मैं कोई सेवा नहीं कर रहा। मैं निपट अपने ढंग से जी रहा हूं। और यही मेरी देशना है—तुम भी निपट अपने ढंग से जियो अपनी महिमा में, अपनी स्वतंत्रता में।

नहीं किसी के सेवक बनना, नहीं किसी को सेवक बनाना। हां, और निश्चित तुमसे बहुत प्रकाश बहेगा, बहुत प्रेम जगेगा। तुमसे बहुतों का कल्याण होगा, मगर तुम किसी का कल्याण करने मत जाना। कल्याण करने वाले लोगों ने बड़ी हानि पहुंचा दी है।

मैंने सुना, चीन में एक मेला भरा। एक आदमी एक कुएं में गिर पड़ा; कुएं पर पाट नहीं थी। एक बौद्ध भिक्षु पास से निकला। वह आदमी भीतर से चिल्ला रहा है—मुझे बचाओ! मैं मर जाऊंगा, मुझे बचाओ। शोरगुल बहुत है—मेला, बाजार भरा है; कौन किसकी सुन रहा है? बौद्ध भिक्षु कुएं के पास से निकलता था; फिर ध्यान की उसे आदत भी थी, शांत होने का ढंग भी था! उसे सुनाई पड़ गई आवाज। उसने कुएं में झांक कर देखा। जो डूबता था आदमी, बड़ा प्रसन्न हुआ, उसने कहा: आप आ गए, हे भिक्षु देवता। मुझे बचाओ। भिक्षु ने कहा: देखो, सुनो, यह जगत तो दुख है। बचकर भी क्या करोगे? भगवान बुद्ध नहीं कह गए--जन्म दुख है, जीवन दुख है, जरा दुख है, मृत्यु दुख है—सब दुख है; बचकर क्या करोगे? मरना तो पड़ेगा ही, आज मरे कि कल, सब बराबर है। फिर अपने कर्मों का फल भोग रहे हो; फल तो भोगने ही पड़ते हैं, नहीं तो कोई निस्तार नहीं। मैं इतना ही तुम्हें कह सकता

हूं, शांति से मरो।

यह तुम्हारे दर्शन शास्त्रियों का निष्कर्ष है—चुपचाप मर जाओ! भिक्षु तो अपने रास्ते पर चला गया। और खयाल रखना, हंसना मत भिक्षु पर। उसने जो कहा, वही तुम्हारे कर्म के सिद्धांत का तार्किक निष्कर्ष है।

उसके पीछे ही आया एक कन्फ्यूशी। कन्फ्यूशियस तो समाज की व्यवस्था, नियम, कानून इनके रूपान्तरण में विश्वास करता है। कन्फ्यूशी ने आवाज सुनी, उसने नीचे झांक कर देखा। वह आदमी बोला कि बचाओ मुझे भाई, मैं मरा जा रहा हूं। अब ज्यादा देर टिक न सकूंगा, ठंड बहुत है, मेरे हाथ-पैर गले जा रहे हैं। उस कन्फ्यूशी ने कहा: तू घबड़ा मत, महात्मा कन्फ्यूशियस ने पहले ही कहा है, कि हर कुएं पर पाट होनी चाहिए। इस कुएं पर पाट नहीं है, इसका फल यह हुआ कि तू मर रहा है। मत घबड़ा, सब कुओं पर पाट बांधवा कर रहेंगे। सारे देश में सुधार करवा कर रहेंगे। क्रान्ति करनी होगी तो क्रान्ति करेंगे, कानून बदलना तो कानून बदलेंगे, तू घबड़ा मत। उसने कहा: वह तो होगा ठीक, लेकिन मेरा क्या होगा? मुझे बचाओ। मगर उस आदमी को तो अब इसकी फिक्र ही नहीं; एक-एक आदमियों की कौन फिक्र करे! वह तो जाकर बीच मंच में खड़ा हो गया और उसने लोगों को चिल्ला-चिल्ला कर कहना शुरू किया, कि सुनो भाईयो, देखो महात्मा कन्फ्यूशिस की बात सच सिद्ध हो रही है! उसने इस बात को एक उदाहरण बना लिया कि यह उदाहरण है—हर कुएं पर पाट होनी चाहिए। वह सामाजिक क्रान्ति में संलग्न हो गया।

पीछे से एक ईसाई फकीर आया, उसने जल्दी से अपने झोले में से रस्सी निकाली, रस्सी डाली। आदमी कुछ बोल ही नहीं पाया, उसके पहले रस्सी पहुंच गई उसके पास। वह आदमी तो कुछ सोच ही रहा था बोलना कि नहीं बोलना, कहना भी कि नहीं कहना, कि चुपचाप मर ही जाने में सार है? कि बौद्ध भिक्षु ने शायद ठीक ही कहा, कोई निकालनेवाला मिलने वाला नहीं है। वह कन्फ्यूशी गया, वह और शोरगुल मचा रहा है। वैसे मेरी कोई सुन लेता, तो अब कोई सुन भी नहीं सकता—इतना शोर-गुल मचा रहा है। तो वह सोच ही रहा था, कहना कि नहीं; मगर ईसाई ने तो तत्क्षण रस्सी डाल दी उस आदमी को खींचा, कपड़ा उढ़ाया।

उस आदमी ने कहा: धर्म तुम्हारा असली है। तुमने सेवा की। उस ईसाई ने कहा कि भाई, सेवा की बात मत करो। यह तो हमने इसलिए तुम्हें निकाला, कि हमें स्वर्ग जाने की आकांक्षा है। और जीसस ने कहा है, जो सेवा करेगा वही मेवा पाएगा। इसलिए तुम देखते हो, हम रस्सी साथ ही लेकर चलते हैं। झोले में ही रखी हुई थी, कि कहीं कोई गिरे, हम मौके की तलाश में रहते हैं। और यह कन्फ्यूशी ठीक बातें नहीं कर



रहा है, अगर सब कुओं पर पाट हो जाएगी, तो लोग गिरेंगे कैसे? और अगर लोग गिरे नहीं, तो लोग बचायेंगे कैसे? सेवा करने वालों का क्या होगा? फिर मेवा कैसे मिलेगा? कुओं पर पाट की कोई जरूरत नहीं है। जिन पर हैं उनके भी अलग कर दो। सेवा फैलनी चाहिए। तुम अपने बच्चों को भी समझा जाना कि ऐसे कुओं में गिरते रहें, क्योंकि हमारे बच्चे आयेंगे, वे उनको निकालते रहेंगे। बिना सेवा के तो स्वर्ग मिल नहीं सकता!

तुम हंसो मत, मैंने स्वामी करपात्री की एक किताब पढ़ी है, जिसमें उन्होंने लिखा है...समाजवाद, साम्यवाद नहीं आने चाहिए, क्योंकि अगर साम्यवाद आ जाएगा फिर दान का क्या होगा? न कोई देने वाला बचेगा, न कोई लेने वाला और सब में धना का समान वितरण हो जायेगा और दान तो धर्मों का धर्म है। तो धर्म नष्ट हो जाएगा। तर्क देखते हो! जब मैं करपात्री महाराज की किताब पढ़ रहा था, तो मुझे यह चीनी कहानी याद आई कि करपात्री को भी उसमें जोड़ देना चाहिए। वही तर्क। और कई को तर्क जंचता होगा, क्योंकि कई करपात्री को मानने वाले लोग भी हैं। जंचती होगी वह बात, कि ठीक है, अगर दान ही धर्म का मूल है... और सम्पत्ति बांट दी गई। कोई भिखारी न बचा, कोई मांगनेवाला न रहा, फिर दान कैसे होगा? और दान नहीं होगा तो धर्म कैसे होगा?

ठीक कहा उस ईसाई फकीर ने—भैय्या, गिरते रहना...बाल-बच्चों को भी समझा जाना, कि गिरते रहो। कुओं पर पाट बनाना मत। हमारे बाल-बच्चे भी हैं, आखिर उनको भी स्वर्ग जाना है। तुम गिरते रहोगे, तो हम सेवा करते रहेंगे। तुम कोढ़ी हो जाओगे, हम पैर दबायेंगे। तुम बीमार हो जाओगे, हम अस्पताल खोलेंगे। तुम यह सन्तति निग्रह करने वालों की बात मत सुनना, तुम तो बच्चे पर बच्चे पैदा करना, ताकि हम स्कूल खोलें और उनको शिक्षा दें। नहीं तो हमारे स्वर्ग का क्या होगा?

मैं तुम्हें सेवा नहीं सिखाता। मैं तुम्हें अपने आनंद से जीना सिखाता हूं। हां, तुम्हारे आनंद से जीने में अगर कुछ घटे...। अगर तुम कुएं के पास जाओ और किसी को गिरा हुआ देखो और तुम्हारा आनंद भाव तुम्हें उसे निकालने के लिए कहे—अहेतुक, न स्वर्ग जाने की आकांक्षा, न अखबार में खबर छपवाने की आकांक्षा, न बड़े महावीर चक्र मिल जाए तुम्हें, महावीर पदक मिल जाए, स्वर्ण पदक मिले, सरकारी सम्मान मिले, कि सरकारी संत समझे जाओ—ऐसी कोई आकांक्षा...। नहीं, ऐसा कोई सवाल नहीं, बस उस गिरते डूबते आदमी को देखकर तुम्हारे प्राण ही रस्सी बन जायें! तुम्हारा होना ही उसे बचाने को आतुर हो जाए। सेवा की दृष्टि से नहीं, जरा भी सेवा की दृष्टि से नहीं—सहज हो। और उसे बचाकर तुम अपने रास्ते पर चले जाओ। तुम

उसका धन्यवाद भी मांगने की आकांक्षा न दिखाओ। तुम यह भी न कहो, कि भई खयाल रखना, मैंने तुम्हें बचाया, भूल मत जाना! इतनी भी आकांक्षा आ गई, तो तुमने आनंद से नहीं बचाया। और आनंद से जो बचाता है वह परमात्मा के हाथ का उपकरण हो जाता है।

भोर तो आकर रहेगा
रवि-किरन के
शर-निकर शत,
यह हरिद्रा पीत,
नील अम्बर में
सुशब्दायित हुआ
जिनका अमर संगीत,
जब बिखरने
फूट पड़ने
के लिए आतुर;
खिल रही
अरविन्द सी
प्राची दिशा की
जब अरुण पांखुर;
तब कुहासे की चदरिया तान
तन, मन, प्राण पर इस ओर
सो रहे हो?
सोते रहो।
किन्तु क्या रुक जायेगा
उगता हुआ नव भोर?
निश्चित नहीं;
भोर तो आकर रहेगा
इस धरा के
मौज भरते,
मुक्त अम्बर में
विचरते,
पांखियों का



शोर भी छा कर रहेगा।

आखिरी प्रश्न: क्या भक्त अकेले विश्वास के सहारे जी सकता है?

★ विश्वास तो थोथी बात है, झूठी बात है। भक्त तो प्रेम के सहारे जीता है, विश्वास के सहारे नहीं। विश्वास की जरूरत तो उनको पड़ती है, जिनके जीवन में प्रेम नहीं है। भक्त को तो अस्तित्व को देखकर प्रेम उमगता है। हरे वृक्षों को देख कर आलिंगन करने की कामना जगती है। संगीत सुन कर संगीतमय हो जाने की अभीप्सा जगती है। तारों को देख कर तारों के साथ नाचने का मन होता है। भक्त को तो अस्तित्व के प्रति प्रेम जगा है।

विश्वास की भक्त को जरूरत ही नहीं है। भक्त को श्रद्धा जगी है। और श्रद्धा और विश्वास में बड़ा फर्क है। विश्वास होता है सिर का, श्रद्धा होती है हृदय की। विश्वास तो सिद्धांत का होता है, जैसे तुम हिन्दू घर में पैदा हुए तो तुम्हारे विश्वास हिन्दू हैं; इससे तुम भक्त नहीं हो गए। तुम मुसलमान घर में पैदा हुए तो तुम्हारे विश्वास मुसलमान हैं। इससे तुम भक्त नहीं हो गए। भक्त न तो हिन्दू होता है, न मुसलमान, न ईसाई, न जैन, न बौद्ध—भक्त तो बस होता है; उतना होना पर्याप्त है। विशेषण रहित होता है। भक्त को तो हृदय में श्रद्धा जगती है। भक्त तो विश्वासों से बिलकुल मुक्त होता है। विश्वास तो उधार होते हैं, दूसरों के लिए होते हैं—बासे होते हैं—उच्छिष्ट। श्रद्धा अपनी होती है।

इसलिए भक्त अनुभव मांगता है, भक्त अनुभव तलाशता है। भक्त को थोथे विश्वास तृप्त नहीं कर पाते। प्रश्न तुमने ठीक ही पूछा है, भक्त विश्वास के सहारे नहीं जी सकता है। भक्त को तो विश्वास में सहारा दिखाई भी नहीं पड़ता।

छांह तो देते नहीं, मधुमास लेकर क्या करूंगी—
बांह तो देते नहीं, विश्वास लेकर क्या करूंगी!
टूटकर बिखरी हृदय की कुसुम-सी कोमल तपस्या,
स्वप्न झूठे हो गये हैं,
आरती के दीप का मधु-नेह चुकता जा रहा है
फूल जूठे हो गये हैं,
आ गई थी द्वार पर तो साधना स्वीकार करते
अब कहां जाऊं बताओ—
तृप्ति तो देते नहीं, यह प्यास लेकर क्या करूंगी—
बांह तो देते नहीं, विश्वास लेकर क्या करूंगी।
आज धरती से गगन तक मिलन के क्षण सज रहे हैं,

चांदनी इठला रही है
स्वप्न-सी वंशी हृदय के मर्म गहरे कर रही है
गंध उड़ती जा रही है
मंजरित अमराइयों में, मदिर कोयल कूकती है
पर अधर मेरे जड़ित हैं
गीत तो देते नहीं, उच्छ्वास लेकर क्या करूंगी—
बांह तो देते नहीं, विश्वास लेकर क्या करूंगी।
डूबती है सांझ की अंतिम किरण-सी आश मेरी
और आकुल प्राण मेरे
किस क्षितिज की घाटियों में खो गये प्रतिध्वनित होकर
मौन, मधुमय गान मेरे,
चरण हारे पंथ चलते, मन उदास थका-थका सा,
कौन दे तुम बिन सहारा,
सांस तो देते नहीं, उल्लास लेकर क्या करूंगी—
बांह तो देते नहीं, विश्वास लेकर क्या करूंगी॥

भक्ति तो प्रेम की ही पराकाष्ठा है। जैसे प्रेम विश्वास नहीं मांगता, बांह मांगता है। प्रेमी चाहता है आलिंगन दो, भरोसे नहीं। आश्वासन नहीं, आलिंगन दो।

सांस तो देते नहीं, उल्लास लेकर क्या करूंगी—
बांह तो देते नहीं, विश्वास लेकर क्या करूंगी।

जैसे प्रेयसी मांगती है बांह, ऐसे भक्त मांगता है बांह। भक्त शब्दों से राजी नहीं होता, सिद्धांतों से राजी नहीं होता, शास्त्रों से राजी नहीं होता, भक्त अनुभव मांगता है। भक्त कहता है—आओ मेरी आंख के सामने। खोलो मेरे हृदय के द्वार। आओ हम गठबंधन में बंधे। आओ हम नेह को बांधें। आओ हम भांवर डालें। भक्त इससे कम में राजी नहीं है। जो इससे कम में राजी है, कभी भक्त न हो पायेगा। भक्त की आकांक्षा परम की है, आत्यंतिक की है। भक्त तो भगवान हो जाना चाहता है, भगवान में लीन हो जाना चाहता है।

इसलिए भक्त निरंतर उलझता है, झगड़ता है, शिकायत करता है, नाराज होता है, रूठता है। परमात्मा से उसकी सीधी-सीधी बात चलती है, जैसे प्रेमी की प्रेमी से चलती है। इसलिए तो भक्त पागल समझा जाता है। क्योंकि तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता परमात्मा, किससे बातें कर रहा है भक्त? किससे जूझता है? किससे रूठता है?

रामकृष्ण को ऐसे दिन आ जाते थे, जब वह ताला मार देते थे मंदिर में। दो-दो,



चार-चार दिन मंदिर ही न जाते थे, प्रार्थना ही नहीं करते थे। पीठ किए बैठे रहते मंदिर की तरफ। उनके शिष्य कहते, कि परमहंस देव प्रार्थना कब होगी? नहीं होगी, वे कहते। जब हमारी नहीं सुनी जाती, तो हम भी क्यों प्रार्थना करें? अब हम रूठ गए हैं, अब जब मनाये जायेंगे तब...। और कोई अज्ञात हाथ मनाता भी, कोई अज्ञात हाथ बुलाता भी। फिर कभी प्रार्थना ऐसी जमती, कि दिन-दिन बीत जाता। सुबह से शुरू होती सांझ आ जाती, भक्त आते और जाते, लोग आते और जाते—प्रार्थना बंद ही न होती, ऐसे रसमग्न हो जाते! वही आदमी जो कभी ताला मार देता, कभी ऐसा रसमग्न हो जाता! कभी जो रूठ जाता था, कभी मनाता भी था। भक्त तो प्रेम को जानता है। प्रेम तो अनुभव है, विश्वास नहीं।

आने को कहकर भी, आये तुम मीत नहीं,
ऐसी तो रीत नहीं, ऐसी तो रीत नहीं।
जिसके स्वर सुन पायल की गतियां रुक जायें,
रतनारे नयनों के पलक उठें, झुक जायें।
झीलों में पाल भरी, नावों से सपन तिरें,
बिन पावस कजरारे, बदरा से गगन घिरें।
जो मन प्राणों पर जादू बन कर छा जायें,
आया इन अधरों पर, फिर वैसा गीत नहीं॥
आने को कह कर भी, आये तुम मीत नहीं,
ऐसी तो रीत नहीं, ऐसी तो रीत नहीं।
सुरभित तो हैं कलियां, पर वैसी गंध नहीं,
लगता ज्यों मधुवन से, हो कुछ संबंध नहीं।
जाने क्यों मधुऋतु है, रूठी अमराई से,
अपना ही आंगन क्यों, वंचित शहनाई से?
फागुन के मदमाते, गीत अधर भूल गये,
जाये फिर अब का भी, सावन यूं बीत नहीं॥
आने को कहकर भी, आये तुम मीत नहीं,
ऐसी तो रीत नहीं, ऐसी तो रीत नहीं।
तुम यदि आ पाओ तो पतझर मधुमास बने,
माथे की रेखायें, अधरों का हास बने।
पारस तुम, छू लूं यदि, तन कंचन बन जाये,
जीवन की हर परिभाषा, नूतन बन जाये।

आने को कह कर भी, आये तुम मीत नहीं,
ऐसी तो रीत नहीं, ऐसी तो रीत नहीं।
कितना भी समझाऊं, पर तेरी छाया बिन,
हो पाई है अब तक दर्पण से मीत नहीं।
आने को कह कर भी, आये तुम पीत नहीं,
ऐसी तो रीत नहीं, ऐसी तो रीत नहीं।

भक्त जूझता है, उलझता है, प्रेम के डोरे फेंकता परमात्मा पर। और उत्तर भी आते हैं। भक्त को ही उत्तर आते हैं, ज्ञानी तो सूखा-सूखा रह जाता है, शास्त्रों में ही डूबा रह जाता है। प्रेम की सरस धार बहती नहीं, प्रेम के फूल नहीं खिलते और न प्रेम के पक्षी चहचहाते हैं। भक्त का रास्ता तो बड़ा मधुर है, मधुसिक्त है। भक्त तो मधुशाला में पीता है रस उसका।

नहीं, भक्त विश्वास के सहारे न जीता है, न जी सकता है, भक्त तो अनुभव मांगता है। भक्त तो कहता है—आओ, आलिंगन में बंधो।

और ऐसी घटना घटती है, ऐसी अपूर्व घटना घटती है। ऐसा क्षण आता है, जब भक्त का भगवान से मिलन होता है। उन्हीं क्षणों की याद तो तुम्हें दिला रहा हूं। मैं तुम्हें विश्वास नहीं देना चाहता, मैं तुम्हें बांह देना चाहता हूं।

छांह तो देते नहीं, मधुमास लेकर क्या करूंगी—
बांह तो देते नहीं, विश्वास लेकर क्या करूंगी।

विश्वास लेना भी मत, बांह ही लेनी है, छांह ही लेनी है।

तृप्ति तो देते नहीं, यह प्यास लेकर क्या करूंगी—
बांह तो देते नहीं, विश्वास लेकर क्या करूंगी।

विश्वास लेना भी नहीं। तृप्ति मांगना। छोटे से राजी भी मत हो जाना। खिलौनों से तृप्त मत हो जाना।

गीत तो देते नहीं, उच्छ्वास लेकर क्या करूंगी—
बांह तो देते नहीं, विश्वास लेकर क्या करूंगी।

गीत मांगना—जागता, जीता, तड़फता श्वास लेता। गीत मांगना, कि तुम्हारा हृदय उपनिषद की गूंज बन जाए। गीत मांगना, कि तुम्हारे भीतर छिपा कबीर गुनगुना उठे। गीत मांगना, कि तुम्हारे भीतर पुकार उठे वाजिद! कहै वाजिद पुकार!

आज इतना ही।

## नया साहित्य
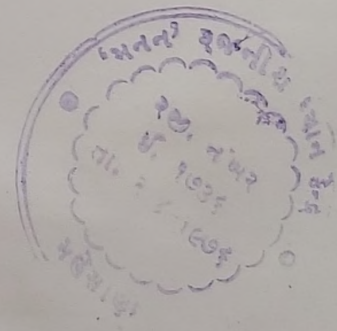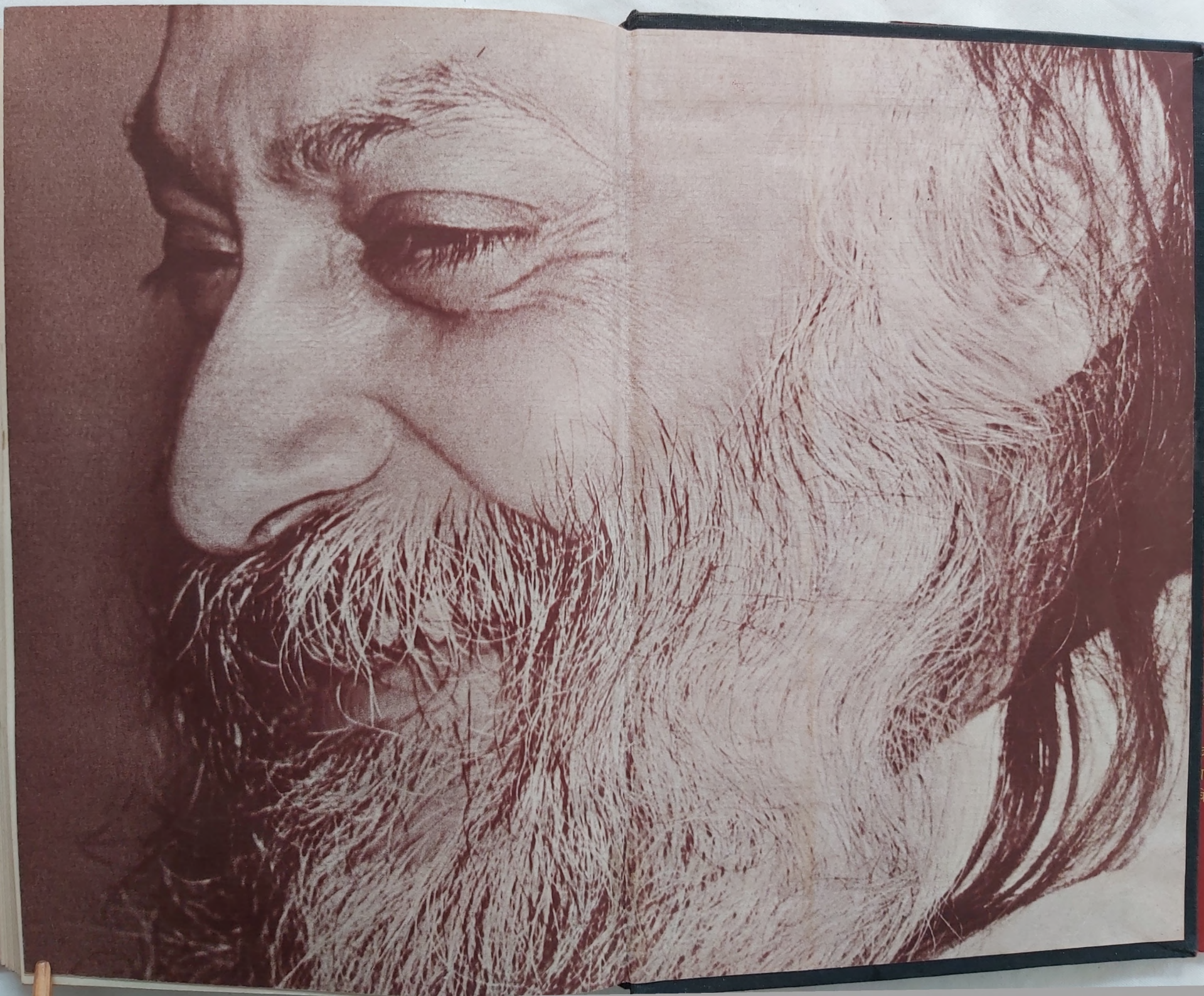
शाखाओं सी बाहु उठाये, निश्छल शिशु-सी महावीर की नग्न देह।

कभी यह चपल चांदनी, बिछल कर शैल-शिखर से, हो लेती हैं संग बैरागिन मीरा के, पग में घूंघर बांध, नदी सी थिरक-थिरक जो, प्रिय-आलिंगन को आतुर, भागी जाती है मदमाती!

कभी राह में रुक जाती है मस्त कबीरा की कुटिया पर, और दीवाने कबिरा के ओठों की गुनगुन के संग, बुनने लगती है किरनों के शुभ्र सूत से राम-चदरिया जीवन की! चलते-चलते... दे जाती है मृदुल थाप किसी नाचते सूफी की झांझ पर, तो कभी छेड़ जाती है किसी बाउल के इकतारे का तार...।

कभी नदी की मीरा के संग समा जाती है श्याम-सिंधु के अगम-अतल में, और निकलती है किरनों की डोरों से नाथे सहस्र-फणीधर महाव्याल को!

विषपायी सागर का होता कंठ शान्त, और फैल जाती है हासोज्ज्वल, फेनिल मुस्कान तीर तक...।

फिर बजती है मुरली मोहन की, रचता है रास! उड़ती है दिशि-दिशि गैरिक-गुलाल इस मोरपंखी चांदनी में! सुन वंशी की अनाहत ध्वनि, खिंचे चले आते हैं अग्निपंखी विहग, दूर देश के, भांति-भांति के। भरता जाता है सागर-तट पर अग्निपंखियों का मेला! मुखरित करती है दिशा-दिशा को उनकी क्रीड़ा-काकलि-कल्लोल!

किरनों की जादू-छड़ी घुमाती चांदनी का इंद्रजाल ... और सब कुछ होता जाता है—जीवंत, रुपहला, आलोक-स्नात! घाटी का अंधियारा भी अब कितना प्यारा लगता है!

रोमांचित रोंआ-रोंआ कदंब-फूल सा,
और आंखें शिशुओं-सी विस्मय-विमुग्ध!